श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित सार समुच्चय

सद् देशना

भाग -3



देशनाकार

श्रमणाचार्य विशुद्धसागर

श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित ''सारसमुच्चय''

पर

सद्-देशना

(भाग-3)

[टीकात्मक प्रवचन श्लोक 109 से 160 तक]

देशनाकार

आचार्य विशुद्धसागर मुनिराज

प्रकाशक

श्रमणसंस्कृति सेवासमिति, इंदौर

❖ मूलकृति – श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित 'सार-समुच्चय'

❖ प्रस्तुत कृति – **''सद्-देशना'' (भाग-3)**
(वर्ष 2012, आगरा चातुर्मास में 'सारसमुच्चय' पर किये गये टीकात्मक प्रवचन)

❖ देशनाकार – **ब्रह्मणाचार्य विशुद्धसागर मुनिराज**

❖ संकलन – **ब्रह्मण सुव्रतसागर मुनि**

❖ संपादन – पंडित शिवचरण लाल जैन, मैनपुरी

❖ प्रस्तुति – इंजी. जिनेन्द्र जैन, पद्मनाभ नगर, भोपाल
ब्र. दीदी डॉ. शशिकिरण जैन, पन्ना
ब्र. किरण दीदी, टीकमगढ़

❖ आवृत्ति – प्रथम, वर्ष 2015, 2200 प्रतियाँ

❖ प्रकाशक – श्रमणसंस्कृति सेवासमिति, इंदौर

❖ पुण्यार्जक –
- ब्र. दीदी डॉ. शशिकिरण जैन, पन्ना
- श्री आजादकुमार रवि देवी जैन 'बीड़ीवाले', इंदौर
- श्री वीरेन्द्र कुमार मोदी, पारस विद्या विहार, सागर

❖ प्राप्ति स्थान –
- श्री आजादकुमार जैन, इंदौर, मो. 09425321151
- श्री मनीष जैन मोना, इंदौर, मो. 09826210189
- महावीर पाटनी, भिलाई, मो. 08959990000
- श्री नंदीश्वर जिनालय, लालघाटी, भोपाल, मो. 09425374897
- मनोज झांझरी, जयपुर, मो. 09829063426
- नमोस्तु शासन संघ, मुंबई, मो. 09892297204

❖ न्यौछावर – रु. 150/- (पुनर्प्रकाशनार्थ)

❖ मुद्रक – विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
फोन : 0755-2601952, 9425005624

अनुक्रमणिका

श्लोक क्र.	विषय	पृष्ठांक
	सम्पादकीय	V
	मंगलाचरण	XII
109	कामवासना और धनाभिलाषा हेय हैं	1
110	नरक में पतन का कारण	1
111	कामसेवन महा पाप का जन्मदाता है	14
112	कोटि भव की वेदना	30
113	ज्ञानोपयोग से काम-शमन	43
114	कामसेवन से काम-शमन नहीं	43
115	काम-शमन के उपाय	57
116	काम-शमन के उपाय	57
117	कषाय जीतने के उपाय	69
118	चारित्र धारण की प्रेरणा	79
119	चारित्र का सार	79
120	स्त्रियों का स्वरूप	93
121	स्त्रियों को किसने बनाया?	93
122	धन-यौवन-नाशक स्त्री	108
123	नरक-गर्त में गिरानेवाली है स्त्री	108
124	स्त्रियों में क्या सुन्दरता है?	122
125	वैराग्य सुख का कारण है	138
126	भोगार्थी कौन-सा अनर्थ नहीं करता	151
127	वैराग्य भावना भाओ	151
128	करने योग्य कर्त्तव्य	164
129	धर्मध्यान का सेवन करो	169
130	नरक-वेदना का कारण	169
131	नारकीय वेदना का कारण	169
132	अपने को ठगने वाला	182

श्लोक क्रं.	विषय	पृष्ठांक
133	कृत कर्म का फल	182
134	निर्वाणसुख का कारण	197
135	शान्ति नहीं मिलने का कारण	211
136	दिगम्बरत्व का महत्व	211
137	सम्यग्दृष्टि के विचार	226
138	कर्मशत्रुओं को जीतने का परामर्श	226
139	इससे बड़ा आश्चर्य क्या	226
140	आत्मज्ञानी के करने योग्य कार्य	242
141	देवगति के सुख	256
142	नरक में नाना दु:ख	272
143	नरकों के दु:ख	272
144	नरकों के दु:ख	272
145	मनुष्यगति में गर्भ के दु:ख	290
146	तिर्यञ्च गति के दु:ख	306
147	संसार में कहीं भी सुख नहीं	306
148	कर्मोदय से सुख-दु:ख	323
149	वैराग्य की आवश्यकता	323
150	सांसारिक सुखों का स्वरूप	337
151	सबकुछ नश्वर है	337
152	आत्महित क्यों नहीं करते	353
153	शरीर की अशुचिता	353
154	शरीर नश्वर है	366
155	स्नेह करना व्यर्थ है	379
156	शोक करना वृथा है	392
157	स्वहित का नाशक कौन	406
158	स्वहित का स्वरूप	417
159	स्वहित से भ्रष्ट कौन	430
160	संसार से विरक्ति क्यों नहीं होती	430

सम्पादकीय

वन्दे वागीश्वरीं नित्यं जिनवक्त्राम्बुजनिर्गतां।
वाक्शुद्धयै नयसिद्ध्यै च जिनस्याद्वादामृतगर्भिणीं ॥

विश्ववन्द्य तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि के अर्थ व्याख्यान की साकार शब्दरूपता रूप गणधरों के ग्रन्थ कर्त्तृव्य-जैन वाङ्मय में परम्पराचार्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। निर्ग्रन्थ श्रमणों ने प्रथम-करण-चरण-द्रव्यानुयोग के विषयों को अपनी लेखनी द्वारा वर्तमान शासन नायक भगवान् श्री महति महावीर वर्द्धमान के सर्वलोकहित उपदेश को जन-जन तक पहुँचाने का महत्कार्य संपादित किया है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी से लेकर वर्तमान तक श्रमणों द्वारा अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह की त्रिवेणी में प्रवहमाण जैन अध्यात्म-दर्शन, आचार और विचार के ढाँचे में ढलकर विश्वमैत्री और सह-अस्तित्व का प्रभावक संवाहक बना हुआ है।

आचार्य कुलभद्र—ये निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य दशवीं शताब्दी (937 ई.) में इस पावन भारत भूमि को अपने विशिष्ट ज्ञान-ध्यान-तप द्वारा संस्कृत कर रहे थे। जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश के अनुसार यह कालावधि प्रकट है। श्रद्धेय ब्र. शीतल प्रसादजी ने हजार वर्ष पूर्व का मानकर अपनी टीका में उल्लेख किया है।

यह ज्ञातव्य है कि लगभग इसी समयान्तराल में आचार्य गुणभद्र, आचार्य अमितगति आदि प्रतापी आचार्यों ने जिनवाणी की महती शोभा की है। कुलभद्राचार्य की संभवत: एक ही कृति 'सार-समुच्चय' उनको उसी समकक्षता में लाने में समर्थ है। उन्हें इस महनीय उपकार के कारण समादृत स्थान प्राप्त है। उनका जीवन परिचय, संघ-परम्परा, ग्रंथ रचना आदि गवेषणा का विषय है।

सारसमुच्चय—328 अनुष्टप् छन्दों में, संस्कृत

भाषा में रचित कुलभद्राचार्य की यह रचाना 'आत्म स्वभावं परभाव भिन्नं' के मूलविषय द्रव्यानुपयोग के सारभूत अध्यात्म के केन्द्र पर शोभायमान है। सुख के शाश्वत रूप मोक्षप्राप्ति हेतु रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का भी साधन रूप तप है, वह सार है तथा उसका भी सार ध्यान है जो मोक्षोपयोगी निर्जरा का कारण है। यह वर्णित है।

वर्तमान में मनीषियों के प्रयास से इसकी टीकाओं सहित छह-सात प्रकाश न होचुके हैं। इसमें पं. दौलतराम कासलीवाल कृत भाषा वचनिका तथा 104 हिन्दी पद्यों में संक्षिप्त रचना (वि. सं. 1805), ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद कृत हिन्दी अनुवाद व टीका (सन् 1935)

सूरत व नरियां वाराणसी से, इससे पूर्व 1922 में माणिक चन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से "सिद्धान्तसारादिसंग्रह (संभवत: मूल) के नाम से तथा पूज्य गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती जी का भाषा टीकानुवाद (प्रकाशित सन् 2007) भी सम्मिलित हैं। इससे प्रकट होता है कि यह ग्रन्थ अध्यात्म-रसिकों के लिए कण्ठहार बना हुआ है।

सारसमुच्चय की विशेषतायें—निम्न बिन्दुओं से संक्षिप्त अवगम्य हैं।

(1) यह रचना संसार, शरीर और भोगों के प्रति संवेग और निर्वेद-वैराग्य हेतु परम औषधि है। प्रशम, आस्तिक्य और ध्यान की प्रेरणा देने वाले इस ग्रंथ में झलकता है कि—अध्यात्म ही सार-समुच्चय है।

(2) इसकी रचना संसार-भ्रमण, जन्म-मरण का नाश करने हेतु की गई है, स्वयं ही मार्दव के अंगभूत लाघव-भाव के धारण करने वाले आचार्य ने यह व्यक्त किया है, दृष्टव्य है।

अयं तु कुलभद्रेण भवविच्छित्तिकारणम्।
दृब्धो बालस्वभावेन ग्रन्थः सारसमुच्चयः ॥325॥
ये भक्त्या भावयिष्यन्ति भवकारणनाशनम्।
तेऽचिरेणैव कालेन सुखं प्रात्स्यन्ति शाश्वत्॥ 326/सा.समु.॥

बालस्वभाव वाले कुछभद्र ने इस सारसमुच्चय ग्रंथ को संसार की स्थिति छेदने के लिए लिखा है। जो भक्ति के साथ इसकी भावना करेंगे, जो कि संसार कारणों का नाशक है, वे शीघ्र ही शाश्वत सुख प्राप्त करेंगे।

(3) रस की एकरूप निष्पत्ति के लिए मात्र अनुष्टम् छन्द में लिखा है।

(4) भाषा सरल है, सामान्य संस्कृत-ज्ञानी भी भाव हृदयंगम कर सकता है।

(5) शैली सरस आध्यात्मिक रूप से प्रवाहपूर्ण है, उपदेशात्मक है, मधुर-प्रिय है।

(6) यह श्रावक और श्रमण दोनों के लिए समान रूप से पथ्य रूप में है।

(7) इसकी भाषा-शैली की तुलना गीता, आत्मानुशासन, सुभाषित रत्नसंदोह, क्षत्रचूड़ामणि से की जा सकती है, इसमें जटिल, क्लिष्ट व अति समस्तपद नहीं है।

(8) नीतियों, उदाहरणों, सिद्धान्त प्रस्तुति आदि से भावों में वैराग्योत्पादक है।

वस्तुत: यह जिनवाणी प्रसून पाठकों में भाव-विशुद्धि का मुख्य कारण है।

आचार्य श्री विशुद्धसागर महाराज—

वर्तमान श्रमण जगत् में परमपूज्य आचार्य श्री निर्दोष साधु-चर्या के धनी एवं ज्ञान-ध्यान-तपोलीन श्रमण के रूप में संघ नायक का कुशल निर्वहण कर रहे हैं। आध

यात्मिकता को लिए आपकी वाणी सर्वोदय हेतु अर्थात् जैन परम्परा के साधु व श्रावक सभी के लिए परम रसायण का कार्य कर रही है। वे सतत स्वाध्यायी, कुशाग्र चिन्तक, न्याय विद्याविशारद, सिद्धान्त शिरोमणि, समयसारादि शुद्ध-अध्यात्म के रसिक तथा लोकनीति व समाजनीति के दृष्टा हैं। प्रवचन कला की निपुणतामय उनकी लगभग पैंतीस कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिन्हें समाज चाव से पढ़ता है। ये सभी देशना की संज्ञा से विभूषित हैं। समयसार पर समयदेशना के सोलह खण्ड प्रकाश्य हैं। ये प्रवचन समाज पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।

रूर (भिण्ड) ग्राम में जन्मे राजेन्द्र ने अन्तःकरण से विरक्त होकर मात्र बीस वर्ष की आयु में श्रमणाचार्य श्री विराग सागर जी से बाल ब्रह्मव्रत सहित मुनिदीक्षा ग्रहण की एवं 31.03.2007 महावीर जयंती के पावन दिवस पर औरंगाबाद में आचार्यपद ग्रहण किया। अद्यावधि अपने रत्नत्रय के तेज से आत्मा को तथा ज्ञानदान, तप और जिनेन्द्र भक्ति से वीतराग जैन शासन रूप धर्म को, जिसे वे 'नमोऽस्तुशासन' (मूलाचार टीका के आधार पर) कहते हैं, प्रकाशित, प्रभावनायुक्त कर रहे हैं।

सद् देशना—आचार्य श्री विशुद्धसागर जी ने ऊपर वर्णित ग्रन्थ 'सार-समुच्चय' पर विस्तृत देशना प्रदान की है। सत् शब्द का अर्थ समीचीन, प्रशंसनीय, कल्याणकारी एवं श्रेष्ठ होता है। यह 'सद् देशना' 'संज्ञा सार्थक' है। इसमें सुष्ठु व्याख्यान है। इसमें विभिन्न विषयों पर बहुआयामी उपदेश दिया है। साथ ही ब्र.शीतल प्रसाद जी के कतिपय शीर्षकों से समन्वित, गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक श्लोक के शीर्षकों को लिखा गया है, यह आचार्य श्री की गुणग्राहकता तथा प्रवचन वात्सल्य का द्योतक है। इससे ज्ञानावरण कर्म का विशेष क्षयोपशम होता है।

यह ज्ञातव्य है कि यदि शीर्षक द्वारा संकेत प्राप्त होता है, तो पाठक को विषय को समझने में सुविधा होती है। मूल ग्रन्थ के आशय के अनुरूप कतिपय शीर्षक ही देशना के महत्व को प्रस्थापित करते दृष्टिगत होते हैं, यथा आत्म-भावना ही विधेय है, ज्ञान भावना पूर्वक तप करणीय है, आत्म चिकित्सा की प्रेरणा, संसार दुःख नाशक सम्यग्दर्शन आदि।

सद् देशना की भाषा शैली—

प्रस्तुत देशना देश-देश व घाट-घाट का पानी पीने वाले पदयात्री-करपात्री पहुँचे हुए आत्मनिष्ठ यायावर श्रमण के मुख-कमल से निःसृत सर्वहारा सूत्ररूपी सुरभित पुष्पों का हार है। आचार्य श्री की उभय लोक हित करूणा के दर्शन हम यहाँ आचार्य गुणभद्रस्वामी के निम्न श्लोक द्वारा करना चाहेंगे,

जनाः धनाश्च वाचाला सुलभा स्युर्वृथोत्थिताः।
दुर्लभाः हयान्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षवः ॥

वृथाही अहंकार से भरे वाचाल वक्ता अधिक संख्या में सुलभ हैं, किन्तु करूणारस पूरित हृदय वाले जगत् के हिताकांक्षी उपदेशक दुर्लभ हैं। आचार्य श्री परोपकार की मूर्ति हैं। जिनमें स्वात्मकल्याण प्रमुखता से लक्ष्यभूत है।

उक्तगुणों से युक्त देशनाकार की सद्देशना की भाषा लोक भाषा है जिसमें अपेक्षित रूप में आचार्यों के उद्धरण मणिकाञ्चन योग को सार्थक बनाते हैं।

भाषा सरल, सुगम, अवगम्य है। आवश्यकतानुसार तत्वज्ञान के निरूपण में आगमिक शब्दावली के भी दर्शन होते हैं। श्रोताओं को आचार्य विशुद्धसागर जी प्रायः ज्ञानी, मुमुक्षु आदि सम्बोधनों से प्रतिबोधित के शब्दों की बहुलता है। देशना की शैली ओज, प्रसाद माधुर्य गुण से युक्त है। श्रोता ऊबला नहीं, भले ही अध्यात्म, वैराग्य-प्रधान देशना है।

यह कहा जा सकता है कि—देशना अमृतधारा से लबालब भरी हुई एक प्रवहमाण शीतल वृक्षावली के मध्य से गुजरने वाली नय-प्रमाण रूपी तटों से संयत पावन सरिता के समान प्रतीत होती है। शैली प्रभावकारक एक आगमोक्त व प्रामाणिक रूप में प्रकट है। यहाँ कतिपय पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

- पुण्य पुरुषों की चर्चा करने से, पुराण पुरुषों की चर्चा करने से कर्म की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होती है। पुण्यास्रव होता है और पाप का क्षय होता है। (पृ. 15)
- उल्लू को दिन में नहीं दिखता, कौए को रात्रि में नहीं दिखता, कामी को दिन-रात ही नहीं दिखता है। (पृ.20)
- बिच्छू के डंक में जहर होता है, नाग के कण्ठ में जहर होता है, परन्तु दुर्जन के अंग-अंग में जहर होता है। (पृ.21)
- यदि पशु को भी अपने चाबुक मारा है, वह कहीं अशुभ भावों से मर गया, तो वह तिर्यंच जीव भी किसी भव में बदला लेने खड़ा हो जायेगा। (पृ.44)
- करुणा से शून्य कोई अध्यात्म नहीं होता। हर व्यक्ति के नाम के आगे आप अध्यात्म लगा दो और वह खोटे काम करता हो, ऐसे आप अध्यात्म शब्द को बदनाम मत कर देना। (पृ.46)
- सत्य तो वहीं समाप्त हो चुका है जब आपने दूसरे की अवहेलना की दृष्टि से अशुभ कहने का विचार किया था। (पृ.49)
- जीर्ण शरीर हुआ है, वह तो बदलेगा, लेकिन जैसा भाव, वैसा अगला भव मिलेगा। मेरा जन्म, मेरा मरण किसी के हाथ में नहीं है। (पृ.51)
- व्यक्ति को जितना भोगने में आनंद नहीं आता, उतना व्यक्ति को रखने में आनंद आता

है। ऐसे तीव्र कषायी लोग मिल जायेंगे जो कि भरपेट भोजन नहीं करेंगे, लेकिन पेटी अवश्य भरेंगे। (पृ.59)

- जिस जीव को कभी दिगम्बरों के हाथ में ग्रास रखने के भाव न हों, उनके हाथ 'हाथ' नहीं हैं, साँप के फणा हैं। जिसका भाल कभी भावलिंगी श्रमणों के चरणों में नहीं झुका वह सूखे-सड़े श्रीफल के समान है। (पृ.124)
- इन्द्रियों को वश में मत करो, अपने ज्ञान को ज्ञान में लीन करलो, यही इन्द्रियों का वशीकरण है। (पृ.250)
- परमात्मा से राग करके तुम स्वर्ग तो जा सकते हो, लेकिन सिद्ध नहीं बन सकते हो। सिद्ध बनने के लिये न राग करना पड़ेगा, न द्वेष करना पड़ेगा, रागातीत-द्वेषातीत मात्र निज की आराधना में लीन होना पड़ेगा। (पृ.260-261)
- जब मार्ग में गड्ढे हो जायें, तो दुर्घटनायें घटना प्रारम्भ हो जाती हैं। जिसके परिणामों में कषाय के गड्ढे हो जायें, तो दुर्गतियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं, इसलिए समीकरण करो। (पृ.359)
- हिंसा से कभी हिंसा की शान्ति नहीं हुई है। रक्त से दूषित वस्त्र कभी रक्त से शुद्ध नहीं होता, चित्त की अपवित्रता से कभी चित्त शुद्धि नहीं होती। (पृ.419)

कुल मिलाकर "सद्-देशना" पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि—आचार्य कुलभद्र के श्लोकों पर यह बहुत विस्तार को लिए हुए एवं लोकहित तथा श्रोताओं के समूह के लिए विषयान्तरता को समाहित किए हुए भी यह अमृत रसायन है। इससे जन्म-जरा-मरण के कष्टकारक रोगों से मुक्ति का मार्ग प्राप्त हो सकता है।

पूर्व में प्रकाशित 'सार-समुच्चय' में भाषानुवाद एवं भावानुवाद प्रस्तुत किया गया है, पर इस देशना में तो आर्षमार्ग व चतुरनुयोग के तथा लोकास्थिति के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत व्याख्या या व्याख्यान समीचीन रूप से प्रकट है। यह भी ज्ञातव्य है कि भाषण या प्रवचन में विरोधाभास भी संभव है, पर 'देशना' शब्द स्वयं ही सत्यार्थ का ही बोधक है।

"सद्-देशना" प्रकाशित हो रही है। अपने श्रेष्ठ रूप और गेटअप, मुद्रण आदि दृष्टियों एवं भाषा-शब्दों की प्रूफरीडिंग सावधानी से की गई है, फिर भी अशुद्धि संभव होती है इस हेतु क्षमाप्रार्थी हूँ। पाठक व प्रबुद्ध मनीषियों से प्रार्थना है कि—भूल सुधारकर लेवें।

पुनश्च परम पूज्य श्रमणाचार्य श्री विशुद्ध सागर जी महाराज को शतशः नमन। उनके मार्ग प्रभावना एवं प्रवचन वात्सल्य से ही यह कार्य, जिनवाणी के भण्डार में वृद्धि करेगा। समाज पर भी उनका उपकार अमिट छाप छोड़ने वाला है। इस हेतु उनका भूरि-भूरि आभार।

श्री वाय. के. जैन, पिन्टु भैया आगरा एवं अन्य भी जो सहयोगकर्त्ता, प्रकाशक तथा मुद्रक आदि सभी साधुवाद के पात्र हैं।

आशा और विश्वास है कि—सुधी पाठकगण इस देशना का मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय करके पारमार्थिक आनन्द को अनुभव करेंगे। मंगल कामना है कि—यह "सद्देशना" यावच्चन्द्र दिवाकरौ चिरंजीवी होकर जनता जनार्दन को सुख शान्ति का सन्देश देकर जाज्वल्यमान रहे।

समयसारस्य सारोऽयं, सर्वसारस्य चाप्ययं।
सद्देशनेति व्याख्यानं, विशुद्धकीर्तिं प्रकाशते ॥ (स्वोपज्ञ)

(इत्यलं)

श्यामभवन, बजाजा
मैनपुरी-205001 (उ. प्र.)
मो. 09219160350

पं.शिवचरनलाल जैन
संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष-तीर्थंकर
ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
संरक्षक
अ. भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद्

ध्यातव्य

एक गूढ़वादी के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह बड़ा विद्वान् हो और न ही वर्षों तक व्याकरण और न्याय में सिर खपाकर उसमें सुयोग्य बनने का ही प्रयत्न करता है, किन्तु मानव-समाज को दु:खी देख आत्म-साक्षात्कार का अनुभव ही उसे उपदेश देने के लिए प्रेरित करता है और व्याकरण आदि के नियमों पर विशेष विचार किये बिना जन-सामान्य के सामने वह अपने अनुभव रखता है। अत: उच्चकोटि की रचनाओं में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा को छोड़कर समय की प्रचलित भाषा को अपनाना ही महत्व रखता है। अध्यात्म में भाषा नहीं, भाव प्रधान है। भाषा का बोध विद्वता नहीं, विषय का बोध विद्वता है।

निवेदन

इस ग्रंथ में प्रमादवश अज्ञानतावश टंकण, मुद्रण, शब्द संयोजन, शब्द संशोधन, शब्द विन्यास में रही त्रुटियों के लिए सुधी पाठक-विद्वत्जन से क्षमायाचना करता हूँ कि वे मुझ अल्पज्ञ को क्षमा करें और उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे त्रुटियों का यथास्थान संशोधन करें तथा उन संशोधनों/त्रुटियों से मुझे भी अवगत करायें, ताकि आगामी संस्करण में उन संशोधनों को समाहित किया जा सके। माँ जिनवाणी की सेवा में मेरा यह शिशुवत् प्रयास है, अत: त्रुटियों से अवगत कराने वाले सुधी पाठकों का मैं कृतज्ञ होऊँगा।

जिनेन्द्र जैन
ए-60, पद्मनाभ नगर, भोपाल 462023
दूरभाष-2759084
चलित-8989405479

प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमोनमः॥

अविरल शब्दघनौघ-प्रक्षालितसकलभूतल कलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था, सरस्वती हरतु नो दुरितम्॥

अज्ञान-तिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसंबंधकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री 'सारसमुच्चय' नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्त्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्री कुलभद्राचार्यदेव विरचितम्; तस्य भाषाटीका आचार्य श्री विशुद्ध सागरेण विरचिता, एषाः 'सद्देशना' नाम ग्रन्थः।

मंगलं भगवान वीरो मंगल गौतमोगणी। मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोस्तु मंगलम्॥
सर्वमंगल मांगल्यं सर्वकल्याण कारकं। प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्॥

मुख्य मंगलाचरण

देवदेवं जिनं नत्वा, भवोद्भव विनाशनम्।
वक्ष्येऽहं देशनां कांचिन्मतिहीनोऽपि भक्तितः॥ (सा.स. 1)

"कामवासना और धनाभिलाषा हेय हैं"

कामार्थौ वैरिणौ नित्यं, विशुद्धध्यानरोधनौ।
संत्यज्यतां महाक्रूरौ, सुखं संजायते नृणाम्।। (109)

अन्वयार्थ - **कामार्थौ** = काम और धन **नित्यं विशुद्ध ध्यान-रोधनौ** = हमेशा निर्मल ध्यान रोकने वाले हैं, **महाक्रूरौ** = महान दुष्ट हैं, **वैरिणौ** = आत्मा के बैरी हैं, **संत्यज्यतां** = उन दोनों को छोड़ देना चाहिए तब, **नृणाम्** = मानवों को, **सुखं संजायते** = सुख पैदा होता है।

भावार्थ - हे भव्य! काम और धन चित्त को चलायमान करने वाले आत्मा के शत्रु हैं इन्हें, छोड़ देना ही श्रेष्ठ है।

'नरक में पतन का कारण'

कामदाहो वरं सोढुं, न तु शीलस्य खण्डनम्।
शीलखण्डन शीलानां, नरके पतनं ध्रुवम्।। (110)

अन्वयार्थ - **काम दाहः सोढुं वरं** = काम की चाह की दाह को सह लेना अच्छा है ....। **तु** = परन्तु, **शीलस्य खण्डनं न** = शील या ब्रह्मचर्य का खण्डन अच्छा नहीं है, **शीलखण्डन शीलानां** = जो मानव शील के खंडन की आदत डाल लेते हैं, **ध्रुवं** = निश्चय से **नरके पतनं** = उनका नरक में पतन होता है।

भावार्थ - काम की चाह दाह को सहन कर लेना अच्छा है, परन्तु ब्रह्मचर्य का खण्डन करना अच्छा नहीं है, क्योंकि शील-खण्डन करने वाले का निश्चय से नरक में पतन होता है।

।। सद्-देशना।।

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज सारसमुच्चय जी में आत्मतत्त्व की गवेषणा

कर रहे हैं। जिसको सर्वज्ञ देव ने कहा है, गणधर परमेष्ठी ने गुन्थित किया है, आचार्यपरम्परा से प्राप्त हुआ है, उसकी व्याख्या आचार्यभगवन् सार-समुच्चय जी में कर रहे हैं। अनादि अविद्या के वश हुआ अज्ञ प्राणी वस्तु-तत्त्व को न समझने के कारण जो सुखानुभूति को स्वीकार रहा है, वही सुखानुभूति यथार्थ में दु:खानुभूति है।

साता से प्राप्त सामग्री का भोग असाता का कारण है और साता से प्राप्त सामग्री का परित्याग साता का कारण है। मिलने पर भी जो विषयों से नहीं मिलता, बिछुड़ने पर भी धर्म से नहीं बिछुड़ता, वह तत्त्वज्ञानी है।

लोक में अनंत बार सामग्रियाँ मिली हैं। यथार्थ मानकर चलना कि कोई भी सामग्री नयी नहीं मिली। लोक में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो आपको अभिनव प्राप्त हुआ हो, नवीन-नवीन प्राप्त हुआ हो। लगता आपको ऐसा है कि अमुख वस्तु मुझे बहुत सुन्दर मिल गई। नहीं, भैया! यह तो त्रैकालिक है, यह हमेशा से है, शाश्वत है। नानारूपता को प्राप्त पर्यायदृष्टि से किये हैं, लेकिन द्रव्यदृष्टि से छहों द्रव्य शाश्वत हैं। यह अपरिचय आपको वर्तमान की पर्याय का है, इसलिये लगता यह है कि कोई द्रव्य अभिनव मिला है, परन्तु जब हम सनातनता को निहारते हैं, तो लोक में कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो आज नया उत्पन्न हुआ हो। कोई भी द्रव्य नया नहीं है। जगत् में बहुत सारा आस्रव नवीनपने के कारण होता है। जो वस्तु आपकी दृष्टि में पुरानी हो चुकी होती है, उसके प्रति उत्साह कम हो जाता है, उमंग कम हो जाती है। जब नया पदार्थ आता है, तब उत्साह अधिक होता है। जब अधिक उत्साह होता है, तो विवेक खो देता है। नये पदार्थ में पर्यायदृष्टि से नवीनता है, आपके हाथ में आने से नवीनता है, लेकिन उस नवीनता में जीव इतना उलझ जाता है कि स्वप्न में भी वही देखता है। जिनालय में भी होगा, लेकिन वस्तु वही दिखती है। नवीन द्रव्य के प्रति अनुराग है, वह आपकी आँखों के सामने पूर्व में नहीं था, इसलिये नवीन दिख रहा है।

हे ज्ञानी! ऐसे ही यदि तू परमात्मा के चेहरे को नवीन-नवीन होकर देखे, तो नवीन-नवीन पापों से बच जायेगा। अपने भावों की उज्जवलता को नवीन-नवीन होकर निहार, अपने परिणामों की विशुद्धि को नवीन-नवीन करके देख। पुराने द्रव्य में ज्यादा रुचि नहीं होती, फीका लगने लगता है, तब आप उसको नये तरीके से भोगना

प्रारम्भ करते हो, कोई-न-कोई नया तरीका खोजते हो। ऐसे-ही मंदिर आते-आते आप पुराने हो चुके हो, सो आपको लगने लगता है कि वही तो मंदिर है, वही तो भगवान् हैं, वही तो जिनवाणी है, वही तो गुरु महाराज हैं। अब नई उमंग कैसे आये? शरीर में उत्साह बढ़ाने के लिये आप औषधियों का प्रयोग करते हो।

अरे अज्ञानियो! पाप की प्रवृत्ति के लिये औषधियाँ खाकर तू उत्साहित हो रहा है। तुझे ऐसे-ही अपने परिणामों में उत्साह भरना चाहिये कि परमात्मा का चेहरा तुझे हर दिन नया दिखाई दे। भगवान् की वाणी तुझे प्रतिदिन अभिनव दिखाई देना चाहिये, निर्ग्रन्थों में नवीनता दिखना चाहिये। यह तभी संभव है, जब आपके अन्दर उत्साह शक्ति है। **यदि उत्साहशक्ति मृत्यु को प्राप्त हो चुकी है, तो अब उसका जीवन कितना ही चल जाये, लेकिन चेहरे का उत्साह तो नष्ट हो चुका है। जहाँ चेहरे का उत्साह भंग हो चुका है, विश्वास रखना, वहाँ लम्बा शरीर भी कोई काम का नहीं होगा। आकाश की ओर वही गुब्बारा जाता है, जिसमें हवा भरी होती है।** बादल शांत हो, वायु बह रही हो, तब भी हवा-विहीन गुब्बारा ऊपर नहीं जा सकता है, इसी प्रकार से तीर्थंकर भगवान् विराजते हों, केवली या श्रुतकेवली विराजते हों, साक्षात् देवों का गमन हो रहा हो, अरहन्त की देशना चल रही हो, जिस जीव के अन्तरङ्ग में वैराग्य शक्ति और संवेग भाव की वायु का वेग क्षीण हो चुका है, उस व्यक्ति को कोई धर्म आनन्द दे ही नहीं सकता।

ज्ञानियो! उमंग होना चाहिये। 'कुरल काव्य' में लिखा है-''**जीवन में महान् शक्ति का नाम उत्साहशक्ति है**''। **यदि उत्साह भंग हो गया, तो उसका आधा जीवन चारपाई पर जायेगा। जिस व्यक्ति ने अपनी उत्साहशक्ति को जीवन्त रखा है, वह अन्त समय में भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होगा। ये शरीर छूट जायेगा, लेकिन उसका धर्म नहीं छूटेगा।** जीवन में अपनी उत्साहशक्ति को जीवन्त रख लेना। पुण्य-पाप के नियोग से सम्पत्ति का आय-व्यय हो भी जाये, वंश परम्परा भी यदि नष्ट होते दिख रही हो, धन-वैभव क्षीण होता दिखता हो, इन सब पर विकल्प नहीं करना। यदि उत्साहशक्ति मृत्यु को प्राप्त हो गई, तो सारी सामग्रियाँ पड़ी रहेंगी, लेकिन तू मुर्दे-जैसा दिखाई देगा, चेहरा उदास हो जायेगा।

हे मुमुक्षु! व्यक्ति के उत्साह को जीवन्त रखनेवाला ब्रह्मचर्य है। जिसका ब्रह्म क्षीण हो गया, उसका जीवन में उत्साह भंग हो गया। उमंग तभी तक है, जब तक शरीर में शक्ति है। उमंग नष्ट हो गई तो शरीर की शक्ति क्षीण हो गई। किसी से मत पूछना, अपने शरीर और आत्मा से बात करना। 80 वर्ष का वृद्ध भी फुदकता दिखाई देता है जिसका संयम जीवन्त है, उत्साह है और सोलह-अट्ठारह वर्ष का युवा भी बूढ़ा दिखाई देता है जिसका उत्साह भंग हो गया है।

ज्ञानियो! उत्साह भंग क्यों हुआ है? शरीर के अन्दर जीवन का सत् है। फल में रस और रस में सत् महत्वपूर्ण होता है।फल बहुत बड़ा होता है, लेकिन पूरा फल कोई नहीं खाता, छिलका और गुठली को अलग कर ही देता है। पैसे पूरे देकर आता है, लेकिन पूरा खाता नहीं है। पूरा फल तो कोई खा ही नहीं पाता है। चाहे जीवन का फल हो,चाहे फल का फल हो, पूरा फल तो कोई खा ही नहीं पाता। तू जितना पुण्य कमा लेता है पूरा फल तू खा ही नहीं पाता। तू इतने टेंसन में आ चुका होता है कि बीच में ही तेरा पुण्य गुठली बन चुका होता है। भगवान् की पूजा कर रहा था तीव्र पुण्यास्रव हो रहा था। उससे बहुत बड़ा फल मिलने वाला था। इसी बीच में भाव आ गया-'यदि आज मुझे शान्तिधारा करने को मिल जाती तो आनन्द आ जाता, भाग्य से उसे कलश भी मिल गया, परन्तु पूरा फल फिर भी नहीं खा पाया। जैसे-ही हाथ में कलश आया, दूसरा ज्ञानी झुलसा पड़ा अरे! दूर हटो, आज मुझे करने दो।' पूरा फल खा ही नहीं पाया, तूने पुण्य में आग लगा दी। एक क्षण को भाव आया कि तू हाथ मत लगा। मैं तो रोज देखता हूँ यदि कोई बालक आहार देने खड़ा हो गया और इन माताओं की क्या कहना? यदि हाथ में गिलास भी आ जाये , दूसरी माँ हाथ लगा ले, तो महाराज भले ही खड़े रहें, वो हाथ पीछे कर लेगी, 'हाथ मत लगाओ, मुझे देने दो।' देने को तो मिल ही रहा था, समता से दूसरे को और देने देती तो दुगना फल मिलता। कृत का भी मिलता, कारित का भी मिलता और अनुमोदना का भी मिलता। तेरा कुछ भी नहीं जा रहा था और पूरा फल मिलने वाला था, लेकिन.....?

हे मुमुक्षु! फल खायेगा तो अल्प खायेगा, रस निकलेगा तो और-अल्प होगा, परन्तु फल से अधिक कीमत रस की हो रही है। रस से सत् निकलता है। जितने सेंट

(इत्र) आ रहे हैं, यदि शुद्ध हैं तो वे सत् हैं। पुष्प का सत्, फल का सत् बहुमूल्य है। जीवन का सत् , शरीर के सत् का नाम शुक्र है, वीर्य है। धातु का नाश हुआ यानि शक्ति क्षीण हो गई, उमंग/उत्साह विलीन हो गया, अब जो काम कर रहे हो, संस्कारवश कर रहे हो। धार्मिक अनुष्ठान भी संस्कारवश कर रहे हो, लेकिन ताकत क्षीण हो चुकी है। यदि आज समझ में न आये, तो दूसरे भव में समझ लेना, लेकिन आज सुन लो। बहुत सारे काम संस्कारवश हो रहे हैं।

ज्ञानी! पंखा शक्ति के साथ चल रहा है, द्रुत गति से चल रहा है। यदि बिजली चली जाती है, पंखा फिर भी चलेगा, लेकिन ताकत नहीं होगी। पंखुड़िया दिखना प्रारम्भ हो जायेंगी। अभी विद्युत है, तो पंखा चल रहा है, लेकिन पंखुड़ियाँ नहीं दिख रही हैं। विद्युत जाने पर पंखा चक्कर तो काटेगा, लेकिन पंखुड़ियाँ दिखेंगी। ऐसे-ही जब तक शरीर में विद्युत है, शक्ति है, शुक्र/वीर्य है, जब तक पंखा (शरीर) चलता है, परन्तु पंखुड़ियाँ नहीं दिखती। शरीर की शक्ति क्षीण हो जाये तो शरीर चले भी, लेकिन हड्डियों की पंखुड़ियाँ दिखना प्रारम्भ हो जायेंगी। कमजोर हो जाता है, शक्ति क्षीण हो गई। ऐसा नहीं है क्या? है।

पण्डित जी! जब तुम शास्त्री बन सकते हो, विद्वान् बन सकते हो, तुम विश्वास रखना, तुम और-बड़े ज्ञानी बन सकते थे, परन्तु क्या करूँ, जो शक्ति देने वाला था, प्रज्ञा को प्रशस्त करने वाला था, उसे क्षीण कर दिया है। अब संस्कारवश जो रटा था, वह तो बोलते हो, पर आगे क्या कर रहे हो? जितना आपने विद्यार्थीजीवन में सीखा था, उसका उपयोग तो कर रहे हो, लेकिन बढ़ा कहाँ रहे हो? अब बढ़ाये तो बेचारा कैसे बढ़ाये? भौंरा तो बन गया। कभी इस पुष्प पर, कभी उस पुष्प पर। इतना बड़ा परिवार करके बैठ गया है, अब तो घूमना ही पड़ेगा। **अहो आश्चर्य! जो काष्ठ में भी छेद करना जानता है, ऐसा भौंरा भी कमल में मरण को प्राप्त हो जाता है। कैसे? काष्ठ कठोर है, कि कमल कठोर है? जब काष्ठ में छेद कर सकता था, तो क्या कमल में छेद नहीं कर सकता था? समझो, सब फँसनेवाले हो। इन भुजाओं से बड़े-बड़े योद्धाओं की भुजाओं को तो तोड़कर आ गया। बड़ा वीर बन कर चला गया था, लेकिन कमला की भुजाओं में फँस करके अपने शील की आँख को**

फोड़ बैठा है, भुजा खण्डित करके बैठ गया है, संयम का घात कर लिया। भौंरा कमल में मर गया और यह रागी कमलाओं में मर गये, बेचारे दोनों मर गये। भौंरा कोमल कमल को नहीं छेद पाया और ये कोमल कमलाओं की भुजाओं से अपने को नहीं छुड़ा पाये और बेचारे अपने शील धर्म को खो कर बैठ गये। बुरा तो नहीं लग रहा? अब क्या करो ? जो है, सो है।

ज्ञानियो! कठोर को छेद देना सरल है, लेकिन कोमल से अपने आपको बचा पाना कठिन है। जितने मरे हैं, कोमल में मरे हैं। दो में ही गये सब, कमल और कमला। कमला यानि नारी/स्त्री। कमला भी कोमल, कमल भी कोमल। दोनों में मर गये। एक में मरा नर, एक में मरा भौंरा, शक्ति क्षीण हो गई। इसलिये शरीर के सत् की रक्षा करो यदि आत्मा का उद्धार चाहिये तो।

ज्ञानियो! जीवन में एक बार 'कुरल काव्य' जरूर पढ़ना। ऐसा महान् ग्रन्थ है जिसे तमिल के लोग कहते हैं कि यह हमारा वेद है, जैन कहते हैं कि हमारा ग्रन्थ है, बौद्ध कहते हमारा ग्रन्थ है, हिन्दु कहते हैं कि हमारा ग्रन्थ है। यह पहला ग्रन्थ है जिसको अनेक संप्रदाय मानते हैं। यह 'कुरल काव्य' नीतिग्रन्थ है जिसमें लिखा है कि हमें कैसे जीना चाहिये। साधु को भी पढ़ना चाहिये, श्रावक को भी पढ़ना चाहिये। 'कुरल काव्य' ग्रन्थकर्त्ता कह रहे हैं कि यदि उत्साहशक्ति आपके पास है, तो विश्वास रखो, स्वर्ग तो छोटी-सी वस्तु है, मोक्ष तुम्हारी मुट्ठी में है। यदि उत्साह भंग हो गया, तो विश्वास रखना, आपके पीछे कौन बैठा है, देख नहीं पाओगे। जब-तक उमंग है, उत्साह है, तब-तक सबकुछ अच्छा लगता है और उत्साह क्षीण हो गया तो कुछ नहीं।

मुमुक्षु! मिष्ठानों में तभी तक स्वाद है जब-तक तेरे मुख का स्वाद सही है। जिसको मलेरिया हो गया, पित्त का प्रकोप हो गया, तो वह जो भी खायेगा, सब कड़वा लगेगा। ये कड़वाहट किसमें है? मिश्री भी कड़वी लग रही है।

भैया! इस बात को अन्तस् की डायरी में उतार लेना और जीवन की अंतिम श्वास तक भूलना मत। चाहे श्रमण हो, चाहे श्रावक हो, चाहे नेता हो, चाहे अभिनेता हो।

माँ! तूने सब कड़वा बनाया है। तब माँ कहती है कि बेटा ! अच्छा होता तू मिठाई खाने से पहले अपना मुख साफ कर लेता, तो मेरी मिठाई खराब न होती और वह

कड़वी भी नहीं लगती। मेरे मित्रो! ध्यान रखना, जिस व्यक्ति के हृदय में पूर्वाग्रह का पित्त भरा हुआ है, हठाग्रह की कड़वाहट भरी हुई है, उस व्यक्ति के लिये तुम कितने ही अच्छे हो जाओ, कितने ही महान् बन जाओ, स्वयं अरहन्त बनके भी तत्त्व नहीं रख सकते हो, नहीं पिला सकते हो, क्योंकि उसके मुख में मिथ्यात्व की कड़वाहट है। इसलिये जीवन में ध्यान रखना, किसी व्यक्ति के माध्यम से अपने आपका प्रमाणपत्र मत बनाना। क्या महावीर स्वामी को सभी लोग मानते थे ? ये भक्ति के भाव में आप कहो-त्रिलोकपूज्य, त्रिलोकीनाथ, तीनलोक के नाथ। ऐसा ही कहिये। ज्ञानियो! तीनलोक के लोग पूजते होते, तो मस्करी गोसालक अपने आपको महावीर स्वामी के सामने तीर्थंकर न कहता, इन्द्रभूति गौतम अपने आपको तीर्थंकर न कहता, कश्यप अपने आपको तीर्थंकर न कहते। वर्द्धमान के सामने पाँच अपनेआप को तीर्थंकर कहते थे, परन्तु वर्द्धमान ने कभी अपने आप को तीर्थंकर घोषित नहीं किया।

तीर्थकृत्समयानां च परस्पर विरोधतः।
सर्वेषामाप्तता नास्ति, कश्चिदेव भवेद् गुरुः।।आ.मी.।।

तब समन्तभद्र स्वामी को लिखना पड़ गया कि जगत् में जितने समय हैं, शास्त्र हैं, सभी 'तीर्थकृत' हैं। अपने-अपने धर्म को बनानेवाले सभी अपने को तीर्थकृत कह रहे हैं, लेकिन हे वर्द्धमान! जिनके तत्त्व परस्पर में विरोध को प्राप्त हो रहे हैं, उन सभी के अन्दर आप्तपना नहीं है। कोई एक गुरु अवश्य है। सभी अपनी-अपनी पोथियाँ लेकर बैठ जायें, अपने-अपने भक्त बना कर बैठ जायें और अपने आपको भगवान् कहलाने लग जायें, मुमुक्षु! भगवान् तो कहलवा सकते हो, भक्त तो बना सकते हो, लेकिन भगवान् नहीं बन सकते हो। जो भगवान् बनता है, वह किसी से कहने नहीं जाता कि-मैं भगवान् हूँ। जो जगत् से अपरिचत हो जाता है, निज के परिचय में लीन होता है, वही परमात्मतत्त्व को प्राप्त होता है। ज्ञानी! एक दिन ऐसा आता है कि जिसका सबसे अपरिचय हो गया था, वह सारे विश्व के परिचय में आ जाता है जब कैवल्य को प्राप्त होता है। इसलिये 'भगवान्' शब्द पूज्य नहीं है, 'भगवत्ता' पूज्य है। प्रजा राजा को भी भगवान् कहने लगती है। पति से पत्नि भी कहने लगती है कि मेरे भगवान् हैं।जिससे काम बने, वही भगवान्।

ज्ञानी! जैनदर्शन में वह भगवान् पूज्य नहीं है जिससे काम बने, वो भगवान् पूज्य

है जिससे न काम बने न काम बिगड़े। जो काम न बनाये, न बिगाड़े, वो भगवान् है। हे मुमुक्षु! हो सकता है कि तू भी पूजा करते-करते भक्त बना ले और अपनी घोषणा कर दे कि मैं भगवान्। दो वर्ष पूर्व एक पेंट-शर्ट पहने पुरुष ने अपने आपको घोषित कर दिया कि मैं कल्की हूँ। बड़े-बड़े धर्माधीश, मठाधीश वहाँ पर उपस्थित हो गये, बोले, मेरे बैठे-बैठे तू कैसे हो गया? जब कलिकाल में सब घटना घट सकती है, तो मैं कलिकाल का कल्की क्यों नहीं हो सकता?

ज्ञानियो! ध्यान रखो, जो अनहोनी घटनायें घटने वाली थीं हुण्डावसर्पिणी काल में, वे हमारे आगम में पूर्व से वर्णित हैं। ज्ञानियो! कोई मनचला यदि नवीन घटना की घोषणा करे, तो मान मत लेना। तीर्थंकर की कन्यायें नहीं होतीं, लेकिन प्रथम तीर्थंकर की कन्यायें हो गईं। तीर्थंकर पर उपसर्ग नहीं होते, परन्तु पारसनाथ स्वामी पर उपसर्ग हो गया। चक्रवर्ती का मान भङ्ग नहीं होता, लेकिन प्रथम चक्रवर्ती का मान भङ्ग हो गया। सभी तीर्थंकरों का जन्म अयोध्या में होता है, परन्तु अन्यत्र भी जन्म हो गये। तीर्थंकरों का निर्वाण सम्मेदशिखर से होता है, लेकिन निर्वाण अन्यत्र से भी हो गये। जितनी घटनायें घटित होना थीं सब घटित हो चुकी हैं। अब यदि कोई ज्ञानी कहने लग जाये-'मैं पंचम काल का तीर्थंकर अवतरित हो चुका हूँ।' तो इसे मान मत लेना, क्योंकि आगम में इसका कोई प्रमाण नहीं है। यह ऐसा समय चल रहा है कि व्यक्ति को किन्चित् क्षयोपशम मिला और उसने अपने आप को भगवान् घोषित किया। **घोषित भगवान् पूज्य नहीं है। जिसने कर्मों का नाश किया है, जो घातिया कर्मों का नाश करके कैवल्य को प्राप्त हुये हैं, मात्र वे भगवान् पूज्य हैं। जो नारियों का कीड़ा बनकर रहता हो, ऐसा जीव भगवान् कैसे हो सकता है? जिसके नयनों में मृगनयनी का निवास हो, उसके अंदर ब्रह्म का वास कैसे होगा? एक म्यान में दो तलवारें नहीं रखी जाती हैं। एक समय में दो काम नहीं होते, कि विषयभोग भी हो जाये और आत्मा का आनंद भी आ जाये। एक समय में एक ही कार्य होगा।**

ज्ञानी! वस्तु-तत्त्व को तभी समझेगा, जब भीतर की भूल सुधारेगा। आप सुनने को तैयार हो ही, तो फिर अच्छे से सुनो। बाहर की सफाई काम में नहीं आयेगी, क्योंकि मकान के बिल में चूहा सड़ चुका है, तू चारों तरफ से दीवालों को साफ कर रहा है।

साफ कर ले, कितनी ही झाड़ू तोड़ दे, लेकिन दुर्गन्ध जाने वाली नहीं है। क्योंकि जहाँ से सड़ांध आ रही है, वहाँ तू पहुँचा ही नहीं है। बिल में चूहा मर कर सड़ चुका है, तुम घर की बाहर की सफाई में लगे हो, तो दुर्गन्ध कैसे मिटेगी ? जिसके भीतर एकान्त का, मिथ्यात्व का चूहा सड़ चुका हो, तुम बाहर मात्र यह शुद्ध खाओ, वह शुद्ध खाओ, यह स्वच्छ करो, वह स्वच्छ करो, तो यह मकान की बाहर की सफाई चल रही है, भीतर से मिथ्यात्व का चूहा तो निकल ही नहीं रहा है, वह तो सड़ गया है। मुमुक्षु! कुछ गहरापन समझ में आ रहा है कि नहीं ? किनते ही स्वच्छ सफेद कपड़े पहन लो, चाहे तुम कपड़े उतार लो, परन्तु जब तक तुम्हारे भीतर से मिथ्यात्व की सड़ांध देनेवाला चूहा नहीं निकल रहा है, तब तक बाहर की चर्चायें मकान की ऊपर-ऊपर की सफाई मात्र है। इस सफाई से तू अपने घर को पवित्र नहीं कर सकता है।

ज्ञानियो! 'धवला' जी पुस्तक नं. नौ में लिखा हुआ है जिस भूमितल पर मनुष्य अथवा तिर्यंच का बाल भी पड़ा हो, उस भूमि पर सिद्धान्तशास्त्र की वाचना नहीं होती, फिर जिस भूमि पर सड़ा चूहा पड़ा हो, पंचेन्द्रिय मृतक तिर्यंच पड़ा हो, उस भूतल पर सिद्धान्त की वाचना कहाँ? जब वाचना नहीं हो सकती है, तो सिद्धान्त की अनुभूति कहाँ हो सकती है? जिसके हृदय में विकारों के चूहे सड़ रहे हों, वहाँ स्वात्मानुभूति के सिद्धान्त की वाचना नहीं होगी। कठोर अवश्य है, लेकिन सत्य है। जितना उत्साह तुमने मिथ्यात्व को प्रदान किया है, वह उत्साह सम्यक्त्व को देना चाहिये था।

ज्ञानी! डाली के मोटी होने पर पुरुषार्थ काम में नहीं आयेगा। जब पौध लगी थी, तभी टेढ़ा नहीं होने देते, तो वृक्ष सीधा चढ़ता। जब पौध लगाया, तब जैसा चाहते वैसा सीधा जाता। जब विशाल रूप ले लिया है, आड़ा-तिरछा फैल चुका है, अब क्या करोगे ? भैया! अपने हृदय में मिथ्यात्व के पौधे को बढ़ने मत देना। इन कानों में मात्र श्रुत को स्थान देना, कुश्रुत को स्थान मत देना। जिससे द्रव्य-मिथ्यात्व, भाव-मिथ्यात्व की वृद्धि होती हो, ऐसी बातों को सुनकरके अपनी आत्मा की वंचना मत करना।

जब रावण कैलाश पर्वत को हिलाने के लिये भीतर प्रवेश कर गया, उसकी रक्षा किसने की ? हे श्रावको! जब-जब धर्म पर उपसर्ग आये हैं, तुम सब घर में बैठे थे, उस

समय मुनियों ने ही रक्षा की है। कैलाश पर्वत की रक्षा बालि मुनिराज ने की है और अकम्पनाचार्य महाराज के संघ सात सौ मुनियों की रक्षा विष्णुकुमार मुनिराज ने की है। 'महाराज ! मैं क्या कर सकता हूँ ?' आपने इतना कह लिया, बस, हो गया काम। वे बालि मुनिराज थे कौन ?और उन्हें इतना बल मिल कैसे गया ? **ज्ञानियो ! धर्म पर उपसर्ग आने पर वैरागियों को भी राग आता है। धर्म के नाश को देख करके वैरागियों को भी राग उत्पन्न होता है।**

आप कह सकते हो महाराज श्री ! आपको क्या प्रयोजन, इतनी बातें बताते रहते हो ? भैया ! मुझे क्या प्रयोजन, जो मैं बताता रहता हूँ ? सुनिये -

जहाँ पर धर्म का नाश हो रहा हो, क्रियाओं का ध्वंस हो रहा हो और सत् सिद्धान्त का विप्लव किया जाता हो, यानि सत्यार्थ आगम को झूठा कहा जाता हो और झूठी बातों को आगम कह कर प्रचारित किया जाता हो, ऐसे स्थान पर दिगम्बर मुनियों को मौन खोल करके बिना पूछे बोलना चाहिये। वहाँ मौन नहीं होता। यदि तत्त्व की बात का प्रसङ्ग आ जाये, तो मौन नहीं है। वह मौन 'मौन' नहीं है, जो विशुद्धसागर का घात करके चला जाय। यह विशुद्धसागर नहीं बोल रहे हैं, यह आचार्य शुभचन्द्र स्वामी ने 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ में लिखा है। बिना पूछे भी बोलना चाहिये।

एक प्रश्न- एक चींटी जा रही थी। सामने पानी भरा हुआ था। वह तो असंज्ञी है। वह पानी में गिर गई और तड़पने लगी। तू उठायेगा या खड़ा रहेगा ? 'तुरन्त उठाऊँगा।' वे अज्ञानी लोग हैं जो कहें कि जब कोई मेरे से कहेगा, तब उठाऊँगा। तब तक उसके प्राण ही निकल जायेंगे। जैसे तड़पते जीव को देखकर यह नहीं सोचना पड़ता कि मुझसे कोई कहने आये, तब मैं उठाऊँ। आपकी ताकत है तेा उसकी रक्षा करनी चाहिए। ऐसे ही आगम-सिद्धान्त, धार्मिक क्रियाओं का नाश हो रहा हो, तुम इसलिये शान्त बैठे हो कि कोई मेरे से कहने आयेगा तब मैं बात करूँगा, नहीं, भैया ! तब तक तो विपर्यास हो ही जायेगा।

जिस विषय के पूर्व आगम न हो, उन विषयों पर किसी की भी बात नहीं मानना। मेरी भी बात मत मानना। मैं भी कुछ कहूँ तो धीरे-से पूछ लेना- महाराज श्री ! बताओ, आप यह किस ग्रन्थ से बोल रहे हो ? आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज ने यह बड़ा

उपकार किया है कि ग्रन्थ रटवा कर रखे हुये हैं। तब लगता था कि कितनी मेहनत करनी पड़ती है। महाराज तनिक भी साता नहीं लेने देते। पढ़ो-पढ़ो, स्वाध्याय करो। लेकिन आज समझ में आता है कि महाराज ने कितना उपकार किया है ? मानना पड़ेगा। निर्णयसागर, विशुद्धसागर के लिये आचार्य विरागसागर जी ने जो मेहनत की है, इसके बाद उन्होंने इतनी मेहनत नहीं की। रात्रि में तीन बजे उठा दिया, 'चलो, पढ़ो।' मैंने यहाँ तक दृश्य देखा कि अन्तराय हो गया, गुरु की लघुता देखो, आचार्य महाराज स्वयं सेवा करने पहुँच गये।

खजुराहो में बहुत गर्मी थी। आचार्यमहाराज निर्णयसागर जी महाराज के पास कमण्डलु लेकर पहुँच गये। उनके मस्तक पर पानी लगा रहे थे। मैंने कहा, 'क्या हो गया ?' कुछ नहीं। कुछ नहीं, नींद नहीं आ रही, मैं ठण्डा कर रहा हूँ। तब लगा कि एक **माँ अपने राग की पूर्ति मात्र के लिये बेटे का पालन करती है। गुरु तो गाय के समान हैं। गाय बछड़े को जन्म देकर बड़ा कर देती है। उसे मालूम रहता है कि बड़ा होकर मेरे कुछ भी काम नहीं आयेगा। फिर भी गुरु ने इसलिये बड़ा किया है कि बेटा मेरे काम में आए या न आए, लेकिन श्रमणसंस्कृति को जयवन्त करेगा।** इस लक्ष्य को लेकर चलोगे तो कभी खेद नहीं आयेगा। गहरी बात समझो। तत्त्वज्ञानी को एक-एक समय, एक-एक क्षण आगम ज्ञान से विहीन होकर नहीं रहना चाहिये। आप लोग आश्चर्य करोगे- तब भी तत्त्व चिन्तन होगा। पैसा कमाना कठिन नहीं होता, उसको सुरक्षित करके रख पाना, उसका सदुपयोग करना कठिन होता है। ऐसे ही विद्या को प्राप्त करना कठिन नहीं होता है। उस विद्या को जीवित रख पाना कठिन होता है। वो रक्षा कैसे करोगे ? माँ! बेटी को जन्म दे दिया, काम बन जायेगा क्या ? नहीं। उसी दिन उसकी मृत्यु हो जायेगी। माँ ने जन्म दिया, जमीन में बच्चा पड़ा है, उसे उठाये न, उसका पालन-पोषण न करे, तो वह बच्चा बचेगा क्या ? नहीं। बेटे को जन्म देते ही मलस्थान से उठाकर छाती से लगा लेते हो, ऐसे-ही ज्ञानियो! जिस विद्या को इतनी मेहनत से प्राप्त किया है, उस विद्या को बार-बार निहारना चाहिये। ज्ञानी! पढ़ो-पढ़ो। इस पर्याय में रखा क्या है ? जीवन के अंतिम क्षणों तक स्वाध्याय करना। एक मुनिराज की सौ वर्ष की उम्र हो गई। वे श्लोक याद कर रहे थे। किसी

श्रावक ने पूछ लिया, 'स्वामी-स्वामी! इस वृद्धावस्था में क्या कर रहे हो?' वह बोले, केवली बनने का अभ्यास कर रहा हूँ, क्योंकि बिना श्रुत-आराधना के कैवल्य प्रकट होता नहीं है। अवधिज्ञान से केवलज्ञान नहीं होता। मन:पर्ययज्ञान से केवलज्ञान नहीं होता। केवलज्ञान तो श्रुतज्ञान से होता है। तीर्थंकरप्रकृति का बंध भी श्रुतज्ञान से होता है। यह अपन सबका अहोभाग्य है कि ऐसे खोटे काल में जिनवाणी सुनने के भाव आ रहे हैं। नहीं-तो लोगों को सुनने का समय कहाँ है? पैसा देना सरल है, लेकिन समय देना सरल नहीं है। वर्तमान में ऐसा समय चल रहा है कि पैसा ले जाओ, लेकिन समय मत माँगना,समय नहीं है। फिर भी यह उत्तरभारत, मध्यभारत सुरक्षित है। पश्चिम और दक्षिण की ओर जाओ, मशीनों को तो फिर भी ट्रक वाले भी खड़ी कर देते हैं कि इंजन गर्म हो रहा है, लेकिन मनुष्य को काम करने से फुर्सत नहीं है। किसी शहर में ज्यादा बड़े कारखाने न खुलें, बड़े-बड़े व्यापार न हों, तो कम-से-कम ये शान्ति से समय निकाल कर आत्मा की बात तो सुन लें और कर लें, नहीं-तो बेचारे गये काम से। घर जाकर बेटों से बोल देना कि भाग्य होगा तो कोई टाल नहीं सकता है। एक ठेला ढकेलने वाला सुबह छः बजे से निकल जाता है और रात्रि के बारह बजे तक आये, लेकिन लेकर कितना आता है? और एक पुण्यात्मा जीव, पूजन अभिषेक करके, जिनवाणी सुनी, गुरु को दान दिया, फिर भोजन करेगा, फिर जाकर एक फोन करेगा, करोड़ों कमा कर घर आ जायेगा। इसलिये ध्यान दो, सम्पत्ति से सम्पत्ति नहीं मिलती,धर्म से सम्पत्ति मिलती है। जब धर्म से मिलती ही है, तो धर्म क्यों छोड़ना?

वो देखो रिक्शा जा रहा है। जो खींच रहा है, वह कौन है? तिर्यंच कि मनुष्य? मनुष्य। जो बैठा है, वह भी मनुष्य है। अब मेरे से क्या पूछ रहा है कि धर्म का फल क्या है और पाप का फल क्या है?

ज्ञानी! धर्म का फल और पाप का फल क्या है? यह मेरे से मत पूछो। एक पुरुष पालकी ले जा रहा है, दूसरा पुरुष पालकी पर बैठा है। उसे देखो बस, यही दोनों का फल है। धर्म का फल उस पर आरूढ़ धनपति और पाप का फल पालकी ढो रहा है। दोनों पुरुष हैं। ऐसा आपके साथ भी तो होता है। एक नाली को खराब कर रहा है, दूसरा नाली को साफ कर रहा है। बस, इतना ही समझ लो।

ज्ञानियो! शान्ति से जीना प्रारम्भ करो। ज्यादा पैसा-पैसा के भाव किसी के बढ़ रहे हों, उसके कान में धीरे-से कह देना, ज्ञानी! सुन। कमा तो पायेगा, ले नहीं जा पायेगा। किसको सुना रहा है? कितने सारे कमा कर छोड़ गये हैं। किला बना ही पाया है, ले नहीं जा पाया। कई किले ऐसे हैं जहाँ लोग लोटा लेकर जाने लगे हैं। आप यही विचार करना-ज्ञानी! कमा पायेगा, ले नहीं जा पायेगा। यह रक्षासूत्र है।

आचार्यमहाराज कह रहे हैं- हे मुमुक्षु! विशुद्ध ज्ञान और ध्यान का निरोध करने वाला काम है। जिसके अंतरंग में प्रतिक्षण काम-भावना चल रही है, वह भाव विशुद्ध-भाव का बैरी है। एकसाथ दो भाव नहीं हो सकते। **धन की अभिलाषा छोड़ देना, क्योंकि वह शत्रुभाव उत्पन्न करनेवाला है। धनिकों के अपने आप शत्रु बन जाते हैं।** ऐसे धन-अभिलाषा और काम-अभिलाषा, इन दो अभिलाषाओं को छोड़ देना चाहिये। ज्ञानियो! वित्तैषणा, कामेषणा ये दोनों ही मेरी आत्मा के शत्रु हैं। धन और काम को छोड़ दो, तो सुख तेरे भीतर खड़ा हुआ है। ये दो ही तो सुख का घात कर रहे हैं। कामना और कामिनी की धारणा निकल जाये तो परमसुख है। हे श्रावको! काम की पीड़ा सहन कर लेना श्रेष्ठ है, परन्तु शील को खण्डित मत करना। शील को खण्डित करना जिनका स्वभाव बन चुका है, उन जीवों का नरक में पतन नियत है। रावण कहाँ गया? नरक क्यों गया? कामना की, कामिनी के राग में रावण नरक में जा पड़ा। उसने तो एक सीता को देखा था, सो तीसरे नरक में गया। तुम तो कितनी सीताओं को निहार रहे हो, तुम्हारा क्या होगा?

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

''कामसेवन महापाप का जन्मदाता है''

कामदाहः सदानैव, स्वल्पकालेन शाम्यति।
सेवनाच्च महापापं, नरकावर्त्तपातनम्।। 111 ।।

अन्वयार्थ - **कामदाहः** = काम की जलन **स्वल्पकालेन** = थोड़े काल में **शाम्यति** = मिट जाती है, **सदानैव** = सदा नहीं रहती, **सेवनात् च** = परन्तु कामसेवन से, **महापापं** = महान् पाप का बन्ध होता है, **नरकावर्त्तपातनम्** = जो पाप नरक के गड्ढे में गिरा देता है।

भावार्थ - काम की दाह हमेशा नहीं रहती, अपितु स्वल्पकाल में शान्त हो जाती है, मिट जाती है; परन्तु कामसेवन से महापाप का बंध होता है और उसके फलस्वरूप नरकरूप गड्ढे में गिरना पड़ता है।

।। सद्-देशना ।।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में कामरूपी महापाप से बचने का व्याख्यान कर रहे हैं।

हम सभी अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना, मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन। जयवन्त हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

ज्ञानियो! जब ब्रह्माण्ड में लोग धर्म से शून्य होने लगते हैं, आचरण का विघात होने लगता है, मिथ्यात्व की वृद्धि होने लगती है और वीतराग मार्ग पर लोगों को ग्लानि भाव उत्पन्न होने लगता है, ऐसे काल में भगवान् जिनेन्द्रदेव का जन्म होता है। हर युग में, हर काल में जहाँ पुष्प होता है, वहाँ काँटे भी होते हैं। **फूल की पहचान करानेवाला काँटा ही है। काँटा लोगों को न चुभे, तो पुष्प की मृदुलता/कोमलता भी लोगों को समझ में न आये। यही कारण है कि लोक में जब राम ने जन्म लिया, तब रावण ने भी जन्म लिया। राम की पहचान करानेवाला महापुरुष रावण है। यदि कृष्ण ने जन्म लिया, तो उसी समय कंस ने जन्म लिया। चन्द्रनखा, जिसको लोक में सूर्पनखा कहा जाता है, न होती तो सीता की भी कीमत न होती। सीता की**

कीमत को चन्द्रनखा ने बढ़ाया है। इस लोक में जब-जब महापुरुषों ने जन्म लिया है, तो उनसे जलनेवाले लोगों ने भी जन्म लिया है। यह लोक की रीति है।

उत्कर्षता की पहचान करानेवाला अपकर्ष ही होता है। जब-जब आपकी आलोचना करने कोई खड़ा हो जाये, निंदा करने को खड़ा हो जाय, तो समझ लेना कि तुम्हारे उत्कर्ष के दिन आ चुके हैं। इतने उत्कर्ष के दिन आ जाते हैं कि सामने वाले को सहन नहीं होता है, तो वह आपका अपमान करना प्रारम्भ कर देता है। भूचाल में अंदर की गैसें तीव्र गति से वृद्धिमान होती हैं, भूमि उसको सहन नहीं कर पाती है, तो हिलने लगती है और ऐसे ही ज्वालामुखी से लावा निकलता है, उसमें अनेक खनिज निकलते हैं। सागर में पानी के अंदर की वाष्प को भूमि सहन नहीं कर पाती तो ज्वालामुखी के रूप स्फुटित होने लगती है। इसी प्रकार से दो धारायें हैं, विकास की धारा और ह्रास की धारा। जिसके अन्तस् में विकारी भाव द्रुत गति से उत्पन्न हो जाते हैं, जब उसकी सीमा को जीव सहन नहीं कर पाता है, तो अनाचार के रूप में उसकी चर्या प्रारम्भ हो जाती है। जिस व्यक्ति के अंदर में वैराग्य की धारा जागृत होती है, उस वैराग्य की धारा को भीतर का भगवान् सहन नहीं कर पाता है, तो चारित्र के रूप में उद्घाटित हो जाती है। विकास और ह्रास दोनों शक्तियाँ हैं। एक समय में दोनों शक्तियों का उदय होता है। पुण्यात्मा विकास की ओर चला जाता है और पापात्मा ह्रास की ओर चला जाता है। शक्ति दोनों के पास है। चाहे तुम गाड़ी को पीछे लेकर चलो, चाहे आगे लेकर चलो, तेल तो जलेगा। चाहे अच्छा सोचो, चाहे बुरा सोचो, आयुकर्म तो जलेगा, पुण्य का द्रव्य तो जलेगा। उन महान् श्रमणों की चर्चा करो। **पुण्यपुरुषों की चर्चा करने से, पुराणपुरुषों की चर्चा करने से कर्म की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होती है। पुण्यास्रव होता है और पाप का क्षय होता है।**

अरविन्द राजा के यहाँ शिवभूति नाम का मंत्री सरलस्वभावी और भद्रपरिणामी था। मंत्री वही है, जो राज्य के विकास के संबंध में मंत्रणा करे। मंत्री वही है, जो हर क्षण, हर पल सम्राट के उत्कर्ष का चिन्तन करे। मंत्र और मंत्री एकत्वभूत है। वही मंत्र 'मंत्र' है जो मंत्रवादी को उत्कर्ष की ओर ले जाये। वही मंत्री 'मंत्री' है जो स्वामी को ऊपर की ओर ले जाये। स्वयं का कष्ट सहन कर लेना, फिर भी स्वामी को विपत्ति से रोक लेना। यह मंत्री की मंत्रणा है।

एक बार सम्राट की बुद्धि कमजोर पड़ जाये, लेकिन मंत्री की बुद्धि कमजोर नहीं पड़ना चाहिये। शिवभूति मंत्री राज्यसंचालन में परिपूर्ण सहयोग कर रहा था। अचानक उस जीव के मन में वैराग्य के अंकुरों ने जन्म ले लिया और जाकर सम्राट से कहता है-'हे स्वामी! मेरे भाव निर्वाणदीक्षा/जैनेश्वरी दीक्षा धारण करने के हैं।' सामान्य पुरुष तो सहज जाकर दीक्षा ले सकता है, लेकिन राजपुरुष, राज अधिकारी, राज्य कर्मचारी है तो उसको आचार्य शीघ्र दीक्षा नहीं देते। उसको राजा से अनुमति लेना पड़ेगी। यदि कोई राज्यकर्म में श्रेष्ठ था, ऐसा पुरुष दीक्षा ले लेता है तो राजा को उसकी कमी महसूस होती है, तो वह मुनिसंघ पर उपसर्ग भी कर सकता है कि आपने मेरे आदमी को दीक्षा कैसे दे दी? इसलिये कहा जाता है कि आप स्वामी की आज्ञा लेकर आओ। यह राजमार्ग है। इसी प्रकार माता/पिता, परिवार की आज्ञा लेकर आने पर ही दीक्षा होती है। कोई गलत काम करने नहीं जा रहे हो, कल्याण के मार्ग पर जा रहे हो, चोरी डकैती करने नहीं जा रहे हो, जो छुप कर ले लो। पंचमकाल में श्रेष्ठ कार्य एकान्त में नहीं होना चाहिये, भीड़ के बीच में ही होना चाहिये, क्योंकि चित्त चलायमान है। आज व्रत लिया, कल तोड़ दोगे, साक्षी किसकी? ज्ञानियो! पंचपरमेष्ठी की साक्षी में, गुरु की साक्षी में, जनसामान्य की साक्षी में तुमने व्रत लिया है, जबरजस्ती कपड़े उतार कर नहीं बिठाया गया है। आपने अपनी इच्छा से दीक्षा ली है। मोक्षमार्ग वैराग्य का है।

शिवभूति मंत्री राजा अरविन्द के पास निवेदन करता है। राजा ने राग के वश होकर काफी समझाया, लेकिन मंत्री ने अंतरङ्ग की व्यथा सुना दी-राजन्! एक पल भी मेरा मन राज्य में नहीं लग रहा है, क्योंकि संसार, शरीर, भोगों से पूर्ण विरक्ति ने जन्म ले लिया है। विश्वास रखना, **जिस समय जिसको विषयों में विषपना झलकने लग जाये, वही दीक्षा की पात्रता रखता है। जिसको विषयों में अमृत दिखता हो, वह कभी जिनदीक्षा का पात्र नहीं हो सकता, क्योंकि वह जिनशासन को बदनाम कर देगा।** विषयों में विषत्व झलकना चाहिये। 'भोगा रोगा इवापदि' भोग रोग है, आपत्ति का घर है। ऐसा चिंतन करके सम्राट से अनुमति लेता है। ऐसा शिवभूति जैनेश्वरी दीक्षा ले लेता है। पर क्या करूँ? योग्यतायें भिन्न हैं, ज्येष्ठत्व भिन्न है।

भैया ! शब्दों पर ध्यान रखना-योग्यताओं को स्वयं निखारा जाता है, गुरु नहीं देते हैं। योग्यतायें प्रभु नहीं देते हैं। वीतराग शासन में ज्येष्ठों की पूजा नहीं है, वीतराग शासन में श्रेष्ठ की पूजा है। जन्म से तुम ज्येष्ठ हो सकते हो, लेकिन अहो ज्येष्ठो ! पुण्य लेकर नहीं आये हो तो तुम ज्येष्ठ कैसे बनोगे ? परन्तु आपको पर के श्रेष्ठत्व पर ईर्ष्या होती है, तो तुम्हारा ज्येष्ठत्व भी हीन हो गया है। पर की श्रेष्ठता पर यदि आपको कलुषित भाव आते हैं, तो तुम्हारी ज्येष्ठता भी फीकी है। ज्ञानी ! श्रेष्ठ ही लोकपूज्य होता है, ज्येष्ठ लोकपूज्य नहीं होता है। मुमुक्षु ! ज्येष्ठ बनने की स्पर्धा छोड़ दो। यदि बनना चाहते हो तो श्रेष्ठ बनना सीखो। शिवभूति मंत्री ने दीक्षा ले ली, लेकिन उसके दो बेटे थे मरूभूति और कमठ। यूँ कहना चाहिये - एक डाली में दो वस्तुयें, फूल और काँटा। कमठ क्रूरपरिणामी और मरूभूति भद्रपरिणामी। व्यक्ति के चेहरे पर भद्रता टपकती है और व्यक्ति के चेहरे पर क्रूरता टपकती है। **साधु बनने के पूर्व ही साधु बनने की आवश्यकता है। तुम कपड़े उतार कर साधु तो बन गये, लेकिन सज्जनता के साधु नहीं बन पाये, तो कपड़े उतारने से कोई लाभ नहीं। ये मोक्षमार्ग है। कोई चपरासी भी बनता है तो उसकी भी परीक्षा होती है। बिना पढ़े-लिखे को चपरासी भी नहीं बनाया जाता है। ज्ञानियो! ऑफिस का चपरासी है, उसका भी स्टेण्डर्ड होता है। मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति के यहाँ का सेवक भी पढ़ा-लिखा होना चाहिये। जब सेवक की भी परीक्षा होती होती है, तो जिनशासन में दीक्षा होने के पहले भी परीक्षा होना चाहिये। यह सामान्य पद नहीं है, वह अरहन्त के शासन का सदस्य है, वह अरहन्त के शासन का अधिकारी है।** कमठ, पुष्प के साथ, काँटे के रूप में उदित हुआ। वह ज्येष्ठ भाई था, मरूभूति छोटा था। मंत्री शिवभूति द्वारा दीक्षा लेते ही राजा अरविन्द ने विचार किया-ज्येष्ठ तो कमठ है, परन्तु श्रेष्ठत्व किञ्चित् भी नहीं है। व्यक्ति के अङ्ग-अङ्ग पर उसका भविष्य लिखा होता है,पढ़नेवाला चाहिये। पुरुष की नाक पर ही सारा भविष्य लिखा होता है कि उसके जीवन में क्या होने वाला है। क्या हुआ होगा, वह भी लिखा होता है।

ज्ञानियो ! दुनियाँ में ऐसे भी लोग हैं जिनका नियम होता है कि नगर में या दस पचास किलोमीटर पर कोई भी साधु होंगे उनको आहार दिये बिना भोजन नहीं करूँगा।

नगर में मुनि होंगे तो आहार देने जायेंगे। अङ्ग-अङ्ग पर भविष्य तुम्हारा है, ध्यान से सुनो यदि तुम्हें ये उज्जवल कुल न मिला होता, उज्जवल शरीर न मिला होता, अंधे-लूले चेहरे हो गये होते, तो क्या मुनि को आहार दे पाते? वर्तमान का तुम्हारा उज्जवल कुल, जिस कुल में पूजा-अभिषेक करने को मिलता है, मुनियों को आहारदान देने को मिलता है, जिनवाणी सुनने को मिलती है, उस कुल में तुम पुण्य के उदय से जन्में हो, इसका तात्पर्य हुआ कि पूर्व में तुमने पुण्य किया होगा नियम से, सो आज पुण्यात्मा के घर में आये हो। यह आपका शरीर, वर्तमान की पर्याय, तुम्हारे इतिहास की गवाही है। वर्तमान की पर्याय, भूत की गवाही है। यदि भूत में पुण्यात्मा न होता, धर्म के संस्कार न होते, पूर्व में दान न दिया होता, तो आज ये संस्कार नहीं मिले होते। यह किसने बता दिया? जिसका पुण्य क्षीण होता है, उसके शरीर के अवयव भी आड़े-तिरछे होते हैं। जिस व्यक्ति के पास बुद्धि नहीं होती है, उसका माथा भी छोटा होता है। आप कितना ही पुरुषार्थ कर लो, कितनी ही मेहनत कर लेना, कितने ही बादाम का हलुआ खिला देना, ब्राह्मवटी पिला देना, कितने ही माल काजू आदि खिला देना, मंत्र करवा लेना, लेकिन उसकी बुद्धि किंचित् भी तुम बढ़ा नहीं सकते हो। ये छोटी बुद्धि क्यों मिल गई? जिनवाणी की अविनय की होगी, जिनागम में अंतराय डाले होंगे, उसका परिणाम यह दिखाई दे रहा है।

जिसका विशाल ललाट है, दीर्घ नासिका है, विशाल नेत्र हैं और मध्यम गर्दन है, जिसके हाथ-पैर ऐसे झलकते हैं जैसे रक्त टपक रहा हो, यह पुण्यात्मा जीव की पहली पहचान है। जिसके नाखून ही सूख चुके हैं, ये पहले से ही पुण्य सुखा कर आया है। भाल क्या देखो, बाल ही देख लो। जब अशुभ दिन आने लगते हैं तो जीव के बाल खड़े होने लगते हैं। कितने ही तेल डाल देना, कितनी ही कंघी कर लेना, लेकिन उसके बाल बैठेंगे ही नहीं। किसी को देखना मत, स्वयं को निहारिये। ये बाहरी दृष्टि है। जिसके घर में शालि धान्य रखे हों, गेहूँ, चने ,उड़द, मूँग की दालें घर में भरी रखी हों, फिर भी कहता है, बेटा! आज तो समा खाने की इच्छा हो रही है, कोदों खाने के परिणाम हो रहे हैं, मुझे तो बाजरा की रोटी खाने के भाव हो रहे हैं, तो यह सूचना है कि तुम्हारे दिन अशुभ आनेवाले हैं, क्योंकि सबकुछ होने के बाद

भी ये खाने के भाव हो रहे हैं।

ज्ञानियो! आप पारसनाथ स्वामी की चर्चा कर रहे हैं। कमठ ज्येष्ठ तो था, लेकिन लक्षणों से शून्य था। जो ज्ञानीपुरुष होते हैं, किसी से झगड़ा भी करते हैं तो कहते हैं कि उसकी कुण्डली दिखा लो, अशुभ ग्रह बैठे होंगे तो आप जीत जाओगे। उसके शुभ ग्रह बैठे हैं तो अपनी कुण्डली दिखा लो। यदि आपकी कुण्डली में अशुभ ग्रह बैठे हैं तो शान्ति से घर में बैठो, किसी से लड़ने की आवश्यकता नहीं है। हमारी दिगम्बर जैन परम्परा में एक सामुद्रिक शास्त्र है, उसका नाम है 'कर-लक्खण'। इस ग्रन्थ में मात्र तीन का वर्णन किया गया है-सेठ, सम्राट, साधु। ऐसी रेखा है तो सेठ,ऐसी रेखा है तो सम्राट, ऐसी रेखा है तो साधु। यूँ लिख दिया कि इस ग्रन्थ को पढ़ कर ही दीक्षा देना चाहिये। देख लेना कि पाल पायेगा या नहीं, कितने प्रकार के लक्षण हैं? व्यक्ति की आवाज से उसका भूत, भविष्य जाना जा सकता है। कोयल व कौए का वर्ण एकसमान है, फिर इनको वाणी से पहचाना जाता है। कोयल कूकती है और कौऐ की आवाज कर्कश होती है। पुण्यात्मा जीव की वाणी में माधुर्य होता है। जिसका अशुभ कर्म का उदय है, वह बोलना भी चाहेगा तो फटे बाँस जैसी आवाज आयेगी। यह व्यक्ति के पुण्य-पाप का परिणमन है।

सम्राट सोचता है, करूँ तो क्या करूँ? ज्येष्ठ को देखता हूँ तो एक श्रेष्ठ कर्मठता का नाश होता है, श्रेष्ठ को देखता हूँ तो एक शत्रु की वृद्धि होती है। आज तो तुम जीवन की धारायें सीखना, कितनी प्रकार की न्याय-नीति हो सकती हैं। कमठ तो दुर्बुद्धि है, उसको मंत्री बना कर क्या करूँगा? यदि श्रेष्ठ मरूभूति को देखता हूँ, तो ये दुर्बुद्धि शत्रु होता है।

ज्ञानीपुरुष अपने ऊपर आपत्ति तो ले लेते हैं, लेकिन अनन्तों को आपत्ति में नहीं डालते हैं। चलो मेरा एक शत्रु सही, लेकिन मंत्रीपद देकरके राज्य का नाश तो नहीं कराऊँगा। उन्होंने कमठ की जगह मरूभूति को मंत्री पद दे दिया। मंत्री पद न मिलने से कमठ अंदर-ही-अंदर झुलस गया। संसार में सबसे बड़ी अग्नि ईर्ष्या है। संसार में सबसे बड़ा कष्ट है सौतेलापन। संसार में सबसे बड़ा कोई कष्ट है तो उसका नाम है सौत। सौत-जैसा कष्ट जगत् में कहीं नहीं मिलेगा। एक पुरुष की दो शादियाँ हो जायें,

फिर उन दो पत्नियों के आनंद देखो कैसे होते हैं? नारी प्रतिक्षण झुलसती है। सम्राट राज्य के कार्यवश बाहर गया था। मंत्री मरूभूति साथ गया। उधर कमठ स्वच्छन्द होकर रह रहा था। मरूभूति की पत्नि घर में बैठी शृंगार कर रही थी। कमठ अभागा वहाँ से निकल पड़ा। उसकी दृष्टि उस पर पड़ गयी। दुर्जन की दृष्टि ही दुर्जनभूत होती है, क्या करोगे? वह काम के बाण में बिध गया। कामी मर्यादाविहीन हो जाता है, लज्या शून्य हो गया। उसकी लज्या पलायन कर गई। वह मित्र से कहता है, मित्र! यदि मुझे भाई की पत्नि नहीं मिली तो मेरे प्राण चले जायेंगे। छोटे भाई की पत्नि तो पुत्री के समान है ये कहाँ के अनाचार खड़े हो गये? बड़े भाई की पत्नि माँ के समान है। हे पापियो! लक्ष्मण से पूछो। जब राम ने वस्त्र-आभूषण उठाये थे, तो लक्ष्मण से पूछा-अनुज! देखो यह कण्ठहार सीता का है क्या? लक्ष्मण कहते हैं—भैया! क्षमा करना। मैं नहीं बता सकता हूँ। क्यों? हर समय साथ रहे, नहीं बता सकते हो?

भैया! मैंने माँ जानकी के कण्ठ को नहीं देखा। मैंने जानकी के चरणों को देखा है। परपुरुष के लिये परनारी महतारी माँ है, माँ। भैया! यदि नूपुर हों, बिछिया हो तो मैं बता सकता हूँ कि ये माँ सीता के हैं। क्या पवित्र सम्बन्ध है? लोक कितना भ्रष्ट हो गया। जो बड़े भाई की पत्नि को पत्नि कह कर पुकारता है, उससे बड़ा कोई हत्यारा पापीजीव नहीं होगा। माँ के साथ व्यभिचार करने में जो पाप का बंध होगा, बड़े भाई की पत्नि को खोटी दृष्टि से देखने वाले उस पापी को वही पाप का बंध होगा कमठ को मित्र ने बहुत समझाया, लेकिन क्या करूँ?

मुमुक्षुओ! उल्लू को दिन में नहीं दिखता, कौए को रात्रि में नहीं दिखता, कामी को दिन-रात नहीं दिखता। ऐसा मित्र किस बात का? ऐसी मित्रता कल छूटती हो, तो आज छोड़ देना, जिस मित्रता के कारण लोकमर्यादा, आगममर्यादा, धर्ममर्यादा का हनन होता हो। ऐसी मित्रता की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे मित्र की मित्रता को छोड़ देना। परन्तु अभागे मित्र ने मित्र के राग में आकरके मरूभूति की पत्नि को बातों में फँसा करके उसको सौंप दिया। उस अभागे ने भी उसके शील को भङ्ग कर दिया। सुन रहे हो, पर सत्य यह है, इतिहास में लिखा गया सो आप कमठ को तो बुरा कह रहे हो, अपने हृदय से पूछो? तुमने किस-किस को देखा है। ऐसा तुम्हारा कोई

लिखने बैठ जाता तो तुम किसको चेहरा दिखाने जाते? इधर मत देखा, भीतर देखो। जीवन में कोई भूलें हुई हों तो श्वास निकलने के पहले प्रायश्चित्त लेकर जाना। सत्य है, जिनके इतिहास लिखे हैं, उनके बारे में बातें कर लेते हैं, पर इतिहास बतानेवालो, इतिहास पढ़नेवालो! अपने-अपने इतिहास भी तो उठा कर देखो। ये चेहरे तभी तक दिखाई दे रहे हैं, जब तक तुम भीतर का चेहरा नहीं देख रहे हो। सम्राट जब वापस आया,पता चला कि कमठ ने ऐसा दुष्कर्म किया है, इसको दण्डित किया जाना है। तब भी मरूभूति के अंदर भाई का राग उमड़ पड़ा। कहता है—राजन्! एक बार तो क्षमा कर दो। अरविन्द कहता है 'नहीं। मंत्री! आपको इस बात का बोध होना चाहिये कि आप भाई के पद पर बैठकर बात मत कीजिये, मंत्री के पद पर बैठकर बात कीजिये।

अँगुली में कालिया नाग काट ले, तो क्या करना चाहिये? यदि अँगुली का राग नहीं है, प्राणों का राग है, तो तत्क्षण अँगुली को काट कर फेंक देना चाहिये। अँगुली को निकाल दिया तो प्राण बच जायेंगे, अँगुली नहीं निकाल पाया तो निश्चित ही तेरे प्राण जायेंगे। ऐसे ही सम्राट को चाहिये कि दोष चाहे स्वयं की भुजा भी क्यों न करे, उसको भी दण्डित करना चाहिये। ऐसा कह करके उसको फाँसी की सजा तो नहीं दी, लेकिन अपमानित करके, चरणपादुकाओं की माला पहना करके, काला मुख करके ईंट ढोने वाले के ऊपर उसको बिठाल दिया और नगर के बाहर कर दिया। बच्चे पत्थर फेंक रहे थे। ये अपमान किसका था? ये अब्रह्म का अपमान था। पूर्व मंत्री का बेटा और वर्तमान मंत्री का भाई, ये हालत हो रही है। अपमानित हो करके तपस्वियों के बीच में गया, तापस के व्रत धारण कर लिये और एक शिला को हाथ में लेकरके पर्वत के ऊपर खड़ा हो गया। परन्तु ध्यान रखना, किसी के बाहरी आडम्बर से प्रभावित होकरके अपने प्राण मत गवाँ देना।

कुछ समय बाद पुनः मरूभूति के अंदर भाई का राग उमड़ पड़ा। वह राजा अरविन्द से कहता है—हे स्वामी! मेरा भैया मेरे कारण अपमानित होकरके तापसी बन गया है। मेरी इच्छा है कि मैं एक बार दर्शन करके आऊँ। राजा कहता है—मरूभूति! ध्यान दो। **बिच्छू के डंक में जहर होता है, नाग के कण्ठ में जहर होता है, परन्तु दुर्जन के अङ्ग-अङ्ग में जहर होता है।** विश्वास मानिये, आप वहाँ मत जाइये। लेकिन

नहीं माने मरूभूति और चले गये भैया के राग में। जैसे-ही कमठ ने देखा कि मेरा भैया इधर आया है, उसी के द्वारा तो मेरी यह हालत हुई है, अतः जिस शिला को हाथ में रखे हुये था, जैसे-ही भाई सिर झुकाता है, वह शिला पटक देता है। यह क्या है? कषाय किसी की मित्र नहीं होती। **काँटा चाहे गीला हो, चाहे सूखा हो, उस पर पैर नहीं रखा जाता। काँटा तो काँटा ही होता है। सड़ा काँटा तो और चुभता है और सड़ांध देता है। ऐसे-ही शत्रु को कभी छोटा नहीं समझना चाहिये।** हीन नहीं समझना चाहिये। शत्रु तो शत्रु ही होता है। यह नीति बोल रही है। आर्त्त ध्यान से मरण किया। मरूभूति का जीव हाथी बना और कमठ कुक्कुट जाति का साँप बन गया। एक वह दिन आया कि राजा अरविन्द को वैराग्य हुआ और वे दिगम्बर मुनि बन गये। वे सम्मेदशिखर की वन्दना को जा रहे थे, वहीं मार्ग में वह वन पड़ा जहाँ वह मरूभूति का जीव हाथी बना हुआ था। इतना विशाल हाथी था, कई जीवों को कुचलता हुआ मदमस्त होकरके दौड़ रहा था। धन्य हो वीतरागी भगवन्त के लिये जिनको शरीर का विकल्प नहीं, धर्म मात्र का विकल्प होता है।

चाहे मार्ग हो, उपवन हो, श्मशान हो, जैन योगी तब तक ही विहार करते हैं जब तक दिन में सूर्य का प्रकाश है। प्रासुक भूमि, प्रासुक भोजन निर्ग्रन्थ योगी की पहचान है। प्रासुक भोजन नहीं तो आहार नहीं और प्रासुक भूमि नहीं तो विहार नहीं। निहार नहीं यदि स्थण्डिल भूमि नहीं।

जैसे-ही सूर्य ढला, वे मुनिराज जंगल में ही बैठ गये। रात्रि में जो चरे, उसका नाम है निशाचर। मैं आपसे नहीं कह रहा हूँ, आप तो दिन में खानेवाले होंगे, लेकिन यदि खाते हो, तो आज घर में धीरे-से कहना 'मुझे नहीं मालूम कि इस घर में भी निशाचर रहते हैं।' वे निशाचर नहीं हैं, वे ही सच्चे ब्राह्मण द्विज हैं, जो ब्रह्म में लीन होते हैं। महाराज जैसे-ही उस जंगल में विराजे, वह हाथी उनकी ओर दौड़ता चला आ रहा था। अहो! यही तो साधु का स्वरूप है। जिनकी मुद्रा को देखकरके असाधु भी साधुभूत हो जाये, उसका नाम साधु है। मुनिराज अरविन्द को देखते ही उस उन्मत्त हाथी ने सिर टेक दिया और सूंड से मुनिराज के चरणों को स्पर्श करके, उनका वन्दन कर लिया और उसको शीघ्र ही जातिस्मरण हो गया—ये मेरे सम्राट, राजा अरविन्द, मुनिराज। मुनिराज

ने अपने अवधिज्ञान से जानकर कहा-'हे जीव! तुझे समझाया था। तू नहीं माना। भाई के राग में आ करके तेरी यह दशा हो गई।' हाथी अब हाथी नहीं बचा। उसने श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिये। देह से हाथी था, भावों से श्रावक हो गया। उस जीव ने दो प्रतिमा के व्रत धारण कर लिये। प्रतिमाधारी हो गया। आप कहो कि कैसे पालन करता होगा? चलता था तो सूँड से फूँक-फूँक कर। खाता था तो सूखे पत्ते, हरियाई नहीं खाता था। धिक्कार हो उन पापियों को, जो बरसात में भी पत्ती नहीं छोड़ पा रहे हैं धना की। पत्ती कौन खाता है? बकरी। पत्ती खाओ, पक्के में बनना है तुमको बकरा-बकरी। यदि नहीं बनना, तो बोल दो-'महाराज! रिश्तेदारी में जाऊँगा, वहाँ भजिया/पकौड़े बनेंगे, उसमें धनिया पत्ती डलेगी, तो कैसे काम बनेगा?' चिन्ता मत कर, नरक में भी बनेंगे भजिया, नारकी पटकेंगे कड़ाही में। अभी भी नहीं छोड़ पायेगा क्या? इसलिये कम-से-कम चार महीने पत्ती नहीं खाना।

वह हाथी सूखी पत्ती खाकर प्रासुक पानी पीने लग गया। जहाँ से अनेक जानवर निकल जाते थे, इन जीवों के लिये वही प्रासुक है। जहाँ पर सूर्य की किरणें पड़ती हों, ऐसे झरनों का पानी प्रासुक होता है। तुम्हारे लिये नहीं, मात्र उसके लिये और हमारे (साधु के) लिये। यदि महाराज के कमण्डलु में पानी नहीं है और कोई श्रावक साथ में नहीं है और पानी की आवश्यकता पड़ जाये, तो उस झरने का पानी, जिसमें सूर्य की किरणें पड़ रही हैं, मुनिराज ले सकते हैं। पर ध्यान रखना, उपयोग करने के बाद जो बचेगा, वह वहीं छोड़ेंगे, बाद में प्रायश्चित्त लेंगे। तुम्हारे लिये नहीं है, क्योंकि तुम्हारा आरम्भ का त्याग नहीं है, मुनिराज का आरम्भ का त्याग है। वे कहाँ से छानेंगे? कहाँ से प्रासुक करेंगे? महाराज के लिये वह पानी प्रासुक है, जो प्रताड़ित होकर बह रहा है। कोई पशु आदि निकल चुके हैं, वह पानी साधु ले सकते हैं मात्र शुद्धि के लिये। ऐसा आगम का कथन है। बाद में वे प्रायश्चित्त करेंगे। तुमको तो छानना पड़ेगा, प्रासुक करना पड़ेगा, क्योंकि आपका आरम्भ का त्याग नहीं है। हाथी कैसे करता? उसके लिये छूट थी। आगम अनेकान्तभूत है।

ज्ञानी! बात यूँ है कि जीव का उपकार करोगे तो शरीर का अपकार होना ही है और शरीर का उपकार करोगे तो जीव का अपकार होना ही है। तपस्या करोगे तो शरीर तो

सूखेगा और शरीर को चमकाओगे तो तपस्या सूखेगी। हुआ यही। हाथी इतना कमजोर हो चुका था, सूखे पत्तों में कितनी ताकत? पानी पीने गया, सो दलदल में फँस गया, निकल नहीं पाया। वहीं पूर्व-भव का बैरी कमठ है, जो साँप बना था। वही हाथी के सिर पर चढ़ कर गण्डस्थल पर काट लिया। हाथी समझ गया कि अब बचनेवाला नहीं हूँ। हाय हाय नहीं किया ।

धीरेण वि मरिदव्वं णिद्धीरेण वि अवस्स मरिदव्वं।
जदि दोहिं वि मरिदव्वं वरं हि धीरत्तणेण मरिदव्वं।।
सीलेण वि मरिदव्वं णिस्सीलेण वि अवस्स मरिदव्वं।
जइ दोहिं वि मरिदव्वं वरं हि सीलत्तणेण मरियव्वं।। मूलाचार।।

धीर भी मरता है, अधीर भी मरता है। जब दोनों को मरना ही पड़ता है, तो क्यों न धीरता के साथ मरण करो। हाथी ने सल्लेखना व्रत धारण कर लिया और धर्म्यध्यान से मरण करके स्वर्ग में देव हुआ और कमठ का जीव नरक में जाकर गिर पड़ा। वहाँ से च्युत हो करके हाथी पुनः मनुष्यपर्याय को प्राप्त हुआ और कमठ का जीव नरक से निकल करके सिंह बना। सम्राट ने साधना/तपस्या की। उस सिंह ने मुनिराज का भक्षण कर लिया। मुनिराज पुनः स्वर्ग चले गये, सिंह नरक चला गया। स्वर्ग से आकरके मरूभूति का जीव बज्रनाभि चक्रवर्ती हुये और कमठ का जीव भील हुआ। बज्रनाभि चक्रवर्ती के एक हजार बेटे थे, कोटि अट्ठारह घोड़े, चौरासी लाख हाथी। तेरे द्वार पर तो वह भी नहीं है जो ईंट ढोता है। तब भी घर नहीं छोड़ पाता बेचारा। उनके पास छियानवें हजार रानियाँ, तेरे पास क्या है? कोई आगे न पीछे, तब भी तू परेशान है। एक दिन चक्रवर्ती एक कमल को निहार रहा था प्रसन्न हो रहा था कि कितना सुन्दर कमल है। देखते-ही-देखते दृष्टिपटल पर एक दृश्य आया, कमल के मध्य में एक भोंरा मरा पड़ा हुआ है। सोचो-काष्ठ को छेदनेवाला कमल को नहीं छेद सका। उस भौंरे की उसी में मृत्यु हो गई।

ज्ञानियो! हाथी स्पर्श-इन्द्रिय के वश होकर गड्ढे में गिरता है। मछली रसना के राग में आ करके जाल में फँसती है। नाग और हिरण कान के राग में फँसता है। पतंगा प्रकाश में झुलस गया चक्षु के राग में। एक-एक इन्द्रिय के राग में इतने जीव मर गये। एक-एक इन्द्रिय के भोग करनेवालों की यह दशा हो गई, तो उनकी क्या दशा होगी जो पाँचों पर ही मरते हैं?

राजा बज्रनाभि अपने बेटे को बुलाते हैं, मेरे लाल! आज मुझे भौरे की मृतक अवस्था को देख करके वैराग्य हो गया है। इस राज्य के भार को स्वीकार करो। मैं मुनि दीक्षा लेने जा रहा हूँ। बेटा कहता है— तात्! ऐसा कौन-सा पिता होगा जो अपने बेटे के उत्कर्ष को न देखता हो ? गड्ढे में डालने वाला पिता कैसा ?हे तात्! जो आपकी समझ, सो मेरी समझ। मुझे राज्यपद क्यों दिया? कहीं औरंगजेब-जैसे लोग होते, तो कहो पिता को ही खत्म करके राजा बन बैठते। ज्ञानी ! तू तो यही कहता कि टरो, जाओ, जाओ जल्दी, ताकि मैं बैठूँ।

धन्य हो उन बेटों को, जो यूँ नहीं कह रहे थे कि तुम जाओ, मैं बैठूँ वे यूँ कह रहे थे-हे तात्! जो समझ आपकी है, वही तो मेरी समझ है। जब तुम राज्य नहीं भोग सकते हो, तो मुझे कीचड़ में क्यों पटकते हो ? मैं भी दीक्षा लूँगा। एक हजार बेटों ने राज्य स्वीकार नहीं किया। छः मास के पोते को तिलक करके राजा बज्रनाभि एक हजार बेटों के साथ दिगम्बर मुनि हो लिये। जब एक हजार एक मुनिराज एकसाथ विचरण करते होंगे, तो पूरा नगर दिगम्बर दिखाई देता होगा। मैं तो मुनियों की भीड़ देखने गोमटेश गया था। रागियों की भीड़ तो अनेक बार देखी। ढाई सौ मुनि। अभी जयपुर में इतनी सारी पिच्छियाँ थीं। कल्पना करो, जब सब जगह साधु-साधु दिखें, तो उनकी वर्गणाओं का कितना प्रभाव पड़ता है?

भैया! दो काम कभी मत छोड़ना। किसी की समाधि चल रही हो और सम्मेद शिखर जाना हो, तो एक बार सम्मेदशिखर की यात्रा टाल देना, पहले समाधि देखना, क्योंकि चेतन तीर्थ चला गया तो फिर नहीं मिलेगा। सम्मेदशिखर की वन्दना तो अपन बाद में कर आयेंगे। जैसे हजारों मंदिरों की अपन वन्दना करने जाते हैं, ऐसे हजारों साधुओं की भी वन्दना करने जाओ। पता नहीं किस योगी को देखकरके भीतर का भगवान् जाग्रत हो जाये, इसलिये करो वन्दना। सम्यग्दृष्टि जीव योगियों को बदनाम नहीं करता, वन्दना करता है। उनके चरणों में जाकर बन्ध नहीं करता।

करो वन्दना, हरो क्रन्दना। न करो बन्ध। देखने की दृष्टि पवित्र होना चाहिये। तेरे घर में एक क्षण में दो दृश्य देखने को मिलते हैं। दृष्टि की महिमा तो देखो, बेटे की माँ का भाई अभी श्रावण की पूर्णिमा को आयेगा। भैया! तेरे बेटे की माँ का भैया और ऐसा नियोग बन गया कि उसका पिता भी आ गया और इसका बेटा भी खड़ा हुआ था। ये भी बेचारा वहीं खड़ा था। भाई कह रहा है-मेरी बहिन! राखी बाँधो। उसका पिता सिर पर हाथ रख कर आशीष दे रहा है, मेरी बेटी! तेरा कल्याण हो। वहीं पर उसका बेटा

कह रहा था, माँ! मुझे भोजन दो। जीव तो एक ही था जिससे बातें हो रही थीं और ज्ञानी कह रहा पत्नि। एक को माँ दिख रही है, एक को बेटी दिख रही है, एक को बहिन दिख रही है, तू अभागा पत्नि देख कर कर्म का बन्ध कर रहा है। तू भी माँ कह देता। महात्मा वही बन पायेगा, जिस दिन बेटे की माँ को माँ कह देगा। भैया! दोष वस्तु में है कि दृष्टि में? दृष्टि में।

बज्रनाभि चक्रवर्ती एक हजार बेटों के साथ दिगम्बर मुनि हो गये। बेचारे उस बच्चे को कुछ पता नहीं था। यदि वह आठ वर्ष का होता, तो वह भी चला जाता। उन्होंने उग्र-उग्र साधना की, परन्तु क्या करूँ ? कर्म की बलिहारी। वह भील वहाँ से निकल पड़ा और मुनिराज बज्रनाभि को धनुष से बाण मार दिया। सल्लेखनापूर्वक मरण करके वज्रनाभि मुनिराज स्वर्ग में देव हुये। वह कमठ का जीव पुनः नरक में चला गया। मरूभूति का जीव पुनः स्वर्ग से आकर आनंद नाम का राजा हुआ और इधर कमठ का जीव नरक से निकल करके जंगल में अजगर हुआ। आनन्द राजा ने वैराग्य को प्राप्त करके सोलहकारण भावनाओं को भा करके, तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध किया और मुनिराज जंगल में ध्यान लगाये हुये थे। पर पूर्वभव का बैरी। एक हाथ से ताली कैसे बजी ? जो निन्दा कर रहा, वह भी भटकता भगवान् है और जो प्रसंशा कर रहा, वह भी भगवान् है। तुम सब के प्रति साम्य भाव रखो, क्योंकि कषाय का काल लम्बा नहीं होता है। शान्त हो जायेगा, इसलिये विकल्प नहीं करना। जो है, सो है। जिनालय में पार्श्वनाथ के दस भव के चित्र भी बनवा देना चाहिये। जिन्हें पुराण पढ़ने का समय नहीं है, वे चित्र देखकर एक हजार पृष्ठ के पुराण को पढ़ लेंगे। नरकों के चित्र मंदिर में जरूर बनवाना ताकि इन युवाओं को पता चले कि वहाँ पर क्या होता है? अजगर ने जैसे-ही मनुष्य की गन्ध को सूँघा, तो उसी ओर चल दिया जहाँ वीतरागी तपोधन आनन्द मुनिराज विराजमान थे। वे हाथ पर हाथ रखे थे। हे नाग! तू सोच रहा है कि मैं निगलने लायक था। तू शरीर को चबा पायेगा, लेकिन वीतराग धर्म का चर्वण नहीं कर सकेगा। ये था शुद्ध समयसार। योगीराज जैसे शिला पर बैठे थे, अब अजगर के मुख पर भी बैठ करके.....। वे आनन्द मुनिराज जयवन्त हों। अजगर के मुख में बैठे मुनिराज। हे साँप! तू हड्डी-पंजर तो चबा पायेगा, परन्तु अरस, अरूप, अगंध स्वरूप, इस संस्थान रहित

मेरी भगवान्-आत्मा का चर्वण तू नहीं कर सकता है। अच्छा हुआ। अचानक मरण हो जाता तो मैं अपने मरण को न देख पाता। दुनियाँ ने मर करके अपने मरण को नहीं देखा, पर मैंने आँखों से देखते-देखते अपने मरण को देखा, इससे बड़ा भाग्यशाली कौन?

आनन्द मुनिराज सल्लेखनापूर्वक मरण किये और स्वर्ग में जाकरके देव हुये। अहो! देखो संसार की लीला, कमठ का पता नहीं कौन-सा शुभ भाव काम कर गया जिससे वह जीव पारसनाथ स्वामी का नाना बन गया। माँ वामा का पिता हो गया। पारसनाथ के जीव ने स्वर्ग से च्युत हो करके बनारस में राजा अश्वसेन के यहाँ जन्म लिया और क्रम से साधना के मार्ग पर चलके पूर्व मित्रों के साथ सवारी करते जा रहे थे। एक दिन नाना को वैराग्य हो गया, उसने तापस के व्रत धारण कर लिये। वह पञ्चाग्नि तप तप रहा था। वह तप करते हुए जिस लकड़ी को जला रहा था, उसमें युगल नाग-नागिनी झुलस रहे थे। भगवान् पारसनाथ स्वामी को करुणा आयी। उन्होंने उस करुणा के वशीभूत हो करके हाथी से उतरकर उसे संबोधन दिया कि हे तापसी! ये तुम क्या कर रहे हो? बोला-'मुझे समझाने आया है ? तेरी माँ को जन्म देकर मैं तपस्वी बन गया हूँ।' कितना अहंकारी था। कुछ भी हो, इसमें जीव जल रहे हैं। उसको विश्वास नहीं हुआ। कुल्हाड़ी उठाई, जैसे-ही लकड़ी के विभाग किये, जलते हुये नाग-नागिन का जोड़ा निकल पड़ा। उसको अपमान महसूस हुआ और रौद्रध्यान से मरकर ज्योतिष्क जाति का देव हुआ। नाग-नागिन को प्रभू पारसनाथ स्वामी ने संबोधन दिया, जिसके प्रभाव से वे धरणेन्द्र पद्मावती हुये। भैया! कोई भी जीव कहीं भी तड़पता हो, तुम पानी न पिला सको तो कोई विकल्प नहीं, उसको णमोकार जरूर सुना देना। तुम सुनाओगे तो तुम्हें भी कोई सुनानेवाला मिल जायेगा। वहीं भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी वैराग्य को प्राप्त हुये और दीक्षा लेकरके साधना में लीन हुये। भगवान् पारसनाथ स्वामी की उपसर्गस्थली है अहिक्षेत्र। जिनसेन स्वामी ने 'पार्श्वअभ्युदय' ग्रन्थ में अहिक्षेत्र ही लिखा है। कहीं कोई पत्थर मिल गये हों, वह प्रमाण नहीं माना जायेगा। जो ग्रन्थ वीतरागी आचार्य का लिखा हुआ है, वही मान्य है। सात दिन के अंदर लिखा है। कालिदास का 'मेघदूत' पार्श्वअभ्युदय में भरा हुआ है।

चुनौति के साथ कहो जिनागम में सबकुछ है। हमारे आचार्यों ने तुम्हें दरिद्री बना

कर नहीं छोड़ा कि किसी के घर में हाथ फैलाने जाना पड़े। आपको साहित्य चाहिये, अलंकार चाहिये, ज्योतिष चाहिये, मंत्र-तंत्र विद्या, खगोल, भूगोल, जो भी विषय आपको चाहिये, हमारे आगम में वह सबकुछ वर्णित है। आपको पढ़ने के लिये समय चाहिये, वो नहीं दे सकते आपको। अब अध्ययन करो, सब छोड़ो। आगम का ज्ञान होगा तो विश्वास रखो, अनागमिक भाषा को गौण करके जो आगम के ज्ञाता बन रहे हैं, उनको तुम आगम पढ़कर ही समझा पाओगे। कहीं पढ़े न लिखे विद्वान् बनकर बैठ गये, इससे विद्वत्ता नहीं झलकती। आपको आगम का बोध होना चाहिये। न्यायशास्त्र, तत्त्व का बोध होना चाहिये। बिना न्याय के बात करोगे तो समाज में अन्याय ही खड़ा करोगे। हर बात में तुम्हारा विरोध हो, हर लेख में तुम्हारा विरोध हो, तो तुम ज्ञानी हो कैसे ? इसलिये ज्ञान प्राप्त करना है तो पहले आगम का ज्ञान करना चाहिये, किसी गुरु के चरणों में बैठकर अध्ययन करना चाहिये।

भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी अहिक्षेत्र में ध्यानस्थ खड़े हुये थे। कमठ का जीव (ज्योतिष्क देव) जा रहा था। नियम है कि जहाँ तीर्थ हो, वीतरागी तपोधन हों, शत्रु हो, वहाँ पर विमान रूक जाता है। जैसे ही नीचे देखते हैं, मुनिराज पारसनाथ खड़े हुये हैं। घोर उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। प्रभु के कण्ठ तक पानी छा गया। हे कमठ! तू ओले-शोले बरसा सकता है, लेकिन दिगम्बर वीतरागी के भावों को नहीं डिगा सकता। यही परिणाम हुआ। जैसे-ही कमठ ने उपसर्ग किया, प्रभु क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हुये, शुक्लध्यान से मण्डित हो करके केवलज्ञान को प्राप्त हो गये। घातिया कर्मों का नाश किया तो कैवल्यसूर्य उदित हो गया। कमठ देखता रह गया। यहाँ देवों के झुंड लग गये। जिसे देखकर उपसर्ग करने वाला सम्यग्दृष्टि देव हो गया। मिथ्यादृष्टि कमठ सम्यक्त्व को प्राप्त हो गया। सत्य है, जिसके पास जो होता है, वही तो देता है। क्रमशः साधना करते हुये प्रभु सम्मेदाचल की ओर विहार किये। और सम्मेद शिखर में (शाश्वत् तीर्थभूमि, जो तीर्थों का सम्राट है) स्वर्णभद्र कूट पर श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन पण्डित-पण्डित मरण कर निर्वाण को प्राप्त किया। 'अ इ उ ऋ लृ' इतने उच्चारण में जितना समय लगेगा उतने में प्रभु को मोक्ष हो गया। जयवन्त हों पारसनाथ स्वामी। उसी दिन से तीर्थभूमि शाश्वत् भूमि, पारसनाथ भूमि के नाम से प्रसिद्ध हो गई। इस जीवन

में पारसनाथ के चरित्र को सुन करके, इसलिये मत पूजना कि रविव्रत के दिन पूजो, सुख-सम्पत्ति बहु होई। यह फालतू बातें नहीं करना। भगवान् पारसनाथ की पूजा इसलिये करना कि हे प्रभो! जो समता आपके पास थी, वह समता मुझे मिल जाये। दस भव तक पेरता रहा, फिर भी आप उसको आशीर्वाद ही देते रहे। जब तीर्थंकर को नहीं छोड़ा, तो विशुद्धसागर क्या हैं? जो है, सो है। ज्ञानियो! जीवन में पर के विकारी भाव को देख करके निज में विकार उत्पन्न नहीं करना। पार्श्वनाथ स्वामी की जाप कर लेना कि हे प्रभो! वह समता मुझे मिले जैसी आपके अंदर थी।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

''कोटि भव की वेदना''

सुतीव्रेणापि कामेन स्वल्पकालं तु वेदना।
खण्डनेन तु शीलस्य भवकोटिषु वेदना।। 112 ।।

अन्वयार्थ - **सुतीव्रेण कामेन अपि** = अति तीव्र काम की दाह से भी, **स्वल्पकालं तु** = थोड़े ही काल तक, **वेदना** = पीड़ा रहती है, **तु** = परन्तु, **शीलस्य खण्डनेन**= ब्रह्मचर्य को खण्डित कर देने से, **भवकोटिषु** = करोड़ों जन्मों में, **वेदना** = कष्ट सहने पड़ते हैं।

भावार्थ - हे आत्मन्! अति तीव्र काम की दाह से तो थोड़े ही काल तक वेदना होती है, परन्तु ब्रह्मचर्य व्रत को खण्डित कर देने से करोड़ों जन्मों में वेदना सहन करनी पड़ती है।

।। सद्-देशना ।।

हम सभी अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की देशना पीयूषवाणी, मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन। जयवन्त हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मस्वरूप में लीनता की प्रेरणा देते हुये कामवासना से बचने का अलौकिक व्याख्यान कर रहे हैं।

ज्ञानी! इस व्याख्या को जो समझ लेगा, उसे अलग से अहिंसा की व्याख्या नहीं करनी पड़ेगी। अलग से सत्य व ब्रह्मचर्य आदि की व्याख्या की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जिसने 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' सूत्र को समझ लिया, यह अपने आप में एक महान् सूत्र है। बीज मानना चाहिये। आपको मालूम होगा कि दस प्रकार के सम्यक्त्व में एक बीज-सम्यक्त्व है, एक सूत्र-सम्यक्त्व है। आचाराङ्ग आदि ग्रन्थों को समझने के बाद श्रद्धा होनी चाहिये। यह सूत्र-सम्यक्त्व है।

अक्षर मात्र को सुन करके सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग पर जिनकी आस्था हो रही है, यह बीज-सम्यक्त्व है। एक बीज के माध्यम से अनेक बीज उत्पन्न हो जाते हैं, ऐसे-ही

जिनवाणी का एक अक्षर मात्र सुनने से श्रद्धा का जन्म हो जाता है। ऐसी आस्था जिसने भव-भव का नाश कर दिया हो। बड़े सहज भाव से समझना। व्यक्ति के चिन्तन की धारा कभी कहीं पहुँचती है और कभी कहीं। अरहन्त के होने से अरहन्त नहीं बना, निर्ग्रन्थ के होने से अरहन्त बना है। अरहन्त देव किसी को अरहन्त नहीं बनाते, नहीं-तो वे कर्त्ता हो जायेंगे। जैनदर्शन का मूल सिद्धान्त है कर्तृत्वपने का निषेध। जगत् के दर्शन एवं जैनदर्शन में मूल अंतर कर्तृत्व भाव है। कोई देव को कर्त्ता मानता है, तो कोई देवी को कर्त्ता मानता है, कोई परमात्मा को कर्त्ता मानता है, लेकिन जैनदर्शन कहता है

यः क्रियां करोति स कर्त्ताः। (कातंत्र.)

बेटा! तू मेरे से ज्यादा पुण्यात्मा है। मैं इतने दिनों आचार्य महाराजों के पास बैठकर उनसे अध्ययन करने के बाद सीख पाया हूँ जबकि तुझे आज वैसे ही मिल रहा है।

जो क्रिया को करता है, वही कर्त्ता है। क्रिया करे कोई, कर्त्ता कहे किसी और को, यह अनर्थ कैसा? कर्म कोई करे, कर्त्ता कोई बने, फल कोई अन्य दे, भोगने वाला कोई चौथा। ऐसा नहीं है अपितु उपादान शक्ति से काम होता है। बाजरे के आटे से बाजरे की रोटी बनेगी, स्वाद भी बाजरे का ही आयेगा। पापप्रवृत्ति करेगा तो पाप का ही फल मिलेगा, पुण्य का फल नहीं मिलेगा। इसलिये कर्त्ता अन्य नहीं। अभेद दृष्टि से कर्म अन्य नहीं। प्रत्येक क्रियाओं में परकर्तृत्व परकर्मत्व, भेदकारण में तो बन सकता है, लेकिन भोक्तत्वपना कर्तृत्वपने के साथ है। जो करता है, वो भोगता है। भिन्न भोक्ता को जिनशासन नहीं स्वीकारता।

मंदिर में भीड़ लगाने के उद्देश्य से, मंदिर की प्रसिद्धि के उद्देश्य से आपने ऐसा प्रचार करवा दिया कि अमुख कार्य की सिद्धि करना हो तो चन्द्रप्रभ जिनालय जाओ। चन्द्रप्रभ स्वामी कहते हैं कि मेरे चरणों में मेरे श्रद्धान का नाश करके मत बुलाइये। यदि ज्ञानी ने लाठी के बल पर हजारों लोगों को अपने पास बिठा लिया और कहता है कि देखो ये मेरे धर्म का प्रचार है, तो कह देना कि भयभीत करना हिंसा है जबकि जैनधर्म अहिंसक है। जहाँ हिंसा करके प्रचार है, वहाँ धर्म का प्रचार कहाँ है? वह तेरे राग का प्रचार है। किसी जीव को डरा करके अपने पास जोड़ लो, तो हिंसा करके अहिंसा का प्रचार कैसा?

अहिंसा का नाम धर्म है। 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' है, उसके अंदर जगत् के

सम्पूर्ण श्रद्धान हैं। इस सूत्र में सारे व्रत , सारे नियम, सारे सिद्धान्त, सारे संविधान विराजमान हैं। विश्व के सारे संविधान यहाँ पर हैं। संसार में जितने राज्य हैं, जितने देश हैं, उन सबके संविधान एक स्थान पर रख दिये जायें और 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं' सूत्र एक स्थान पर रख दिया जाये और सूत्र के अनुसार सारा विश्व चलने लग गया, तो विश्वास रखना, सारे विश्व के संविधान हटाये जायेंगे।

देव हैं, वे परमात्मा हैं, परमात्मा पर श्रद्धान करने से प्रशस्त परिणाम हो रहे हैं, पर अहिंसा की ओर बढ़ना है तो परमात्मा से और विशाल होना पड़ेगा। मध्य काल में कोटि-कोटि जीवों की हिंसायें हुई हैं, वे परमात्मा के चरणों के संकुचित भाव के कारण हुई हैं। आज आप जैनियों के बीच में कितने सम्प्रदाय हैं, वे परमात्मा के चरणों के राग में हुये हैं। एक पुष्प चढ़ा कर धर्म मानता है, दूसरा पुष्प फेंक कर धर्म मानता है, तीसरा भगवान् को बिठा कर धर्म मानता है, चौथा थाली के किनारे स्वस्तिक बनाकर धर्म मानता है। ये सब जो तुम कर रहे हो, परमात्मा के राग में। फिर तुम परमात्मा को डाँटते हो, परमात्मा को डाँट करके भावी परमात्मा का अविनय करते हो। समझ में आया? भगवान् ने कभी यह नहीं कहा कि आप मेरी आराधना ऐसे करो, ऐसे करो। हे श्रावको! आपकी अभिरुचि, आपकी आस्था, आपकी श्रद्धा परिणामों की विशुद्धि के लिये है। आराधना करने गये थे, न कि परिणामों की अशुद्धि करने गये थे। हे माँ! आपका एक बेटा दूध-रोटी पसंद करता है, दूसरा दूध-चावल पसंद करता है, तो आप किस बेटे को अपना मानोगे? दोनों को। पेट दोनों का भरेगा, सन्तान परम्परा दोनों चलायेंगे, इसलिये उनकी अभिरुचि उनके साथ रहने देते। श्रद्धान (सिद्धान्त) यह होना चाहिये कि दोनों मेरे बेटे हैं।

यदि आपका पुत्र और आपके भाई का पुत्र दोनों लड़ते हैं, तो लड़ सकते हैं, क्योंकि दोनों के पिता अलग-अलग हैं। पिता के नाम पर विसंवाद हो सकता है, क्योंकि पिता भिन्न-भिन्न हैं। ये मत पूछिये कि इन दोनों को एक कैसे किया जा सकता है? यह मंत्र मेरे पास है- यह विवेक होना चाहिये। दोनों के पिता अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन तुम दोनों के दादा कौन हैं, खोज करो? दोनों के दादा तो एक हैं। एक

मुनिसंघ कहता है कि मेरे गुरु ये हैं, दूसरा संघ कहता है कि मेरे गुरु ये हैं। ज्ञानियो! अपने गुरु के राग में विसंवाद मत फैलाओ। तुम्हारे दादा महावीर स्वामी एक हैं।

जब महावीर स्वामी की चर्चा करोगे तो तुम सबके तीर्थंकर एक हैं। एकत्व पर दृष्टि ले जाओ। और एकत्व पर दृष्टि तभी जायेगी, जब दार्शनिक चिंतवन होंगे। जिसके दार्शनिक चिन्तवन नहीं होंगे, वह वस्तुस्वभाव को नहीं समझ सकते। पिता के नाम से बेटा नहीं चलेगा, इतिहास में दादा के दादा के दादा से वंश चलता है।

एक क्षण बेटा अपने पिता को भूल जाता है, अपने परदादा की अनुभूति में चला जाता है कि वे कैसे होंगे? वंश की शुद्धियाँ मात्र पिता से नहीं होती हैं। वंश की शुद्धियाँ बहुत ऊँचे से होती हैं। मैं उस वंश का हूँ जिस वंश में ऋषभदेव हुये हैं। मेरे वंश में नेमिनाथ स्वामी हुये, मेरे वंश में महावीर स्वामी हुये। आज मेरा सभी समाज से कहना है कि भले ही किसी मंदिर में एक छोटे से श्री जी विराजमान करना, परन्तु हर वंश की एक प्रतिमा होनी चाहिए, उसका रहस्य बताता हूँ। हर वंश की, हर परिवार की एक प्रतिमा होनी चाहिए, क्यों? कदाचित् किसी ऐसी संतान को अशुभ कर्म का उदय आ गया, 'तत्त्वार्थ श्रद्धान' सूत्र से वह विमुख हो गया, जिसका प्रातः जिनालय में अभिषेक की जगह होटल में जाना होने लग गया, जिसकी शाम जिनवाणी की वाचना की जगह वैश्यालय में होने लगी, जिसका मन ध्यान व सामायिक की जगह, योगियों को आहार देने की जगह तास के स्थानों पर होने लगे, तो अब समझ जाओ कि बालक कितना अच्छा हो चुका होगा? इतना अधिक बिगड़ने के उपरान्त भी, अभी धैर्य रखो। कभी कदाचित् मित्रों के बीच में कहता है कि चलो, सम्मेदशिखर चलें। आप विश्वास रखो, बिगड़े लोग भी शिखर जी जाते हैं, अच्छे तो जाते ही हैं। ज्ञानी! उस तीर्थभूमि की वन्दना ही ऐसी है। कुछ नहीं तो घूमने के उद्देश्य से जाते हैं। घूमने के उद्देश्य से गया। जैसे-ही जिनालय में गया, जैनकुल में तो जन्मा था, प्रवेश करते ही बोर्ड देखता है, इस श्री जिनमंदिर की स्थापना अमुख नगर के सेठ के द्वारा की गई है। धोके से उस बिगड़े युवा की आँख उस पर पड़ गई। वह कभी नहीं सोच सकता था, प्रशस्ति को पढ़ते ही बोला धिक्कार हो मुझे। मेरे कुल में ऐसे उच्च काम हुये हैं, शाश्वत् तीर्थभूमि सम्मेदशिखर में मेरे वंश के लोगों ने जिनप्रतिमा विराजमान की है, मैं ऐसा अभागा कि भगवान् के

दर्शन करने भी नहीं जाता हूँ। उस प्रतिमा को देख करके अपने वंश का राग उमड़ पड़ा और वंश के राग में भगवान् पर श्रद्धा आ गई। ज्ञानियो! समाज को संगठित करने के अनेक उपाय हैं। अहंकार की प्रशस्ति नहीं लिखवाना। अब तुम्हारे वंश की आगामी पीढ़ी में जिसने पढ़ा, उसके बिगड़े भाव बदल जायेंगे। इसलिये अपनी पर्याय पूर्ण होने के पहले अरहन्त की प्रतिमा अवश्य बिठाल देना। आप तो खूब बड़े-बड़े अक्षरों में नाम लिखवा देना। सेठ पाहिल! तू दिखाई नहीं देता, तेरा वंश दिखाई नहीं देता, लेकिन तेरे द्वारा स्थापित जिनमंदिरों ने आज सारे विश्व में दिगम्बरत्व की शिक्षा दी है। खजुराहो का नाम जब-जब आता है, तो सेठ पाहिल का नाम आता है। गोमटेश का नाम जब आता है तो चामुण्डराय का नाम अपने आप आता है। 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।' छः द्रव्यों में से क्या गर्भ में बैठा शिशु तत्त्व नहीं है? जीवतत्त्व है। टुकड़े कराने जा रहे हो, उस समय पढ़ लेना तत्त्वार्थ सूत्र-'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'-कहाँ गया तुम्हारा सम्यक्त्व जब तुम्हारी करुणा की पलायन कर गई? यह जो जीवतत्त्व गर्भ में बैठा है, यही जीवतत्त्व परमात्मा रूप में प्रकट होगा। तुम किसकी हत्या करने जा रहे हो? 'तत्त्वार्थ श्रद्धान' कहाँ चला गया?

मित्रो! जब तुम्हारे कुशील सेवन के परिणाम होने लग जायें, उस समय आचार्य महाराज ने क्या कहा है- हे ज्ञानी! काम की दाह तो क्षण मात्र है, परन्तु शील का भङ्ग करना कोटि-कोटि भवों की राह है। नवकोटि जीवों पर दृष्टि चली, वहाँ कहना 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं,' मैं क्या करने जा रहा हूँ? फिर आँखों से आँखें नहीं जोड़ोगे, फिर आँखों से उनकी पर्याय की रक्षा भी करोगे। यह 'तत्त्वार्थ श्रद्धान' देव भी हैं, शास्त्र भी हैं, गुरु भी हैं और जगत् का प्राणीमात्र भी है। ज्ञानी, ज्ञानी एक दूसरे से बात नहीं करते, क्यों? मैं ज्ञानी हूँ। अरे ज्ञानियो! तुम ज्ञान विहीन हो। जब तुम्हारा आपस में वात्सल्य दिखाई नहीं दे रहा है, आपस में प्रीति नहीं है, जीवों के प्रति करुणा दृष्टि नहीं है, तुम खिंचे-खिंचे खींचला बना रहे हो तो तुम्हारा क्या सम्यक्त्व है, क्या ज्ञान है। तुमने समाज के टुकड़े करके रख दिये, यह तुम्हारा ज्ञान थोड़े-ही है, अहंकार है। यदि ज्ञान होता है, तो तत्त्व के प्रति रुचि होती है। तत्त्वरुचि नहीं है, तत्त्वप्रतीति नहीं है, अहंकार की प्रीति है। एक माँ बेटे से बात नहीं करती है, बेटा माँ से बात नहीं कर

रहा है। क्यों ? बेटे ने पढ़ रखा है कि निश्चय ही सत्य है, माँ ने पढ़ रखा है कि व्यवहार ही सत्य है। निश्चय-व्यवहार के राग में एक दूसरे से बात नहीं कर रहे हैं। ज्ञानी ! यह कौन-सी बला आ गई ? नय तो वस्तुस्वभाव को समझने की पद्धति थी न कि वात्सल्य को नाश करने की पद्धति थी।

मैं सिद्धान्त का ज्ञाता हूँ, मैं द्रव्यानुयोग का ज्ञाता हूँ, मैं करणानुयोग का ज्ञाता हूँ। आपको मालूम होना चाहिये कि कर्म की प्रकृतियों को पढ़ने से, रटने से तेरी प्रकृति नहीं बदल जायेगी। प्रकृति बदलना है तो परिणामों को साम्य करना पड़ेगा, तब प्रकृति बदलेगी। नदी, पहाड़, समुद्र, द्वीप आदि की दूरियों को नाप लेने से तेरा मोक्षमार्ग तैयार नहीं हो रहा है यदि तेरे निज के परिणामों में विशुद्धि नहीं आ रही है तो। 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'। मोक्षमार्ग आपसे बहुत दूर है यदि आपकी रुचि जगत् के प्राणिमात्र पर एकत्व रूप से नहीं हो रही है तो। जीवत्व दृष्टि से देखिये। एक चूहा बिलखता दिख जाये तो तू णमोकार सुनाने को तैयार है। श्री राम ने पद्म की पर्याय में सुग्रीव के जीव को बैल की पर्याय में णमोकार मंत्र सुनाया। ये ज्ञानी इतना महान् है कि ये देख लेगा कि कोई मुनिराज की सल्लेखना चल रही है तो ये पूछ लेगा कि मेरे मन के हैं कि नहीं ? नहीं-तो यह णमोकार भी सुनाने नहीं जायेगा। अभी धर्म के बारे में सोचना पड़ेगा। यह आपका तीव्र पुण्य है कि बोध और बोधि का लक्ष्य बनाकर बैठे हो। नहीं-तो धर्म को कोई सुनाता ही नहीं है।

कुन्दकुन्द भगवान् ने तो यह कहा है-जिनमुद्रा को देखते ही पहले सिर टेकना, मिट्टी का पुतला ही क्यों न हो। जब तुम पाषाण की प्रतिमा में महावीर को देख सकते हो, तो जिनमुद्रा में निर्ग्रंथों को देखना। आजकल उल्टी शिक्षा चल रही है। कैसी ? जो कुछ हूँ, मैं हूँ। ये श्रमणसंस्कृति की रक्षा नहीं है, ये मात्र अहंकार की रक्षा है। यदि श्रमणसंस्कृति पर लक्ष्य होगा, जैनदर्शन पर लक्ष्य होगा, तो जो णमोकार पढ़ते मिल जायेगा, उसको गले से लगा लेगा। 'न धर्मो धार्मिकैर्बिना।' हमारे धर्मात्मा नहीं होंगे तो धर्म कहाँ होगा ? एक-एक धर्मात्मा को तुम छोड़ते चले जाओगे तो धर्म बचेगा कहाँ ?

आज के युवा कोई तुम्हारे पास नहीं बैठ पा रहे। वे आपकी करतूतियाँ देखते हैं। मुख से कुछ बोलते हो, करते कुछ दिखते हो। आप विद्वान् भी एकसाथ नहीं बैठ पा रहे हो, दूसरे को क्या बैठाल पाओगे ? साधु भी एकसाथ नहीं बैठ पा रहे हैं, तो युवाओं

को क्या एकसाथ बिठाल पायेंगे? भैया! आपके ही सम-दृष्टि नहीं है, तो हमें क्या सिखाओगे? माताओ! ध्यान रखना, यदि आप ही अपने पति से लड़ते मिल गई, आप सोच रही होगी कि बेटा मेरा पक्ष लेगा, समझदार पुत्र होगा तो यही कहेगा इन दोनों अभागों से कि दूर हो जा, ये कसाई लोग हैं जो ये चौबीस घण्टे शान्ति से नहीं रहते। अधिकांश बच्चे इसीलिये भाग जाते हैं। कोई पढ़ने के बहाने जाता है, कोई सर्विस के बहाने क्यों? इनका क्लेश नहीं देख सकता मैं। आपकी अशुभ तरंगें सन्तान को प्रभावित करती हैं। छात्र-अवस्था में उनको अध्ययन करना चाहिये था कि तुम्हारी लड़ाई देखें? छुई-मुई लाजवन्ती के पौधे को छू लो तो मुरझा जाती है, ऐसे ही हमारे मस्तिष्क के तंतु नाजुक हैं, वे तुम्हारे व्यर्थ के तनाव को नहीं झेल सकते। जिनको स्वयं की रक्षा करना हो, जिनको परिवार की रक्षा करना हो, उन सबको अपने मस्तिष्क ठण्डे रखना चाहिये।

चाहे धार्मिक पक्ष को समझ लो चाहे आध्यात्मिक पक्ष को समझ लो, मस्तिष्क ठण्डा रहेगा तो वह हर क्षेत्र में उन्नत रहेगा। जिनके मस्तिष्क गर्म हो चुके हैं, वे न माला फेर पायेंगे न पूजा कर पायेंगे मन ही नहीं लगेगा।

ऐसा कौन सा द्रव्य है जो तत्त्व नहीं है? "तच्च स्वभावं तत्त्वं"

जो वस्तु का स्वभाव है, उसका नाम तत्त्व है। वस्तु का स्वभाव तत्त्व है, यदि यह तत्त्वदृष्टि तुम्हारी बन चुकी है, तो आज से यूँ कहना कि हम आपकी पर्याय बाद में देखेंगे, हम आप में जीवतत्त्व पहले देखेंगे। जो पर्यायों को नहीं देखेगा, वह अब्रह्म में नहीं जा सकता। जीवतत्त्व देखो। तुम कन्या में लड़की देखोगे तो अब्रह्म भाव आयेगा। तुम पुत्र देखोगे, बालक देखोगे ,युवा देखोगे, तो खोटे भाव आयेंगे। नारी देखोगे तो खोटे भाव आयेंगे, नर देखोगे तो खोटे भाव आयेंगे। यदि तुम जीवतत्त्व देखोगे तो द्रव्यत्व दृष्टि होगी। बर्तन मत देखो, पानी देखो। जिनालय के कुए से स्वर्णकलश में पानी भर लिया, ताम्रपात्र में पानी भर लिया, रजत कलश में पानी भर लिया और कहता है कि मेरे सोने के कलश का पानी, मेरे चाँदी के कलश का पानी, अरे ज्ञानी! न सोने के कलश का पानी, न चाँदी के कलश का पानी। पानी तो कुए का पानीभूत है। ऐसे ही जितनी पर्याय हैं, बर्तन हैं पंथ हैं, आम्नाय हैं, जाति-उपजातियाँ हैं, ये सब कलश

'कलश' हैं। तुम तो पानी को देखो। ज्ञान-दर्शनभूत सबकी भगवान्-आत्मा एक होती है। सदृश है। यह भावनात्मक चर्चा नहीं चल रही है। आप एक दूसरे पर कलुषता प्रकट करोगे, तो उस कलुषता से दूरियाँ बढ़ेंगी भगवान् बननेवाला कभी भेद में नहीं जीता। जब तक भेद में जीता है, तब तक भगवान् नहीं बनता। अभेद रत्नत्रय अभेद की प्राप्ति का उपाय है। आपने जीवनभर समय निकाल दिया, लेकिन 'मैं कौन हूँ,' इस पर लक्ष्य ही नहीं गया। जिस प्रान्त में जन्मे, उस प्रान्त के हो जाते हैं। इन काँचों को निकाल कर फेंको। ये मेले की पन्नी है। मेले में पन्नी वाले चश्मे मिलते हैं। जिस रंग की पन्नी होती है, वैसे-ही पदार्थ दिखते हैं। ये पन्नियाँ हटाओ और सत्य को देखो। यदि यथार्थ वस्तु को देखना है तो स्वच्छ काँच रखना पड़ेगा, तब तुझे दिखाई देगा कि दीवाल सफेद है या नीली। तुम काला चश्मा लगा लेते हो तो काली दिखती है। जिसकी दृष्टि खोटी होती है उसे सारे द्रव्य खोटे दिखते हैं। जिसकी दृष्टि पवित्र होती है, उसे सारे द्रव्य पवित्र दिखते हैं।

कुए में झाँक कर बोलो, ध्वनि करके देखो, कैसी प्रतिध्वनि आती है? जैसी ध्वनि होगी, वैसी प्रतिध्वनि आती है। जिसकी ध्वनि में जैसे भाव बैठे हैं, उसको वैसे-ही व्यक्ति दिखाई देते हैं। यह निर्णय कभी मत करना कि मेरी सोच के अनुसार द्रव्य है। अभी तूने द्रव्य को जाना ही नहीं है। अपने द्रव्य को नहीं जाना, अपने द्रव्य को नहीं पहचाना। अपने द्रव्य की सत्ता को नहीं जान सका, तो पर की सत्ता को क्या जान पायेगा? जिसने अपने द्रव्य को नहीं जाना, दूध ही पीता रहा, तुझे मालूम होना चाहिये कि उसके आगे भी कुछ है? दही भी है, मट्ठा भी है, छैना भी है, मावा भी है, मक्खन भी है, घृत भी है। गोरस की विशुद्ध पर्याय का नाम घृत है। जो दूध ही पीना जानता है, उसे घृत का क्या स्वाद आयेगा? दूध के अंदर और-भी अवस्थायें हैं। तुझे अपनी ही अवस्थाओं का बोध नहीं है। तू मानता है कि मैं शास्त्री मात्र हूँ। नहीं, तेरे अंदर और-भी कुछ है। कपड़े उतार लो तो दिगम्बर हो जाओ। वासना उतारके वसन उतार लो, तो दिगम्बर हो जाओ। वासना व वसन उतारने के बाद राग की थैलियाँ भी नष्ट हो जायें, तो वीतराग हो जाये और कर्मातीत हो जाये, तो सिद्ध परमात्मा हो जाये। तेरे अंदर कितनी सामर्थ्य है। यदि समझ में आ रहा है तो मैं बहुत अच्छे से कह रहा हूँ कि जो

तेरे नहीं होते हैं, उन्हें उतारना सरल है, परन्तु जिस कुल में तू जन्मा है, उस कुल के राग को उतार पाना बहुत कठिन है। पण्डित जी! ऐसे लोग भी मिल जायेंगे जो वर्षों-वर्षों से दिगम्बर रूप में हैं, लेकिन उनको अपने क्षेत्र का राग नहीं छूट पा रहा है। अपने कुल, वंश का राग नहीं छोड़ पाये। आचार्य पूज्यपाद कहते हैं—**हे योगी! जब तक तेरे अंदर जाति, लिङ्ग का विकल्प रखा हुआ है, तब तक तू शिव तत्त्व की प्राप्ति नहीं कर सकता। योगी की मुद्रा सरोवर तुल्य होती है। नदी में गाय जाये वह भी पानी पी लेती, सिंह जाये वह भी पानी पी लेता और नदी में श्रावक जाये वह भी पानी पी लेता है। जैसे नदी किसी के लिये छू-छू नहीं करती है, ऐसे-ही दिगम्बर मुनि के चरणों में चाहे पशु बैठे, चाहे नर बैठे, चाहे देव बैठे, चाहे दानव बैठे, सभी को बराबर स्थान होता है। उसका नाम दिगम्बर मुनि होता है।** नदी की धार होना चाहिए। जिसका राग ही नहीं बीता, उसका धर्म कहाँ से प्रारम्भ होगा? मेरा तो सोच यह बनता है कि जैसे अरहन्त की प्रतिमा, ऐसे ही दिगम्बर मुनि भगवान् की प्रतिमा के समान होता है।

आपके बेटे की माँ तेरी पत्नि पहले बनी या जीव पहले था? जीव पहले था। तो पहले जीव को देख, पत्नि पर गुस्सा मत करना। सभी पुस्तकों में लिखा है जीवद्रव्य सम्यक्त्व नहीं है। सामने खड़े जीवद्रव्य को तो पीट रहा है और पुस्तकों में लिखे जीव तत्त्व पर श्रद्धा कर रहा है। कैसा सम्यक्त्व तुम लोगों का है? घर में पत्नि को पीट कर आया है, और फिर कर रहा है शान्तिपाठ। 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं', कौन-से तत्त्व? गिना रहा है जीव, अजीव.....। पहला तत्त्व जीव है और तू उसको पीट कर आया है, अब बताओ तेरा श्रद्धान किस पर है?

भेदविज्ञान के अभाव में दीक्षा हो रही है, विद्वान् बन रहे हैं। पहले भेदविज्ञान होना चाहिये, फिर दीक्षा होना चाहिये। जब तुम चींटी को बचा सकते हो, धूप से छाँव में जाने पर शरीर का मार्जन कर रहे हो, जीवों की रक्षा कर रहे हो, उनको पञ्चेन्द्रिय मनुष्य दिखाई न दे, उनमें भेददृष्टि हो, तो दिगम्बरत्व किस बात का? किञ्चित् भी तेरे अंदर दया हो, करुणा हो, तो सभी लोग आज प्रवचन सुनाना। सामने न हो तो मोबाइल पर सुनाना। बोलना -भाई! अभी तुम धर्म को समझ नहीं रहे हो, क्योंकि आपने मात्र अपने

आप को चारित्रवान् मान कर रख लिया है, उसे ही धर्म मान रहे हो। जब तेरी देह धर्म नहीं है, तो पर की देह धर्म कहाँ से होगी? करुणा भाषा वाले पर करोगे तो एकेन्द्रिय पर करुणा ही नहीं करोगे। उन रागियों से कहना-मैं महाराष्ट्र का हूँ, मैं कर्नाटक का हूँ। कर्नाटक में भाषा के नाम पर इतना राग होता है कि हिन्दीवालों को देखकर उनके चेहरे बदलते हैं। ज्ञानी! अभी धर्म नहीं है। ये शब्दवर्गणायें हैं। शब्दों के राग में शब्दातीत को भूल रहा है। भाषा भावों की अभिव्यक्ति का उपाय है, माध्यम है।

भाषा को लेकरके गुट बना लिये कि मैं अमुक भाषी हूँ। जिसने बृज में जन्म ले लिया तो बृज के राग में जी रहा है। बुन्देलखण्ड में जन्म ले लिया तो बुन्देलखण्ड के राग में जी रहा है। खण्डों से मोक्ष नहीं मिलेगा, अखण्ड ध्रुव आत्मा की प्राप्ति से मोक्ष मिलेगा। खण्डों के राग में समाधि कोशों दूर है। मोक्ष की प्राप्ति चाहिये तो अखण्ड ध्रुव निजानन्द भगवान्-आत्मा की अनुभूति से होगी। यदि इस निजानन्द भगवान्-आत्मा के शब्दों के राग से चाहे, तब भी नहीं होगी। कुछ लोगों को इन शब्दों से राग हो गया है, इन शब्दों के राग में ही बेचारे लुट गये। 'मैं तो भगवान् बनने वाला हूँ, मैं तो कर्म की प्रकृतियों को भूलने वाला हूँ।' ज्ञानी! तुम दोनों की प्रगति रुक गई। हे नर्मदा! तुम बहती रही, बहती रही, सो सागर में जा मिली। इस मध्यभारत की एक ही तो नदी है जो सागर में जा मिली। यदि तू भी कहीं बाँध में बंध जाये, तो जो सागर बननेवाला पानी था, वह खेतों की क्यारियों में नष्ट हो जायेगा। हे ज्ञानियो! जो तेरी आत्मा सिद्धों में मिलनेवाली थी, वह पंथों की क्यारियों में नष्ट हो जायेगी। यदि सिद्धों के सागरों में मिलना है तो इन क्यारियों में नहीं जाना है। आपको बहते रहना है, बहते रहना है, एक दिन सागर में जा मिलोगी।

पण्डित जी! इसमें शङ्का मत करना-संकुचित कमल में भौंरे की मृत्यु नियत है। खिले कमल में अरहन्त की प्रतिमा नियत है। जिनके हृदय विशाल होते हैं, उसके हृदय परमात्मा बनते हैं। जिनके हृदय संकुचित होते हैं, वे भौंरे के समान मर कर नरक चले जाते हैं। हृदय-कमल खिला होना चाहिये। पाषाण की प्रतिमा भी खिले कमल में विराजमान होती है। इसलिये आज से अपने हृदय को विकसित कर लेना, विशाल कर लेना। हर आत्मा में परमात्मा को देखना और वात्सल्य के कमल में सबको विराजमान

करना। जो जिनवाणी कह रही है, उसे स्वीकार करना।

सबके दिन एक-से नहीं होते। घूरे के भी दिन बदलते हैं। जहाँ घूरे दिखते थे, वहाँ महल खड़े दिखते हैं। कालिंदी के तट पर कोई भी वीतरागी श्रमण आये तो सबसे पहले नमोऽस्तु। जिस के तट पर नेमिनाथ स्वामी ने जन्म लिया हो, उस तट पर दिगम्बरत्व की अवहेलना कैसे हो सकती है? सबके दिन एकसे नहीं होते हैं।

अपना ही चिंतवन सबकुछ नहीं मानना चाहिये और चिंतवन भी सुनना चाहिये। कभी-कभी आपका चिंतवन नहीं पहुँच रहा है, लेकिन बच्चे का चिंतवन पहुँच रहा है। बड़े-बड़े आचार्य बन गये, अकंलक स्वामी बहुत बाद में हुये, सातवीं सदी में हुये। सातवीं/आठवीं सदी में उन अकलंक स्वामी ने तत्त्वार्थ राजवार्तिक, लघीयस्त्रयी, सिद्धि विनिश्चय, नय विनिश्चय, प्रमाण संग्रह, उच्च कोटि के न्यायशास्त्र लिखकर रख दिये। सारे-के-सारे लोग देखते रह गये। जैनदर्शन में 'साम्व्यवहारिक प्रत्यक्ष' कहने वाला कोई श्रमण हुआ है, उसका नाम आचार्य अकलंक स्वामी है। ऐसे-ऐसे ग्रन्थ हैं हमारे पास, दिगम्बर समाज प्रकाशित नहीं कर पायी, श्वेताम्बर समाज ने प्रकाशित किया है वह ग्रन्थ। जब श्वेताम्बरों के पास न्याय ग्रन्थ नहीं थे, तब समन्तभद्र, अकलंक स्वामी, विद्यानन्द स्वामी के ग्रन्थों को रख करके उनने ग्रन्थ बनाये। हमारे आचार्यों ने कहा कि चिन्तवन तो करो, पर इतनी दृष्टि रखना कि भेष, भाव निजी हो सकते हैं, परन्तु जीवत्व में मुझे प्राणिमात्र दिखाई देना चाहिये। न दिगम्बर, न श्वेताम्बर, न स्थानक, न समैया, कुछ नहीं। मुझे तो मात्र जीवद्रव्य दिखेगा। जब निगोदिया से लेकर सिद्धों तक में जीवन दिखाई देता है, तो जगत् का भेद करना बंद करो। आश्चर्य होता है, संसार में जीने के लिये सबके साथ जीते हो। भूल मत करना-झाड़ू लगाने वाला नहीं मिलेगा तो अपने द्वार पर झाड़ू लगानी पड़ेगी। उनके प्रति भी अच्छे भाव रखना चाहिये। जीवन जीने के लिये सबके साथ एकत्व के साथ जी लेते हो, लेकिन मंदिर और धर्म के स्थान पर भेद करते हो तो अभी जीव ने धर्म के मर्म को समझा ही नहीं। ऐसे लोग भी आपको मिल जायेंगे। अच्छा, यह चन्द्रप्रभु स्वामी का मंदिर है, मैं तो पार्श्वनाथ स्वामी के मंदिर चलूँगा, मैं तो महावीर स्वामी के मंदिर जाऊँगा। ज्ञानियो! आपने परमात्मा में भी भेद कर दिये। जब तुमको भगवान् में भेद दिख रहे हैं, तो तेरे अंदर कितने भेद होंगे? अपने राग में तुम प्रभु की वीतरागता में भेद मत डालो।

आज स्वीकार करना पड़ेगा कि उपवास कठिन नहीं है। भोजन का उपवास तो दुनियाँ करना जानती है, परन्तु राग-द्वेष का उपवास करना सीखो। उपवास कर-करके तो शरीर सुखा डाला, परन्तु कषाय का उपवास हुआ ही नहीं।

एक जीव आचार्य महाराज के पास आया-'स्वामी! दीक्षा दे दो।' आचार्य महाराज ने कहा-'वत्स! अवश्य दीक्षा होगी, पतली करो।' शिष्य ने जाकर एक महीने के उपवास कर लिये। एक महीने बाद फिर आया, स्वामी! दीक्षा दे दो।'

स्वामी ने फिर कहा-'पतली करो। फिर दीक्षा दूँगा।' उसने एक महीने का फिर उपवास कर लिया। तीसरे महीने फिर पहुँचा, कहता है-स्वामी ! अब तो दीक्षा दे दो। देखो, मैं कितना दुबला हो गया? हड्डी-हड्डी दिख रही है। अब तो दीक्षा दे दो।

स्वामी ने फिर कह दिया, 'वत्स! पतली करो।' जैसे-ही तीसरी बार कहा कि पतली करो, उसका पारा ऊपर चढ़ गया, कहा-क्या पतली करें? सूख तो गया हूँ। अंतिम श्वास निकल जायेगी, तब पतली होगी क्या? तुम रोज आहार करते हो, मस्त हो, मुझसे कहते हो कि पतली करो, पतली करो। अरे बेटा! क्या करूँ ? तेरी बुद्धि की दुर्बुद्धि है। मैंने कब कहा था कि शरीर को पतला कर ले? कषाय को पतली कर लो। माताओ! आप उपवास करो, अच्छी बात है, करना ही चाहिये, लेकिन कषाय को भी पतली करना। शरीर को सुखा कर बैठ गये, कमजोर हो गये, सो और अधिक कषाय भड़कने लग गई।

कामदाह महा दाह है। शरीर की वासनायें हमेशा नहीं सताती हैं। कुछ समय बाद शान्त हो जाती हैं। इसमें शङ्का मत करना, **यदि आप उपयोग बदल देते हो, तो आपके अशुभ भाव बदल जायेंगे। जब मन में अशुभ परिणाम आयें, तो एकान्त में नहीं जाना, भीड़ में जाकर बैठ जाना। जब कोई अब्रह्म आदि परिणाम होने लग जाये, तो अच्छे लोगों के बीच में जाकर बैठना, वृद्धों के बीच में रहना, उस समय युवाओं के बीच में मत रहना। वृद्धों के शरीर में वासनाओं की तरंगें नष्ट हो चुकी हैं और युवाओं में वे वासनाओं की तरंगें निकल रही हैं, इसलिये ऐसे काल में एकान्त में मत बैठना, भीड़ में जाकर बैठना, साधुपुरुषों के पास रह जाना। विश्वास रखना, आपके परिणाम शान्त हो जायेंगे।** बचना चाहो तो बचने के उपाय

हैं। यदि आपने सेवन कर लिया, तो महा पाप का बंध होगा, जो कि नरक में ले जाने वाला है। अति तीव्र काम के ध्यान से भी काम की वेदना होती है। अधिक समय तक नहीं होती, परन्तु एक समय की काम दाह को सहन नहीं कर पाता और शील का खण्डन कर लेता है। उस जीव को कोटि भवों की वेदना सहन करनी पड़ती है। छोटी-सी बात है, आप अपने माता-पिता से ही पूछ लेना कि आपको मुझे जन्म देने से क्या-क्या लाभ हुये? विद्यार्थी जीवन में जो चिंता नहीं थी, वे आज सता रही हैं। कभी इसको देखना, कभी उसको देखना। स्वयं तो स्वस्थ है, लेकिन कभी किसी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। कभी रिश्तेदारों की चिंता है। बेटे के ससुराल में किसी की मृत्यु हो गई तो चेहरा बनाकर बैठने जाना पड़ता है। काश ! मुनिराज होता तो सामायिक करने बैठता। गृहस्थी में व्यर्थ का कितना आस्रव होता है? नगर में किसी की मृत्यु हो गई तो जाना पड़ता है। हृदय मुस्कराये भी, तो-भी वहाँ चेहरा ही बनाना पड़ता है। कुछ भी कहो, स्वयं के वश हो तो दुनियाँ के वश में नहीं होना पड़ता है।

जो है, सो है। वस्तुस्वरूप समझो। अखण्ड में जो आनन्द है, वह खण्ड में नहीं है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"ज्ञानोपयोग से काम शमन"

नियतं प्रशमं याति कामदाहः सुदारुणः।
ज्ञानोपयोग सामर्थ्यांद्विषं मंत्रपदैर्यथा।। (113)

अन्वयार्थ - **यथा मंत्रपदैः विषं** = जैसे मंत्रों के पदों के प्रभाव से सर्प का विष उतर जाता है वैसे ही, **सुदारुणः कामदाहः** = अतितीव्र काम की दाह भी, **ज्ञानोपयोग सामथ्र्यात्** = अपने आत्मज्ञान के बल से, **नियतं प्रशमं याति** = अवश्य शांत हो जाती है।

भावार्थ - जैसे मंत्रपदों के द्वारा सर्प का विष उतर जाता है, वैसे-ही ज्ञानोपयोग की सामर्थ्य से सुदारुण कामदाह नियम से शांत हो जाता है।

कामसेवन से काम-शमन नहीं

असेवनमनङ्गस्य शमाय परमं स्मृतम्।
सेवनाच्च परा वृद्धिः शमस्तु न कदाचन।। (114)

अन्वयार्थ - **अनङ्गस्य** = काम का **असेवनं** = नहीं सेवना **शमाय** = काम भाव की शांति का, **परमं** = बड़ा उपाय, **स्मृतं** = कहा गया है, **च** = क्योंकि **सेवनात्** = काम सेवन से **परावृद्धिः** = काम भाव की लगातार बढ़ती होती जाती है, **तु कदाचन** = परन्तु कभी भी, **शमः न** = उसकी शांति नहीं होती है।

भावार्थ-काम का सेवन नहीं करना ही काम-शमन का परम उपाय कहा है, क्योंकि काम सेवन से काम का शमन कभी नहीं हो सकता, अपितु कामभाव की अधिक वृद्धि ही होती है।

।। सद्-देशना।।

हम सभी अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की देशना मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

जयवंत हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन। जयवंत हो वीतराग श्रमण

संस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी ग्रन्थ में आत्मा के परम उत्कर्ष की व्याख्या कर रहे हैं। भव-कोटि की वेदना की अपेक्षा से एक ही क्षण की पीड़ा सहन कर लेना उचित है। जब एक जीव सामान्य दु:ख को इस बात पर सहन करता है कि मैं भविष्य में दु:खी न होऊँ। एक गरीब किसान भी आषाढ़ के महीने में मेहनत कर लेता है और साल भर शान्ति का जीवन व्यतीत करता है। यदि वह आषाढ़ की तपन से भयभीत हो जाये और अपने खेत में काम करने न जाये, तो उसको साल भर भीख माँगना पड़ेगी। ऐसे-ही तत्त्वज्ञानीजीव एक क्षण के काषायिक भाव का उपशमन अपने साम्य भाव से कर लेता है, यदि अन्तर्मुहूर्त आपने शान्ति को स्वीकार कर लिया तो भव-भव के बैर से बच जायेगा। यह मत सोचना कि कोई तिर्यंच है, उसके साथ हम कुछ भी कर सकते हैं। **यदि पशु को भी आपने चाबुक मारा है, वह कहीं अशुभ भावों से मर गया, तो वह तिर्यंच जीव भी किसी भव में बदला लेने खड़ा हो जायेगा।**

जिनके घरों में गाय-भैंस पल रहे हैं, अन्य जानवरों को रखे हैं, यह मत सोचना तिर्यंच हैं। आपका चिंतन ही नहीं गया कि इनको कष्ट देने में भी कर्म का बन्ध होगा। यदि उनको समय पर भोजन नहीं दिया, समय पर पानी नहीं दिया है, उनसे आप काम ले रहे हो, यदि उसने काषायिक भाव से मरण कर लिया, तो वह जीव आपके ऐसे समय में आयेगा जब आप अपने आप को खो बैठेंगे, तब वह कष्ट देने खड़ा हो जायेगा। दुनियाँ पर आपको भले ही दया न आये, लेकिन स्वयं पर तो आना चाहिये। जिस पर दया कर रहे हो, वह भिन्न है और जिस पर अदया कर रहे हो, वह भिन्न है; परन्तु हे दयावान्! हे अदयावान्! पुण्य-पाप कर्म का आस्रव किसको होगा? आप यूँ सोचते हो कि मैं पानी छान कर पीता हूँ तो जीवों पर दया कर रहा हूँ। यदि स्वयं पर दया है, तो छानिये पानी। उन जीवों को नाश करके पीकरके निर्दयता की प्रवृत्ति किसकी होगी और कर्म का बन्ध किसको होगा? ऐसे कितने सारे जीव हैं। एक लोटा पीने के लिये तो छान लेता है, तू रूढ़ि धर्म पाल रहा है कि धर्म का धर्म पाल रहा है? समझो तत्त्व की व्याख्याओं को। रूढ़ि के धर्म का निर्वाह कर रहा है कि वास्तव में धर्म का पालन कर रहे हो? पानी छान कर पियेगा, वह तो बहुत कम पीना पड़ता है; परन्तु बाल्टी की

बल्टी स्नान में लगा रहा है, उसमें क्या जीव नहीं मर रहे हैं? पानी छान कर पीने का नियम है, परन्तु जीवों पर रक्षा करने का नियम नहीं है। जीवों पर करुणा करने का नियम लेना, पानी पीने का नियम तो पल जायेगा। जब जीवों पर करुणा करेगा तो पीने को उपयोग तो कितना होता है? वस्त्र धोने में कितना उपयोग होता है? स्नान आदि अन्य कार्यों में कितना उपयोग होता है? यदि भीतर करुणा प्रवेश कर जायेगी, तो पहले स्नान व वस्त्र धोने के लिये पानी छान कर प्रयोग कीजिये। अधिकांश लोगों की धारणा यही है-ज्ञानी! करुणा है कि परम्परा है। **परम्परा का निर्वाह करना धर्म नहीं है, करुणा करना धर्म है। एक माँ ने पानी छाना और बिलछानी कुये में डाली, लेकिन एक बूँद बिलछानी जमीन पर गिर गई, तो वह सात भव सूकरी बनी, सात भव कूकरी बनी, सात भव सियालनी बनी। एक बूंद बिलछानी जमीन में गिरने पर इतने दुर्भव धारण करने पड़ गये। यदि यह सत्य है, तो स्वयं पर चिन्तन कीजिये, आप तो बाल्टी-की-बाल्टी फैला रहे हो, आपका क्या होगा?** ज्ञानियों ने उपदेश भी दिया, तो क्या दिया? पानी छान कर पियो। जबकि ऐसा उपदेश देना चाहिये था कि पानी का उपयोग छान कर ही करो। छान करके फिर क्या करो। जीवाणी को वहीं भेज कर आओ जहाँ से पानी आया है। राजमार्ग तो यही है-कुयें से खींचेगा तो कड़े वाली बल्टी से कुयें में भेजेगा। नल का, हैण्डपम्प का कहाँ छोड़ने जायेगा? सम्यग्दृष्टि जीव यह नहीं देखता कि क्या स्वच्छ है क्या पवित्र है?

ज्ञानी! वह चर्या करना, वह क्रिया करना जिससे संयम का विघात न हो और जीवों की रक्षा हो। करुणा का पालन जिससे हो, ऐसे संयम का पालन करो। जहाँ करुणा न पले, ऐसा कार्य मत करो। **सम्यग्दृष्टि जीव का धर्म है अनुकम्पा, दया, करुणा। करुणा से युक्त कार्य करेगा तो हर कार्य में दया टपकेगी। जिसकी करुणा पलायन कर गई है, उसे मात्र अपने वस्त्रों की स्वच्छता दिखेगी, शरीर की स्वच्छता दिखेगी, लेकिन अहिंसा की स्वच्छता नष्ट हो जायेगी।** करुणा पर ध्यान दो। पीने में कितने पानी का प्रयोग किया और स्नान में कितने पानी का प्रयोग किया, वस्त्र धोने में कितने पानी का प्रयोग किया?

''नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये''

ऐसा पाठ करने मात्र से शुद्धि हो रही है क्या? वे भी आप-जैसी चेतना से युक्त

जीव हैं, वे भी संवेदनशील हैं, वे भी कष्ट को समझने वाले जीव हैं। जीवों के प्रति जीवत्व भाव नहीं है तो अध्यात्म दृष्टि क्या है? करुणा से शून्य कोई भी अध्यात्म होता है क्या? करुणा से शून्य कोई भी तप होता है क्या? नहीं। **करुणा से शून्य कोई अध्यात्म नहीं होता। हर व्यक्ति के नाम के आगे आप अध्यात्म लगा दो और वह खोटे काम करता हो, ऐसे आप अध्यात्म शब्द को बदनाम मत कर देना।** अमृतचन्द्र स्वामी की दृष्टि में जिसके पास धागा प्रमाण भी है, वह करुणाशून्य है; क्योंकि धागा धारण करेगा तो उसे धोयेगा, पानी बहायेगा, नाली में जायेगा। किसको मालूम नहीं है कि नाली में कीड़े तड़प रहे हैं। एक क्षण के लिये नाली का कीड़ा बन कर विचार करो। इन पर्यायों पर भी तो ध्यान दो, कैसे बिलख रहे हैं? कहाँ चली गई है सम्वेदनशीलता? भैया! भवन पर भवन खड़े हो रहे हैं, परन्तु संवेदनशीलता के भवन ढह रहे हैं। संवेदनायें नष्ट हो रही हैं। 'श्री' के पीछे कितने लोगों ने 'श्रीजी' छोड़ दिये। बेटा! धन सब कुछ नहीं है। पैसा सबकुछ नहीं है। उस देश में तुझे नहीं रहना है जिस देश में अरहन्त के दर्शन न हों, निर्ग्रन्थ के हाथ में दान देने को न मिले, जिस देश में कभी योगी के दर्शन न हों, जिस देश में अरहन्त की वाणी सुनने के लिये कोई गुरु का मुख न मिले, जिस देश में अरहन्त की वन्दना के लिये जिनविम्ब न हो, उस देश में अधिक समय तक नहीं रहना। पंचपरावर्तन में हमने ऐसा कोई प्रदेश नहीं छोड़ा जहाँ पर हमने भ्रमण न किया हो। हर स्थान पर भ्रमण किया है। लोगों को लगता है कि गोवा घूम आयें, काश्मीर घूम आयें। भैया! तू कहाँ घूमने की बात कर रहा है? मैंने ऐसा कोई स्थान नहीं छोड़ा जहाँ जन्म-मरण न किया हो। एक-एक प्रदेश पर जघन्य-से-जघन्य अवगाहना प्राप्त करके, उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट अवगाहना प्राप्त करके जन्ममरण किया है।

मेरे भैया! एक विलस्त भूमि के पीछे भाई से झगड़ा मत करना। माताओ। सुनो, सासु के बेटे के कान व्यर्थ में मत भरना कि तुम्हारा बड़ा भैया सब रख लेगा। शान्ति का जीवन जिओ जब जीना ही है।

पूरे देश में घूमा, वही ईंट-चूने के खण्ड पड़े हुये हैं। हँसने की भाषा, रोने की भाषा, खाने की भाषा, भोगों की भाषा सर्वत्र एक-सी है। सारे लोक की बिडम्बनायें एक-सी हैं। किसी भी भाषा का भाषी हो, चार संज्ञाओं की प्रवृत्ति ऐसी ही चल रही

है। आहार, भय, मैथुन, परिग्रह। कोई आश्चर्य नहीं करना। आश्चर्यचकित होना भी महान् दोष है। किसी विषय को आश्चर्य से देखता है तो तू पागल है क्या? क्या आश्चर्य करने का। अरहन्त भगवान् के अठारह दोष नहीं होते हैं। उन दोषों में आश्चर्य नाम का एक दोष है। क्या भवन की सुन्दरता देखूँ, क्या दुर्ग की सुन्दरता देखूँ? कोई सुन्दरता नहीं। लोक में कोई सुन्दर है तो वह एकत्व-विभक्त भगवान्-आत्मा है। उससे बढ़कर जगत् में कोई सुन्दर नहीं है। एकत्व-विभक्त निज चिद्रूप जो भगवान्-आत्मा है, वही सुन्दर है। जगत् में कोई अन्य सुन्दर नहीं है। इस चमड़ी की सुन्दरता के राग में कोटि-कोटि जीव तुमने नालियों में बहा दिये। चमड़ी को स्वच्छ कर पाओगे, शुद्ध नहीं कर पाओगे। इस सत्य को जगत् में सुनानेवाले भी मिल जायें तो पुण्य का उदय है। आज तुम उज्जवल कुल में जन्मे हो, इसलिये ये सब सुनने को मिल रहा है। ऐसे कुल में जन्मे होते जहाँ सुबह से यही कहा जाता है मारो, मारो, मारो। ऐसे भी कुल हैं जिसमें हिंसा को ही धर्म कहा जाता है। हिंसा से स्वर्ग चले जायेंगे, तो नरक जाने का मार्ग क्या होगा?

हिंसा करने से, जीवों की आहुति देने से, जीवों को खण्ड-खण्ड करने से, जीवों की बलि करने से मोक्ष मिलता होता, तो नरक जाने का मार्ग क्या होगा? कभी-कभी क्या होता है कि जितने धर्मात्मा आपको दिख रहे हैं, ये तभी तक दिखते हैं जब तक इनको कोई कर्म की विषमता नहीं आती है। कर्म का तीव्र विपाक उदय में आया, किसी ने कह दिया, बेटा! तेरे घर में ऐसा हो गया, दादा अस्वस्थ हैं, माँ बीमार हैं, जाओ, सब ठीक हो जायेगा, वहाँ पर एक जीव की बलि देकर आ जाओ। ऐसे भी लोग होते हैं जो बोट के पीछे, चुनाव के पीछे, सम्पत्ति के पीछे, स्वास्थ्य के पीछे, उत्तम वंश में जन्मे लोग भी उस क्रूरपरिणामी के कहने पर जीव की बलि चढ़ा कर आ गये। प्रश्न करो-जो माँ अस्वस्थ हुई, जो पिता अस्वस्थ हुये, मैं अस्वस्थ हुआ, शुभ कर्म के उदय से हुये या अशुभ कर्म के उदय से हुये? जब तक जैनतत्त्वविद्या को सहज भाषा में नहीं रखा जायेगा। आपने उच्च का कथन तो किया, लेकिन लोगों को समझ में नहीं आया। कहते रहे कि धर्म की भाषा कठिन है, धर्म की भाषा कठिन है, जबकि धर्म तो सरल होता है। ध्यान से सुनना माताओ! सर्वाधिक मिथ्यात्व में पटकनेवाली नारीपर्याय है; क्योंकि उनके भाव इतने नाजुक होते हैं, जरा भी बेटे के सिर में दर्द हुआ, तुरन्त पति

से बोलती है कि तुम्हें सम्यक्त्व दिखता है, इसको झड़ा-फुका कर तो लाओ। ऐसे झड़वाने-फुकवाने से गरीबी भागती हो, रोग भागते हों, तो जगत् के हास्पिटल बन्द हो जायेंगे और आयुर्वेद शास्त्र समाप्त हो जायेंगे। झड़वाने-फुकवाने से पैसा आता होता तो लोग व्यापार बन्द कर देते। ज्ञानी! जीवों को बलिदान चढ़ाने से यदि साता का उदय आता होता, तो जगत् में जितने भिखारी, कंगाल, कषाई घूम रहे हैं ये सब सम्पन्न हो जाते। पीड़ा साता के उदय से होती है, कि असाता के उदय से? तत्त्व का निर्णय करके चर्चा करो। अशुभ कर्म के उदय से गरीबी आई, कि शुभ कर्म के उदय से आयी? अशुभ कर्म के उदय से।

अशुभ कर्म का उदय किससे आता है? पूर्व में किये अशुभ कर्म से ही तो आता है। जो पूर्व में पाप किया था, उसके उदय से ही तो आया है। पूर्व में हिंसा की, व्यभिचार किये, झूठ, चोरी आदि, परिग्रह का संचय किया। इन पाँच पापों के निमित्त से ही तो अशुभ हुआ है। ज्ञानी! असाता से तो दु:ख हुआ है, पुन: जीव का घात करेगा तो इससे पुण्यास्रव होगा कि पापास्रव होगा? अभी तो मात्र धन और शरीर का ही दु:ख था, अब तू ईर्ष्या करेगा और प्राण नहीं बचे तो और दुर्गति को प्राप्त होगा। ज्ञानियो! भूल से भी भूल मत कर लेना।

पर्याय की वेदना को देख करके परिणामों को व्यथित मत कर देना। वर्तमान की पर्याय की वेदना को देखकरके भविष्य की पर्याय को अशुभ मत कर लेना। एक क्षण की पीड़ा सहन करना श्रेष्ठ है। यदि तुमको किसी का अशुभ कर्म भी दिखाई दे रहा हो, उसे देखकर तू दु:खी हो रहा है, तो उसका दु:ख नहीं, तेरा दु:ख है। किसी ने अशुभ किया और आपने देख लिया, सो आप पीड़ित हो गये। उसको भी सहन कर लेना। उसको दुनियाँ में कह करके जिनशासन की अवहेलना मत कर जाना। पापी एक है, उस पापी के कारण हम अनेक धर्मात्माओं की अवहेलना कैसे करा सकते हैं? अपन ने छोटे में बाबा भारती का पाठ पढ़ा है। बाबा भारती के पास एक सुन्दर घोड़ा था। डाकू खड्ग सिंह के परिणाम उस घोड़े को हरण करने के हो गये, परन्तु कैसे छीना जाये? उसने एक अपाहिज का भेष बनाया और जहाँ से बाबा भारती निकला करते थे उस मार्ग में जाकर गिर गया और कहता है कि मेरे से चलते नहीं बनता है, मुझे सहयोग की आवश्यकता है। करुणाशील बाबा भारती ने उसे अपने घोड़े पर बिठाल लिया और

स्वयं उतर कर चलने लगे। जैसे-ही डाकू खड्ग सिंह घोड़े पर बैठा, उसने घोड़े की लगाम खींची और घोड़े को दौड़ा दिया। बाबा भारती देखते रह गये। बाबा भारती सोचते हैं कि हो सकता है कि मेरा इतना ही संयोग होगा। जो ले गया है, वह सवारी ही तो करेगा। ऐसा सोच करके उसी मार्ग से धीरे-धीरे चल देते हैं, क्योंकि उसको उसी ओर जाना था। डाकू ने सोचा कि अब तो मैं बहुत लम्बा आ चुका हूँ, अब थोड़ा विश्राम कर लूँ । वह आम वृक्ष की मधुर मीठी छाया में जाकर लेट गया। जैसे-ही लेटा, उसकी नींद लग गई। धीरे-धीरे बाबा भारती वहीं पहुँच गये। घोड़ा सामने बंधा हुआ था, वे उसको जगाते हैं। घोड़ा तो बाबा भारती का था, वे चाहते तो उसे छोड़ कर ले जाते। ज्ञानीजीव की दृष्टि देखो-चुरा कर वह लाया है, इस समय घोड़ा उसका है। यदि मैं ही इसको छोड़ कर ले जाता हूँ तो डाकू में और मेरे में अंतर क्या होगा ? बाबा भारती उसको जगाते हैं और जगाने के बाद बाबा भारती कहते हैं भाई खड्ग सिंह! तूने मेरा घोड़ा चुराया है, कोई बात नहीं, तू घोड़ा लेजा, लेकिन इतना ध्यान रखना जीवन में, तुम किसी से यह मत कहना कि मैंने बाबा भारती का घोड़ा अपाहिज बन कर छीना है।

बोला, क्यों ?

मित्र! यदि तू ऐसा कह देगा, तो कोई भी किसी अपाहिज दु:खी पर विश्वास नहीं करेगा। तेरे राग में दुनियाँ दया से शून्य हो जायेगी।

किसी एक अभागे अज्ञानी से संयम का विघात हो गया हो, संयम की विराधना हो गई हो और आपको मालूम भी चल जाये, तब भी उसको कहना मत, क्योंकि उस की दुर्गति नियत होगी, लेकिन धर्मात्मा के भेष में अशुभ किया है यह बात दूसरे ने सुन ली तो धर्मात्मा से विश्वास हट जायेगा। वह सत्य 'सत्य' नहीं है, जिससे जिनशासन का विघात होता हो। वह सत्य 'सत्य' नहीं है जिससे सत्य-शासन पर आँच आती हो। जिनेन्द्र के शासन के अनेक नाम आये हैं। सत्य शासन भी अर्हन्त के शासन का नाम है, जैसे नमोस्तु शासन नाम है। आगम ग्रन्थ पढ़ो, कितने पर्यायवाची नाम आये हैं। अर्हन्त शासन, अनेकान्त शासन। हमारे सत्य शासन पर आँच आये, **ऐसा सत्य तो वहीं समाप्त हो चुका है जब आपने दूसरे की अवहेलना की दृष्टि से अशुभ कहने का विचार किया था।** अपने परिणामों से

मिलो, चौबीस घण्टे में कितने-कितने परिणाम होते हैं, क्या सभी को सभी से कहने जाते हो? सभी परिणामों को तू स्वयं सोचेगा तो तुझे क्या समझ में आयेगा? धर्मात्मा कितना-सा हूँ, पर्याय की छवि कितनी ऊँची है। मित्रो! ऊँची उड़ान भरने की तुमने बहुत तैयारियाँ की हैं, परन्तु मेरे मित्र। मैं इतना जानना चाहता हूँ कि तुम कितने नीचे गिरना चाहते हो, इसकी सीमा बाँध लो।

ज्ञानियो! जब कोई अभागा अपने उपद्रव को, अपने पापों को छोड़ना पसन्द ही न करता हो, अपनी अनर्गल भाषा को त्याग करने का विचार ही न आता हो, तो उससे इतना कहना- हे मित्र! तुम इतनी-सी बात बता दो-इतनी सीमा बाँध लो। आपने परिग्रह की सीमा बाँधी, बड़े व्रती कहलाने लग गये, आपने क्षेत्र की सीमा बाँधी, आप अपनी ईर्ष्या की सीमा और बता दो कि तुम ईर्ष्या में नीचे और-कितना गिर सकते हो?भवनों की तो अट्टालिकाओं में पहुँच गये, लेकिन भावनाओं के रसातल में पहुँच गये। भवनों की अट्टालिकाओं से स्वर्ग नहीं जाओगे, सिद्ध नहीं बनोगे। भावनाओं की अट्टालिकायें बनाओ तो सिद्ध बन जाओगे। भवनों के तो खण्ड-के-खण्ड बना रहे हो और भावनाओं से अधो-अधो। भावना जैसी होगी, भव वैसा होगा। भव को ऊपर-नीचे करने वाली भावना ही है। भव सुधरे, भव सुधरे, इसकी हजारों माला करने से तेरा भव सुधरने वाला नहीं है। भावना सुधार ले तो भव अपने आप सुधर जायेगा। भाव सुधार लो तो मन सुधर जायेगा। कोटि-कोटि व्रत कर लो, लेकिन अंदर में डाह है, ईर्ष्या है, स्वतंत्रता का बोध नहीं है। यह अज्ञानियों की भाषा है- कि दूसरे के दोषों को देखते रहना भी दोष है। यह योगी की भाषा नहीं है।

अञ्जन चोर निरन्जन हो गया। मृत्यु की अंतिम श्वास में भी परिणाम सुधर गये तो नियम से भव सुधर जायेगा और शुद्ध घी में जरा भी मट्ठा का कण गिर गया, मक्खन को तपाते समय मरी रह गई, तो घी सड़ जायेगा। मक्खन को तपाते समय उससे मल हटाओ। पूरा मल नहीं हट पाया, वह कहीं घी में रह गया, तो घी में सड़ांध आने लगेगी। ऐसे-ही इस जीव ने अणुव्रतों को धारण किया, महाव्रतों को धारण किया, लेकिन परिणामों में माया, मिथ्या, निदान इन त्रिशल्य की मरी रह गई, तो समाधि में दुर्गन्ध खड़ी हो जायेगी। रक्षा करो। तुझे एक-दो बार नहीं अनेक बार भी क्यों न जाना पड़े

ऐसे जीव के पास जिसकी अंतिम श्वास चल रही हो और परिणाम बिगड़ रहे हों, तो सारे तीर्थ को गौण कर देना, लेकिन उस तीर्थ की रक्षा करने जाना कि कहीं अशुभ भाव न आ जायें। आपके किसी सगे संबंधी की अंतिम श्वास चल रही हो, उस समय भाई का राग, माँ का दुलार, पिता का प्रेम, सब संबंधों को छोड़ देना। उस समय जीव मात्र को देखना। तुझे रोना आ रहा हो तो बाद में एक जगह बैठ कर खूब रो लेना, लेकिन जिस समय उसकी अंतिम श्वास चल रही हो, उस समय माँ-पिता, भाई संबंध मत देखना। उस समय इतना ध्यान रखना कि इस जीव का कल्याण हो जाये। रोकरके अपशगुन मत करना। उसके कान में णमोकार सुनाना। इतना धैर्य ले आना। यह अभ्यास आज से ही करना पड़ेगा। किसी की माँ क्यों न हो, पत्नि क्यों न हो, उसने तुम्हारा जीवन में साथ दिया है, कम-से-कम तुम उसके जीवन के अंतिम क्षणों में उसका साथ दे देना, अंतिम समय में आँख में आँसू मत डालना, उसे णमोकार मंत्र सुनाना। मैं मानता हूँ, कि राग उमड़ेगा। उस राग को बाद में बाहर प्रकट करके आ जाना, लेकिन वहाँ तो यही कहना- मेरा विकल्प मत करो, आप तो अपने पर ध्यान दो। यह तो जगत् का नियोग है कि वस्त्र जीर्ण होगा तो बदला ही जायेगा। क्षीण शरीर हुआ है, वह तो बदला जायेगा। यह मरण नहीं हो रहा है, यह तो शरीर बदल रहा है।

ध्यान दो, वस्त्र जीर्ण हो गया, वह तो बदला जायेगा, लेकिन शर्त है कि जैसा पैसा होगा, वैसा वस्त्र मिलेगा। जैसा द्रव्य होगा वैसा ही तो वस्त्र खरीद पाओगे। **जीर्ण शरीर हुआ है, वह तो बदलेगा, लेकिन जैसा भाव, वैसा अगला भव मिलेगा। मेरा जन्म, मेरा मरण किसी के हाथ में नहीं है।** हम भगवान् के मंदिर में इसलिये थोड़े-ही आते हैं कि ये हमारा जन्म-मरण सुधार देंगे। मैं इसलिये आता हूँ कि आपके चरणों में मेरा भाव सुधरता है, उससे मेरा भव सुधरेगा। मित्रों के बीच कैसे भाव होते हैं? यह है क्षेत्र का प्रभाव, द्रव्य का प्रभाव, जोकि परिणामों को बदल देते हैं। इस पर्याय में हमें अच्छी प्रज्ञा मिली है तो बोध मिला है, अतः अच्छे-से-अच्छे निमित्त खोजो, अच्छे-से-अच्छी भूमि पर बैठो, अच्छे से अच्छे लोगों के साथ रहो। ये सब छोड़ दो कि इतने लोग सुखी दिख रहे हैं। अभी आप भवन के बाहर निकलो तो कितने करोड़पति दिखेंगे, कितने रोड़पति दिखेंगे, कितने अशुभ करने पर भी धनपति दिखेंगे। अशुभ करने से धनपति नहीं हैं, इन्होंने पूर्व में जो पुण्य किये थे, उससे ये धनपति हैं। वर्तमान

में अशुभ कर रहे हैं सो इनको भविष्य में नियम से कंगाल होना है। जितने धर्मात्मा गरीब दिख रहे हैं। वे धर्मात्मापने से गरीब नहीं हैं, पूर्व में अशुभ करके आये हैं, इसलिये गरीब हैं। आज अच्छा करेंगे तो भविष्य में अच्छा प्राप्त होगा।

बहुत सारे लोग भ्रमित कर देते हैं कि देखो तुम रोज मंदिर जाते हो इसलिये तुम्हारे घर में कुछ भी नहीं है। मैं कुछ भी नहीं करता, फिर भी सबकुछ है। ज्ञानी! तेरे मंदिर नहीं जाने से सबकुछ नहीं मिला, पूर्व में तू मंदिर जा चुका है और मैं मंदिर जाने के कारण गरीब नहीं हूँ, मैंने पूर्व में मुनियों के दान में विघ्न किया होगा, धर्मात्माओं के साथ अशुभ किया होगा, उसका फल ये है। ज्ञानियो! कभी विकल्प नहीं करना। वे जीव पुण्यात्मा हैं जो बेटा स्वयं पचास-साठ साल का हो रहा है और उसके माता-पिता दोनों उसके साथ हों। वे जीव कितने अभागे हैं कि आज ही जन्म लिया, माँ की मृत्यु हो गई। ये सब अशुभ कर्म का उदय चल रहा है। पूर्व में पाप कराया होगा, सो आज वियोग को प्राप्त हो रहे हैं। माता-पिता से विहीन सन्तान! देखो, क्या संस्कार होते हैं। जब तक विवेक काम कर रहा है, स्वयं विवेक के साथ रहना और जो संयोग में आते हों, उन सबको एक ही शिक्षा देना-भैया! भोगों का काल अधिक नहीं है और इन्द्रियभोग के राग में फँस करके धर्म का वियोग मत कर लेना। **पुण्य होता है तो श्मशान में भी रक्षा करने वाले मिल जाते हैं। जीवन्धर कुमार से पूछो, श्मसान में जन्म हुआ। जब पाप का उदय आता है तो स्वयं की स्वर्णमयी लंका में भी रावण का वध हो जाता है। रावण का वध अयोध्या में नहीं हुआ, रावण का वध लंका में ही हुआ था।** बेचारे ऐसे चेहरा बना लेते हैं जैसे बिल्कुल दीक्षा की तैयारी में आ गये हों। हाँ, इच्छा हो तो दबाते क्यों हो? परन्तु यह मत सोचना कि महाराज! सभी दीक्षा ले लेंगे तो आहार कौन करायेगा?

भोजन का राग है तो भजन कैसा? भजन करेगा तो भोजन नियम से मिलेगा, चिंता मत कर, तू बनके तो देख। विश्वास रखना, जब एक जीव द्रव्यलिंग को धारण कर लेता है, तो उसको भोजन मिलने लगता है। सच्चा लिंगी बन कर विचरण करेगा तो आहार तो मिलेगा ही। बारह हजार बारह हजार, चौबीस हजार साधु रहे हों, उनकी चर्या होती थी, आज तुम टेंशन किस बात का लेते हो? ज्ञानी! आहार मिलेगा कि नहीं,

लोग ये सोचें कि महाराज! सभी साधु बन जायेंगे फिर क्या होगा? भैया ! बन कर तो देखो। इतना सरल नहीं है। भिखारी बन जाओगे, साधु नहीं बन पाओगे। उज्जैन में सर्वाधिक भिखारी हैं, उनकी बाकायदा कमेटी है। मैंने भिखारी को भी भीख देते देखा है। जैसे आप किसी की दुकान के उद्घाटन में जाते हो तो स्वयं सामान खरीद लेते हो। ओपनिंग कराने गये तो कुछ-न-कुछ खरीदते हो, ऐसे-ही वहाँ सुबह-सुबह से भिखारी चल देते हैं, सामने कोई आ रहा है, वह भिखारी अपनी जेब से उसको सिक्का देता है। भिखारी भिखारी की बोहनी करवा रहा है।

निर्ग्रन्थ वीतरागी तपोधन जब चर्या को निकलते हैं, बेचारे गृहस्थ इंतजार करते हैं कि स्वामी! पधारो। वे देख रहे कि इनके लिये सेठ खड़े हैं, स्वामी! पधारो, तब भी किसी भिखारी के भाव नहीं बनते कि मैं दिगम्बर मुनि बन जाऊँ, क्योंकि मात्र कपड़े उतारना मुनिपना नहीं है। अशुभ भावों को उतारना मुनिपना है। भीख माँग कर खा लेना सरल है, लेकिन दिगम्बर मुनि बन कर, अंजुली लगा कर निकल पाना बहुत कठिन है। लोक में अरहन्त के बाद कोई है तो आचार्य, उपाध्याय, साधु। परमात्मा के बाद साधुओं के नाम आते हैं। लोग कितने सम्मान के साथ इनकी आराधना करते हैं, माला फेरते हैं, णमो लोए सव्व साहूणं, णमो उवज्झायाणं, णमो आइरियाणं। सभी के नाम से लोग माला फेर रहे हैं। इतना पुण्य सभी का नहीं है जो भिखारीपन छोड़ करके भिक्षु बन पायें। भिक्षु यानि दिगम्बर मुनि। दिगम्बर मुनि बनना इतना सरल नहीं है, नहीं-तो गली-गली में ढेर मिलते और बाजार में घूमते मिलते। यदि मुनि दो बार आहार लेने लग गये, तो ये नमोऽस्तु-2 करना बंद हो जायेगा। यह बिस्कुट खाने वालों का मार्ग नहीं है। यह मटकों में रखकर पानी पीने वालों का मार्ग नहीं है। यह होटलों पर खड़े होने का मार्ग नहीं है, यह वीतराग मार्ग है, यह गोचरी वृत्ति है, मधुकर वृत्ति है, यह गर्तपूर्ण वृत्ति है, यह निर्ग्रन्थों का मार्ग है।

तुम्हें महाराज कितने अच्छे लगते हैं? और कोई अजैन बन्धु तुम्हारे महाराज की प्रशंसा कर रहा हो तो..... ? कोई चर्या कर रहे थे कि एक वैष्णव विद्वान् साधुओं की व्याख्या कर रहे थे, भगवत्गीता में ऋषभदेव का वर्णन कर रहे थे। उन्होंने बिना दरिद्रता के स्पष्ट बोला-तपस्या देखना हो तो जैनसाधुओं की देखो। उनके तन पर एक धागा नहीं होता है, मन में विकार का कण नहीं होता है। यह दिगम्बरों की साधना है। जब कोई अजैन बंधु निर्ग्रन्थों की चर्चा करता है, तो विश्वास रखो, इन भक्तजनों का

मन-मयूर नाच उठता है। दुनियाँ में बहुत व्यवस्थायें चल रही हैं, यहाँ एक ऐसी व्यवस्था कर लो कि कोई निर्ग्रन्थ अध्ययन करना चाहे तो उसको सुविधा मिलजाये। आपके यहाँ तो संस्थान हैं, कितने ग्रन्थालय हैं। वे ग्रन्थालय ग्रन्थों के लिये रखे रहे, तो क्या लाभ ? निर्ग्रन्थ यहाँ आकर स्वाध्याय करें, ऐसी व्यवस्था बनाओ। यदि आपने एक साधु पढ़ा लिया। तो कितनों को लाभ मिलेगा। टीकमगढ़ में आचार्य विरागसागर जी, जब मैं क्षुल्लक था, मुझे पढ़ा रहे थे। उसी क्षण एक बहुत ऊँचे विद्वान् पधार गये। वे पूछते हैं, महाराज जी! आप ये क्या कर रहे हो ?

अकबर ने बीरबल से पूछा-विश्व में सर्वाधिक संख्या किसकी है ? उसने बोल दिया- सबसे अधिक संख्या तो अंधों की है। क्या प्रमाण ? मैं सूची दे दूँगा।

वीरबल ने क्या किया-जहाँ सुबह-सुबह सब लोग घूमने जाते थे वहाँ जूते लेकर के पॉलिस करना प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहले बादशाह निकला। वीरबल ने एक नौकर रख लिया था कि कोई पूछे 'क्या कर रहे हो ?' तो उसका नाम अन्धों में लिख देना। ठीक है। बादशाह ने जैसे-ही पूछा 'तुम यहाँ क्या कर रहे हो ?' वीरबल बोला, लिख दो अंधों में। जो-जो पूछे, सबका नाम अंधों में लिखवा दिया। दूसरे दिन सभा लगी, सूची दिखाई गई। सबसे पहले अकबर का नाम लिखा हुआ था। पूछा गया-ऐसा क्यों ? उत्तर मिला—मैंने कहा था कि सर्वाधिक अन्धे लोग हैं, आपको विश्वास नहीं था। जब मैं जूते पर पॉलिस कर ही रहा था, तब आपको पूछने की क्या आवश्यकता थी ? क्या आपको दिख नहीं रहा था सो आप पूछ रहे थे ? सो संसार में अन्धों की संख्या सर्वाधिक है। यानि विवेकविहीन अन्धे। आँखों के अन्धे तो कम हैं।

पण्डित जी से महाराज जी बोले- मैं क्षुल्लक जी को 'रत्नकरण्डक' पढ़ा रहा हूँ। पण्डित जी तुरन्त बोले, क्या महाराज जी! आप भी एक क्षुल्लक के पीछे समय बरबाद कर रहे हो। उस समय आचार्यश्री ने कितने सुन्दर शब्द का प्रयोग किया-पण्डित जी आपको लगता है कि मैं समय बरबाद कर रहा हूँ, परन्तु आपको ज्ञात होना चाहिये कि जिस देश में एक साधु ज्ञानी बन जाता है, उस देश में लाखों ज्ञानी बन जाते हैं। इसलिये मेरा समाज से कहना है कि ऐसी व्यवस्था करो कि देश के निर्ग्रन्थ आयें और यहाँ अध्ययन करके पूरे विश्व में जाकर नमोऽस्तु शासन को जयवन्त करें। ग्रन्थ रखे हैं, निर्ग्रन्थ

आये और चले गये, चाभी ही नहीं मिल रही है।

लोगों को लगे कि हमारे साधु भी पढ़ते हैं। भिलाई वाले पाटनी जी हैं। उस व्यक्ति के उपकार को कैसे भूल पायें? एक विद्वान् रायपुर से आता है, उनकी गाड़ी जाती है लेने के लिये। मुझे तो पता ही नहीं कि क्या लिया, क्या दिया? मुझे व्याकरण पढ़नी थी, पाटनी जी ने पूरी व्यवस्था की। आज आप मुस्करा रहे हो। पाटनी जी एक दिन मेरा चेहरा देख लिये कि महाराज चिन्तित दिख रहे हैं। मैंने कहा-ऐसी बात है कि पण्डित जी हैं रायपुर में और चातुर्मास का आदेश आ गया भिलाई में। मेरे अंदर एक लोभ बैठा हुआ है कि यदि रायपुर में चातुर्मास होता तो पण्डित जी से चार माह अध्ययन करता। बोले, महाराज! छोटी-सी बात। आप चाहे रायपुर करो, चाहे भिलाई करो, आपको पण्डित जी वहीं पढ़ाने आयेंगे। सोचो, यदि कोई भी साधु अध्ययन करना चाहे तो कोटि-कोटि की बोलियाँ लगाओ या मत लगाओ, लेकिन साधु का अध्ययन जरूर करवाना।

हमारा एक साधु, एक त्यागी-व्रती सम्यक् तत्त्व का ज्ञाता बन गया तो अनेकों को सम्यक् का बोध करा देगा। पण्डित पन्नालाल साहित्याचार्य की जो माँ थी, बहुत गरीब थी। जब अपने बेटे को पढ़ाने सागर आयीं, तो मटके में जरा-सा आटा लेकर आयीं थीं। वर्णी जी ने देख लिया। बोले, माँ। क्या है? माँ बोली, कि गरीब हालत है, इतना-सा आटा है। उनको वर्णी जी ने रख लिया, तो सागर के एक सेठ बोल पड़े-बाबा जी! आपको कुछ नहीं है, इसका भार कौन ढोयेगा? तुम सब बच्चों को इकट्ठा करते जा रहे हो। उस समय वर्णी जी ने कहा कि सुनो-ये बालक जिस दिन विद्वान् बन जायेगा, तब पूरा राष्ट्र मुस्कुरायेगा। कहेगा मैंने भार ढोया है कि भार उतारा है? वही बालक जब साहित्य में राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया तो वही सेठ जी वर्णी जी से कहते हैं- इस बच्चे ने तो पूरी समाज को ऊपर उठा दिया। मेरा युवाओं और बच्चों से कहना है- ये इंजीनियरिंग आदि कर रहे सो ठीक है। संसार में जन्म लेकर मर जाना, चले जाना कोई बड़ी बात नहीं है, लेकिन जिनशासन के लिये कुछ ऐसा करके जाना जिससे सदियों तक तेरा नाम रहे कि भगवान् अरहन्त के शासन के लिये उन्होंने ऐसा काम किया था। तुम देश में रहो या विदेश में रहो, यदि तुम कुछ भी न कर सको, विदेश में जाकरके

छन्ना लगाकर रहेगा, जहाँ अच्छी भीड़ हो, वहीं छन्ना लगाकर पानी पीना, तो लोग अपने आप समझ जायेंगे कि ये जैन श्रावक है। जिनशासन को यदि इतना भी नहीं दिखा सका, तो तूने क्या किया? तूने साधुओं के बहुत विहार कराये, अब ऐसी भावना भाना कि कमण्डलु पकड़ते-पकड़ते पिच्छि भी मिल जाये।

एक क्षण को पूरी सभा सजल हो रही थी। ये जो सजलता का समय था, यदि इस काल में आयुबंध हो गया, तो नियम से उत्कृष्ट गति का ही बन्ध होगा। यही तो आत्म आह्लाद है, आत्मप्रसाद है, यही तो आत्मा की विशुद्धि है।

यहाँ पर आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि कितनी भी दारुण कामविषय की दाह हो, लेकिन जैसे-ही जीव अपना उपयोग ज्ञान में लगाता है, श्रुत में लगाता है, तो अशुभ भाव परिवर्तित होते हैं। कैसे? जैसे मंत्रपदों का उच्चारण करने मात्र से विष की वेदना शान्त होने लगती है, ऐसे-ही तत्त्व का चिन्तवन करने से काम के विष की वेदना दूर हो जाती है। ऐसे-ऐसे अज्ञानी इस भूमि पर हो गये, जिन्होंने भोगों से समाधि घोषित कर दी, असंयम से समाधि घोषित कर दी और यूँ कहा कि भोगो, भोगो, अपने आप शान्ति हो जायेगी। ज्ञानी ! शान्ति नहीं होगी। थक गया है, जय नहीं हुआ है। यदि तू उपशमन चाहता है, तो यह बताओ कि ईंधन डालने से कभी अग्नि शान्त होती है? ईंधन डालेगा तो लगेगा कि अग्नि बुझ गई, लेकिन अग्नि और दहकती है। ऐसे-ही जितना काम सेवन करेगा, उतनी ही वासनायें तीव्र होती हैं और जैसे-जैसे सेवन कम कर देगा, छोड़ देगा, विश्वास रखो, अपने आप कामकषाय शान्त हो जायेगी।

नदियों के प्रवेश करने से समुद्र शान्त होगा क्या? वृद्धि को ही प्राप्त होता है। ऐसे ही विषयसेवन करने से कषाय वृद्धि को प्राप्त होती है। जो विषय सेवन नहीं करेगा, उसकी कषाय शान्त हो जायेगी।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"काम शमन के उपाय"

उपवासोऽवमौदर्यं रसानां त्यजनं तथा।
अस्नान-सेवनं चैव ताम्बूलस्य च वर्जनम्।। (115)
असेवेच्छानिरोधस्तु निरनुस्मरणं तथा।
एते हि निर्जरोपाया मदनस्य महारिपोः।। (116)

अन्वयार्थ—उपवासः = खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार प्रकार का आहार छोड़कर उपवास करना **अवमौदर्यं** = भरपेट न खाकर कम खाना, **रसानां त्यजनं** = दूध, दही, घी, मीठा, तेल, नमक इन छः रसों का या उन में से कुछ रसों का त्यागना और स्वाद की कामनारहित भोजन करना **चैव ताम्बूलस्य च वर्जनम्** = पानों को नहीं खाना। **तथा अस्नानसेवनम्** = तथा स्नान विलेपनादि नहीं करना।

असेवा = काम-भावपूर्वक स्त्रियों की सेवा नहीं करना, **इच्छानिरोधः** = अपनी उठी हुई इच्छा को रोकना, **तथा तु निरनुस्मरणं** = तथा कामसेवन का बारबार स्मरण नहीं करना, **एते हि** = ये ही, **मदनस्य महारिपोः** = काम के महान् शत्रु हैं और **निर्जरोपाया** = निर्जरा के उपाय हैं।

भावार्थ - उपवास, अवमौदर्य, रसों का त्याग, स्नान नहीं करना, ताम्बूल खाने का त्याग करना, कामभावपूर्वक स्त्रियों की सेवा नहीं करना, इच्छाओं का निरोध करना और कामभोग का बार-बार स्मरण नहीं करना, ये ही कामरूपी महाशत्रु के निर्जरा के उपाय हैं।

।। सद्-देशना।।

हम सभी अंतिम तीर्थंकर भगवान् वर्द्धमान् महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की देशना मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

जयवंत हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी में परमब्रह्म की प्राप्ति के मार्ग को उपदिष्टित कर रहे हैं। वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है। यदि जीव अशुभ पुरुषार्थ न

करे, तो शुभ पुरुषार्थ करने की भी आवश्यकता नहीं है। अशुभ पुरुषार्थ करना छोड़ दो। आप से शुभ पुरुषार्थ नहीं होता है तो कोई विकल्प मत करो। शुभ करने के लिये मेहनत लगेगी तो आप शुभ मत करो, लेकिन अशुभ करना बंद कर दो। जितने प्रकार के अशुभ पुरुषार्थ हैं-अर्थ और काम, इन दो पुरुषार्थों का त्याग कर दो। यदि तू अर्थ और काम पुरुषार्थ का विसर्जन कर देगा, तो धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ स्वयमेव खड़ा हो जायेगा। आप किसी को स्थान देना नहीं चाहते हो तो मत दीजिये, क्योंकि आपका हृदय इतना संकुचित हो चुका है कि आप किसी को स्थान देना पसंद नहीं करते हो, तो कम-से-कम ऐसा कर दो कि आप इस भूमि से कुछ दिन के लिये सम्मेदशिखर की यात्रा करने चले जाओ। जीव को मालूम रहता है कि मैं जाऊँगा तो स्थान खाली हो ही जायेगा, लेकिन कषाय 'खाली कर रहा हूँ' ऐसा कहने नहीं देती।

गंभीर रहस्य को समझिये। आपको भी मालूम है, हमें भी मालूम है कि इस पर्याय से दूर होऊँगा, मैं इस देह को छोडूँगा और छोड़ना ही पड़ेगी, हर समय यहाँ नहीं रह पाऊँगा, यहाँ से विहार करना ही होगा। हे ज्ञानी! आपको इस नगर से जाना होगा, यह नियत है। नियत होने पर भी अज्ञानी कह नहीं पाता कि मैं इसे छोड़ता हूँ। यदि कहकर छोड़ेगा तो समाधिमरण होगा और बिना कहे छोड़ेगा तो कुमरण होगा। छोड़ना तो पड़ेगा। चाहे तुम सम्राट हो, चाहे तुम सेठ हो, चाहे तुम साधु हो, आप किसी पद पर रह नहीं पायेंगे, आपको जाना ही पड़ेगा, लेकिन अंतर इतना है कि जाने के पहले कह पाना बहुत बड़ा पुरुषार्थ है कि मैं छोड़ रहा हूँ। अंतिम श्वास के निकलने के पहले भी जीव नहीं कह पाता कि मैं अपना आचार्यपद छोड़ रहा हूँ। अंतिम श्वास के निकलते-निकलते भी पिता नहीं कह पाता कि बेटे! मैंने तुझे पूरी सम्पत्ति दी। जबकि विश्वास मानना, पूरी सम्पत्ति बेटे के ही हाथ में आयेगी जब तेरी मृत्यु हो जायेगी। अभी तू अपने मुख से एक कमरा देना पसंद नहीं कर रहा है।

अभी दो वर्ष में तो आपको बड़े अलौकिक दृश्य देखने को मिले-देश के जितने क्रीम-क्रीम थे, वे ऊपर चले गये। जब सबकी तिजोरियाँ टूटी, खजाने खुले, तो क्या-क्या नहीं निकला? जो महात्मा के नाम से जाने जाते थे, उनके खजाने खुले तो अपार धन निकला है, अरबों खरबों की सम्पत्ति निकली है। मात्र राग ही कर पाये, ले

क्या जा पाये ? मात्र राग कर पाओगे, ले कुछ भी नहीं जा पाओगे, मर ही जाओगे। राग ही कर पाये, ले क्या जा पाये ? भोग भी तो नहीं कर पाये। **व्यक्ति को जितना भोगने में आनंद नहीं आता, उतना व्यक्ति को रखने में आनंद आता है। ऐसे तीव्र कषायी लोग मिल जायेंगे जो कि भरपेट भोजन नहीं करेंगे, लेकिन पेटी अवश्य भरेंगे।** बेटा यदि कहे, पिता जी ! मेरे भाव सोने के कलश से भगवान् के अभिषेक करने के हो रहे हैं, तो पिता कहेगा, अरे बेटा! स्टील के कलश से ही कर ले। भले ही बाद में बेटा पूरा सोना अपने हाथ में ले लेगा, लेकिन मुँह से कहना बड़ा कठिन है। जबकि आपको प्रसन्न होकर कहना चाहिये 'चलो, बेटा! धन्य हो। मेरा कुल धन्य है, मेरी पर्याय धन्य है कि तू मेरे घर में ऐसा बेटा हुआ जो यूँ कह रहा है कि मुझे सोने के कलश से भगवान् का अभिषेक करना है। वहीं कोई पापी होता तो वह यूँ कहता कि पिता जी! मैं बॉटल लेने जा रहा हूँ मदिरालय की ओर।' आप क्या कर पाओगे ? **चाहे पिता हो, चाहे सम्राट हो, अनुशासन उन्हीं पर चलता है जो अनुशासित लोग होते हैं। यह भूल मत कर लेना कि मेरी चलती है। अनुशानहीनों पर किसी का अनुशासन नहीं चलता।** जिनका पुत्र कहे कि मुझे अभिषेक करना है, निर्ग्रन्थ को दान देना है, जिनवाणी का पान करना है, भले ही दुकान बन्द हो जाये, लेकिन उस बेटे को मना मत करना। इस बात पर प्रसन्न होना, आज मुझे खुशी है कि मेरी कुलपरम्परा मृत्यु को प्राप्त नहीं हो पायेगी। जिनके बेटे माँ से कहें कि मुझे धोती-दुपट्टा पहनकर महाराज को आहार देना है, वे मातायें एक माला फेरती हों तो आज पाँच माला फेर लेना, मुझे इस बात की खुशी है कि मेरी परम्परा जीवन्त रहेगी कि मेरा बेटा आहार देने को मचल रहा है। ऐसी सन्तानें उसके घर में ही जन्म लेती हैं जिनके कामपुरुषार्थ के काल में भी णमोकार गूँज रहा था। जो मैं कह रहा हूँ, वह असम्भव मत समझना। जीव कषाय को नहीं रोक पाता, परन्तु कषाय पर पश्चाताप अवश्य करता है यदि किञ्चित् भी धर्मात्मा है तो। हाय! मैंने अच्छा नहीं किया। यदि तू कषाय पर भी पश्चाताप करता रहा, तो मुझे विश्वास है कि वह नियम से कभी-न-कभी कषाय को दूर भी कर लेगा। वे अज्ञानी जीव हैं जो कषाय करके भी प्रमुदित हो रहे हैं। कि आ हा हा..! मैंने आज एक करोड़ कमाये। ज्ञानी ! क्यों परिग्रह में आनन्द लूट रहा है? एक धागा लेकर नहीं जायेगा, परन्तु 'मैं छोड़ता हूँ' इस शब्द को बोलना बहुत कठिन है। जबकि मुझे मालूम

है कि जब आँख बंद होगी तब मेरे साथ आँख भी नहीं जायेगी। जिस आँख से तुमने अनेक शुभाशुभ दृश्य देखे हैं, वह आँख भी साथ नहीं जायेगी। शुभ दृश्य देखकर शुभ परिणाम किये हैं तो वे शुभरूप फलित होंगे और अशुभ देखकर अशुभ भाव किये हैं तो वे अशुभरूप फलित होंगे। ज्ञानी! जिस आँख से तुमने जगत् को देखा है, वह आँख भी जाते समय तुझे देख नहीं पायेगी, पहले ही बंद हो जायेगी। तेरे जाते को तेरी आँख भी नहीं देख पायेगी। बड़ी-बड़ी साधना करना सरल है, पर 'मैं छोड़ता हूँ' इसको कहना कठिन है। यह कौन-सी शक्ति है? डॉक्टर नाड़ी देख कर बता रहा है कि बस, नजदीक है। रिष्ट कह रहा है कि नाक टेड़ी हो चुकी है, कान टेड़ा हो चुका है, शरीर ठण्डा हो चुका है। शरीर ठण्डा होने लगा, लेकिन इच्छायें ठण्डी नहीं हो रही हैं, शान्त नहीं हो रही हैं। तब भी प्रबल कषाय है। कोई समझदार कहता है भैया! अब तुम जानेवाले हो, जिसको देना हो उसका नाम बोल दो। तब भी इतनी ईर्ष्या रहती है कि मेरे जाने के बाद जो कुछ हो, सो तुम जानो, लेकिन मैं अपने मुख से नहीं कह सकता कि मैं इनको देता हूँ। इनको नहीं देते हो तो कोई बात नहीं है, तो जिनमंदिर को दे दो। (हाथ हिलाता है कि नहीं)। ज्ञानियो! जो मैं कह रहा हूँ, वह दूसरे के लिये मत सुनना। आज से ही इन परिणामों को स्वयं के अंदर नापना है। घर में कपड़े सड़ रहे हैं, सामग्रियाँ सड़ रही हैं, पर कोई गरीब कहे कि मुझे दे दो, तो नहीं दे पाता। ये कौन-सी शक्ति काम कर रही है, जो किसी को देने के लिये 'हाँ' नहीं कह पा रहा है?

क्यों माताओ! कितनी सारी सामग्री तुम्हारे घर में रोज फिकती होगी, परन्तु फिकने के पहले तुम किसी को देने के भाव नहीं ला पाते हो। ऐसे लोग मिल जायेंगे। रोटियाँ खराब हो जायेंगी तो घर के द्वार पर तो छोड़ सकता है, परन्तु एक घण्टे पहले किसी व्यक्ति को बुला कर खिला नहीं सकता है। ये किसी दूसरे पुरुष का विषय नहीं चल रहा है, तू स्वयं पुरुष है, उस पुरुष का असम्यक् पुरुषार्थ कैसा चल रहा है? उसकी खोज करो। आश्चर्य होता है कि लोग कहते हैं-सामायिक में क्या करूँ? अरे भाई! भगवान् का नाम तो अनन्त बार लिया है, परन्तु अपने भीतर के भगवान् का निर्णय नहीं कर सका। भगवान् के नाम का ही तो फल है कि आज पंचमकाल में मनुष्य बन कर बैठे हो। आप अन्यथा मत समझना। मायाचारी, छल-कपट के साथ भगवान् का नाम लिया था, सो पंचमकाल का मनुष्य बन गया। यदि महावीर स्वामी के सामने तू

पाप-पुण्य दोनों को भूल गया होता और दोनों से रहित हो गया होता, न पाप का नाम लेता न भगवान् का नाम लेता, निजनाथ में लीन हो जाता, तो तू आज यहाँ न मिलता, तू भी सिद्धालय में ही होता। संसार का भ्रमण है। भाषा को समझना, नहीं-तो उलझ जाओगे।

बहुत कठिन है छोड़ पाना। छूट जाना बहुत सरल है, परन्तु छोड़ पाना बहुत कठिन है। ऐसे जीव को मैंने आँखों से देखा है जिसकी एक घण्टे बाद मृत्यु निश्चित है और एक घण्टे पूर्व उसको समझाया जा रहा है कि भाई! आलोचना कर लो, गर्हा कर लो, सब कुछछोड़ दो। वह जीव मुख से कहता है, 'क्या मैं मर रहा हूँ ? तुम ही कर लो, तुम ही छोड़ दो सब' मैं बगल में खड़ा था कि भैया! ये सब छोड़ दो। ये विकल्प, पंथ/आम्नाय के राग छोड़ो। वह जीव कह रहा था, 'मैं थोड़े-ही मर रहा हूँ जो छोड़ दूँ।' चला गया। मित्रो! इससे बड़ी कोई मित्रता नहीं होगी। चौबीस घण्टे में सिर्फ पाँच मिनिट अपने लिये ऐसे निकालने लग जाओ कि उस समय में न कोई पर आये, न परामात्मा आये। पर वहाँ तक पहुँचना कठिन है। लेकिन आप निर्णय करो। जब मैं यह कह रहा हूँ कि परमात्मा भी न आये, तब समझना कि सूक्ष्म विषय होगा। इतना बस। अपने जीवन को पाँच मिनिट का समय दे दो जिसमें परज्ञेय तेरे में प्रवेश न करे। तेरा चिन्तन चलता है, कि ज्ञान में कोई विषय आ रहा है। जब परमात्मा नहीं आना चाहिये, तो पाँच पाप कैसे लाओगे ? पाँच पापों को तो आने मत देना और परमात्मा से भी थोड़ा भिन्न होकर बैठना। उस समय आत्मा मात्र को देखना। मैंने जो जोड़ कर रखा है, मैं जिनसे जुड़ा हूँ, वे मेरे से जुड़े हैं क्या ? मैं किस-किस को लेकर जाऊँगा ? मेरे साथ कौन-कौन जायेंगे ? और जो तुम्हारे सामने जा चुके हैं, उनको जरूर सामने लाना कि हमारे वे संबंधी तो चले गये हैं, जाने पर वे क्या लेकर गये हैं ? यह काम आज ही करना है, कल के लिये नहीं छोड़ना है। छोड़ना सीखो, छोड़ने के संस्कार डालो। यदि एक रुपया रिक्शावाले के पास ज्यादा चला गया तो शान्त होना सीखो। करोड़ों का सामान रोड़ पर छोड़ देता है, लेकिन एक नोट के पीछे रिक्शेवाले को पकड़ने दौड़ता है। ऐसा नहीं है क्या ? हे अभागे ! तुझे मालूम होना चाहिये था, कि जितनी तेजी से तू दौड़ा था, उतने जीव मर चुके थे, उतना आयुकर्म नष्ट हो चुका था और नोट-नोट चिल्ला रहा था। उतने में ही कहीं धक्का लग जाता तो परिग्रह के राग में तू ऊपर चला गया होता

पूरा-का-पूरा बैग ही कोई उठा ले जाये, तो एक नोट क्या करेगा ? छोड़ना सीखो, बहुत दिन हो गये पकड़े-पकड़े। तुझे कोई नहीं पकड़े है। सत्य है। तू ही पकड़े है। आज घर जाकर आप वही नहीं दिखना चाहिये जो-जो आप कल थे। छोड़ना सीखो। आप सोच रहे हो कि महाराज ! आप बोल रहे हो। यथार्थ बताऊँ, मैं बोल नहीं रहा हूँ, बोलने वाले से बोल रहा हूँ कि छोड़ना सीखो। शुभ करने में तुम्हें परेशानी है, तो कोई बात नहीं, अशुभ छोड़ दो। यदि तुम रात्रिभोजन नहीं छोड़ पा रहे तो टेंशन मत लो, दिन में खाना सीखो। यदि आपको रात्रिभोजन त्याग में परेशानी है तो कोई बात नहीं, लेकिन जब भी भोजन करना, दिन में करना। ऐसा नियम तो ले सकता है। मत छोड़ो पाप, परन्तु अपना पुरुषार्थ पुण्य में ही करना, पाप में नहीं करना।

हे ज्ञानी ! हजारों तीर्थों को पैदल कर लेना सरल है, परन्तु घर के द्रव्य को हाथ में लेकरके किसी के हाथ में देने के लिये चल पाना, बहुत दूर है। दु:ख मात्र इस बात का है कि हमने छोड़ना नहीं सीखा। बिना ग्रहण किये लम्बे समय तक जी सकते हो, परन्तु बिना छोड़े नहीं जी सकते हो। जिसे तुम दिनभर ग्रहण करते हो, सुबह छोड़ने ही तो जाते हो। उसे क्यों छोड़ते हो ? सुन्दर-से-सुन्दर पकवान सामग्री तूने रखी थी, कितनी सुन्दर मिठाइयाँ रखी थीं, इतने कीमती द्रव्य को तू गटर में छोड़ कर आ गया। उठा कर लाओ। बिना छोड़े कल्याण नहीं हो सकता। बिना छोड़े जी नहीं सकता है, बिना छोड़े मोक्ष भी नहीं हो सकता है। छोड़ना तो पड़ेगा। कितना ही जोड़ कर रख लो, लेकिन छोड़ना पड़ेगा।

जिसे छोड़ना है, बुद्धिपूर्वक छोड़ दो तो त्यागी कहलाओगे और छूट जायेगा तो परिग्रह में लिप्त हो करके दुर्गति का पात्र बनेगा। संकुचन का समय आ चुका है। 50 से ऊपर विस्तार नहीं होता, संकुचन होता है। जिसको जितने जल्दी जाना होता है, उतना संकुचन प्रारम्भ हो जाता है। जब शरीर अपनी तैयारी करने लग गया है, भोजन कम हो गया, निद्रा कम हो गई, शरीर ने अपना संकोच प्रारम्भ करना प्रारम्भ कर दिया है, तो उसके साथ तू कषाय का संकोच प्रारम्भ कर ले, तो समाधिमरण हो जाये। शरीर संकुचित हो रहा है और इच्छायें विस्तार को प्राप्त हो रही हैं, इसका अनुमान लगाओ। यह विराट नरक के पटल की तैयारी में लवलीन है। जीव की जो गति नियत हो जाती है, उस जीव की वैसी मति प्रारम्भ हो जाती है। जैसी गति का बन्ध हो चुका है उस जीव

की वैसी-वैसी मति प्रारम्भ हो जाती है।

आयुर्वेद शास्त्र में देखना- जिस जीव को जो रोग होना होता है, तद्रूप उसके शरीर के हावभाव प्रारम्भ हो जाते हैं। जिसको टी.बी. का रोग है , वह जीव बैठेगा तो सिर पर हाथ रखेगा और जैसे शौच करने जीव बैठता है, वैसे हर समय बैठता है। जिसके शरीर में वात हो गया है, उसकी जीभ कभी साफ शान्त हो ही नहीं सकती। पैर के तलवे भी साफ नहीं होंगे। सोते-सोते बड़बड़ाता है। **जो बड़ों से लड़ता है, जो ज्येष्ठों का अविनय करता है, झगड़ा करता है, उसको वात का रोग तो नियत मान कर चलना, कि होना ही है। गैस के रोग उनको सर्वाधिक होंगे जो दूसरों से बड़ों से लड़ते हैं । प्रश्न करो, ऐसा क्यों? पुण्य क्षीण है आपका। बड़ों से झगड़ रहे हो, जीत पा नहीं रहे हो, सो टेंशन होगा। टेंशन से पाचनशक्ति मंद पड़ जायेगी। पाचनशक्ति मंद पड़ जायेगी, सो गैस बनेगी। गैस बनेगी, सो मस्तिष्क में जायेगी। मस्तिष्क में जायेगी, तो पागल होगा। पागल होगा, सो आत्महत्या करके मर जायेगा।** इन बातों को ध्यान से सुनो और जीवन में निहारो, ऐसा ही है। कोई व्यक्ति इतना बड़ा निर्णय लेले कि मैं मर जाऊँ, उसकी कब तक की तैयारियाँ होंगी ? जब तक बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती, तब तक कोई भी जीव आत्महत्या का विचार नहीं करता। जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, मस्तिष्क में वायु भर चुकी होती है, वह अशुभ करने के लिये तैयार हो जायेगा। चाहे स्वयं का घात करे, चाहे पर का घात करे, सब वायुपीड़ित लोग हैं। मैं किसी से नहीं कह रहा कि नियम लो, लेकिन इतना ध्यान रखो कि मन में कायोत्सर्ग कर लो कि हे भगवन्! मैं किसी व्यक्ति से बैर धारण न करूँ।

निर्दयी बुद्धि। वह प्रज्ञा निर्दयी है। प्रज्ञा की निर्दयता ही मेरा नाश कर रही है। मेरी बुद्धि यानी स्वयं की बुद्धि यदि पापों में जा रही है, यही निर्दयी बुद्धि है। इस बुद्धि को तेरे ऊपर भी दया नहीं है। भैया! जब-जब तुम्हारे अशुभ परिणाम आयें, तब धीरे-से कहना 'अहो निर्दयी प्रज्ञा ! तू क्या कराने जा रही है?' चाहे किसी के प्रति राग उमड़े, चाहे किसी के प्रति द्वेष उमड़े, चाहे मोह उमड़े, उस समय अपनी प्रज्ञा से कहना 'अहो निर्दयी प्रज्ञा! ये तू क्या कर रही है?' वही प्रज्ञा दयावन्त है, प्रज्ञावन्त है, जिस प्रज्ञा में परमात्मा का नाम आता हो और पाँच पाप से दूर होने के परिणाम होते हों। वही प्रज्ञा दयावान है। जो प्रज्ञा पापों में जा रही है, वह निर्दयी प्रज्ञा है। पर की बुद्धि से तो कोई

पाप करता ही नहीं है। ये तो बहाने हैं बचने के। जैसे ईश्वरवादी कहता है कि जो कुछ होता है, वह भगवान् की मर्जी से होता है। मजा स्वयं लूटता है और मर्जी भगवान् की कहता है। अज्ञानी निश्चयाभासी कहता है कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, यह तो पर्याय का परिणमन चल रहा है। सब मिथ्यादृष्टि लोग हैं। ये निमित्ताधीन- स्वयं तो लड्डू खा कर आ गया और कहता है कि मेरा कोई दोष नहीं है, ये लड्डू न होता तो मैं क्यों खाता? अरे अभागे! तेरी इच्छा न होती तो लड्डू थोड़े-ही कहते हैं कि मुझे खा जाओ। यह दुर्बुद्धियों की बुद्धि है। निर्दयी है, तो तेरी ही बुद्धि है। पर की बुद्धि तेरी निर्दयता का कोई कारण नहीं है। किसी ने निर्दयता का व्यवहार किया, तो विश्वास रखना, भारतभूमि अभी भी इतनी पवित्र है कि कोई किसी को पीट रहा होगा तो तुरन्त बचानेवाला मिल जायेगा। भले ही पिटनेवाला दोषी हो, लेकिन तब भी भारत की भूमि में इतनी संवेदनायें हैं कि बचाने के लिये तुरन्त खड़े होते हैं। ध्यान दो, पर के हाथों के द्वारा किसी का घात हो रहा होगा, उसे बचानेवाला मिल जायेगा; पर तेरी बुद्धि की निर्दयता से तेरे भावों का घात हो रहा होगा तो उसे कोई बचानेवाला नहीं मिलेगा। ये विषयसेवन, ये कामवासनायें पर के हाथों से तेरी रक्षा करनेवाली नहीं है। तेरी बुद्धि की निर्दयता से तुझे उधर ले जायेंगी, लेकिन तेरी बुद्धि पवित्र होगी तो तुझे बचा लेगी।

आचार्य कुलभद्र स्वामी विषयवासनाओं से बचने का उपाय बता रहे हैं। यदि उपाय बताने के बाद भी कोई न समझ पाये, तो कहना कि मेरी पक्की निर्दयता प्रज्ञा की है। आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि तुम पापों से कैसे बच सकते हो? यह बड़े वैज्ञानिक तरीके से बता रहे हैं। विद्वानों को अपने प्रवचन की शैली बदलना चाहिये। संवेदनशील भाषा का प्रयोग करना चाहिये और रासायनिक तत्त्व की प्ररूपणा जो हमारे आगम में भरी पड़ी हुई है, उसको निकाल कर दिखाना चाहिये। सब छोड़ो, समाज की तोड़ा-ताड़ी बन्द करो। पंथों की दुर्गन्ध जो समाज में भर रहे हो, उसे बन्द करो। इससे समाज का हित नहीं। समाज का हित उसमें है, जैसे एक कॉलेज में हिन्दु-मुस्लिम का भेदभाव नहीं होता है, वह किसी भी जाति/वंश का क्यों न हो, यदि वह प्रथम आता है तो उसका सम्मान सरकार भी करती है। यह बालक का सम्मान नहीं, भारत की प्रज्ञा का सम्मान हुआ है। इतनी बुद्धि आज भी भारत की भूमि पर है। अध्यापक प्रसन्न होता है कि मेरा छात्र, मेरे कॉलेज का छात्र है। ऐसे-ही विद्वानों को चाहिये कि पंथ/आम्नाय

की सड़ांध छोड़ करके जो णमोकार पढ़ते मिल जाये-जय जिनेन्द्र बोलते मिल जाये, सबको अपने गले लगा लेना चाहिये, क्योंकि मुझे जिनशासन की प्रभावना करना है। सड़ांध को अधिक समय तक लोग पसन्द नहीं करते। कुछ दिन तक नाक बन्द करके झेलते हैं, लेकिन जब देखते हैं कि नाक बन्द करके भी समझ में नहीं आ रहा है, तब स्थान ही छोड़ देते हैं।

शास्त्री जी! सत्य को समझना पड़ेगा और समझाना पड़ेगा। जो जीव सड़ांध के प्रयास में लगे हैं, उनके कानों तक भी भेजना पड़ेगा कि भाई ! तुमको जिनशासन पर और प्राणिमात्र पर करुणा है, तो उस बात की व्याख्या करो जिससे लोगों के भावों की विशुद्धि बने। प्रज्ञा की दरिद्रता और प्रज्ञा की निर्दयता से स्वयं के परिणामों की हिंसा मत करो। क्या रहस्य है ? ऊपर देखो या नीचे देखो। नीचे चरण देखते हो, ऊपर चेहरा देखते हो, बीच में किसी की दृष्टि नहीं जाती। या तो चरण विराजमान करते हो या चेहरा होता है। सत्यता यह है कि दिगम्बर परम्परा में खण्डित तस्वीर नहीं होना चाहिये। फोटो पिच्छि-कमण्डलु सहित पूरी आना चाहिये। ये कोई नाटक के पात्र नहीं हैं, नेता/अभिनेता नहीं हैं, जो आपने कट करके आधा चेहरा छाप दिया है। यह बहुत गलत परम्परा प्रारम्भ हो चुकी है। ये परमेष्ठी हैं, अखण्डित होना चाहिये। हँसते-मुस्कराते मुनि का चित्र मत टाँगना। मुनि-मुद्रा को देख करके आत्माह्लाद हो। यह एक्टरों की फोटो नहीं है, जो खिलखिलाते आ रही है। यह श्रमणों की तस्वीरें हैं। यदि विद्वान् इस विषय में विचार नहीं करेंगे तो अनर्थ हो जायेगा। यथार्थ में यह अप्रभावना है। सत्यता पर विचार करना पड़ेगा।

नियमसार, प्रवचनसार, तत्त्वार्थसूत्र, पञ्चास्तिकाय, गोम्मटसार, जीवकाण्ड, इन ग्रन्थों में रासायनिक तत्त्व भरे हुये हैं। मैंने गंभीर होकर बोला और आप सब भी गंभीर हो गये हो। यह भी एक रासायनिक क्रिया है। बोलनेवाला इतना दूर है, सुननेवाला इतनी दूर है, फिर भी एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य ने प्रभावित किया है। यही तो रसायन की क्रिया है। संवेदनशील विषय आना चाहिये। कर्म की व्याख्या के साथ नोकर्म की व्याख्या होनी चाहिये। धर्म की व्याख्या के साथ अधर्म की व्याख्या होना चाहिये। जब तुमने धर्म-अधर्म में भेद करके नहीं दिखाया, तो धर्म की महिमा क्या होगी और अधर्म की हीनता क्या होगी ? धर्म को ग्रहण करने के लिये कहना और अधर्म को छोड़ने

के लिये कहना। आपने कहा— घी पियो, मदिरा छोड़ो जब तक घी के गुण और मदिरा के अवगुण की व्याख्या नहीं होगी, तब तक सामनेवाले को समझ में नहीं आयेगा कि क्या बोल रहे हो?अधर्म की व्याख्या दुर्गुणभूत होना चाहिये और धर्म की व्याख्या गुणभूत होना चाहिए। दोनों की व्याख्या करने के बाद उसके विवेक पर छोड़ देना, थोपना नहीं। यह जैनदर्शन है कि थोपना किसी पर नहीं, उसके विवेक पर छोड़ देना, क्योंकि थोपी सामग्री अधिक समय तक नहीं टिकती। जैन परम्परा पेंटर की परम्परा नहीं है, इसलिये हमारे यहाँ पेंटिंग की हुई प्रतिमायें नहीं पूजी जाती हैं। ये तस्वीर लगी है, कोई यहाँ चावल चढ़ाता है क्या? नहीं। पर मंदिर में हर बालक जाता है। ये तस्वीरें/फोटो प्रतीक हैं, मूल वस्तु ही पूज्य है। मंदिर में तस्वीरें पूजना प्रारम्भ मत कर देना। यह मिथ्यात्व है। तस्वीर पूज्य नहीं हैं, जिनबिम्ब पूज्य है।

ऊपर देखो, नीचे देखो, जितने विकार हैं तिर्यक् हैं। तिर्यक यानि तिर्यंच। जो तिरछे चले। मध्य लोक का नाम भी तिर्यक् लोक है। जो तिरछे चले, उल्टे चले। तिर्यंच उतना व्यवस्थित नहीं चलता जितना मनुष्य चतला है। मध्य तिर्यक् है, मध्य में तिर्यक्पन है। जो विपरीत परिणाम हैं, अशुभ परिणाम हैं, तिरछे परिणाम हैं, वे सब तिर्यक् हैं। तिर्यक् परिणाम उनके होते हैं, जो तिर्यंच बननेवाले होते हैं या तिर्यंच बनकर आते हैं। तिर्यंच यानि पशु। तिर्यक् यानि तिरछा, वक्रपरिणति। जिनकी वक्रपरिणति होती है, उनका नाम तिर्यंच है। इसलिये ऊपर देखो, नीचे देखो। ऊपर आकाश है, वहाँ कोई विकार नहीं। आकाश ही आकाश। जमीन देखो। जमीन ही जमीन दिख रही है। जैसे-ही तूने बीच में दृष्टि घुमाई, उल्टे-सीधे सब बीच में ही मिलते हैं। संयम की रक्षा कैसे कर सकते हो, उस पर ध्यान दो। इसलिये योगी जमीन की ओर निहार कर चलते हैं। अधोमुख करके चलो, ईर्यापथ से यानि देखकर चलो। जमीन को देखो, जमीन में वैराग्य है, बीच में राग है। आम का फल कच्चा होता है तो इतने चाव से नहीं खाते हो, प्रारम्भ है। सड़ जाये तब फेंक देते हो और बीच में दल है। जितने चिपकते हैं, सब बीच में चिपकते हैं। शिशु अवस्था प्रारम्भ है। वृद्ध अवस्था जाने की है, सो विकार शान्त है। बीच में दल है, युवावस्था। ऊपर देखो, नीचे देखो, बीच को छोड़ दो। दार्शनिक विषय को आप दार्शनिक दृष्टि से देखो।

सिद्धान्त पर दृष्टि डालो। वस्तु के मध्य में उलझ जायेगा। सरोवर के चारों किनारों से निकल सकता है, जब भी डूबेगा मध्य में ही डूबेगा। युवावस्था मध्य अवस्था है। यदि इससे पार हो लिये, तो बच गये। इसमें डूब गये, सो डूब गये। बूढ़े होकर वे मरते हैं, जो मध्य को नहीं सम्हाल पाते। जो मध्य को सम्हाल लेते हैं, वे समाधिमरण करते हैं। बीच को सम्हालो। सारा पुरुषार्थ मध्य के लिये करना होगा। ढलान पर विशेष पैडल नहीं मारने पड़ते। जब आयुकर्म की ढलान यानि वृद्धावस्था आती है, उस समय इन्द्रियाँ शान्त हो चुकी हैं, ज्यादा पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता है, वहाँ पर भी ज्यादा मेहनत नहीं लगती है। जहाँ चढ़ान का पर्वतीय स्थान आ जाता है, वहाँ मेहनत करनी पड़ती है, वहाँ पुरुषार्थ करना पड़ता है। युवाओ! ये चढ़ान की उम्र है, इसमें सम्हलने की आवश्यकता है। समझना तो पड़ेगा। आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि हम विषयों से अपनी आत्मरक्षा कैसे करें?

मदनरूपी महाबैरी कामशत्रु को जीतने के लिये, उसको जीर्ण करने के उपाय हैं। उपवास करना। जब रस नहीं जायेगा, तो रस नहीं बनेगा, तो विकार कैसे बढ़ेगे?

अवमौदर्य- भूख से कम भोजन करना। पेट भरके भोजन करेगा तो विकार भी सतायेंगे।

रस का परित्याग करते रहना, कोई-न-कोई रस छोड़ते रहना। जिन रसों से वीर्य की वृद्धि होती है, ऐसे रसों को न्यून करो। शीतल जल से स्नान करने से विकार बढ़ते हैं। उबटन आदि, जितने ज्यादा सुगन्धित तेल आदि लगाओगे, ऐसे सुगन्धित द्रव्य होते हैं जिनके सूंघने मात्र से कामविकार की वृद्धि होती है, इसलिये उनका भी त्याग करो।

दिगम्बर साधु स्नान क्यों नहीं करते? जितना शरीर शीतल होगा, ठण्डा होगा, उतने विकार बढ़ेंगे। उष्णता में विकार कम होते हैं, इसलिये दिगम्बर मुनि अस्नान मूलगुण का पालन करते हैं, कभी स्नान नहीं करते हैं। बड़े रहस्य हैं हर क्रिया में। स्नान से ताजगी आती है। कितना ही भूखा आदमी हो, थका हुआ हो, ठण्डे पानी से उसे छींटे मार दो। आयुर्वेद की दृष्टि में, यदि पित्त भी भड़क रहा हो, उसको शीतल पानी के छींटे मार दो। उससे पित्त शमन होता है और काम वृद्धि को प्राप्त होता है। जिनको ब्रह्मचर्य का पालन करना हो, उन व्यक्तियों को पान आदि का सेवन नहीं करना चाहिये। पान,

ताम्बूल तीव्र कामनाओं को, कामविकार को बढ़ानेवाली वस्तुयें हैं। ताम्बूल से तात्पर्य सिर्फ पान ही नहीं। सौंफ, इलायची, सुपाड़ी आदि ये सब ताम्बूल के अन्तर्गत आते हैं। इनके माध्यम से शीतलता की वृद्धि होती है और कामविकार की वृद्धि होती है, इसलिये त्यागियों को ताम्बूल सेवन का त्याग करना चाहिये और सम्पूर्ण इच्छाओं का निरोध, तथा पूर्व में जो अशुभ किये हों, उनका स्मरण नहीं करना। ये मदन को जीतने के उपाय हैं। ऐसा समझना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"कषाय जीतने के उपाय"

काममिच्छा निरोधेन क्रोधं च क्षमया भृशं।
जयेन्मानं मृदुत्वेन मोहं संज्ञान सेवया।। (117)

अन्वयार्थ—इच्छानिरोधेन = इच्छा को रोक करके, **कामं** = काम भाव को, **च क्षमया क्रोधं** = तथा क्षमाभाव से क्रोध को, **मृदुत्वेन मानं** = मार्दव भाव से मान को, **संज्ञान सेवया मोहं** = सम्यग्ज्ञान की सेवा से मोह को, **भृशं जयेत्** = अच्छी तरह जीते।

भावार्थ—इच्छा-निरोध से काम को, क्षमाभाव से क्रोध को, मृदुता से मान को और सम्यग्ज्ञान की आराधना से मोह को जीतना चाहिए।

।। सद्-देशना।।

हम सभी अंतिम तीर्थंकर भगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की देशना मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

जयवंत हो सर्वज्ञ शासन, श्री जिन नमोऽस्तु शासन। जयवंत हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी जैनतत्त्वविद्या के महान् पारंगत योगीश्वर, जिन्होंने आगम के गूढ़ रहस्यों को अपनी प्रज्ञा की छैनी पर स्पर्शित किया हो। कुन्दकुन्द देव के 'समयसार' को जो अंदर में संजोए हों, वे आचार्य कुलभद्र स्वामी 'सार समुच्चय' जी ग्रन्थ में परमब्रह्म की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। जीव का भव भावना पर टिका हुआ है। ऊपर जाना, कि नीचे जाना, यह भगवान् के हाथ में नहीं है, यह तेरे भावों के हाथ में है। परिणाम हीन है, तो गति हीन है। चित्त प्रसन्न है, चित्त खिन्न है, यह किसी दूसरे के हाथ का विषय नहीं है, यह मेरे स्वयं के हाथ का विषय है। जिसका चारित्र खिला हुआ है, उसका चित्त खिला होता है। जिसका चारित्र मुरझा जाता है, उसका चेहरा भी मुरझा जाता है। खुशियाँ तभी तक हैं, जब तक भीतर भाव पवित्र हैं। खुशियाँ विलीन हो जाती हैं, जब भावनायें मलिन हो जाती हैं। मलिनता चाहे कामभूत हो या क्रोधभूत हो या मायाभूत हो, चाहे लोभभूत हो, जब-जब मन में मलिनता आती है तो चेहरे का रंग बदल जाता है। जो चेहरे फीके दिख रहे हैं, कुछ मत पूछना, कषाय से घाता

गया है। जिसके चेहरे अप्रसन्न हैं, गद्‌गद् भाव नहीं आ रहे हैं, समझ लो कि कषाय से पीटा गया है। जिसका चित्त दमक रहा है, वह कषाय को जीत कर बैठा है।

आज भगवान् से मिलने की बात मत करना, क्योंकि भगवान् से मिल कर भगवान् भी नहीं बने, स्वयं से मिल कर भगवान् बने हैं। भगवान् से मिलकर भक्त बन सकते हैं, भगवान् से मिलकर भगवान् नहीं बन सकते। भगवान् बनना है, तो एक दिन स्वयं से मिलना पड़ेगा।

सारे जगत् में आप कितने ही छुपकरके अशुभ करने का विचार कर लेना, लेकिन छुपा नहीं पाओगे। गुरु ने शिष्य से कहा-बेटा! यह श्रीफल लेकर जाओ और ऐसे स्थान पर इसके दो भाग करके लाना जहाँ कोई देखनेवाला न हो। एक शिष्य गया जंगल में। पर्वत की गुफा के अंदर बैठकर उसने श्रीफल के दो टुकड़े कर दिये। दूसरा शिष्य गया तो उसको कोई स्थान नहीं मिला। गुरु ने पूछा-वत्स! विभाग करके नहीं आये ? 'गुरु जी! क्षमा करना। लोक में ऐसा कौन-सा प्रदेश है जहाँ कोई देखनेवाला न हो? हम इसके विभाग कहाँ करते? आपकी शर्त थी कि कोई देखनेवाला न हो। मैं स्वयं तो था देखनेवाला। दूसरा, परमात्मा के ज्ञान से कौन-सी बात छिपी है? वे तो हर जगह देखनेवाले हैं। गुरुजी ने दूसरे शिष्य को ही योग्य घोषित किया। हम तुरन्त सोच लेते हैं कि कमरा बंद करके पाप कर लेंगे। लेकिन मित्रो! स्वयं का हृदय देख रहा है कि नहीं ?

जगत् असत्य की प्रशंसा कर सकता है और उस प्रशंसा को आप सुन सकते हो, लेकिन स्वयं का हृदय कभी असत्य की प्रशंसा नहीं करता है। बाहर के लोग भेष के धर्मात्मा की प्रशंसा कर लेंगे, पर स्वयं का हृदय स्वीकार नहीं कर पायेगा। किसी को सत्य पूछना हो तो दूसरे से पूछने मत जाना। दूसरा तेरे चेहरे को बता सकता है, लेकिन हृदय को नहीं बता सकता। पंचमकाल में कोई मनःपर्यय ज्ञानी नहीं है, केवलज्ञानी और अवधिज्ञानी भी नहीं हैं जो दूसरे की बात को बता सकते हों। स्वयं का हृदय ही यथार्थ बता सकता है। पर की बात पर से सुन सकते हो, लेकिन निज की बात को निज से ही सुन सकते हो। जिसकी विवेक की आँखें बंद हो गई हों, वह कितनी ही खुली आँख से देखे, लेकिन सत्य को नहीं जान सकता है। जिसकी विवेक की आँख खुली है, वही सत्य को पहचान सकता है। अपने हृदय में झाँक कर देखो। भावों की स्वच्छता ही

भगवत्ता को उद्घाटित करती है। **जैसे भगवान् का अभिषेक करते हो, ऐसे ही भावों का भी अभिषेक करना चाहिये। भगवान् का अभिषेक पानी से किया करो, लेकिन भावों का अभिषेक जिनवाणी से किया करो। जो पानी अभिषेक के काम आ जाता है, वह गंधोदक बन जाता है। जिस मन का अभिषेक जिनवाणी से हो जाता है, वह परमात्मा बन जाता है।** भगवान् के सिर पर गया पानी गंधोदक बन कर पूज्य हो गया, तेरा मन जिनवाणी से अभिसिंचित हो गया तो नियम से परमात्मा बनेगा। शरीर की धूल को पानी से हटाया जा सकता है, परन्तु मन की धूल को, मन के पाप को धोने के लिये पानी नहीं, जिनवाणी ही काम आयेगी। ज्ञानी! विश्वास रखना, दूसरे की जिनवाणी तेरे काम नहीं आयेगी, दूसरे का ज्ञान कभी मेरे काम नहीं आयेगा, दूसरे का उपदेश मेरे काम में कभी नहीं आयेगा, ये प्रवचन भी तुम्हारे काम में नहीं आयेंगे। जो सुन रहे हो, वह ज्ञेय बन रहा है। जब ये उपदेश स्वयं के ज्ञान के विषय बनेंगे, तब तेरे काम में आयेंगे। पर के शब्द परमात्मा नहीं बनाते, पर की भाषावर्गणा परमात्मा नहीं बनाती है।

स्पेलर (कोल्हू) से तेल निकलता है। कोल्हू करण है, कि कर्त्ता? जिस तत्त्वोपदेश में सिद्धान्त, न्याय और व्याकरण न हो, वह तत्त्वोपदेश नहीं। जैसे हर्र, बहेड़ा, आँवला (त्रिफला) से स्याद्वाद की सिद्धि होती है। सात भङ्ग ही बना पाओगे, आठ भंग नहीं बना सकते। आपने अनेक बार सुना होगा कि जैनदर्शन यानि स्याद्वाद, अनेकान्त और यहाँ आकरके इन्हीं शब्दों को नहीं सुना, तो तुम घर में जाकरके क्या कहोगे?

पिता के घर में जैसे बँधकर रहना पड़ता है, वैसे मामा के घर में रहना पड़ गया तो मामा के घर का आनंद क्या? मामा के घर जाओ और वहाँ लड्डू-पेड़े न मिलें, वे ही घर-जैसी सूखी रोटियाँ मिलें, तो मामा के घर जाने की आवश्यकता क्यों? ऐसे-ही वक्ताओं को चाहिये, चाहे श्रोता तत्त्व को जाने या न जाने। यह मुझे विश्वास है कि हर घर में रोज मिठाइयाँ नहीं बनती। अब सुनो मूल बात। आप यहाँ आये और घर गये। माँ ने पूछा कि क्या सीख कर आये हो? कुछ नहीं, वही बाहर के चुटकुले थे। तो तेरे माता-पिता भी कहेंगे, बेटा! तू महाराज को सुनने गया था और स्याद्वाद-अनेकान्त समझ कर नहीं आया।

स्याद् यानि अपेक्षा, वाद यानि कथन। जो अपेक्षाकृत कथन होता है, उसका नाम है स्याद्वाद। कालेज में दर्शनशास्त्र में तुम्हें यह भी पढ़ना पड़ेगा। बेटा! तू बेटा भी है, पोता भी है, भाई भी है, भान्जा भी है। भतीजा भी है, मामा भी है, चाचा भी है। अब तू कह कि मैं जैनधर्म नहीं जानता? सारी दुनियाँ जैनधर्म जानती है। कह न सके, व्याख्यान न कर सके, इसका मतलब यह नहीं कि हम जैनधर्म नहीं जानते हैं। विश्व में ऐसा कोई जीव नहीं है जो जैनधर्म न जानता हो और जैनधर्म न मानता हो, पर बुद्धि में नहीं मानता। माँ की अपेक्षा से बेटा है। तू एक है, लेकिन तेरे रिस्ते अनेक हैं। बस, बेटा ! ऐसे-ही संबंध अनेक हैं, उसका नाम अनेक धर्म है। धर्मी एक है, धर्म अनेक हैं। जो अनन्त धर्मों को एकसाथ न कह सके, उसका नाम अवक्तव्य है। स्याद् अस्ति यानि तू है, स्याद् नास्ति यानि तू परभूत नहीं है। स्याद् अस्ति-नास्ति यानि मैं हूँ भी, नहीं भी हूँ। स्याद् अवक्तव्य यानि एकसाथ कह नहीं सकते। स्याद् अस्ति-अवक्तव्य, स्याद् नास्ति-अवक्तव्य, स्याद् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। ये सात भङ्ग हैं।

सात व्यक्ति जन्म से अन्धे थे। उन्होंने हाथ फेर करके हाथी को देखा। एक ने सूँड़ पकड़ ली, वह कहता है कि हाथी मूसल-जैसा है। एक ने कान पकड़े, वह कहता है कि हाथी सूपा जैसा है। एक ने पीठ पकड़ ली, वह कहता है कि हाथी चबूतरे जैसा है। एक ने पेट पकड़ लिया, वह कहता है कि दीवाल जैसा। एक ने पैर पकड़ लिये, वह कहता है कि खम्बे जैसा। जिसने पूँछ पकड़ी, वह कहता है कि रस्सी जैसा। जिसने आँख का स्पर्श किया, वह कहता है कि धनिया जैसा। बताओ बालको! हाथी कैसा होता है? महाराज! एक-एक अङ्ग हाथी नहीं और एक-एक अङ्ग से रहित हाथी नहीं। इन सबको मिला दो, उसका नाम हाथी है। ऐसे ही अनेक संबंधों को जोड़ दो, उसका नाम धर्मी है।

मैं कठिन प्रवचन जान कर करता हूँ। ये कम-से-कम यह तो सीखेंगे कि मैंने जीवन में कभी अनेकान्त-स्याद्वाद शब्द को सुना था, पर समझ में नहीं आया था। इतना समझ में आया था कि कुछ चल रहा है।

कोल्हू से तेल कब से निकलने लग गये? फिर किसानों से कह देना, कि खेती करना बंद करो, स्पेलर खरीद लो, तेल निकलना प्रारम्भ हो जायेगा। ज्ञानियो! स्पेलर से तेल निकाला जाता है, उससे तेल निकलता नहीं है। तेल तो तिल से निकलता है।

पर के उपदेशों से धर्म नहीं होता है, पर के उपदेशों से कल्याण नहीं होता है। पर के उपदेशों से जाना जाता है, कल्याण तो स्वयं के परिणामों से होता है। उपदेष्टा प्रवचन कर रहा है, उसे आप सुन रहे हो। वह तो अपने ज्ञान से बोल रहा है, वह तो अपनी वाणी से बोल रहा है, लेकिन यथार्थ में तुम्हारा कल्याण कब होगा? जब वह उपदेश तुम्हारे आत्मभूत परिणमन करेगा। आपका ज्ञान जब आपको समझ में आयेगा, तभी कल्याण होगा। जब तक स्वयं की समझ नहीं आती, तब तक जगत् में किसी की समझ समझ में नहीं आती।

बेटा! घबराना नहीं। चोर-चोर मौसेरे भाई हैं। 'रावण ने अच्छा नहीं किया, जानकी का हरण कर लिया,' आप बहुत अच्छी बात कह रहे हो। मेरे मित्र! तुम्हारी यह समझ कब तक है? जब तक स्वयं का मन रावण नहीं बना। रावण ने एक सीता को देखा तो तू पुतला जलाता है। तूने अपने जीवन में कितनी सीताओं को देखा है? तेरा पुतला भी जलना चाहिये कि नहीं?

उस व्यक्ति ने चोरी की है, अच्छा नहीं किया, यह समझ तभी तक है, जब तक आपकी चोरी किसी को पता नहीं है। भैया! क्या आप पूरे टैक्स भरते हो? नहीं। एक सीधे-सीधे चुरा रहा है, आप क्या कर रहे हो? हृदय से पूछो, धर्म की व्याख्या क्या है। अध्यापक हो? बच्चों को अच्छे से पढ़ाते हो? स्कूल की कुर्सी घर तो नहीं लाते हो? यदि आपका समय दस बजे स्कूल जाने का है और दस बज कर दस मिनिट पर जा रहे हो, तो आपने डाका डाला है, चोरी की है। यदि मेरी सामायिक का समय बारह बजे का है, लेकिन मैं समय पर सामायिक नहीं करता, तो वह भी डाका डालना है, क्योंकि आपने समय की चोरी की है।

कर नहीं पाओ तो इसका मतलब यह नहीं है कि सत्य को कहना बंद कर दो। **दूसरे की वस्तु को मात्र उठा लेना चोरी नहीं है। समय पर काम नहीं करना भी चोरी है।** माँ! आप घर में बोल कर आयीं कि मैं महाराज के प्रवचन सुनने जा रही हूँ। आपने किसी दूसरे की बात सुनी, तो बताओ, आपने छल किया कि नहीं? पाप का बन्ध होगा कि नहीं? होगा। महाराज! इन बातों से भी बन्ध होता है? हाँ! यह आपका सोच हो सकता है, लेकिन कर्मबन्ध कहता है कि मैं कभी बन्द नहीं होता हूँ, बन्ध को प्राप्त होता हूँ। बन्ध तो होगा। चाहे तुम मैत्री भाव से राग करो, चाहे राग से राग करो,

बन्ध तो होगा। चाहे तुम किसी को समझाने के लिये द्वेष करो, चाहे द्वेष से द्वेष करो, बन्ध तो होगा। चाहे आप यह कहो, महाराज श्री! जिम्मेदारियाँ हैं परिवार की, समाज की, देश की, राष्ट्र की। सत्य यह है कि तू राग से बंधा है। किसी की कोई जिम्मेदारी नहीं। कण-कण स्वतन्त्र है। मैं यही सोच रहा हूँ कि मेरे बिना कुछ होता नहीं। जब आप घर में नहीं होते हो, तो घर में कौन काम कर रहा होगा? तुम एक दिन की यात्रा को गये, घर में कौन काम कर रहा होगा? काम हो रहा है कि नहीं? हो रहा है। जब एक दिन आने पर काम हो सकता है, तो तू कभी भी नहीं रुकता है, तेरा राग रुकता है। राग नहीं मानता, वह दौड़ कर वहीं जायेगा, मुझे मालूम है।

सारे विश्व को जैनदर्शन यदि कुछ दे सकता हो तो विद्वानों, ज्ञानियों से मेरा कहना है-कि देह का उपचार करना तो दुनिया जानती है, इसके साथ भीतर का उपचार करना। सारे राग मानसिक तनाव से होते हैं, अधिकांशतः। इस मानसिक तनाव से मुक्त होने की गोली इतनी मात्र है कि अणु-अणु स्वतन्त्र है। **'स्वतन्त्रतः कर्ताः'।** इससे बड़ी ब्रह्माण्ड में कोई औषधि नहीं है। दादा जी! क्या आपके पिताजी हैं? नहीं। चले गये, तो तू रो क्यों रहा है? इतना अच्छा पिता था, इतने अच्छे आपको संस्कार दिये, धर्म के संस्कार दिये, उनके जाने के बाद आप रोते नहीं दिख रहे हो। आप घर में अच्छे से हो, सुखमय जीवन जी रहे हो, पिता जी के जाने पर भी कोई कष्ट नहीं हुआ। जब आपके पिता जी थे, तो वो सोचते थे कि क्या मालूम मेरे जाने के बाद मेरे बेटे का क्या होगा? हर पिता का यह सोच रहता है। जो ऐसा सोच रखते हैं, वे पक्के पागल लोग रहते हैं। जैसे सारा बोझ इसके सिर पर ही रखा हो। जब तेरे पिता के जाने के बाद तू मस्ती में आकर प्रवचन सुन रहा है, तो तेरे जाने के बाद तेरे बेटे भी मुस्करायेंगे। स्वतन्त्रतः कर्ताः, अणु-अणु स्वतन्त्र है। जिसका पुण्य क्षीण हो चुका है, पिता के सामने रहने पर भी बेटे भीख माँगते मिलते हैं। पिता के जीवित रहने पर भी बेटे प्लेट धोते मिलते हैं। अब इसमें पिता क्या कर रहा है? जिसको सत्यधर्म का बोध हो जायेगा, उसकी आँख से कभी आँसू नहीं गिरेगा। जिसको सत्यधर्म का बोध हो जायेगा, वह कभी हँसते नहीं मिलेगा, क्योंकि परवस्तु के मिलने पर मुस्कराता है, परवस्तु के छूटने पर रोता है। जब दोनों ही मेरे नहीं हैं, तो क्यों रोना और क्यों हँसना? जो है, सो है।

इतनी उम्र होने के बाद भी 'स्वतन्त्रतः कर्ताः' पर दृष्टि नहीं गई, तो जीवन क्या

जिया? कुछ नहीं है। स्नेह का बंध है, वस्तु स्वतन्त्र है। इस भवन की दीवाल एक अखण्ड रूप में दिख रही है, परन्तु सत्यता यह है कि प्रत्येक ईंट स्वतन्त्र है, स्नेह का बंध है। सीमेन्ट का स्नेह न होता तो बालू को कौन बाँध कर रखता। बालू व सीमेन्ट न मिले होते, तो ईंटों को कौन रोक कर रखता। राग न होता, तो संसार को कौन चला पाता? यह राग की महिमा है, राग का आप पर उपकार है जिससे तुम संसार में जी पा रहे हो। राग न होता तो तुम वहीं विराजते, जहाँ सिद्ध विराजे हैं। यह राग का उपकार मानो जो तुम्हें पंचमकाल देखने को मिल रहा है। भैया! कुछ देखना हो तो राग बड़ा कृपालु है, वह तुम्हें छटवाँ काल भी दिखा सकता है। परन्तु राग करना पड़ेगा, तीव्र राग।

ज्ञानी! इतना कर लो, कि राग को छोड़ दो। वह देख लो जो अभी तक नहीं देखा है। उसका नाम सिद्धशिला है। यदि सिद्धशिला पर जाना चाहते हो तो काम, क्रोध, मान, माया, लोभ इनसे सम्बन्ध छोड़ना पड़ेगा। यदि आपको बन्ध अच्छा लगे, तो बन्ध से सम्बन्ध मत छोड़ो, पर काम, क्रोध, मान, माया, लोभ इनका सम्बन्ध छोड़ दो तो बन्ध का सम्बन्ध अपने आप छूट जायेगा। आपको कौन रोके है? कौन दु:खी किये है? न कोई रोके है, न कोई दु:खी किये है। वही कीचड़ कर रहा है। यह राग का पानी बन्द कर दो तो कीचड़ अपने आप सूख जायेगा। कुछ मत करो। मैं तो इसी पुरुषार्थ में लगा हूँ कि कुछ भी न करना पड़े। पिच्छि-कमण्डलु का उठाना भी बन्द हो जाये, अंजुली लगाना भी बन्द हो जाये तो समझ लो कि मेरा कल्याण हो गया। वह दिन कब आये जब श्रावकों के द्वार पर भी न जाना पड़े। चौबीस घण्टे के राग में एक दो घण्टे और खराब होते हैं। ये आहार बन्द हो जाये तो निहार भी बन्द हो जाये और निहार बन्द हो जाये तो विहार भी बन्द हो जाये। अब तो एक ही विहार होगा, जो सिद्धशिला की ओर होगा। उस विहार की तैयारी करना है। निर्णय तो आज से ही करके चलना पड़ेगा कि हे प्रभो! आहार बन्द हो जाये।

सारी इन्द्रियों को रस देने वाली रसना है, जिह्वा है। चटपटा न खाओ तो मन भी चटपटे न हों। **जैसा खाओ अन्न, वैसा होवे मन और जैसा पिओ पानी, वैसी निकले वाणी। चित्त पर भोजन का प्रभाव होता है। यदि इन्द्रियों को वश करना है तो सबसे पहले रसना इन्द्रिय को वश कीजिये, जिह्वा पर नियन्त्रण कीजिये,**

खोटा खाना बन्द कीजिये। मेरा विश्वास है, आगम वचन है कि जो खोटा खाना बन्द कर देगा, वह खोटा सोचना बन्द कर देगा। तो फिर खोटे कर्म आना भी बन्द हो जायेंगे। फिर खोटी गति का होना भी बन्द हो जायेगा, अंतिम गति है सिद्धगति .....।

वर्तमान में 'मूलाचार' आचाराङ्ग का प्रधान ग्रन्थ है। उसमें सर्वाधिक वर्णन आहारचर्या का है। पिण्डशुद्धि अधिकार में भोजन की शुद्धि पर इतना ध्यान दिया है कि भोजन शुद्ध होगा तो और चित्त शुद्ध होगा। चित्त शुद्ध होगा तो चारित्र शुद्ध होगा। चारित्र शुद्ध होगा तो तेरी परिणति भी शुद्ध होगी और गति भी शुद्ध होगी।

भारतभूमि की यह विशेषता है, कि इसने किसी के ज्ञान से प्रभावित होना नहीं सीखा। कोटि-कोटि ज्ञानी आये और चले गये। भारत की भूमि ने ज्ञान पर सिर नहीं टेका, चारित्र पर टेका है। अध्यापक गुरु है, साधु नहीं है। ज्ञान के गुरु तो मानता है, पर साधु नहीं मानते। गुरु का उपकार मानेंगे, क्योंकि उन्होंने ज्ञान दिया है, परन्तु पूजा के भाव आयेंगे साधु के, क्योंकि संयम पूज्य है। आस्था जब भी टिकती है, तो चारित्र पर टिकती है। ज्ञान का सम्मान होता है, लेकिन पूजा चारित्र की होती है। **श्रद्धा से स्वर्ग मिलता है, ज्ञान से यश मिलता है, चारित्र से पूजा मिलती है। तीनों एकसाथ हों तो निर्वाण मिलता है।** यदि आयुबंध नहीं किया, तो सम्यग्दर्शन से नियम से स्वर्ग मिलता है। ज्ञान से मात्र यश फैलता है, लेकिन चारित्र से पूजा होती है। चारित्र को प्राप्त करके पूजा में फूल गया तो फूल (FOOL) ही है। अंग्रेजी में लगा लेना।

पूजा के लिये साधु नहीं बनना, पूज्य होने के लिये साधु नहीं बनना, परमात्मा होने के लिये साधु बनना। साधु बनकर पूजा में उलझ गया, तो विश्वास मानना, आम के दल में फँस गया। छिलका उतारा, दल खाया और गुठली फेंक दी। मुख्य आनन्द तो अभी लूटा ही नहीं है। वैद्य जी कहेंगे गुठली उठा लाओ। तुमने दल खा लिया, अब फोड़े होंगे तो कैसे ठीक होयेंगे? आम खाने से फोड़े होते हैं, उनको ठीक करने की दवाई आम में ही होती है। गुठली को फोड़ने से सारभूत मिगी निकलती है। उसे घिस कर लगाओ तो फोड़े ठीक हो जायेंगे। ऐसे-ही कपड़े उतर गये, छिलका। पूजा हो रही, सो दल अन्दर के मोह की गुठली पर तुमने ध्यान ही नहीं दिया। मोह की गुठली फूट जाये तो शुद्धात्म स्वरूप की मिगी निकलेगी, उससे तेरे कर्म के फोड़े ठीक होंगे। मुनि बनकर बैठ गये, पूजा में लीन हो गये। पता ही नहीं है कि अभी कुछ-और करना है। आम के

फोड़े आम की मिगी से ही ठीक होते हैं, ऐसे-ही कर्म किये हैं मन से, तो मन से ही नष्ट होंगे। कुछ लोग इसलिये मुस्करा रहे हैं कि कुछ समझ में आया हो या नहीं, एक दवाई तो समझ में आ गई। घर जाकर अपन दवाई कर लेंगे।

कुलभद्र स्वामी यहाँ कह रहे हैं—

काममिच्छानिरोधेन क्रोधं च क्षमया भृशं।
जयेन्मानं मृदुत्वेन मोहं संज्ञानसेवया।। (117 सा. स.)

जिसको ब्रह्मचर्य का पालन करना हो, काम का निरोध करना हो, उसको मन पर नियन्त्रण करना चाहिये। इच्छाओं का निरोध ही काम का निरोध है। यदि इच्छाओं का जन्म न हो, तो कभी काम का जन्म हो ही नहीं सकता। इसका नाम है मदन। जिसका मन से जन्म होता है, उसका नाम है मदन। जिसने शील का पालन किया है, यानि उसने मदन पर विजय प्राप्त की है। उसके लिये सबसे पहले इच्छाओं पर विजय प्राप्त करना है। क्रोध को जीतना है तो लाठी लेकर खड़े नहीं होना, क्षमा धारण कर लेना। गुस्सा से गुस्सा शांत नहीं होगी, हिंसा से हिंसा शान्त नहीं होगी, अहिंसा का आलम्बन लेना ही पड़ेगा। क्षमा भी कब आयेगी? 'स्वतन्त्रतः कर्त्ताः'। क्रोध हमेशा परसापेक्ष आता है। आप बच्चे पर गुस्सा कर रहे हो कि पढ़ता नहीं है, ठीक है; लेकिन उसका क्षयोपशम स्वतन्त्र है, इस बात पर ध्यान क्यों नहीं देते हो? बेटा! पिता जी से कह देना कि आप पढ़ाओ, आपका कर्तव्य है, लेकिन विषय का चयन मैं खुद करूँगा, क्योंकि पढ़ना मुझे है। हर पिता सोचता है कि मेरा बेटा अच्छा बने, लेकिन बेटों के मस्तिष्क की परीक्षा तो कर लो।

आप सामनेवाले की कुण्डली पहले दिखाओ, फिर उसका अपयश फैलाओ। जिसकी कुण्डली में यश-ही-यश बैठा हो, जिसकी सूर्यरेखा आगे बढ़ रही हो, तुम सूर्य के आगे लाठी लेकर खड़े हो जाओ और कहो कि मैं तुम्हें उगने नहीं दूँगा, तो विश्वास रखना, तेरी लाठी काम नहीं आयेगी, वह उगेगा-ही-उगेगा। ऐसे-ही पुण्यात्मा जीव के लिये तुम कुछ भी कर लेना, रावण ने राम के लिये बहुत प्रयास किये, लेकिन कुछ नहीं कर सका। श्रीकृष्ण को मारने के लिये कंस ने बहुत चेष्टायें की, पूतना को आँचल में जहर लगा कर भेज दिया, लेकिन पुण्यात्मा का क्या कर सके? कुछ नहीं होता। इसलिये ध्यान रखना, न किसी पर क्रोध करना, न किसी पर अशुभ भाव लाना। मात्र

दो बातों पर ध्यान रखना। भाग्य और भगवान् को देखते रहना।

छात्र एक ही स्कूल में पढ़ते हैं, लेकिन जब निकल कर जायेंगे तो अपने-अपने भाग्य से जायेंगे। चारूकीर्ति भट्टारक आ. विरागसागर जी के संघ को चलता-फिरता विश्वविद्यालय कहते थे। अब उस चलते-फिरते विश्वविद्यालय में दो सौ छात्र पढ़ रहे हैं। पढ़ानेवाला गुरु तो एक ही है, परन्तु जिस छात्र की जो योग्यता होगी, वैसा ज्ञान प्राप्त करके आयेगा। ज्ञानियो! विकल्प करना छोड़ दो। क्रोध को क्षमा से, मान को मृदुता से जीता जाता है। मोह को जीतना है तो सम्यग्ज्ञान की आराधना करो। इससे तुम्हारा मोह विजय को प्राप्त होगा।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"चारित्र धारण करने की प्रेरणा"

तस्मिन्नुपशमे प्राप्ते युक्तं सद्वृत्तधारणं।
तृष्णां सुदूरतस्त्यक्त्वा विषान्नमिव भोजनं ।।118।।

अन्वयार्थ - **तस्मिन् उपशमे प्राप्ते** = काम भोग के शान्त हो जाने पर, **सद्वृत्त धारणं युक्तं** = सम्यक्चारित्र को धारण करना योग्य है तब, **विषान्नम् भोजनं इव** = विष से मिले अन्न का भोजन जैसे छोड़ दिया जाता है वैसे, **तृष्णां सुदूरतः त्यक्त्वा** = तृष्णा को दूर से ही छोड़े।

भावार्थ - कामभाव के शान्त हो जाने पर, विषमिश्रित अन्न (भोजन) के समान, तृष्णा को दूर से छोड़कर सम्यक्चारित्र धारण करना योग्य है।

"चारित्र का सार"

कर्मणां शोधनं श्रेष्ठं ब्रह्मचर्यं सुरक्षितं।
सारभूतं चरित्रस्य देवैरपि सुपूजितम्।।119।।

अन्वयार्थ - **कर्मणां शोधनम्** = कर्मों का क्षय करने वाले, **चरित्रस्यं सारभूतं** = साधु के चारित्र का सार, **दैवैः अपि सुपूजितम्** = तथा देवों से भी आदरणीय ऐसे, **श्रेष्ठं ब्रह्मचर्यं** = उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत की, **सुरक्षितं** = भले प्रकार रक्षा करनी योग्य है।

भावार्थ - कर्मों का क्षय करने वाले चारित्र का सार है - देवों के द्वारा आदरणीय उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करना।

।। सद्-देशना।।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' ग्रन्थ में परमब्रह्म स्वभाव की व्याख्या कर रहे हैं। आत्मा का मित्र उपशम भाव है और शत्रु काषायिक भाव है। जैसे-जैसे काषायिक भावों का उपशमन होता है, वैसे-वैसे सारे जगत् के प्रति प्रीति उत्पन्न होती है और सारा लोक आपको अपना मानना प्रारम्भ कर देता है। किसी के बनने की आवश्यकता नहीं है, किसी को मित्र बनाने की आवश्यकता नहीं है। उपशम भाव की वृद्धि करने की आवश्यकता है। साधु बनते ही लोक के लोग आपको वन्दना करना

प्रारम्भ क्यों कर देते हैं? यथार्थ में साधुभेष की वन्दना नहीं है, यह उपशम भाव की वन्दना है। काषायिक भाव का उपशमन सबको प्रिय है। पूज्यता उपशम भाव की है, आराधना उपशम भाव की है। जिस जीव ने स्वयं के उपशम भाव की विराधना की है, वह लोक में अवन्दनीय हो गया। सारे लोक की मैत्री, सारे लोक के भाईचारे का परिणाम, इन सबका महत्व तभी तक है, जब तक उपशम भाव है। पदार्थ ठण्डा है, मार्ग के ठण्डे होने पर बच्चे भी दौड़ते हैं। सूर्य की तपन से धूल गर्म हो गई, तब पैर देखने लायक होते हैं। जब मार्ग की तपन से आपकी चाल बदल जाती है, तो जिसके कुभाव की तपन है उसके मोक्षमार्ग की चाल कैसे सम्यक् हो सकती है? इसलिये आचार्य महाराज बार-बार संकेत कर रहे हैं कि यदि आप यथार्थ में मोक्षमार्गी हैं, तो क्रोध को क्षमा से जीतो और स्वयं के प्रति क्षमा प्राप्ति का लक्ष्य बनाओ।

बलवान् को देख करके शान्तिहीन क्षमा करना जानता है। हे मित्र! स्वयं के अंदर बल होने पर भी निर्बलों को जीने देना, यह सबसे बड़ी क्षमा है। सबसे निर्बल तेरे परिणाम हैं और सबसे बलवान् तेरे परिणाम हैं। जो अपने भावों को कुभावों में जाने से बचा लेता है, वही बलवान् है। अपने भावों को खोटे भावों से नहीं बचा पा रहा है, वही बलहीन है। जो अपने आपको नहीं रोक पा रहा है, वही बलहीनता है। देह का बल मात्र दूसरे को पटक पायेगा, लेकिन वीर्यान्तराय, जो अन्तरङ्ग का बल है, वह आपको कुभावों से बचा पायेगा। जो जितना कमजोर पुरुष होगा, उसे उतना जल्दी गुस्सा आता है। गुस्सा निकालने के दो हेतु हैं। या तो चेहरे को लाल करे या फिर चेहरे को गीला करे। कषाय को निकालने के दो माध्यम तेरे पास हैं। या तो नेत्रों को रक्त करता है या नेत्रों को गीला करता है। जो निर्बल हो जाता है, अपनी शक्ति को नहीं समझ पाता है, वह अपनी गुस्सा को रोकर निकालता है। जिसमें थोड़ी ताकत होती है, वह अपनी गुस्सा को आँखों को लाल करके निकालता है। निकालते दोनों आँखों से ही हैं। रो रहा है तो यह मत समझो कि शान्ति से ही है। आपने बच्चों को देखा ? जब वे कुछ माँगते हैं और आप नहीं दे पाते हो, तब बच्चा गुस्सा करता है। गुस्सा में आँखों से आँसू टपकाता है। एक आँसू टपकाता है, एक घर की सामग्री मिटाना प्रारम्भ कर देता है।

अपनी गुस्सा उतार रहा है। यह बालक मात्र का विषय नहीं है, ऐसा पालक भी करते हैं। बलहीन पुरुष अपने बेटों के सामने भी आँसू टपकाता है। कषाय को नहीं पचा पा रहा है, सो बेटे के सामने भी आँसू टपका रहा है, मैंने तेरे लिये इतना किया।

पर्वत को सिर पर रख कर बैठ लेना सरल है, लेकिन तुमने जो दूसरे का उपकार किया है, उस उपकार को पचा पाना बहुत कठिन है। अपने ऊपर हुये उपकार को पचानेवाले मिल जायेंगे, परन्तु स्वयं के द्वारा किये उपकार को पचाना भी बहुत बड़ी साधना है। 'मैंने उनके साथ इतना उपकार किया है।' भैया! यह कौन बोल रहा है? तूने उपकार जब किया होगा, जब किया होगा, लेकिन आज तू स्वयं का अपकार कर रहा है। उपकार तुम कर चुके हो, उसको भूल जाइये। यदि आपने किसी को भोजन भी कराया हो तो उसे भूल जाना। जिसका उपकार किया है, उसके सामने आपने स्मरण करके बताया है, विश्वास रखना, आपने शत्रु को जन्म दिया है। जो आपने उपकार किया था, उसकी अवस्था क्षीण थी। पुण्य की क्षीणता में आपने उसका उपकार कर दिया था, आज वह जीव धनाड्य हो गया, अब हजार लोगों के बीच आप यूँ कहते हो-ज्ञानी! मैंने आपका उपकार उन दिनों किया था जब तुम्हारे घर में खाने को नहीं था। विश्वास रखना, जितनी पीड़ा गोली से नहीं होगी, उतनी पीड़ा उस विषय पर होगी कि आज इसने मेरी पूरी इज्जत को नष्ट कर दिया। वह यूँ कहेगा-'भगवान्! ऐसा उपकार मुझे क्यों स्वीकार करना पड़ गया?' जैसे भोजन करने के बाद उसे छोड़ देते हो, ऐसे ही जीवन में किसी का उपकार भी किया हो, उसको ऐसे ही छोड़ देना। ऐसा कहना कि मैंने अपने कर्तव्य का निर्वहन किया है, उसको भूल जाना।

किये गये उपकार का स्मरण करना भी कषाय की ही अनुभूति है। मेरे द्वारा इतने लोगों का उपकार किया गया है। यह उपकार का स्मरण नहीं आ रहा है, यह आपकी मानकषाय स्पर्श कर रही है। वह कह रही है कि स्मरण करके आनन्द लूटो, मान की अनुभूति भीतर चल रही है। इतने लोगों का उपकार तो कर दिया, परन्तु स्वयं का उपकार नहीं कर सका। इस मान की भावना को छोड़ देता तो शायद तेरा भी उपकार हो जाता, उन अनेकों के उपकार करने के साथ तू स्वयं का भी उपकारी हो जाता। भैया!

भगवान् के सामने पूजन कर लेना सरल है। उसमें तो एक थाली का द्रव्य दूसरी थाली में रखा, पर-द्रव्य को ही छोड़ा, लेकिन मैंने चाँदी के पुष्पों से पूजा की है और बड़े-बड़े श्रीफल चढ़ाये हैं। एक थाली से दूसरी थाली में छोड़ देना सरल है, परन्तु किसी ने देखा नहीं, मैंने उत्तम द्रव्य से पूजन की है, उसको छोड़ पाना बहुत कठिन है। रत्नदीप से आरती उतारी थी, स्वर्ण थाल से परमात्मा की आराधना की और मैं महावीर जी गया, स्वर्ण सिंहासन, स्वर्ण छत्र-चँवर आदि जिनालय में भेंट करके आया हूँ। हजार लोगों को सुना रहा है। उस द्रव्य को छोड़ना तो सरल था, लेकिन उस द्रव्य को चढ़ाने का मान भाव था, उसे छोड़ कर आ पाना बहुत कठिन है। मुनि बनने के बाद भी दस-दस भव क्यों लग रहे हैं। क्या कारण है कि छोड़ने के बाद भी एक भाव रहता है कि मैं राजकुमार था, मैं सेठपुत्र था, मैंने अरबों-खरबों की सम्पत्ति छोड़ करके दीक्षा ली है। ऐसा मन में भाव आ रहा है। वस्तु तो दूर है, लेकिन तू वस्तु से दूर नहीं हुआ। दही तो निकल करके दूसरे बर्तन में चला गया, परन्तु दही की लगार नहीं गई, उसी में आपने दूध भर दिया तो क्या होगा? आज ही नया दूध लेकर आया और जिसमें दही रखा हुआ था उस बर्तन में तूने डाल दिया तो वह सारा-का-सारा दूध फट जायेगा, खट्टा हो जायेगा। ऐसे-ही जिस जीव ने साधना के मार्ग को तो स्वीकार कर लिया, लेकिन वासना की खटाई को निकाल कर नहीं फेंक सका, तो तेरी साधना भी फट जायेगी। लगार यानि कामना।

कषाय अनेक प्रकार से स्फुटित होती है। आप सब गृहस्थ हो, सब समझदार हो। कुछ लोग कषाय को हँस कर निकालते हैं, कुछ लोग कषाय को रोकर निकालते हैं, कुछ लोग पर की कषाय की पुष्टि करके अपनी कषाय को निकालते हैं। जैसे बाहर का कोई सेठ साहूकार बड़ा आदमी आ जाये तो यह ज्ञानी तुरन्त माला लेकर खड़ा हो जायेगा। क्यों? इसको माला पहनाना है। मंत्री आ जाये तो दौड़ेगा कि मैं माला पहनाऊँ। लोग सोचेंगे सम्मान चल रहा है मंत्री का, सेठ का, लेकिन सत्यता यह है कि इस ज्ञानी के भीतर भी गुदगुदी चल रही है कि साथ में मेरा फोटो खिंचेगा, लोग कहेंगे कि मंत्री का सम्मान इस ज्ञानी ने किया है। ज्ञानी ! यह तेरा ही अहंकार चल रहा था। एक सत्य घटना बताऊँ-मैं बहुत छोटा था। एक बार सिंधिया जी विमान से आये। बहुत भीड़ थी।

मंच के पीछे झगड़ा हो रहा था। मैंने एक भैया से पूछा कि ये लोग लड़ क्यों रहे हैं? उनका भाषण चल रहा था। कुछ लोग आवाज कर रहे थे। वो भैया बोले-ये नगर विधायक, ये सरपंच, ये सांसद, सबकी भीड़ लगी हुई थी। झगड़ा इस बात पर चल रहा है कि सम्मान की लिस्ट में मेरा नाम क्यों नहीं आया? अपने गले में माला डलवाने के लिये लड़नेवाले बहुत हैं। ऐसे भी लड़नेवाले हैं जो दूसरे के गले में माला डालने के लिये लड़ रहे थे, क्योंकि उसका सम्मान मैं कर दूँगा तो आगे मेरा सम्मान सबके सामने होने वाला है। लोग समझेंगे कितना बड़ा आदमी है जो नेता जी का सम्मान करने गया था। कषाय के प्रगटीकरण के नाना रूप हैं। ज्ञानी ने दस श्लोक याद किये, फिर कह रहा है, महाराज जी! मैं आपको सुनाना चाहता हूँ। मैंने कहा-ठीक है, कमरे में सुना देना। बोला, नहीं, महाराज जी! मैं सभा में सुनाना चाहता हूँ। ऐसा क्यों? महाराज अकेले में तो कभी भी सुना सकता हूँ। लेकिन जब तक चार लोगों का अपमान नहीं होगा, तब तक मेरा सम्मान कैसे होगा? जब तक चार का अपमान न हो, तब तक व्यक्ति को अपना सम्मान 'सम्मान' महसूस नहीं होता है। सम्मान में हजारों की भीड़ क्यों बुलाई जाती है? सबका अपमान होना चाहिये, तब मेरे सम्मान की पूर्ति कहलायेगी। भेंट अकेले में भी तो दे सकते थे। नहीं, यदि आपको देना ही थी तो चार लोगों के बीच में देते, तो कुछ अच्छा लगता। अच्छा क्या लगता? 'अच्छा लगता' शब्द पर खोज करो। सभा में न तुझे पेड़ा खिलाया जायेगा, न रसगुल्ला खिलाया जायेगा, कुछ भी नहीं किया जायेगा। एक पुद्गलपिण्ड पर के हाथों से तेरे हाथों में रख दिया जायेगा, अच्छा क्या लगेगा? अच्छाई किसमें है ? यदि श्रीफल में अच्छाई है तो एक श्रीफल बाजार से ले लेता और हाथों में लिये घूमता। अच्छा क्या लगता है? इस सत्य को भी समझो। यह सबके साथ होता है।

कवि जब तक कविता न सुना ले, तब तक उसे चैन पड़ता है क्या? एक कविता लिख लो, जब तक कोई सुननेवाला न मिले, तब तक ऐसा लगता है जैसे कोई कीड़ा काट रहा हो। प्रज्ञा को पचाना भी एक तपस्या है। दिगम्बर मुनियों के बाइस परीषहों में एक प्रज्ञा नाम का परीषह होता है। ज्ञान के होने पर भी ज्ञान को शान्ति से सहन करना। अज्ञानता को सहन करना जितना कठिन है, उतना ही कठिन ज्ञान को सहन

करना है। आप बहुत बड़े प्रवचनकार हो और कोई आपको मंच, माला, माइक का मौका न दे और दूसरे सामान्य प्रवचन करने वाले बैठे हों, फिर देखो उसके परिणाम। कहेगा कि ये क्या प्रवचन कर रहा है ? इससे कुछ भी तो बनता नहीं है। आप सीधा कहो-उससे बने या ना बने, लेकिन तुमको करने को नहीं मिल रहा है। इन विषयों पर दृष्टिपात करो। प्रज्ञा परीषह है। ज्ञान होने पर भी अपने ज्ञान को नहीं बिखेरना, कोई आपको नहीं पूछ रहा है तब भी शान्त रहना, यह बहुत बड़ी साधना है।

जैसे-जैसे श्रमण के उपशम भाव की वृद्धि होती है, वैसे-वैसे निर्जरा की वृद्धि होती है। दोनों हाथों के बीच में जो द्रव्य है, वास्तव में उसमें आनन्द नहीं है। यदि कोई पत्थर भी पैकिंग करके तुझे भरी सभा में दे दिया जाय, तब भी तू मुस्करायेगा। घर में खोल लेना, जो होगा सो देखा जायेगा। बीच में क्या है? अच्छा लगेगा, अच्छा लग रहा है। जो अच्छा लग रहा है, वह कौन-सी वस्तु है? श्रीफल अच्छा है या अन्य कोई भेंट अच्छी है? ये कोई भी अच्छी नहीं है। यदि अच्छी है तो दूसरा तेरा शत्रु बैठा हुआ है और तेरा सम्मान चल रहा है उससे पूछो अच्छा लग रहा है क्या? नहीं लगता उसको अच्छा, तो अच्छी वस्तु कैसे? 'किं सुन्दरं किं असुन्दरम्।' लोक में कौन-सी वस्तु सुन्दर है और कौन-सी वस्तु असुन्दर है? आपको अपना बेटा असुन्दर लगता है क्या? नाक छपी हो चेहरे पर, गालों में कालोंच लगी हो, आँखों से कीचड़ टपक रहा हो, परन्तु माँ से पूछना, उसको वह बच्चा भी अच्छा लगता है। दूसरे का बालक चन्द्रमा-सा चमक रहा हो, फिर भी नाक सिकोड़ रही है। सौत का बेटा चन्द्रमा-सा हो, फिर भी तबे-जैसा लगे। स्वयं का तबे-जैसा हो, तब भी चन्द्रमा-जैसा लगे। 'किं सुन्दरं, किं असुन्दरं'। सुन्दर वस्तु क्या है, असुन्दर वस्तु क्या है? पदार्थ सुन्दर नहीं है, पदार्थ असुन्दर नहीं है। जिसका जिसमें राग है, उसके लिये वह सुन्दर है और जिसका जिसमें द्वेष है, उसके लिये वह असुन्दर है। सुन्दर द्रव्य भी असुन्दर। भैया! जीवन में ध्यान रखना, पर के द्वारा अपनी अच्छाई एवं सच्चाई का प्रमाणपत्र मत माँगना। पर के द्वारा बुराई का प्रमाणपत्र भी मत माँगना। भैया! गंभीरता से समझो यह विषय। अच्छे से समझना और सबको समझाना।

यदि परिवार को पागलपन से बचाना है, समाज को, देश को उन्मादपने से बचाना

है, तो इस विषय को समझिये। लोग पागल क्यों हो रहे हैं? दूसरे का तो भाव ही रहता है कि ये सब पागल हो जायें तो मैं ही सारे विश्व में विद्वान् कहलाऊँ, तो मैं पूज्य कहलाऊँगा। यह विश्व क्यों पागल हो रहा है? चार पुरुष मिल कर तुझे कहने लगें पागल-पागल तो व्यक्ति कहेगा मैं पागल हूँ क्या? यथार्थ मानिये, वह यही समझेगा, कि जब सभी बोलते हैं तो हो सकता है कि मैं पागल होऊँ। अब वह पागल-जैसी चेष्टायें करना भी प्रारम्भ कर देता है। यदि हजार पुरुष भी आपकी बुराई करना प्रारम्भ कर दें, उस बुराई से मेरा अपयश फैल रहा है, उसे सुनकरके कानों में रखकरके मस्तिष्क में मत ले जाना। यदि तू मस्तिष्क में ले गया, तो पहले तू पागल नहीं था, परन्तु अपयश के तनाव में आकर तू पागल हो जायेगा। वहाँ यह खोज करना चाहिये कि जो मुझे पागल बोल रहा है, वह पागल ही तो नहीं है, अथवा कषाय से भर कर बोल रहा है। इसलिये बोल सकता है। किसी को नीचे गिराने का उपाय है-उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर दो, टेंशन में डाल दो। आप किसी ऑफिस के अधिकारी हों, कोई बहुत बड़ा मस्तिष्क का काम कर रहे हों और आपको टेंशन में डाल दें, तो आपनी लेखनी यहाँ से वहाँ चलेगी। जीवन में लोग आपको हजारों बार पागल कहें, हजारों बार बुरा कहें, आपके पास समय है, मस्तिष्क है, प्रज्ञा है, तो शान्ति से कक्ष में बैठ जाना। बैठकर सामायिक करना। धीरे-से चिंतन करना-जो सामनेवाला बोल रहा है, वैसा मैं हूँ, या नहीं? यदि हूँ, तो वह गलत नहीं बोल रहा है, ठीक बोल रहा है। बोलने दो। यदि नहीं हूँ, तो उसकी कषाय बोल रही है, जबकि मैं ऐसा नहीं हूँ। अपने मस्तिष्क को ठण्डा कर लेना। किसी मनोवैज्ञानिक चिकित्सक के पास नहीं जाना पड़ेगा। जो कहनेवाला है, वह कुछ दिन बाद थक जायेगा। या तो शान्त हो जायेगा या स्वयं पागल हो जायेगा, लेकिन आप प्रतिक्रिया मत करना यदि अपना विकास चाहते हो तो। किसी ने एक ज्ञानी के बारे में एक गलत पर्चा छाप दिया। जिसने छापा है, उसकी बुद्धि गई, क्षयोपशम गया। उसने पेपर छपाया तो पैसा भी गया। धनबल का नाश हुआ, ज्ञान बल का नाश हुआ और उतना समय नष्ट किया है तो आयु बल भी नष्ट हुआ है। हे ज्ञानी! यदि तू उसको देख करके उपेक्षा कर देता तो वह स्वमेव शांत हो जाता। साधना का महामंत्र

है उपेक्षा। मैं उसे सुनना भी पसन्द नहीं करता हूँ, मैं उसे देखना भी पसन्द नहीं करता हूँ। मैं पढ़ूँगा तो मेरा समय नष्ट होगा। कहीं गलत पढ़ लिया और मेरे भाव बिगड़ गये, तो लिखनेवाले के प्रति अशुभ भाव होगा। वह भी भटकता भगवान् है। उसके प्रति भी अशुभ भाव मत करो। जब मारीचि भगवान् बन सकता है, आदिनाथ को अशुभ कहने वाला भी महावीर बनकर आ सकता है, तो विशुद्धसागर को अशुभ कहनेवाला भी कभी महावीर के रूप में बन सकता है। अब आपको क्या चिन्तन लाना है? यदि मैं इसका लिखकरके उत्तर देता हूँ तो हे ज्ञानी! जब तू लिखने बैठेगा, तो तेरे ज्ञान का ज्ञेय अशुभ बनेगा, उस व्यक्ति के प्रति अशुभ भाव बनेंगे। जब तक तू लिखता रहेगा, आस्रव जारी रहेगा और उपयोग अशुभ रहेगा। फिर तू प्रिंट कराने जायेगा, उसमें तू द्रव्य लगायेगा और जो समय उसमें लगाया, वह तत्त्व में लगाता, उतना समय नष्ट किया। फिर लोगों को देने जायेगा, भेजेगा, उसमें पैसा लगेगा। अपने परिणाम खराब करेगा, दूसरे के परिणाम खराब करेगा। ऐसे समय में करणानुयोग से पूछना, यदि बन्ध अपकर्ष काल आ गया और कहीं आयुबन्ध हो गया, तो नियम से दुर्गति का होगा। ज्ञानियो! प्रज्ञा आपके पास है, क्षयोपशम आपके पास है, विवेक आपके पास है, आपका आलोचक भी क्यों न हो, तब भी उसको प्रीति के साथ स्वीकार करना कि तू मेरा महान् उपकारी है, तेरी आलोचना से मैं डरता रहूँगा तो आगे गलत कदम तो नहीं उठाऊँगा। उपशम भाव का यही उपाय है। यदि आप यूँ सोचोगे कि उन्होंने ऐसा क्यों कहा, तो 'अधिक सफाई देना ही गलती है।' आप विकल्प मत करो। किसान खेत से धान्य निकालता है। खलिहान से जब दाने घर में लाता है, तो बहुत सारा कचड़ा खलिहान में छोड़कर आता है, पर आपको मालूम होना चाहिये कि किसान कितना समझदार होता है। खलिहान में छोड़कर आया है। ग्रीष्मकाल आयेगा, आँधी-तूफान चलेगा, कचड़ा अपने आप उड़ जायेगा, खलिहान साफ होगा। नहीं हो तो बारिश प्रारम्भ हो चुकी है, सारा खलिहान अपने आप साफ हो जायेगा। ऐसे-ही मुमुक्षु! समय दे दो, समय दे दो। तुम्हारे मन में कोई विकल्प आता है तो समय दे दो। हवा चलेगी, तो ठण्डे होंगे। घर में प्रिय-से-प्रिय व्यक्ति का भी वियोग क्यों न हो जाये, पुत्र का भी वियोग क्यों न हो जाये, लेकिन तब

भी दु:ख शान्त होता है कि नहीं ? होता है। यहाँ बहुत सारे ऐसे बेटे बैठे होंगे जिनके माँ के पहले पिता स्वर्गस्थ हो चुके होंगे। उस माँ को देखना, कुछ दिन के बाद माँ भोजन बना रही थी कि नहीं ? तुझे भोजन करा रही थी कि नहीं ? माँ विश्राम कर रही थी कि नहीं ? उस माँ को कभी हँसते देखा कि नहीं ? देखा।

प्रिय से प्रिय पति का वियोग होने पर भी पत्नि भूल गई। वह भी भोजन-पानी करते देखी जाती है। विश्वास रखो, प्रियतम का दु:ख भूल सकते हो और ऐसे भी पिता होंगे जिनके सामने माँ का वियोग हुआ होगा। एक सहारा चला जाता है तो आदमी तुरन्त दूसरा सहारा खोज लेता है। इसलिये ज्यादा रोने की आवश्यकता नहीं है। यह मत सोचना कि हाय! अब क्या होगा ? कुछ नहीं होगा। जो होता आया है, वही होगा। जो होने वाला है, वही होगा। तुम रो ही पाओगे, बिलख ही पाओगे, होने वाले को तुम टाल नहीं सकते हो। इसलिये कुछ नहीं करना। उपशम भाव।

माताओ! जीवन में कभी दु:ख आया कि नहीं आया ? आपके जीवन में ऐसे दु:ख आते हैं जो सुबह आते हैं, शाम को समाप्त हो जाते हैं। सो दूसरे दिन आप भूल जाते हो। हे भगवान्! स्मरण शक्ति तेज होती तो आज कोई पाप करते न मिलता। तू नरक भी गया होगा, यह स्मरण होता तो आज तू यहाँ भी बिलखता मिलता। नरक की यादें भूल गया, इसलिये पाप कर रहा है। तिर्यञ्च की यादें भूल गया। बेचारे कैसे उल्टे टँगे हुये हैं। जीवों के टुकड़े-टुकड़े करके छील-छील कर टाँग दिया है। याद करो, ये सब कौन हैं ? आश्चर्य तब होता है जब सभी अंश परमात्मा के हैं और परमात्मा अपने अंश को क्यों छील रहा है और क्यों छिलवा रहा है ? वस्तुधर्म भिन्न है और लोक की अज्ञानता भिन्न है। परमात्मा के द्वार पर ही, जिसको तुम परमात्मा बोल रहे हो, वहीं पर जाकर जीव की आहुति दे दी। ओ हो हो! वह कैसा परमात्मा है जो अपने अंश को अपने ही चरणों में गिरा रहा है ? क्या जब सर्वांश परमात्मा का है, तो परमात्मा के अंश का जब घात होगा, तो परमात्मा को दु:ख होगा कि नहीं होगा ? मेरी अँगुली कोई दबा देता है तो पूरे शरीर में संवेदन होता है। यदि पैर में काँटा चुभता है, तो मस्तिष्क में बोध होता है। मेरे एक अंश में कोई कुछ चुभाये तो हमारे सर्वांश में वेदन होता है। परमात्मा का अंश हूँ, तो एक किसी को पीड़ा दी जायेगी, तो परमात्मा भी पीड़ित हो

जायेगा। जो पीड़ित होता है, वो परमात्मा कैसा? और पीड़ित नहीं है, तो परमात्मा कैसा? दोनों तरफ जाइये। ये लोक की परम्परा में उलझ करके सम्यक्त्व का विनाश मत कर लेना, चारित्र का विनाश मत कर लेना, तत्त्वबोध का विनाश मत कर लेना। जैनकुल में जन्म लेने मात्र से जैनत्व की पूर्ति नहीं हो जाती है जब तक भीतर का विवेकज्ञान नहीं है। आज से यह प्रत्याख्यान करो। जरा-सी पीड़ा हुई तो भगवान् मेरे से ही रूठा है। जितनी विपत्ति है, मेरे घर के लिये ही है, मेरा भगवान् ऐसा नहीं है जो तेरे ऊपर कषाय करता हो, जो कषाय करता है, वह भगवान् नहीं होता है। हे ज्ञानी! तू ही ऐसा कषायी है जो करके आया, सो अब भोग। बोला, भगवान्! सामने वाला कैसा पापी आदमी है, तब भी सुखी है और मैं चौबीस घण्टे धर्म करता हूँ, तब भी दुःखी हूँ। ज्ञानी धर्म तो कर रहा है, लेकिन कर कहाँ पा रहा है? जितना करके आ रहा है, उससे ज्यादा तू भगवान् को दोष दे रहा है। जितनी सेवा नहीं की, उतने दोष दे दिये कि मेरे घर में इतने संकट। भगवान् संकट नहीं दे रहे हैं। तेरे उपशम भाव नहीं है, इसलिये तू संकट में है।

ज्ञानियो! ध्यान रखना, चाहे तुम श्रावक हो, चाहे श्रमण हो, उपशम भाव की आराधना तो आज से ही करनी पड़ेगी। परदोष उन्हें ही दिखते हैं, जो परमार्थ स्वभाव से दूर रहते हैं। जब तू भोजन करने बैठता है, ग्रास तोड़ता है, तब तेरा चेहरा नीचे होता है। एक ओर पिता बैठा है, दूसरी ओर माँ बैठी है, सामने मित्र बैठा है। भीड़ के बीच होने पर भी भीड़ नहीं देख पाता जब तू ग्रास की अनुभूति लेता है। तू कहता है कि संसार के बीच में रह करके आत्मा की अनुभूति कैसे ली जा सकती है? ऐसे-ही पत्नि से तीव्र राग होता है, वह भी सामने बैठी होती है, लेकिन जब तू ग्रास तोड़ता है तो न बेटे को देखता, न बेटी को। किसी को नहीं। नीचे निहारता है, सारा-का-सारा लोक खड़ा रहता है और धीरे-से मुख के अंदर चला जाता है। जब भीतर गया, तो तू अनुभूति भी भीतर-ही-भीतर ले रहा है। जैसे ग्रास को मुख में रखने पर पर में दृष्टि नहीं होती है, ऐसे ही जब एक योगी निजानन्द की अनुभूति लेता है, तब जगत् में दृष्टि नहीं ले जाता है और जगत् में दृष्टि है, तो मुख में ग्रास नहीं ले जा पाता है, तो योग की अनुभूति कहाँ जा पायेगी? थाली का ग्रास मुख में रखने पर कितनी एकाग्रता होती है, यह सब अनुभूत है। तो फिर योग के लिये एकाग्र क्यों नहीं होना पड़ेगा? यह तभी संभव है,

जब स्वलक्ष्य है। जिसका पर लक्ष्य है, वह स्वानुभूति से दूर है। ज्ञानियो! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि क्रोध को क्षमा से नष्ट कर दो। अस्त्र-शस्त्रों से जीतना कोई जीतना नहीं है। उपशम भाव से जीत कर बताओ। जो अस्त्र-शस्त्रों से जीतता है, वह क्रूर होता है और जो क्षमा से जीत कर आता है, उसका नाम महावीर होता है। हे वर्द्धमान! आप क्षिप्रा के तट पर उज्जयिनी नगरी में श्मसान में ध्यान किये खड़े थे और वह जीव उपसर्ग करने आ गया था रौद्ररूप में रुद्र बनके, फिर भी हे वर्द्धमान! कुपित ही हो पाया, क्रोध कुछ नहीं कर पाया और आपके क्षमा के धनुष-बाण ने परास्त कर दिया, महादेव कहलाने वाला आपको महावीर कह कर चला गया। बोला मैंने सारे उपक्रम कर लिये, लेकिन आपको हिला नहीं सका। हे वर्द्धमान! आप महावीर हो गये। कभी धनुष उठाया नहीं, बाण लगाया नहीं, निशान लगाया नहीं, महावीर कैसे हो लिये? जिसने कषाय को जीत लिया है, वही महावीर है। जो कषाय को नहीं जीत पाया, वही अधीर है। चौबीस तीर्थंकर की प्रतिमा को देख लेना, एक भी अस्त्र-शस्त्र नहीं मिलेंगे। ये तीर्थंकर की वीतराग प्रतिमा है। एक वशिष्ठ रामायण है। उस ग्रन्थ में लेखक लिखता है कि श्री राम को दशरथ मना रहे हैं, बेटा राम! आप अपनी बात को स्वीकार करो। वहाँ राम कहते हैं, हे तात्! मैं राम नहीं हूँ। तो कौन हो तुम? जो अर्हन्त का स्वरूप है, वही मेरा स्वरूप है। और-कुछ भी नहीं हूँ।

न मैं शिष्य हूँ, न गुरु हूँ। न हीन हूँ, न दीन हूँ। न मैं कृष्ण हूँ, न शुक्ल हूँ। क्या हूँ? मैं एकमात्र चिदानन्द रूप हूँ। जितने रूप दिख रहे हैं, ये पर्यायों की परिणतियाँ हैं, परन्तु मैं पर्यायातीत चिद्रूप हूँ। ऐसा जिसका लक्ष्य है, उसे न कोई अशुभ दिखेगा, न शुभ दिखेगा। उसे तो 'किं सुन्दरं, किं असुन्दरम्।' क्या सुन्दर है, क्या असुन्दर है? जो है, सो है।

आज माँ भोजन परोसे, माताओं की आदत होती है, परोसने के बाद जैसे ही ग्रास मुख में रखा, भैया! कैसा लगा? तो कहना-'किं सुन्दरं, किं असुन्दरम्।' वही तो जो है, सो है।

आचार्यभगवान् बहुत अच्छी बात कह रहे हैं। जैसे कामनायें-वासनायें उपशमता को प्राप्त हो जाती हैं तो ज्ञानियों को चाहिये है, ये पंचमकाल है, इस काल में जब अच्छे काम करने के परिणाम हों तो कर ही लेना चाहिये। यदि आपने सुबह के परिणाम की

प्रवृत्ति शाम तक छोड़ दी, सो गये काम से। भैया! दीक्षा का चौक पुर गया, फिर भी वापस आना पड़ जाता है। ये परिणामों की दशा है और मैं पुनः पुनः कह रहा हूँ कि जिन-जिनको कभी मुनि बनने के परिणाम हों तो मानकषाय अभी से छोड़ना। चार दीक्षार्थी हैं। जिसने सोचा था कि मैं बड़ा बनूँगा, उसको कहीं पीछे बिठाल दिया गया। एक दीक्षार्थी ऐसा था जिसको भोजन कराया गया, मेंहदी रचाई गई, वे वृद्ध थे, युवाओं को लोग पहले देख रहे थे, उनको कोई देख नहीं पाया, उनको मेंहदी माताओं ने बाद में रखी, तो वे इतने गुस्सा हुये कि दूसरे गाँव चले गये, कहते हैं कि मुझे दीक्षा लेनी ही नहीं है। क्यों? अभी से दुभात हो रही है, आगे क्या होगा? भो ज्ञानी! तू दीक्षा का पात्र बना ही कब था? ये नाटक होते हैं। इसीलिये होते हैं कि तुम्हारा स्वभाव मालूम चलना चाहिये कि तुम्हारा कितना वैराग्य है? जो पहले से ही कहता हो कि मेरा ऐसा-ऐसा भोजन चलता है, ऐसी-ऐसी सामग्री चाहिये। दो मोबाइल चाहिये, अब ऐसे दीक्षार्थी होंगे जिन्हें पिच्छि-कमण्डलु, शास्त्र के साथ पहले ही मोबाइल भेंट करवाना पड़ेगा क्या? अरे ज्ञानी अज्ञानी! राग की ही पूर्ति करना था तो जिनदीक्षा क्यों? जिनदीक्षा लेना है तो राग की पूर्ति क्यों? सोचो-सोचो, भीख माँगना पड़ेगी जब बैलेन्स समाप्त हो जायेगा तो किसी से कहेगा 'भैया! इसमें बैलेन्स डलवा दो।' महाराज! धिक्कार हो, तुम महाराज क्यों बन गये थे?

भीतर का विषय समझो- उपशम भाव। एक विषय का उपशम भाव नहीं, हर विषय का होना चाहिये। आप तो एक नियम ले लो कि किसी भी निर्ग्रन्थ श्रमण को अपने हाथ से पिच्छि-कमण्डलु और जिनवाणी (जो ज्ञान उपकरण है, संयम उपकरण है, शौच उपकरण है) साधना के साधन हैं, निर्दोष आहार, इसके अलावा कोई वस्तु नहीं देंगे। यदि आपने जैनमुनि को साधना के विपरीत द्रव्य दिया है, तो तुम्हें यति हत्या का दोष लगेगा। क्यों? क्योंकि यति तो मात्र इतना ही होता है-जो मोक्षमार्ग में यत्न करे। कोई निर्ग्रन्थ यहाँ पधारे और कहे कि हमें अध्ययन करना है तो लाखों करोड़ों खर्च हो जायें, तुम विद्वान् की व्यवस्था कर देना, अध्ययन करवाना, लेकिन दूसरे कामों में द्रव्य का नाश मत करना। ज्ञानी! कम-से-कम इतना नियम ले ले, कि किसी महाराज से मोबाइल पर बात नहीं करना और मोबाइल पर कह रहा है कि- 'नमोऽस्तु महाराज!' भले बोल लो, लेकिन मन तो नहीं बोलता होगा, मैं विश्वास के साथ कहता हूँ। सुनो,

ये जिनवाणी है, उसको तुम अन्यथा नहीं कर सकते हो। ज्ञानी! मैं तेरी घड़ी रखूँगा तो मेरी ही घड़ी समाप्त हो जायेगी। एक किसान होता है वह भी तारे देख करके, धूप देख करके समय का ज्ञान कर लेता है, तो फिर तुम तो योगी हो चुके, तुम्हें ज्ञान होना चाहिये। इतना निष्णात हो जाना चाहिये कि तुम्हें घड़ी की जरूरत नहीं रहे, घड़ी तुम्हें देखे कि महाराज उठ गये हैं, अब इतना समय हो गया है। उतना अभ्यास हो जाना चाहिये। भैया! इतना ही नियम ले लेना कि हाथ में मोबाइल मत देना। विद्वान् लोग सुधरेंगे, तभी काम बनेगा। आहार देना आप तो।

निर्ग्रन्थों को वही द्रव्य देना जिससे उनके स्वाध्याय व तप में वृद्धि हो। जिससे प्रमाद बढ़े, असंयम बढ़े, ऐसा द्रव्य कभी साधुओं को नहीं देना।

ये परिणामों की धारा है। तेरे घर में बहुत सारी सामग्री सड़ रही होगी, परन्तु कोई कह दे कि मुझे देदो, तो तू देगा नहीं। यह राग की धारा है। उपशम भाव होते ही व्रत को धारण कर लेना चाहिये। ये पंचमकाल है, इसमें एक समय भी नहीं निकालना। तुमने सुबह शाम किया और भाव बदल गये, फिर व्रत नहीं ले पायेगा। आप स्वयं सोचो, आप जितना संयमित जीवन जी रहे हो, आपने पूर्व में जो संयम ले लिया, सो ले लिया। आज विषमता-ही-विषमता है। जितने युवाओं को दीक्षा लेना हो, भैया! जल्दी ले लेना। तुम चाहो कि घर में ठीकठाक हो जाये, फिर ले लूँगा। आज तू युवा है, फिर तेरे माता-पिता बूढ़े होंगे, फिर और विषमता बढ़ेगी। उनके जाने के पहले उनके हाथ से आहार ले लो। वह ज्यादा अच्छा है। तुमने सोचा कि इनकी व्यवस्था बना दूँ, तो फिर बन गई व्यवस्था। बताऊँ, संसार कैसा है? ज्ञानी कहता है कि मैं पूरे घर को खुश कर लूँ, पूरी समाज को खुश कर लूँ, सारी व्यवस्था बना दूँ। मेंढकों को एक टोकनी में भर लाना और ज्ञानी से कह देना कि इनको सम्हाल कर रखना, एक भी बाहर नहीं निकलना चाहिये। मेंढक टोकनी में, जब तक एक को सम्हालेगा तब तक दूसरा उचक जायेगा। ऐसेही परिवार तो टोकनी का मेंढक है, एक को सम्हालो तो दूसरा उचक जाता है। किसी को मत सम्हाल, परिणामों को सम्हाल ले। यह जगत् सम्हलने वाला नहीं है, परिणाम सम्हाल ले। परिवार तो मेंढकों की टोकनी है। मैं तो समझ गया था कि ये तो मेढकों की टोकनी है, क्या सम्हालना इन्हें, निकल चलो धीरे से। कैसे लोग

हैं कि रोज घर में पिटते होंगे, तब भी घर में ही जाते हैं। कुटो-पिटो तुम्हारे भाग्य में ही लिखा है। मैं तुम्हें भगवान् बनाना चाहता हूँ, तुम कुटना चाहते हो तो कुटो।

शीघ्र ही व्रतों को धारण कर लेना चाहिये। जैसे किसी ने कह दिया कि भोजन कर लो, लेकिन हमने जहर मिला दिया है, सत्य बताना, कितने लोग खायेंगे? कोई नहीं। हे ज्ञानियो! यदि आपको मालूम चल जाये कि इस भोजन में जहर मिला है, तो सब छोड़ देंगे। ऐसे ही पाँच इन्द्रियों के भोग हैं। ये कर्म के जहर से मिश्रित हैं। फिर भी इनको सेवन करेगा क्या? कितना ही भूखा रह लेगा परन्तु जहर मिश्रित भोजन ग्रहण नहीं करना। कर्म का क्षय करना ही श्रेष्ठ है। जीवन का सार संयम है, चारित्र है, जिसको देव भी पूजते हैं। ज्ञानियो! अपने शील को सुरक्षित रखो, कालकूट जहर का सेवन मत करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"स्त्रियों का स्वरूप"

या चैषा प्रमदा भाति लावण्य-जलवाहिनी।
सैषा वैतरणी घोरा दुःखोर्मिशतसंकुला॥ 120॥

अन्वयार्थ—या च एषा = जो यह **प्रमदा** = तरुणा स्त्री **लावण्य-जलवासिनी** = अपनी सुन्दरतारूपी जल से भरी हुई नदी के **भाति** = समान प्रतीत होती है, **सा एषा** = यही वह स्त्री, **दुःखोर्मिशतसंकुला** = हजारों दुःखरूपी तरंगों से भरी हुई, **घोरा** = भयानक **वैतरणी** = नरक की वैतरणी नदी के समान है।

भावार्थ—अपने सौन्दर्यरूपी जल से भरी हुई यह प्रमदा रूपी नदी हजारों दुःख रूपी तरंगों से व्याप्त भयानक नरक की वैतरणी नदी के समान है।

स्त्रियों को किसने बनाया?

संसारस्य च बीजानि दुःखानां राशयः पराः।
पापस्य च निधानानि निर्मिता केन योषिताः॥ 121॥

अन्वयार्थ—संसारस्य बीजानि = संसार को उत्पन्न करने के लिए बीज के समान **च दुःखानां पराः राशयः** = और दुःखों से भरी हुई गम्भीर खान के समान **च पापस्य निधानानि** = तथा पापरूपी मैल के निधान समान, **योषिताः** = इन स्त्रियों को, **केन निर्मिताः** = किसने बनाया है।

भावार्थ—संसार की उत्पत्ति के लिये बीजभूत, दुःखों की उत्कृष्ट राशि और पापों की भण्डाररूपी इन स्त्रियों को किसने बनाया है?

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी सारसमुच्चय जी में समझा रहे हैं कि यदि ध्रुव भगवान्-आत्मा की प्राप्ति का लक्ष्य है, तो बुद्धिपूर्वक अशुभ से निज आत्मा की रक्षा करो, बुद्धिपूर्वक शुभ में प्रवृत्ति करो और बुद्धिपूर्वक शुद्ध में लक्ष्य रखो। जिसका शुद्ध पर लक्ष्य है, जिसका सत्य प्राप्ति का लक्ष्य है, अन्तरङ्ग में साध्य की सिद्धि पर लक्ष्य है, उपादेय पर लक्ष्य है, वही व्यवहार व्यवहारभूत है जो

परमार्थ की दृष्टि से युक्त है। जिस जीव की व्यवहार क्रिया में परमार्थ लक्ष्य नहीं है, वह उसकी व्यवहार क्रिया व्यवहाराभास है। परमार्थ को छोड़ करके जो व्यवहार है, वह व्यवहाराभास है। सम्यग्दृष्टि जीव का वचन भी शुभभूत होता है, उसका मन भी शुभभूत होता है, उसके शरीर की चेष्टा भी शुभभूत होती है।

मन में परमेष्ठी का चिन्तवन, तत्त्वों का चिन्तवन, तत्त्व का निर्णय और जगत् के सात तत्त्वों में तेरा चिन्तन चल रहा है, लेकिन निज जीवतत्त्व पर चिन्तन नहीं है, परजीव आदि पर चिन्तन है, वह भी परभूतदृष्टि है। हम तत्त्वों का जो भी चिन्तन करें, सात तत्त्वों के चिन्तन में भी जो निज आत्मभूत चिन्तन है, वही परम उपादेय है। शेष ज्ञेय है, हेय है। लेकिन परम उपादेयभूत एकमात्र निजज्ञेयतत्त्व है। जाननेयोग्य सभी हैं, लेकिन पर को जानना छोड़ने के लिये, निज को जानो निज में रमण करने के लिये। जिस जीव ने पर को जानने के लिये ही पर को जाना है, निज को जानने का विकल्प ही मन में नहीं ला रहा है, उस जीव का पर का ज्ञान परभूत ही है।

सम्यग्दृष्टि जीव चाहे समरभूमि में हो, चाहे तीर्थभूमि में हो, पर निज तीर्थ से विहीन नहीं होता। पनघट से चली माँ, सिर पर घट रखे हुये है। एक नहीं, दो नहीं, तीन-तीन कलश रख कर माँ जा रही है। मार्ग में मिल गई सखियाँ। उन सखियों से बतिया रही है। बातें करते-करते हाथ भी छोड़ दिये। जो नयनों से देख रहा है, उसे पनघट से आई माँ बातें करते दिख रही है। कितनी ही चर्चायें चल रही हों, लेकिन माँ की दृष्टि कहाँ पर है? हाथ हिल रहे हैं, वचन चल रहे हैं, गर्दन पर दृष्टि है कि कहीं कलश न गिर जाये। बस, सम्यग्दृष्टि जीव चाहे तीर्थभूमि में खड़ा हो, चाहे समरभूमि में खड़ा हो, अपने चैतन्य घट से दृष्टि नहीं हटाता है। जड़ पानी के लिये इतनी एकाग्रता, कि कलश न-गिरने का इतना विकल्प है, दृष्टि स्थिर किये है। जिसके भीतर श्रद्धा का नीर भरा हो, जिसके भीतर सम्यक्त्व की लहरें दौड़ रही हों, उस जीव के अन्दर निज के उपयोग की धारा शुभभूत चल रही है और लक्ष्य शुद्ध पर टिका है। अपना चिन्तवन आगम नहीं होता। आगम तो आगम है और जिनको सल्लेखना चाहिये, वे अनुवीचि भाषण

बोलना सीखें, आगम के विपरीत बोलना न सीखें।

ज्ञानी! कोटि-कोटि उपवास कर लेना, हजारों वर्ष तक खड़े होकर मौन साधना कर लेना और शरीर को बिल्कुल स्थिर करके आँख बन्द करके बैठ जाना, ध्यान में लीन हो जाना, परन्तु तुम्हारा चिन्तवन, तुम्हारा भाषण यदि आगम के विपरीत चल रहा है तो विश्वास रखना, वह आर्त्त-रौद्रध्यान ही होगा, धर्म्यध्यान नहीं हो पायेगा। कुमरण ही होगा, क्योंकि आगम में लिखा हुआ है कि जो साधक या श्रावक अनुवीचि भाषण करना नहीं जानता है, उसका समाधिमरण नहीं होता है। शब्दों का माधुर्य, शब्दों का जादू टपक सकता है। इसका निर्णय तब होगा, जब अन्तिम श्वास में हाय-हाय करते मिलोगे या शुद्धोऽहं बुद्धोऽहं में लीन मिलोगे। निर्णय कौन करेगा?

पुण्य की सत्ता पुण्यबन्ध का कारण नहीं है। भूत के पुण्य को भोग रहा है, भूत के पुण्य की सत्ता पुण्यबन्ध का कारण नहीं है। पुण्य के भोग के काल में, पुण्य के योग के काल में यदि पाप से दूर परिणति है, तो पुण्य-आस्रव बन्ध का कारण है। पुण्य के भोग को भोग डाला, वह तो राख ही है। कोई यह समझ कर मत बैठ जाना कि मेरा पुण्ययोग चल रहा है, मैं सर्वत्र सुखी हूँ तो मेरा पुण्यास्रव भी चल रहा है। पुण्यबन्ध के काल में, पुण्य के उदय के काल में जो पापों में लीन नहीं होता है, उसका पुण्य भी पुण्यबन्ध का ही कारण है। जिस जीव का पापोदय भी चल रहा हो, तब भी पुण्यकार्य में लीन हो, परिणाम निर्मल किये है, उसका पाप-उदय भी पापबन्ध का कारण नहीं है, वह पुण्य-बन्ध का ही कारण है। भावों की दशा है। ज्ञानियो! जैसे सन्तान को सम्हालते हो, लोक को सम्हालते हो, ऐसे ही परिणामों को सम्हाल लो तो परमात्मा बन जाओ। जैसे नट बाँस पर चढ़ कर काययोग को सम्हाल रहा है, वैसे मनोयोग को सम्हाल लेता, तो दुनियाँ में नाटक क्यों दिखाना पड़ता? तू वहीं होता है जहाँ वर्द्धमान विराजते हैं। काययोग को सम्हाल लेना चारित्र की पूर्णता नहीं है, वचन योग को सम्हाल लेना चारित्र की पूर्णता नहीं है, वह तो मनोयोग नहीं सम्हल रहा है।

इन्द्रियों को प्रवृत्ति या निवृत्ति में कोई स्वामी है, उसका नाम मन है। जिसने मन को जीत लिया है, वही जितेन्द्रिय है। ज्ञानियो! द्रव्य-इन्द्रियों को जीत लेने मात्र से कोई सम्यग्दृष्टि नहीं हो जाता। बाहर का जितेन्द्रियपना, बाहर का वैराग्य कोई सम्यक्त्व की पहचान नहीं है, क्योंकि इन्द्रियों का जितेन्द्रियपना तो अभव्य मिथ्यादृष्टि के भी होता है, लेकिन मोक्षमार्ग का जितेन्द्रियपना सम्यक्त्व के साथ इन्द्रिय-विजय है, तो मोक्षमार्गी है और सम्यक्त्व के साथ जितेन्द्रियपना नहीं है, तो संसारमार्गी ही है।

माताओ! भ्रम में मत रहना कि मैंने यह छोड़ा, मैंने वह छोड़ा, मैं मोक्षमार्गी हूँ। इन जड़ की क्रियाओं मात्र से काम नहीं चलेगा। इन क्रियाओं को करने के साथ तुम्हारे परिणामों की दशा क्या चल रही है? अपनों में राग, पर में द्वेष यदि है, तो कितनी ही उत्कृष्ट साधना करो, लेकिन अभी तुम बहिरात्मा हो। यदि आप उपवास भी कर रहे हो, सोले का भोजन भी कर रहे हो, प्रतिमाधारी भी हो, यदि आपको अपने बेटे में तीव्र राग है और जेठानी के बेटे को देखकर नाक सिकोड़ रही हो, तो तू बहिरात्मा ही है। क्योंकि तुम्हारा जीवतत्त्व के प्रति साम्यभाव नहीं है।

मुनि बन कर भी बहिरात्मपने को छोड़ पाना दुर्लभ है। क्यों दुर्लभ है? मेरा गण, मेरा गच्छ, मेरा संघ, ये सर्वस्व है, अन्य कुछ भी नहीं है। ये बहिर्भाव चल रहा है। जयसेन स्वामी जी की भाषा में कहूँ, समयसार जी में, दुरात्मा है, क्योंकि आत्मतत्त्व से दूर है। जो तत्त्व तेरे से भिन्न है, अत्यंताभाव है, तो चेला-चेलियों का शरीर तेरा कब से हो गया? मेरे रागादिक भाव मेरी आत्मा का धर्म नहीं है, तो शिष्य-शिष्याओं का राग मेरी आत्मा का धर्म कब से हो गया? यदि जीव इनके राग में लिप्त हो रहा है, तब भी बहिरात्मा है। शुभक्रिया मात्र शुभोपयोग नहीं है। सम्यक् के साथ शुभक्रिया है, तो शुभोपयोग है और सम्यक् के साथ शुभक्रियायें नहीं हैं, तो अशुभ-उपयोग ही है।

प्रथम गुणस्थान से तृतीय गुणस्थान पर्यन्त अशुभ उपयोग है। चतुर्थ गुणस्थान से छटवें गुणस्थान तक शुभ उपयोग है। सप्तम गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान

तक तारतम्यता से शुद्धोपयोग है। तेरहवाँ-चौदहवाँ गुणस्थान सिद्ध परमात्मा, शुद्धोपयोग का फल है। यह आगमिक व्यवस्था है। इससे बाहर जाओगे तो आगम शून्य है। इसमें सन्तुष्ट मत हो जाना। ज्ञानियो! मैंने धर्मात्माओं को देखा है, कितने धर्मात्मा होते हैं? रोज स्नान करके मन्दिर आ रहे हैं, इसी को धर्म मान रहे हैं। ऐसे भी जगत् में लोग हैं जो मात्र स्नान करके स्वयं को धर्मात्मा मानते हैं। यदि कोई स्नान न करे तो उसके प्रति नाक सिकोड़ते हैं। ज्ञानी! नाक सिकोड़ना बन्द कर, पानी का स्नान बाद में कर लेना। जब तेरी ग्लानि ही नहीं गई, तो धर्म कहाँ से प्रकट होगया? ग्लानि का विसर्जन करो। पानी के नेक से स्नान करने से धर्म होता है तो दिगम्बर मुनि तो पापी हो जायेंगे, क्योंकि वे कभी स्नान नहीं करते, यही उनका धर्म है। जगत् के दर्शन स्नान को धर्म मान रहे हैं। जलचर जीवों को मार देना और जलकायिक जीवों का घात करना कोई धर्म नहीं होता है। षट्काय के जीवों की हिंसा का त्याग करना, इसका नाम धर्म है। बहुत सोचना पड़ेगा। धर्म के बारे में व्याख्यान करना है तो बहुत भीतर जाना पड़ेगा। जीव ने समझ लिया है कि मैंने स्नान कर लिया है, स्वच्छ वस्त्र पहन लिये हैं, मैं धर्मात्मा हो गया। ज्ञानी! कषाय की परिणति क्या चल रही है? उपयोग की धारा देहजन्य है कि उपयोगजन्य है?

एक गृहीलिंग, एक पाखण्डि लिंग। पाखण्डि यानि दिगम्बर साधु। कुन्दकुन्द स्वामी ने 'समयसार' जी में 'पाखण्डि' शब्द का प्रयोग किया है। पाखण्डि यानि गुरु। गृहीलिंग यानि श्रावक, पाखण्डि लिंग यानि निर्ग्रन्थ। ये देहाश्रित धर्म है। इनको मात्र प्राप्त कर लेना धर्म मत स्वीकार लेना। इनकी प्राप्ति बर्तन को गर्म करने के समान है। बर्तन को गर्म करने के लिये बर्तन गर्म नहीं किया जाता, दुग्ध को तपाने के लिये बर्तन गर्म किया जाता है, लेकिन बिना बर्तन गर्म किये दुग्ध गर्म होता नहीं है। देहधर्म स्वीकार किये बिना आत्मधर्म प्राप्त होता नहीं, परन्तु देहधर्म मात्र आत्मधर्म होता नहीं। दुग्ध तपाने के लिये बर्तन तपाना पड़ता है, लेकिन मात्र बर्तन का तपना दुग्ध का तपना नहीं है। दूध नहीं है और बर्तन तपा रहे हो, तो क्या सार है? ऐसे ही अन्तरङ्ग भावों की विशुद्धि का तो अभाव

है, अन्तरङ्ग परिणति अशुद्ध चल रही है और बहिरङ्ग धर्म विराट है, तो वह बहिः बहिः मात्र है, अन्तरङ्ग शून्य है।

जिसने सम्यक् भूतार्थ विवक्षा को समझ लिया, उसका व्यवहारधर्म अत्यन्त पवित्र पलेगा। कितनी बार मुख मोड़ चुके हो, कितनी बार नाक सिकोड़ चुके हो? मनोज्ञ-अमनोज्ञ, इन दोनों इन्द्रियविषयों पर तुम्हारा क्या भाव चल रहा है? अन्दर की बात बताऊँ? काली रोटी देखकर भी जीव के परिणाम खराब हो जाते हैं। इच्छित भोजन न आये तो भीतर भावों को तौलो क्या हो रहा है? मन का भोजन बना हो, तब भी परोसने वाला न दे, सामने दिख रहा है, इस समय अपने परिणामों को नापो कि क्या हो रहा है? भावों के इण्डीकेटर में भी कुछ होने लगता है। उसकी तारतम्यता बढ़ने लगती है। ऐसे-ही इष्ट वस्तु के होने पर भी तुझे न मिले, उस समय अपने भावों के इण्डीकेटर को देख कि क्या हो रहा है?

दुनियाँ को ज्ञेय बना डाला, लेकिन अब निज भावों को ज्ञेय बनाइये। जब मेरे अनुसार सब लोग चलें, तब मुझे मित्र दिखाई देते हैं। परन्तु मेरे विरुद्ध भी चलें, तब भी मैत्रीभाव दिखे, इसका नाम धर्मात्मा है। हाथ से हाथ मिलानेवाले और गले से गले मिलनेवाले मित्र अनंत मिल जायेंगे, परन्तु जो गले में बाण मारनेवाला हो, तब भी कहे कि नहीं, इस जीव को मत सताइये, इसने धनुष-बाण अज्ञानता में उठाया है, मेरा धर्म अहिंसा है। चाहे दूसरा मरे, चाहे मारनेवाला मरे, लेकिन हिंसा हो जायेगी तो मेरा धर्म चला जायेगा। इसका नाम श्रमण धर्म है। उपयोग की धारा देखो। जब तक आप इतने सहज उपयोग की धारा में नहीं आ पा रहे हो तो अभी धर्म बहुत दूर है। भेष से धर्मात्मा की पहचान तो हो जायेगी, परन्तु वह भाव से धर्मात्मा नहीं बन पायेगा।

भैया! कोई उपसर्ग कर दे, सबकुछ छीन ले जाये, तब भी हाथ जोड़कर कह देना, मेरे मित्र! तुझे जो ले जाना है ले जा, परन्तु अपने भावों को कलुषित मत कर और मेरे भावों को कुलषित मत होने दे। जिसे तू छीन रहा है, वह छिनने ही लायक है। छीन कर ले भी कहाँ जायेगा? जो मेरे घर में रखी थी, वो तेरे घर में रख जायेगी। वस्तु का स्थानान्तरण हुआ है, वस्तु का विनाश कहाँ हुआ

है? मेरे राग की पूर्ति नहीं हो पायेगी, इसलिये दु:ख है। वस्तु के जाने का कोई दु:ख नहीं है। यदि चोर डाका भी डाल ले जाये, तो सत्य बताना, कहाँ लेकर जायेगा? लोकाकाश के बाहर कोई द्रव्य जाता ही नहीं है। इतना चिन्तन करने के लिये घी नहीं पीना पड़ेगा, घी छोड़ना पड़ेगा। घी पीनेवाला तो विकारों में बहेगा। घी छोड़ना पड़ेगा, तब तत्त्व की गहराई में पहुँच सकेगा। जो यूँ कह रहा हो कि लोकाकाश के बाहर कोई द्रव्य जाता ही नहीं है, छः द्रव्यों का परिणमन लोकाकाश में है, मात्र मेरी आँखों से दूर हुआ है, लेकिन वस्तु दूर नहीं। अपने चतुष्टय से बाहर आज तक कोई वस्तु गई ही नहीं है। स्व द्रव्य, स्व क्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव। जगत् में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो स्वचतुष्टय से बाहर गया हो। अहो रागियो! तुम्हारे राग की पूर्ति नहीं हो पाती है, इसलिये तुम रोते हो। पदार्थ के लिये कोई नहीं रोता। शुभ-उपयोग को समझिये। इष्ट के मिलने पर दुनिया प्रसन्न होती है, अनिष्ट के मिलने पर अशुभ भाव मन में आ जाते हैं।

गृह त्याग, निर्ग्रन्थ दीक्षा, त्यागी बनना, साधु बनना, इन सबका लक्ष्य मात्र इतना होना चाहिये कि हे परमेश्वर! मैं सारे जगत् में एकत्व दृष्टि कैसे रख पाऊँ। वह तभी सम्भव है, जब जगत् से सम्बन्ध दूर करके जिओगे। आनन्द का जीवन जीना है तो सम्बन्ध भिन्न करके जीना पड़ेगा। सम्बन्धों में जीनेवाला कभी शान्ति का जीवन नहीं जी सकता। शान्ति का जीवन जीना है तो सम्बन्धों से दूर होना पड़ेगा। जहाँ-जहाँ सम्बन्ध है, वहाँ-वहाँ बन्ध है और जहाँ-जहाँ बन्ध है, वहाँ-वहाँ संसार है। इसलिये सम्बन्धों से दूर होना पड़ेगा। विकार उत्पन्न कराता है तो सम्बन्ध। विषाद उत्पन्न कराता है तो सम्बन्ध। जो विकार व विषाद से दूर होना चाहता है, उसे सम्बन्ध से शून्य होना होगा। जब सम्बन्ध-शून्य हो जायेगा, तो अपने शुभाशुभ सम्बन्ध से भी शून्य हो जायेगा। ऐसा श्रमण शुद्धोपयोग में लीन हो जायेगा।

जिनागम कितना गहरा है। यथार्थ बताऊँ, आप क्या समझ रहे हो सो आप जानो, वह आपका विषय है, परन्तु मैं तो सुबह-शाम आनन्द लूटता हूँ। जो आनन्द श्रुत की अनुभूति में है, वह अन्यत्र नहीं। **श्रुत का विकल्प ही शुभ-उपयोग**

है और श्रुत की अखण्डता ही शुद्धोपयोग है। श्रुत में अखण्ड लीनता, यही शुद्धोपयोग है और कोई शुद्धोपयोग की धारा नहीं है। अखण्ड श्रुतज्ञान शुद्धोपयोग है। खण्डित श्रुत शुभ-अशुभ है। मेरे मित्रो! यदि जीवन में नहीं पा पाओ तो कोई विकल्प नहीं, कम-से-कम सुन तो लो।

अखण्ड श्रुत क्या है?

ज्ञानी! एकटक मेरे चेहरे को देख रहे थे आप। इस समयकाल में दूसरा कोई सामने से निकल जाता है, जैसे कोई कैमरे के सामने से निकले, तो तुरन्त कहते हो भैया! नीचे, नीचे। क्यों? तुम मेरी अखण्ड धारा को खण्डित मत करो। जैसे हम सामने से निकलते हैं तो देखनेवाले को विघ्न होगा। देखने वाला भले ही यह कहे कि मैं महाराज को एकटक देखता रहा, लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से आगम कहेगा, नहीं, अन्तराय पड़ा था, आपका दृश्य खण्डित हो गया था। ऐसे ही ज्ञानियो! मेरे ज्ञान में जब निज शुद्धात्मा ज्ञेय बन कर आता है, उस काल में यदि भगवान् महावीर हमारे ज्ञेय में आ जायें, तो मेरा उपयोग खण्डित हो गया। भगवान् महावीर भी, पंचपरमेष्ठी भी, गुरु भी, शास्त्र भी, देव भी मेरे ज्ञान में परज्ञेय का नहीं आना, मेरे निज ज्ञान में ज्ञान का ही होना, इसका नाम अखण्डित ज्ञान है। जब परमेष्ठी के आने से ज्ञान खण्डित हो सकता है, फिर जिसके ज्ञान में पाँच पाप झलक रहे हों, उसका अखण्ड ज्ञान कहाँ? अन्वय व्यतिरेक। जिसके ज्ञान में पंचपरमेष्ठी आयें, वह शुद्धोपयोगी नहीं हो सकता, फिर जिसके ज्ञान में पाँच पाप आ रहे हैं, ऐसा अविरत सम्यग्दृष्टि शुद्धोपयोगी कहाँ हो सकता है?

भैया! यथार्थ यह है कि जब तक व्यक्ति किसी को सुनता-समझता नहीं है, तब तक भ्रम हो सकता है। ज्यों ही तत्त्व को सुन लेता है, समझ लेता है, तब समझ में आता है कि वस्तुव्यवस्था की प्ररूपणा कैसी हो रही है और कहनेवालों ने मुझे क्या-क्या सुना कर रखा है। अनुवीचि भाषण के अभाव में जो भी कथन होगा, उस जीव का नियम से कुमरण ही होगा। 'प्रतिक्रमणत्रयी' ग्रन्थ में लिखा है कि जीवन में तुम चाहे करणानुयोग की कर्मप्रकृतियों की व्याख्या करो, चाहे प्रथमानुयोग के महापुरुषों का वर्णन करो, चाहे द्रव्यानुयोग में सात तत्त्व की प्ररूपणा करो, लेकिन हे मुमुक्षु! यदि आपने आगम का एक अक्षर भी तोड़ कर

बोला है तो आप उसी क्षण से मिथ्यादृष्टि हो और मिथ्यादृष्टि का सम्यक् मरण होता नहीं। जीवन की अन्तिम श्वास के समय कोई पूछे कि णमोकार सुनाऊँ क्या? वह कहेगा कि हल्ला बन्द करो। समझ लो, कि आयुबन्ध के काल में इसका अशुभ उपयोग था, सो दुर्गति का बन्ध हो गया है, सो मरण के काल में महामन्त्र नहीं सुन सकता। जिसका अशुभ आयु का बन्ध हो चुका है, बन्ध अपकर्ष काल में, उसके मरणकाल में वैसे ही परिणाम होंगे। कितना ही पापीजीव हो, बन्ध अपकर्ष के काल में उसके प्रशस्त परिणाम हुये हैं, सुगति का बन्ध हो गया है, तो मृत्यु के काल में वह कहेगा-भैया! मैंने जीवनभर पाप किये हैं, अब मुझे किसी निर्ग्रन्थ गुरु से प्रायश्चित दिलवा दो, मुझे सल्लेखना मरण करना है। समझ लो वही सच्चा धर्मात्मा है। जो यूँ कहे कि आप क्या जानो, मैंने बहुत धर्म किया है, शान्त रहो, हल्ला मत करो, मैं सब समझता हूँ, मुझे आपका कुछ नहीं सुनना, तो फिर समझ लो कि बन्ध अपकर्ष काल में इसने अशुभ आयु का बन्ध किया है। यह करणानुयोग का नियम है। जिसने अशुभ आयु का बन्ध कर लिया है, जीवनभर धर्म किया, लेकिन मृत्यु के अन्तर्मुहूर्त पहले धर्म छोड़ देगा। प्रतिमाधारी प्रतिमा छोड़ देगा, भाव संयमशून्य हो जायेंगे। मेरी बड़ी करुणा जगत् के प्रति है। मेरा विद्वानों से कहना है कि आपके सम्पर्क में जितने ज्ञानीजीव आयें, इस गाथा को आप जरूर सुनाना-

मदिसुदणाणबलेण दु सच्छंदं बोल्लदे जिणुद्दिट्ठं।
जो सोर होदि कुदिट्ठी ण होदि जिणमग्गलग्गरवो।।3।।रयणसार।।

जगत् में बाहुबल से बड़ा कोई बल है तो वह बुद्धि का बल होता है। बाहुबल वाला तो मात्र एकाध को परास्त कर पायेगा, लेकिन जिसके पास बुद्धि का बल है, वह पता नहीं कितने लोगों को क्या कर देगा।

ज्ञानियो! सबसे बड़ा शत्रु अनागम का प्रवचन करने वाला है। अस्त्र-शस्त्र चलायेगा तो मात्र वर्तमान पर्याय को क्षति पहुँचायेगा, लेकिन जिसने सभा में बैठ कर अनागम का उपदेश कर दिया, तो उसने कोटि-कोटि जीवों के श्रद्धा गुण का नाश कर दिया। सम्यक्त्व से बड़ा कोई रत्न नहीं है।

जीव ने मति-श्रुतज्ञान के बल से युक्त होकरके पूर्व में कोई पुण्य किये होंगे,

कोई गुरुओं को शास्त्र भेंट किये होंगे, उसके प्रभाव से अथवा शुभ परिणामों से मरण किया होगा, सो उसके प्रभाव से तुमको अच्छा क्षयोपशम मिल गया। 'कल्याणकारकम्' ग्रन्थ में लिखा हुआ है कि जो जीव जीवनभर शान्त परिणामों से जीता है और उपशम भाव से मरण को प्राप्त करता है, उस जीव के इतने अच्छे संस्कार रहते हैं कि जातिस्मरण तक हो जाता है। इसलिये कषाय मन्द रखो। गुस्सा नहीं करना। क्षण-क्षण में चटकना, यह आदत कभी नहीं डालना। मति-श्रुतज्ञान के बल से, जो जीव आगम की गद्दी पर बैठकर स्वच्छन्द भाषण करता है, वही मिथ्यादृष्टि है। ऐसा 'रयणसार' ग्रन्थ जी में लिखा हुआ है। हे परमेश्वर! हे वीतराग जिनभारती! हे दिगम्बर वीतरागी तपोधन! आपके चरणों में मात्र इतनी भावना भाता हूँ कि अन्तिम श्वास तक मेरी जिह्वा आगम के विपरीत न हिल पाये। संकट सहन कर लेना, उपसर्ग सहन कर लेना, लेकिन जिनमार्ग को दूषित नहीं करना। अपनी पर्याय के सुख के राग में अरहन्त की मुद्रा को बदनाम मत करना। अपने मान के राग में इस श्रावक के धर्म को विपरीत मत कर देना।

भैया! इस पर्याय का नाम क्या? यह पर्याय ही नहीं बचेगी तो नाम कौन लेगा? परन्तु नाम के पीछे, संज्ञा के पीछे संज्ञान मत खो देना। जब-जब द्रव्यानुयोग की गहराई में जाता हूँ, तब-तब लगता है कि तुम्हारा धर्म तो कुछ-और ही है, जिसमें भेद का नाम ही नहीं है, अभेददृष्टि है, शान्त क्यों हो? यही तो चमत्कार है कि दो मातायें एक स्थान पर शान्त बैठी हों। यहाँ तो इतनी सारी मातायें हैं, वे शान्त क्यों हैं? द्रव्यदृष्टि की चर्चा जब शान्ति देती है, तो द्रव्यदृष्टि की अनुभूति कितनी शान्ति देती होगी? मुनि बनकर तो देखो। अक्ष नहीं सुधारना है, आँख सुधारना है। अक्ष यानि आँख, अक्ष यानि आत्मा। आत्मा सुधर गई तो आँख तो अपने आप सुधर जायेगी। मैं सबसे पहले भगवान् की आँख की ही वन्दना करता हूँ। वीतरागता नयनों में टपकती है, राग भी टपकता है तो नयनों में। तुम तो इन्सान हो, श्वान भी आँखों को पढ़ना जानता है। प्रेम की आँख है तो पूँछ हिलाता है, कषाय की आँख है तो पूँछ झुका कर भाग जाता है। श्वान भी आँख

को पहचानता है। तुम आँखों को नहीं पहचानो, आत्मा को पहचानो।

महाराष्ट्र में एक दहीगाँव तीर्थ है। उसके बगल में नाते-पोते एक गाँव है। सभा लगी थी, वहाँ मुमुक्षु भाई बैठे हुये थे। भैया! ऐसा नियोग है कि हर प्रकार के ज्ञानी मेरे पास आ जाते हैं। एक ज्ञानीजीव सभा में आया। जैसे-ही तत्त्वदृष्टि पर प्रवचन हुये, वह बेचारा खड़ा हो गया। कहता है, महाराज! मैं जाता हूँ, 'आप मेरा ब्रेनवॉश कर रहे हो। यदि ऐसा हो गया, तो कैसे जीऊँगा?' सत्य यही है, जब तत्त्व में दृष्टि जाती है तो जीव के परिणाम बदल जाते हैं।

छतरपुर में एक भाई कह रहा था, महाराज! जब से आप आये, मेरे घर में झगड़ा होने लग गया। ऐसा क्यों? जब मैं प्रवचन सुन कर जाता हूँ तो घर में कुछ करने का मन नहीं करता, वही-वही गूँजता है, तो पत्नि चिल्लाती है, बोलती है, चले जाना महाराज के साथ। मैंने कहा, ज्ञानी! तू कितना पुण्यशाली है, फिर भी कितना सुन्दर अवसर छोड़ रहा है। जब वह कहे कि चले जाओ, तो देवी के पैर छूना और कहना, हे देवी! तू भी भावी भगवान् बन, मैं जा रहा हूँ।

यथार्थ मानिये, शान्तचित्त से जब तत्त्व का निर्णय होता है, तब कषाय के आवेग में भूल भले कर रही हो, लेकिन भूल समझ में आती है। स्थिर पानी में मोती दिखाई देता ही है; चंचल पानी में, हिलते पानी में कुछ नहीं दिखाई देता है। जब चित्त स्थिर हो जाता है, तो चैतन्य की सत्यता नजर आने लगती है। जब चित्त चलायमान होता है, तो जगत् में कुछ भी समझ में नहीं आता। भैया! शुद्धोपयोग के पास पहुँचने के लिये अशुभोपयोग का पूर्ण प्रत्याख्यान करना पड़ेगा और शुभ-उपयोग की लीनता का विसर्जन करना पड़ेगा। आप शुभ उपयोग में मस्त हो रहे हो। उन क्रियाओं में ही उलझे हुये हो, उससे उठना ही नहीं चाह रहे हो। उससे भी आपको शान्त होना पड़ेगा बुद्धिपूर्वक। कब तू सामायिक में बैठा ? कब तूने कहा-ब्रह्मानन्द स्वरूपोऽहं, विकारीभाव रहितोऽहं, सहजानन्द स्वरूपोऽहं? जब पवित्र भावना ही नहीं भा पा रहा है, करने-करने में लगा है, मरने का ध्यान नहीं है। बुरा लगे तो अभी लग जाये। कब तक करता रहेगा मरण? करना बन्द करो, मरण सुधारना है तो। करने-करने में जीवन नष्ट हो

रहा है। अस्सी साल का हो गया, तब भी करने-करने में लगा है। मरघट याद कर रहा है। इन्तजार कर रहा है कि आप कब पधार रहे हो? तुम्हें याद ही नहीं है कि मुझे जाना है। कितना और करोगे? जितना बिखेर कर बैठे हो, उतना तो सम्हाल नहीं पा रहे हो, और बिखेर रहे हो। जितने बाहर में बिखरोगे, उतना उपयोग चंचल होगा। एक दुकान से दूसरी दुकान बन गई, शान्ति मिली, कि भङ्ग हुई है? 'आहा! आनन्द आ गया।' ये मानकषाय की अशुद्धि को शुद्धि बता रहे हैं। सोचो मैं कहाँ हूँ?

इस चातुर्मास के पहले मैं आगरा के लोगों को नहीं जानता था। अब और विकल्प बढ़ जायेंगे। इसलिये साधु का धर्म है चातुर्मास करो और आगे बढ़ो। भक्त को बुलाना नहीं पड़ता। जिसके भाव होते हैं, दर्शन के लिये स्वयं आता है। ये पीली-पत्री भेजना निर्ग्रन्थों का धर्म नहीं है। निजस्वरूप में लीन होना निर्ग्रन्थों का धर्म है।

यदि एक चातुर्मास की पत्रिका पूरे देश के साधु न छपवायें, तो एक तीर्थ खड़ा हो जाये। इतना द्रव्य व्यय होता है। पूरे साधु निर्णय कर लें कि नहीं छपाना है स्वयं के चित्र। भगवान् के चित्र पहले दीवाल में, फिर कुछ दिन बाद जमीन में पड़े मिलते हैं, अविनय होता है। जिनको आना होता है, स्वयं पता करके चले आते हैं। इतना द्रव्य यदि अरहन्त की प्रतिमा में लगा दो तो सदियों-सदियों तक नमोऽस्तु शासन जयवन्त होगा। आपने एक ग्रन्थ प्रकाशित कर लिया तो ग्रन्थ को हजारों लोग पढ़ेंगे, तो अनेकों सम्यक्त्व को प्राप्त होंगे, ज्ञान को प्राप्त होंगे। बताओ, सोच सम्यक् है कि नहीं है? कितने वनस्पतिकाय जीवों की रक्षा होगी? सत्य है, ऋषभदेव के पहले भी कितनी चौबीसियाँ हुई हैं, उनके पहले भी चौबीसियाँ हुई हैं, जब तीर्थंकर-जैसे पुण्यात्मा की डायरेक्टरियाँ नहीं मिल रही हैं, तो ज्ञानी! विशुद्धसागर की डायरेक्टरी कहाँ बचेगी? तू कहाँ पड़ा है चक्कर में? तू किसको शाश्वत् बनाना चाहता है? जो शाश्वत् है, उसका विनाश होता नहीं है। जिसका विनाश होता है, उसे तुम शाश्वत् नहीं रख सकते हो। पर्याय अशाश्वत् है, उसे तुम बचा नहीं सकते हो। द्रव्य शाश्वत् है, उसे तुम नशा नहीं

सकते। वस्तुव्यवस्था तो व्यवस्थित है। जो पहले था, वह आज नहीं बचा और जो आज है, वह आगे नहीं बचेगा। एक दिन ऐसा आयेगा कि कहने वाला भी नहीं बचेगा। यह सत्य है कि नहीं? है, परम सत्य है। फिर झूठ के पीछे क्यों पड़े हो?

जो कुछ भी उत्पन्न होता है, उसका विनाश नियत है पर्याय दृष्टि से, लेकिन द्रव्यदृष्टि से किसी वस्तु का विनाश होता ही नहीं। ज्ञानियो! मुस्कराकर रहो, आनन्द के साथ जिओ। जब तक जीना है सो जिओ। जब शरीर नष्ट हो जायेगा, तो अगली पर्याय मिलेगी। ज्ञानी! पुरुषार्थ ऐसा करो कि संसार की असमान-जाति पर्याय का नाश हो जाये, मेरी शुद्ध पर्याय उद्घाटित हो जाये। चर्म की प्रभावना के लिये मुनि थोड़े-ही बना हूँ। ये तो अपने आप होती है। इसको करना नहीं पड़ता।

ज्ञानी पारसनाथ टोंक में जाकर कहे-हे नाथ!मैं इतनी दूर से चलकर आया हूँ तेरे चरणों में, यश वर्द्धताम्, कीर्ति वर्द्धताम्। श्री वर्द्धताम्। हे अभागे! तू क्या कर रहा है? सिद्धभूमि में आकर भी कर्म ही माँग रहा है? कर्मातीत होना है तो हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाओ, कुछ माँगने की आवश्यकता नहीं है। सिद्धभूमि में जाकर भी यश वर्द्धताम्? यश कर्म नहीं है क्या? तूने भगवान् के पास जाकर भी कर्म ही माँगा। पुण्यक्षीण, बुद्धिविहीन। माँगने भी गया तो कहाँ गया? माँगना ही था तो ऐसा माँगता जिसका कभी विनाश न होता। **'जिनगुणसम्पत्ति होउ मज्झं'** बोल लो, बोल लो। कहीं एकेन्द्रिय वृक्ष बन गये तो वहाँ वचनबल ही नहीं मिलता। इतई बोल लो, मौका है, घर में तो रोना ही है। हे जिनेन्द्रदेव! मुझे आपसे कुछ भी नहीं चाहिये। हे जिनदेव! आपके गुणों की सम्पत्ति मुझे मिल जाये, और आपसे कुछ भी नहीं चाहता हूँ। माँगो तो ऐसा माँगो।

एक बुंदेलखण्डी भिखारी था। वह बहुत ज्ञानी भिखारी था। एक महात्मा पधारे हुये थे और बड़े-बड़े वरदान दे रहे थे। वह भिखारी भी पहुँचा। कहता है, महाराज! मैं भिखारी अवश्य हूँ, लेकिन मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं बार-बार आऊँ। यदि देना है तो तथास्तु बोलिये। तो वरदान देने वाला भी देखता है कि मैंने आज तक ऐसा जीव नहीं देखा। बोले, माँगो भैया! क्या माँगते हो? बोला, पहले तथास्तु

बोलो। जो माँगूँगा वह दोगे कि नहीं?

तथास्तु, तथास्तु, तथास्तु। तीन बार बुलवा लिया। अब सुनो मैं क्या चाहता हूँ? मेरे शरीर में कपड़ा नहीं है, नेत्रों से दिखता नहीं है, खाने को दाना नहीं है, परिवार तो है ही नहीं, अब मैं आपसे बार-बार माँगने आऊँगा नहीं, एक बार माँग रहा हूँ, बस। देने वाला सोचता है कि गजब हो गया। मैं सोचता था कि जगत् में मैं ही ज्ञानी हूँ, यह तो मेरे से भी ज्ञानी निकल पड़ा। बोला, माँग क्या माँग रहा है? मैं अपने भवन में, सोने के कटोरे में, नाती को खीर खाते देखूँ और मैं आपसे कुछ भी नहीं माँगता हूँ। एक बार में ही सबकुछ माँग लिया। ऐसे ही तुम तो भगवान् से कहना हे स्वामी ! मुझे आपसे कुछ नहीं चाहिये। बस, जिनगुण सम्पत्ति होऊ मज्झं। हे जिनेन्द्र! आपके गुणों की सम्पत्ति मिल जाये; मुझे आपसे कुछ भी नहीं चाहिये। मैं ऐसा-वैसा भिखारी नहीं हूँ जो आपके पास रोज-रोज आऊँ। आज माँग लेना जब माँगने की आदत पड़ ही गई है तो, लेकिन तेरे निज भाग्य से मिलेगा। महाराज! पहले ऐसी कह दी, फिर ऐसी भी कह दी? जो है, सो है।

आचार्यभगवान् क्या कह रहे हैं? इस जगत् से आत्मा की रक्षा करना है तो संयमाचरण की ओर चलो।

ज्ञानियो! बड़े धैर्य से सुनना, धैर्य से समझना और माताओ! आप क्षमा करना। अब जो है, सो है। जैसा वर्णन यहाँ नारियों का कर रहे हैं, वैसा वर्णन नारियों को पुरुषों में लगा लेना, क्योंकि ये भी आपके लिये वैसे ही हैं।

इस संसार से पार होना है। जो नारी तुमको सुन्दर दिख रही है, वह लावण्य की नदी के तुल्य है। जैसे नदी का वेग तट पर खड़े होकर देखो तो बड़ा अच्छा लगता है, लेकिन बह गया तो प्राण ही जायेंगे। ऐसे हे मुमुक्षु! नारी रूपी नदी का तट तुझे बड़ा सुन्दर लगता है, पर इसमें यदि बह गया तो चारित्र के प्राण ही जायेंगे। ये नारी नदी के तुल्य है। इस नदी में जो-जो बह गया, प्राणों को खो गया। ऐसे ही नारी-सरिता में जो बह गया, वह संयम के प्राण खो गया। क्या करोगे? इस पर्याय में तुम कोटि-कोटि उपाय कर लेना, लेकिन तू

'बालब्रह्मचारी' शब्द से शून्य हो चुका है। भैया! तू कितना ही पुरुषार्थ कर लेना, कोटि-कोटि द्रव्य दान भी दे देना, लेकिन कोई तुझे बालब्रह्मचारी नहीं कह सकता है। जगत् में सबसे बड़ा व्रत कौमार्य व्रत है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"धन-यौवन नाशक स्त्री"

इयं सा मदनज्वाला वह्नेरिव समुद्भुता।
मनुष्यैर्यत्र हूयंते यौवनानि धनानि च॥ 122॥

अन्वयार्थ-इयं सा = जो यह, **मदन ज्वाला** = काम का दाह है सो, **वह्नेः इव** = अग्नि के समान, **समुद्भुता** = बढ़ जाता है, **यत्र** = जिस काम की आग में, **मनुष्यैः** = मनुष्य के द्वारा **यौवनानि धनानि च** = यौवन और धन, **हूयंते** = होम दिये जाते हैं।

भावार्थ-अग्नि के समान यह वह काम की ज्वाला है, जिसमें मानवों के द्वारा धन और यौवन होमे जाते हैं, भस्म कर दिये जाते हैं॥

"स्त्री नरक-गर्त में गिरानेवाली है"

नरकावर्त्तपातिन्यः स्वर्गमार्ग दृढार्गलाः।
अनर्थानां विधायिन्यो योषितः केन निर्मिताः॥ 123॥

अन्वर्यार्थ-नरकावर्त्तपातिन्यः = जो नरक के गड्ढे में गिरानेवाली, **स्वर्ग मार्ग दृढार्गलाः** = स्वर्ग के मार्ग में चलने के लिए रोकने को मजबूत अर्गला या भींत है, ऐसी **अनर्थानां विधायिन्यः** = अनेक आपत्तियों को करानेवाली **योषितः** = स्त्रियाँ, **केन** = किसके द्वारा **निर्मिताः** = बनायी गई है?

भावार्थ-नरक के गड्ढे में गिरानेवाली, स्वर्ग में मार्ग को रोकने के लिए दृढ़ अर्गला के समान और अनेक पापक्रियाओं को देने वाली इस स्त्री को किस विधाता ने बनाया?

॥सद्-देशना॥

आचार्य-भगवान् कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' ग्रन्थ में परमसमरसी भाव की प्राप्ति के भूतार्थ मार्ग का उपदेश दे रहे हैं। सम्यक् सोच, सम्यक् विचार, सम्यक् पुरुषार्थ जीव के आत्मविकास का मूलमन्त्र है। जिसका सोच विपरीत हो, उसका पुरुषार्थ भी विपरीत होता है। पुरुषार्थ विपरीत होगा, तो पुरुष का गमन भी विपरीत

होगा। आवश्यकता है अपने चिन्तन की प्रशस्त धारा की ओर जाने की। जीवन की धारा वैसी निर्मित होती है, जैसी विचारों की धारा होती है। चिन्तवन से व्यक्ति के चारित्र का निर्माण होता है। अशुभ चिन्तन से अशुभ भाव बनेगा, फिर अशुभ भाव से उसका चरण भी अशुभ ही होगा। जो-जो अशुभ करते हैं वे-वे अशुभ सोचते हैं। अशुभ सोचे बिना कोई अशुभ नहीं कर सकता। यदि किसी बालक ने गुटका खाना भी प्रारम्भ किया होगा, किसी की ताकत नहीं है सीधे पुड़िया को मुख में रखने की। दृष्ट, श्रुत। पहले जीव देखता है, सुनता है, उपयोग ले जाता है, फिर तद्रूप परिणमन कर पाता है। **उपयोग जाते ही जीव अपने आप को खो देता है। यदि संयमरूप द्रव्य को देखा, संयमरूप द्रव्य को सुना, उसमें उपयोग ले गया, तो असंयम को खो देगा और असंयम को देखा, असंयम को सुना, असंयम में उपयोग ले गया, तो संयम को खो देगा। इसलिये कम देखना, कम सुनना और जिससे अपनी आत्मा का अहित हो उस जगह उपयोग नहीं ले जाना। समय को व्यर्थ में बरबाद करना ज्ञानियों का कार्य नहीं है।** आज पूर्ण स्वार्थी बनकर सुनना और पूर्ण स्वार्थी बनकर जीना। लोग क्या कह रहे हैं, यह नहीं देखना है। निजलोक क्या कह रहा है, इसे देखना है। लोक आपको हर समय अच्छा कहें, यह नियत नहीं है। यदि आप साधु भी बनना चाहोगे तो कोई ज्ञानी कह देगा-ओ हो! अच्छी बात है क्या? तुमको वैराग्य ही हुआ था तो किसी की कन्या के साथ धोका क्यों किया? आपको शादी नहीं कराना चाहिये थी। अब आप कर्तव्य का निर्वाह कीजिये, आप तो दीक्षा लेने जा रहे थे, आप कोई गलत काम करने जा रहे थे क्या?

श्रेष्ठ कार्य करने भी जाओगे तब भी लोग टोकेंगे। अशुभ काम करने जाओगे तब भी लोग टोकेंगे। ज्ञानियो! पर की आँख को देख करके निज का निर्णय नहीं लेना। निज की आत्मा से पूछ करके निज का निर्णय लेना। जिस व्यक्ति से कोई भी कार्य सिद्ध न होता हो, ऐसे पुरुष से तुम सलाह लेने जाओगे, तो वह भी आपको सैकड़ों सलाह दे देगा। सलाहकारों की सीमा नहीं है। नाना सलाहों

से कार्य सिद्ध नहीं होगा। सम्यक् सोच और सम्यक् पुरुषार्थ से ही कार्य सिद्ध होगा। आपके पास प्रज्ञा है, विवेक है, ज्ञान है उससे निर्णय करो। जगत् को जानो, जगत् को देखो, परन्तु जब तक स्वयं का चित्त प्रशस्त न हो, तब तक वस्तु का निर्णय नहीं करना। जिस काल में आप अपने आप से दूर हो, उस काल में निर्णय नहीं लेना। जीव अपने आप से दूर होता है जब काम से भरा हो। जब कभी क्रोध से भरा हो, जब कभी भूख से पीड़ित हो, उस समय के निर्णय को आप सत्य मत मानना। स्वयं की भी बात को सत्य मत स्वीकारना। जब इन कषायों से भरे हुये स्वयं सत्य नहीं बोल सकते हो, तो दूसरा जो इन कषायों से भरा होगा, वह तुम्हें क्या सत्य सलाह देगा? क्या यहाँ ऐसे बेटे नहीं होंगे जिनने कभी जीवन में पिता के पैर न छुये हों?

ब्राह्मण को प्रसन्न करना हो तो दक्षिणा दे दो। क्षत्रिय सम्राट को प्रसन्न करना है तो भेंट दे दो। व्यापारी को खुश करना हो तो उससे सामग्री खरीद लो। गुरुओं को प्रसन्न करना हो तो उनको कुछ देना नहीं पड़ता, मात्र उनके चरण छू लो, वे उतने से ही खुश हो जाते हैं। लौकिक गुरु माता-पिता आदि। परमार्थ गुरु मात्र दिगम्बर गुरु।

जब आपने अपने पिता के चरण छुये, वह तारीख अपनी डायरी पर लिख लेना और जब गद्गद् भाव से नमस्कार किया हो। कितना ही अभागा पिता होगा, जब बेटा चरण छूता है तो पिता का हाथ सिर पर पहुँच जाता है। उस तारीख को भी नोट कर लेना। मित्र! जिस दिन तुम पिता को गाली दे रहे हो, उस दिन डायरी को देखना। फिर कहना, बेटा! ये डायरी का दिन सत्य है कि आज का दिन सत्य है? यह वही पिता को मैं गाली दे रहा हूँ। ऐसे अभागे पुत्र से पापी कौन होगा जो अपने पिता को गाली दे रहा होगा। पर विश्वास रखना, यह गाली बेटा नहीं दे रहा है। या तो लोभ दिला रहा है या क्रोध दिला रहा है। पुत्र! यदि तुम्हारे पिता को गाली देने के भाव भी मन में आ रहे हों तो तुरंत कायोत्सर्ग करके मौन ले लेना। भाव तुम्हारे बिगड़ ही चुके हैं, मुख नहीं खुलेगा तो

कम-से-कम पिता यह तो नहीं सोच पायेगा कि बेटे ने मुझे गाली दी है। तेरे भाव तो बिगड़ ही चुके हैं, लेकिन पाँच मिनिट मौन इसलिये ले लेना कि जो मैं सोच रहा हूँ वह सत्य है क्या? और जो मेरे मुख से गाली उत्पन्न करवा रहा है वह मैं हूँ क्या? मैं वही हूँ जिसने डायरी में लिख कर रखा था कि मैंने चरण छुये थे। माताओ! ध्यान से सुनो। जब अशुभ भाव आ रहे हों, तब जीवन का कोई निर्णय नहीं लेना, क्योंकि पिता को गाली देने वाला वही बेटा है जिसने चरण का स्पर्श किया था। आज वह गाली देने जा रहा है। वह बेटा यदि सोच लेता कि क्या मैं सत्य हूँ, तो उसका हृदय स्वयं उत्तर दे देता कि नहीं-नहीं, तुमने गलत निर्णय लिया है। यह कषाय बुलवा रही है, बेटा नहीं बोल रहा है। बेटा जब बोलेगा तब पिता कहकर ही बोलेगा। जो-जो अशुभ निर्णय हुये हैं, वे स्वयं के सत्य ने नहीं किये हैं। स्वयं के सत्य को साथ ले लेते तो अशुभ निर्णय न होते।

मित्रो! तुम हजारों मित्र बना लेना, लेकिन अपने मन को मित्र बनाकर अवश्य चलना। कहीं मन शत्रु हो गया तो जगत् का कोई मित्र तुम्हारा साथ नहीं देगा। जिनका मन शुभरूप चलता है, जिनका मन पापों से बचा है, उसका मन ही मित्र है। जब मन ऐसी मित्रता से युक्त हो, तो मन की सलाह लेकर ही कार्य करना। दूसरे के मन के अनुसार कभी कदम उठा मत देना। जब स्वयं का मन खिन्न हो, तब जीवन में कभी भी निर्णय मत लेना, क्योंकि खिन्नता में विशालता नहीं होती, खिन्नता में संकोच होता है। संकोच के काल में जो भी निर्णय लोगे, वह छोटा ही लोगे। जब चित्त प्रसन्न होता है, गद्गद् हृदय होता है, तो सारा विश्व विशाल दिखाई देता है और जब विशाल हृदय से निर्णय लोगे तो तीर्थंकर जैसा निर्णय होगा। जिसके जीवन में 'सत्वेषु मैत्री' सूत्र प्रवेश कर जाता है, वह जगत् के प्राणिमात्र के बारे में हित सोचता है। **प्राणिमात्र का हित उसके कर्म से होगा। प्राणिमात्र का हित हो, या ना हो, लेकिन हित सोचने वाले को तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध नियम से होता है।** अशुभ चिन्तन आते ही हार्मोन्स बदल जाते हैं, शरीर उष्ण हो जाता है, शरीर में भरी धातु-उपधातु पिघल कर बाहर निकलना

प्रारम्भ हो जाती हैं। यह चिन्तन की गर्मी है। कामी कामिनी का चिन्तन करता है तो उसकी धातु बिना निकाले निकलना प्रारम्भ हो जाती है, यह चिन्तन का प्रभाव है। जब तेरे अशुभ चिन्तन से शरीर की धातु निकल सकती है, तो शुभ चिन्तन से कर्म भी झड़ सकते हैं। जिन व्यक्तियों को जैनदर्शन का बोध नहीं है, वे अभी समझ नहीं रहे हैं। रोग से नाक बहुत कम फूटती है। मौसम की गर्मी से बहुत कम फूटती है। तेरे तनाव की गर्मी से सर्वाधिक फूटती है। जब व्यक्ति तनाव में इतना अधिक डूब जाता है तो शरीर झेल नहीं पाता है, तो रक्त बहना प्रारम्भ हो जाता है। ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक पागल वे हुये हैं जो पर के बारे में सोच करके निज को सोच नहीं पाये। वे विक्षिप्त हो गये। जब आपका आप पर वशीकरण नहीं चल रहा है, तो आपका वश पर में क्या चलेगा? यदि नियन्त्रण है, संयम है, साधना है, निरोग होना चाहते हो, कर्मातीत होना चाहते हो, तो जगत् से अतीत होकर रहना पड़ेगा। जो आप सुन रहे हो, अभी लगता है कि मैं महाराज जी के प्रवचन सुन रहा हूँ। सामान्य लगता है, लेकिन हे ज्ञानी! यही विषय आप गुप्तरूप से सुनोगे तो आपको मालूम चलेगा कि यह धर्म बोल रहा था कि दर्शन बोल रहा था?

जो आप धर्म की बात सुन रहे हो, यही परम दर्शन है, यही मनोवैज्ञानिक चिकित्सा है, यही वैज्ञानिक तत्त्व है। **आपको सुखमय साधुमय जीवन व्यतीत करना हो तो पर से अपेक्षा करना छोड़ दो। जो पर से अपेक्षा छोड़ देगा, उसकी उपेक्षा कर देगा, उसका सुख प्रारम्भ हो जायेगा। अपने बल पर जियेगा तो सुखमय जियेगा।** एक छात्र कहता है अपने मित्र से, 'भैया! मेरा इतना काम रह गया है, आप लिख दोगे क्या?' ऐसा बोलते ही आप उसके सामने अपनी हीन भावना प्रकट कर रहे हो, परावलम्बी हो गये हो। आप निर्णय कर लो कि मैं लिख लूँगा, तो किसी का चेहरा देखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। चेहरा पर के वे देखें जो स्वयं में पुरुषार्थहीन हों। जिनका पुरुषार्थ प्रबल है, वे पर के चेहरे देखते रहेंगे तब तक बहिरात्मपने को नहीं छोड़ पायेंगे। पर का चेहरा देखना बन्द कर देंगे, उसी दिन परमात्मा बन जायेंगे। परमात्मा का चेहरा देखना।

पर का चेहरा पर की अशुभ पर्याय को देखना मेरा परमात्मा पद की प्राप्ति का मार्ग कैसे हो सकता है? भगवान् को भी देखा तो किस रूप में देखा?

दो गोरे, दो साँवरे, दो हरियल, दो लाल, सोलह स्वर्ण समान।

जिनकी आँखें रंग-विरंगी हैं, उनने भगवान् को भी रंग में देखा। जिनका हृदय निज में है, वे रंग को छोड़ करके 'वन्दे तद्गुण लब्धये', गुणों को देखते हैं।

चन्द्रप्रभु जिनालय में विराजे पारसनाथ स्वामी कितने सुन्दर लगते है? तूने भगवान् की सुन्दरता देखी, कि प्रतिमा की सुन्दरता देखी? भगवान् की सुन्दरता देख लेता तो कहने नहीं आ पाता कि कितने सुन्दर हैं। गुण को देखता तो गुण में लीन हो जाता। मक्खी कभी बताने नहीं आती कि गुड़ कितना मीठा है। इतनी तन्मय हो जाती है कि अपने पंखों को भी तोड़ बैठती है। हे ज्ञानी! तुझे प्रभु के गुण में इतना तन्मय हो जाना चाहिये था कि तेरे मिथ्यात्व के पंख टूट जाना चाहिये, असंयम के पंख टूट जाना चाहिये और निज में लीन हो जाना चाहिये। मक्खी तो रसना के वश तन्मय हुई, तुम प्रभु के गुणों के रस में लीन होगये होते तो यह कहने नहीं आते कि पारसनाथ कितने सुन्दर हैं? परमार्थ दृष्टि से पारसनाथ की सुन्दरता को देखनेवाला भी अब्रह्म में है। भूल मत करना, यह आगम अध्यात्म की शैली है और जो समझ नहीं पाता, झेल नहीं पाता, वह कहता है कि क्या बोल दिया महाराज ने? परमार्थ दृष्टि से तू पारसनाथ की सुन्दरता देख रहा है, यह भी अब्रह्म है। हे ज्ञानी! तू व्यवहार से सुन्दरता देख रहा है, यह तेरे शुभ-उपयोग का साधन है। अब क्यों कह दिया? ब्रह्म यानि शुद्धात्मानुभूति और शुद्धात्मानुभूति से भिन्न हुये हैं, इसलिये अब्रह्म है। कुशील आदि अन्य अब्रह्म मत समझ लेना।

निर्णय तत्त्व का करना है और जीवन का करना है तो उस समयकाल में कभी मत करना जब तुम तीन से भरे हो-काम, क्रोध, लोभ। क्योंकि उस समय तुम्हारा स्वयं का चित्त भी सत्य नहीं है। जब पिता को गाली दे चुका होता है, इसके बाद तू स्वयं देखना। क्रोधी लोगों को मैंने रोते देखा है। 'प्रवचनसार' जी की

प्रवचन-वाचना चल रही थी छतरपुर में। एक भैया बेचारा विक्षिप्त था। पागल पुरुष को शासन भी छूट दिये है, उनको दण्डसंहिता नहीं लगती। सात वर्ष तक का बालक कोई उपद्रव कर दे, उसके लिये दण्ड-संहिता नहीं लगती। मालूम है? हर विषय का ज्ञान होना चाहिये। पागल पुरुष हो, शिशु हो, उसे दण्डसंहिता नहीं लगती। वह युवा मस्तिष्क से विक्षिप्त था। जैन था। जो जिस कुल का होता है, उसकी हरकतें भी वैसी होती हैं। वह पागल अवश्य था, लेकिन पागलपन में किसी को गाली नहीं देता था। भजन गाता था, विनती गाता था, बारह भावना सुनाता था, परन्तु इतना ध्यान नहीं रखता था कि कब क्या कहना है। प्रवचन के समय श्रोता मन्त्रमुग्ध सुन रहे थे। वह भैया आया। भरी सभा में कोई देख नहीं पाया। मंच के पीछे से आया और मेरे सिर पर हाथ रख कर पीठ ठोक कर कहता है-बेटा! अच्छा, बहुत अच्छा। अच्छे प्रवचन करना। बहुत अच्छे कर रहे हो। करो, और करो। मैंने पीछे मुड़ कर देखा तो कहता हैकि नहीं-नहीं, कुछ नहीं। तुम तो प्रवचन करो। इतना कह कर शान्ति से बैठ गया। देखो, इस जीव के परिणाम तो देखो। पागल बाद में है, पहले भटकता भगवान्-आत्मा है। 'प्रवचनसार' की वाचना में वहाँ पण्डित जी बैठे हुये थे। वे आपा खो गये। उस बेचारे के गाल पर दो चाँटे मार दिये। मुझे अच्छा नहीं लगा, किसी को भी अच्छा नहीं लगा। ज्ञानी! वह इतना ज्ञानी होता, तो बोलता क्यों? वह तो अज्ञानी था ही, परन्तु तुम इतने अज्ञानी क्यों हो गये कि जिनवाणी के सामने उसके गाल पर चाँटा मार दिया? जैसे ही पण्डित जी ने चाँटा मारा, फिर उनको विवेक जगा। पण्डित जी की आँखों में तुरन्त आँसू टपकने लगे। अब माहौल ही बदल गया। बोले, महाराज! क्या बताऊँ? मैं अपने आप को नहीं सम्हाल पाता। मैंने कहा, किसको पागल कहूँ? वह भी अपने आप को नहीं सम्हाल पा रहा, तुम भी अपने आपको नहीं सम्हाल पा रहे, पागल मैं किसे कहूँ? बोले, महाराज! मेरे मकान में काम लगा हुआ था। चार दिन से मजदूर नहीं आया। क्यों नहीं आया? मैंने डाँट दिया। मैंने कहा, भैया! पैसा ही सबकुछ नहीं होता है, इज्जत भी कुछ होती है। उसकी इज्जत चली गयी, सो नहीं आये। पैसे के साथ उनको प्रेम भी देना

पड़ेगा। यह व्यवहारिकता सीखो। आप सोचो कि मैं पैसे से सबकुछ करवा लूँगा, तो नहीं। मनुष्य है, मनुष्य। मनुष्य मान का पुतला होता है। विरासत में मिला है, मनुष्य जन्म से ही मानी होता है। **नारकी क्रोधी होता है। तिर्यञ्च मायावी होता है। देव लोभी होते हैं। मनुष्य मानी होता है।** जन्म से ही होते हैं। आपने बच्चे को जन्म लेते देखा? जैसे ही जमीन पर गिरता है, चिल्लाता है 'कहाँ-कहाँ, काय-काय।' वह अहंकार बोल रहा है कि आप सब कुर्सियों पर बैठे हो, खड़े हो, मैं कहाँ जमीन पर पड़ा हूँ। जैसे ही माँ उठा लेती है तो चुप हो जाता है। न दूध पिलाया गया है, न मिठाई खिलाई गई है। गोदी में आते ही क्यों चुप हो जाता है, क्या मिल गया? कुछ नहीं। सारे जगत् में आनन्द मान का है। गोदी में आते ही आनन्द आ गया, सो चुप हो गया। उसकी मान की पुष्टि हो गई।

'गोम्मटसार जीवकाण्ड' में लिखा हुआ है कि चार गतियों में चार कषाय जन्म से ही होती हैं। ये क्रम से होती हैं। **जिससे तुम काम लेना चाहते हो, उसे प्रेम देना भी सीखो।** यदि प्रीति नहीं है तो यथार्थ मानिये कि यदि एक घर में चार चूल्हे रखे गये हैं, उसका मुख्य कारण यह है कि ज्येष्ठ तो बनना जानते हो, परन्तु श्रेष्ठता को भूल जाते हो। माँ! तुम्हारे साथ यही हुआ है। जैसे-ही सासू बनने का अवसर आया, आपका अहंकार टपका कि मैं अधिकार जमाऊँगी। आपको मालूम होना चाहिये कि जो तुम्हारे घर में आया है, वह पहले से तुमसे ज्यादा समझदार है। **काम करवाना है तो वात्सल्य सीखना चाहिये। द्रव्य सबकुछ नहीं होता। शासन द्रव्य देता है, फिर भी यदि कर्मी हड़ताल कर देते हैं तो उनको भी झुकना पड़ता है।** समझ में आ रहा है वस्तुस्वरूप?

स्वयं के परिणामों पर जाओ। जब तुम स्वयं के परिणामों को सम्हाल लोगे, तो फिर जगत् में किसी का चेहरा नहीं देखना पड़ेगा। जिननाथ से भी नाता छूट जायेगा, जब तू निजनाथ को देखना प्रारम्भ कर देगा। परन्तु निजनाथ को देख तभी पायेगा, जब जिननाथ को पहचान लेगा। जब तुमने जिननाथ को ही नहीं पहचाना, तो निजनाथ को क्या जानोगे? इसलिये मन्दिर रोज जाया करो। जिस विधि से पहले दर्शन करते थे, अब उस विधि से नहीं करना। **अब भगवान्**

को देखने मत जाना, अब भगवान् में देखने जाना। दो तरीके होते हैं। एक तरीका यह है कि मेला में एक पुरुष जाता है, मेला देखकरके, आनन्द लूटकर आ जाता है। दूसरा पुरुष यह देखने जाता है कि मेले में दुकान कैसे लगाना पड़ती है। जो दुकान के उद्देश्य से मेला देखने गया है, उसके देखने का तरीका अलग होगा और जो मात्र देखने ही गया है, उसका तरीका अलग होगा। जो ऐसे ही देखने ही गया है, उसका तरीका अलग होगा। ऐसे-ही जो देखने जा रहा है, वह मात्र प्रदर्शनी रूप जो दुकान लगानेवाला है, उसका देखने का तरीका अलग होता है। ऐसे-ही आज से तुम भगवान् के पास जाना तो अब भगवान् को प्रदर्शनी रूप देख कर मत आना। आप यह देखने जाना कि इस दुकानदार ने कैसे दुकान लगाई है, कैसे पैसा कमा रहा है, ऐसे तुम भगवान् को देखना कि इनने कैसे भावों की दुकान लगाई थी और कैसे भगवान् बन गये थे। इसे देखने जाओगे तो तुम भी भगवान् बन जाओगे। ज्ञानियो! तरीका बदलना है। भगवान् में भगवान् मात्र को ही नहीं देखना, भगवान् में यह भी खोज करना कि वे भगवान् कैसे बने।

ऐसे भी लोग देखे गये हैं जिनकी भूमि पड़ी थी। दूसरी जगह उनने देखा कि बहुत बड़ी बिल्डिंग से इनको लाभ मिल रहा है। तो वह बाहर की बिल्डिंग देख करके अपनी बिल्डिंग खड़ी कर लेता है। आज आप घर जाकरके घर के सदस्यों को देखने का तरीका बदल देना। एक जगह एक बहुत बड़ा भूखण्ड पड़ा हुआ था, उस भूखण्ड में बोर्ड लगा हुआ था, जिसमें लिखा था 'प्रस्तावित जिनालय'। उस स्थान पर न कोई लोटा लेकर जा रहा था, न कोई लघुशंका कर रहा था, जबकि स्थान बहुत बड़ा खुला पड़ा हुआ था, लेकिन हर व्यक्ति बड़ी श्रद्धा से देख रहा था। ये मन्दिर की भूमि को भी श्रद्धा से देख रहे थे कि यह प्रस्तावित जिनमन्दिर है। मेरे मित्रो! तुम तो घर जाना और परिवार को देखना कि यह प्रस्तावित भगवान् हैं। इनको अच्छे से देखो। जब तुम मुनियों के पास आओ तो उन्हें मुनि मत देखो, ये प्रस्तावित सत्य परमात्मा हैं। एक प्रस्तावित भगवान् देखो। एक प्रस्तावित भूखण्ड पूज्य हो सकता है, तो प्रस्तावित जिनदेव

के लघुनन्दन निर्ग्रन्थ मुनि पूज्य क्यों नहीं होंगे? आप अपने परिवार को परिवार के रूप में नहीं देखना, प्रस्तावित भगवान् हैं। प्रस्तावित भूखण्ड पर गड्ढे भी होते हैं, कंकड़-पत्थर भी होते हैं, लेकिन तब भी वही प्रस्तावित जिनालय है। ऐसे-ही किसी का मान प्रशस्त हो या अप्रशस्त हो, लेकिन अपन को तो यही देखना है 'प्रस्तावित भगवान्'।

ज्ञानी! किसी को डाँटना नहीं, फटकारना नहीं, यदि नौकर भी हो। सत्य बताऊँ? मनुष्य कभी नौकर नहीं बन सकता। किसी भी जाति का हो, किसी भी वंश का हो, नौकर को डाँटना नौकर बन करके एक दिन। गुरु बनने के पहले शिष्य बनना चाहिये, तो शिष्यों को तुम बहुत अच्छे से रख पाओगे। जब गुरु सबके बीच में समझाये, डाँटे, उस दिन देखना कि गुरुदेव! शिष्य बनना कितना गम्भीर होता है। जब तुम्हारे द्वार पर नौकर खड़ा हो, गिड़गिड़ा रहा हो, उस समय कहना कि उसको मत डाँटो। मेरे भाई! इस गम्भीर बात को समझो। तत्त्वज्ञानी नौकर होगा तो क्या बोलेगा? मेरे मित्र! मैं आपका नौकर नहीं हूँ। मैं किसी को सिर टेकने वाला नहीं था, पर सबके दिन एक-से नहीं होते। नौकर मैं नहीं हूँ। नौकर मेरी गरीबी है। यदि ये गरीबी नहीं होती, तो मैं द्वार पर खड़ा नहीं होता। जो भी नौकरी करवा रहा है, वह तेरी गरीबी करवा रही है। कौन किसको हाथ जोड़ता है? उससे भी तो अच्छा बोल सकते हो? इस सोच को निकाल दो कि नौकर से नौकर की भाषा में नहीं बोलेंगे तो काम नहीं बनेगा। तुम तो सेठ हो, तो सेठ की अच्छी भाषा में बोलो। व्यक्ति की पहचान वाणी से है, भावों की पहचान भाषा से है। इसलिये डाँटो नहीं।

उन योगियों को निहारो जिनके शरीर पर तलवार के बार हो रहे थे। कार्तिकेय स्वामी के शरीर को उनके सगे बहनोई ने वसूले से छिलवा दिया। बहन की शादी विधर्मी के साथ हो गई। बहन जब अपने पति के साथ बैठी हुई थी, भाई मुनिराज को देख करके उसका वात्सल्य उमड़ पड़ा कि मेरे भैया मुनि बन कर आये हैं और भवन से नीचे आकरके नमस्कार कर लिया। इतने में वह विधर्मी आ गया। भैया! **कन्या को कुये में पटकना अच्छा, पर विधर्मी के हाथ में**

मत देना। परन्तु पटक मत देना। और कन्याओं को चाहिये कि भावुकता में ऐसा निर्णय न कर लें। जिस कुल में अभिषेक देखने को मिलता हो, जिस कुल में पानी छान कर पीते हों, उस कुल को छोड़ करके जीवों की हत्या करने वाले कुल में मत चली जाना। माता-पिता का कर्तव्य है कि मात्र जन्म देना मत सीखो, उन पर निगरानी रखना भी सीखो। पूरे समाज की हालत खराब होती है, उच्च कुल को छोड़-छोड़ कर बिटियाँ कहाँ-कहाँ भाग रही हैं? दुलार देने के साथ-साथ निग्रह करना भी सीखो। कल्पना करो, वासना का वास 'हृदय' में आने के पहले सन्तान को साधना करना सिखा दो। मैंने आगरा में कितने युवाओं को नियम दिलाया है, कितने घर सुरक्षित हो गये। इन सब युवाओं ने नियम लिये हैं कि अच्छा हो मैं साधु बनूँ। नहीं है सामर्थ्य, तो मैं शादी वहीं करूँगा जहाँ मेरे माता-पिता करायेंगे। कुल की महिमा का व्याख्यान सीखना चाहिये। अब माता-पिता को समय ही नहीं है। जब बेटा सो जाता है, तब पिता घर आता है और बेटा सोकर उठ नहीं पाता, वह घर छोड़कर चला जाता है, तो वह संस्कार क्या दे पायेगा? माँ भी सर्विस कर रही है और पिता भी सर्विस कर रहा है। पैसे से ही फुर्सत नहीं है। वे पैसे ही नहीं सम्हाल पा रहे हैं, सन्तान को क्या सम्हाल पायेंगे? बहुत अच्छा था कि तुम्हारे पास शक्ति नहीं थी तो तुम स्वयं साधु बन जाते। घर बसाया क्यों? बुरा तो नहीं लग रहा? धन्य हो। बुरा भी नहीं लग रहा बेचारों को? आप यही कहोगे कि 'समयसार' बोलने वाले क्या बोल रहे हैं ? आपको मालूम होना चाहिये कि मैं समयसार ही कह रहा हूँ। जब समाज ही नहीं बचेगी, धर्मात्मा ही नहीं बचेंगे, तो समयसार कहाँ बचेगा? 'न धर्मो धार्मिकैर्बिना।' ये इतने बड़े-बड़े मन्दिर बन रहे हैं। जब सन्तान ही दर्शन करने वाली सुरक्षित नहीं रहेगी, तो मन्दिर की क्या महिमा रहेगी। एक बेटी पर-कुल में चली गई, उसकी सन्तान किसकी जय बोलेगी?

ये जितनी परिषद् हैं, कमेटियाँ हैं, ये मात्र मंच, माला, माइक के लिये नहीं बनाना, कुछ समाज की रक्षा भी करने का। किस गरीब के घर में क्या हो रहा है, कभी पूछने गये क्या? दान देने वाले कोटि-कोटि मिल जायेंगे, सम्मान देने

वाले मिल जायेंगे। लेकिन जीव के हृदय की व्यथा को पूछने वाले नहीं मिलते। दु:खिया के दु:ख को तुमने पूछ बस लिया तो उसका दु:ख आधा हो गया। देश में अमरचन्द दीवान जैसे व्यक्तियों की आवश्यकता है। जो व्यक्ति शाम को भेष बदल करके नगर में घूमता था। एक जगह एक बुढ़िया शीत की लहर में अपने बच्चे को साड़ी का भाग करके उढ़ा रही थी। स्वयं आधी साड़ी ओढ़े बैठी थी। बेटा भूख-भूख चिल्ला रहा था। मेरे राज्य में ऐसे भी दु:खी लोग हैं। नीतिकारों ने लिखा है कि जिस राज प्रिय प्रजा दु:खारी, सो नृप अवश्य नरक अधिकारी। अमरचन्द दीवान उस परिवार की अवस्था को देखकरके शीघ्र अपने घर गये और अनाज की पोटली भरी, अन्दर जवाहरात भर दिये और उस बुढ़िया के घर रख कर आ गये कि सुबह पीस करके बच्चों को खाना खिला देना। कुछ भी परिचय नहीं दिया। नहीं तो आजकल मान छीन करके सम्मान किया जाता है। भैया! यह कभी नहीं सीखना। आजकल तो यह चल रहा है कि यदि किसी अस्पताल में भी मरीजों को फल देने गये तो फोटो पहले खिंचवायेगा, फिर पेपर में छपवायेगा। पहले उसकी इज्जत समाप्त कर दी। इतना अहंकारी कि एक फल लेकर गया, वह भी फोटो खिंचवा कर आ गया। धन्य हो उस जीव के लिये। पोटली रख कर आ गये। बुढ़िया ने सुबह पोटली खोली, उसमें जवाहरात निकल पड़े। वह गरीब बुढ़िया घबरा गई। यह कोई नहीं कहेगा कि रख गया है। हर व्यक्ति यही कहेगा कि चोरी करके आये हैं। वह बुढ़िया पूरी-की-पूरी पोटली लेकर राजा के पास पहुँच गई सभा में। अमरचन्द उसी सभा में बैठे थे। बोली, स्वामी! ये अनाज की पोटली में रत्न निकले हैं। लोग यही सोचेंगे कि इसने चुराये होंगे, क्योंकि गरीबी में ही आटा गीला होता है। अमरचन्द खड़े हो गये, राजन्! बुढ़िया का कोई दोष नहीं है। इसकी गरीबी को देख करके मेरा हृदय रो पड़ा। मैंने इसका दु:ख दूर नहीं किया, अपने हृदय की करुणा को दूर किया है। यह पोटली मैं रख कर आया था। सम्राट भी खुश हो जाता है कि मेरे राज्य में ऐसा दीवान है। आज भी जयपुर में मन्दिर खड़े हुये हैं। छोटे दीवान, बड़े दीवान।

पहचान तुम्हारी ऐसी हो कि मुनियों के मुख से निकलता हो कि ऐसे श्रावक हमारे यहाँ हैं जो राज्य पद पर होकरके भी समाज की सेवा में लगे हैं, वात्सल्य के साथ। मत खिंचवाओ चित्र। विश्वास रखो, ऐसा खिंचेगा चित्र कि चित्रातीत हो जाओगे। जो पटिये की बात करते हैं, वे संसार में पटे रह जाते हैं और जो पटिया छोड़कर काम करते हैं, वे सिद्धशिला के पटिया को प्राप्त करते हैं। आपको और क्या चाहिये? इस भूमि पर कोई भी धर्मात्मा दु:खी दिखे, तुरन्त पहुँच जाना। युवाओ! एक सूत्र याद रखना 'सबके दिन एकसे नहीं होते।' स्वयं में खुशियों के दिन छाये हों, तब भी ध्यान रखना 'सबके दिन एकसे नहीं होते।' किसी के दु:ख के दिन हों, उसके दु:ख को मत देखो। काश! ऐसा दिन मेरे साथ होता तो मैं क्या करता? कुछ करना सीखा? धर्म की रक्षा करना है तो समाज की रक्षा भी करना पड़ेगी। ये छोड़ दो कि ये मेरे वंश के नहीं हैं, परिवार के नहीं हैं। णमोकार पढ़ते जो-जो मिल जाये, सब तुम्हारे वंश के हैं। न भी पढ़े, तब भी प्राणिमात्र पर करुणा की बात जैनदर्शन में है।

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥ सा. पाठ॥

प्राणिमात्र में मैत्रीभाव हो, गुणियों को देखकर प्रमुदित हो जाना, दु:खी जीवों को देखकर अनुकम्पा से युक्त हो जाना, विपरीत वृत्ति वालों को देखकर मध्यस्थ हो जाना। न सम्मान, न अपमान। तेरी परिणति तू जाने, अपने परिणाम संक्लेशित क्यों करें? समझ में आया? अब घर जाकर क्या करोगे? प्रस्तावित भगवान् को देख करके उनके प्रति शुभ भाव रखना।

आचार्यमहाराज संयम की रक्षा के लिये कथन कर रहे हैं-जगत् की नारी मदन की ज्वाला है। अग्नि का पिण्ड घृत को पिघला देता है। ज्ञानी! एक बार पानी में वही सामग्री मिल भी जाये, पर अग्नि की ज्वाला में आयी सामग्री राख ही मिलेगी। चाहे लोहा हो, चाहे पत्थर हो, सोना हो, चाहे चाँदी हो, परन्तु अग्नि सबको भस्म करना जानती है। ऐसे-ही चाहे तुम साधु हो, चाहे ब्रह्मचारी हो, चाहे बूढ़े हो, परन्तु नारी के संसर्ग में आओगे तो सबका धर्म स्वाहा हो जायेगा।

विषम-लिङ्गियों से दूर रहिये। **जो साधक मर्यादा का उल्लंघन कर देता है, उनके सामने अपयश नृत्य करता है।** तुम ब्रह्मचारी हो, तुम्हारी सगी बहन क्यों न हो, ब्रह्मचारी भैया क्यों न हो, माँ क्यों न हो, पिता क्यों न हो, विषमलिङ्गियों से मर्यादा के साथ रहना। संयमभ्रष्ट हो या न हो, यशभ्रष्ट तो हो ही जाओगे। एक मुनि, एक आर्यिका का जीवन में कभी निवास नहीं होना चाहिये। एक हजार एलक या क्षुल्लक हों और एक मुनिराज हों, तब भी आगम एकलविहारी कहेगा। वे भले आचार्य हों, वे एकलविहारी कहलायेंगे। हजारों आर्यिकायें हों, एक आचार्य रह रहे हैं तो एकलविहारी ही कहलायेंगे। एकलविहार का दोष तब मिटेगा जब दो दिगम्बर मुनि साथ में होंगे। दिगम्बर मुनि का साथ हुये बिना एलक/क्षुल्लक के साथ एकलविहार का दोष नहीं मिटता। एकलविहार की बहुत बड़ी दुर्गन्ध फैल चुकी है। आप लोग मस्ती से, जिसका प्रभाव देखते हो उसके लिये तुम ताली बजाते हो और जो प्रभावी न हो, उस पर एकलविहारी का दोष लगा देते हो।ऐसा होता कि नहीं समाज में?

जो प्रभावी है, उनके में ताली बजाते हो और जो प्रभावी नहीं है, उनको एकलविहारी का दोष लगा कर विहार करा देते हो। चाहे प्रभावी हो चाहे अप्रभावी हो, दोष तो दोष है। साधक विषमलिङ्गियों के साथ निवास करेगा तो नियम से अपयश को प्राप्त होगा।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"स्त्रियों में क्या सौन्दर्य है?"

कृमिजालशताकीर्णे दुर्गन्धकल पूरिते।
त्वङ्मात्रसंवृते स्त्रीणां का काये रमणीयता॥ 124 ॥

अन्वयार्थ-कृमिजालशताकीर्णे = हजारों कीड़ों के समूह से भरी हुई **दुर्गन्ध-मलपूरिते** = दुर्गन्ध और मल से परिपूर्ण **त्वङ्गात्रसंवृते** = मात्र चमड़े से ढकी हुई **स्त्रीणां काये** = स्त्रियों के शरीर में **का रमणीयता** = क्या सुन्दरता है?

भावार्थ-कीड़ों के समूह से भरे हुए, दुर्गन्धित मल से परिपूरित और मात्र चमड़े से ढके हुए स्त्रियों के शरीर में क्या सुन्दरता है?

॥सद्-देशना॥

जयवंत हो सर्वज्ञ शासन। जयवन्त हो श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमण संस्कृति।

हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी "सारसमुच्चय" ग्रन्थ में वस्तुतत्त्व का अलौकिक व्याख्यान कर रहे हैं।

भारतभूमि अपने आप में एक तीर्थभूमि है। जिस भूमि में अरहन्तों ने जन्म लिया हो, निर्ग्रन्थों ने जन्म लिया हो, तीर्थंकर भगवन्तों ने जन्म लिया हो, उस भूमि का कण-कण पवित्र है। सम्पूर्ण ढाईद्वीप में ऐसा कोई प्रदेश नहीं जिस प्रदेश से कोई निर्ग्रन्थ तपोधन निर्वाण को प्राप्त न हुये हों। सम्पूर्ण ढाईद्वीप के अन्तर्गत मध्यभारत के मालवा प्रान्त में अवन्ती देश उज्जयनी नगरी में महाराजा श्रीवर्मा धर्मनीति सहित राजनीति का अनुकरण करता हुआ राज्य का संचालन कर रहा था। वह मालवा की शस्यस्यामला भूमि, जो हर पुरुष को भोजन-पानी देनेवाली हो, पुण्यात्मा जीव के पुण्य के प्रभाव से क्षेत्र भी हरा-भरा होता है और पुण्यात्मा जीव का जन्म भी ऐसे क्षेत्र में होता है जहाँ धन-धान्य से सम्पन्नता हो। पानी का होना, धर्मात्मा सम्राट का होना, वैद्य का होना और सद्गुरु का मिलना, ये

प्रबल पुण्य का नियोग है। इन द्रव्यों की प्राप्ति भी लोक में तभी मिलती है जब तुम्हारा पुण्य का द्रव्य साथ देता है। श्रीवर्मा सम्राट उस भूमि पर शासन कर रहा था जिस भूमि पर तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी ने तपस्या की हो, भगवान् महावीर स्वामी की तपोभूमि उज्जयिनी नगरी। जैन वाङ्मय में अनेकानेक महापुरुषों का जब भी चरित्र प्रारम्भ होता है, तब उज्जयिनी से होता है। श्रीवर्मा सम्राट जब प्रातः की बेला में मांगलीक दिव्यसंगीत की ध्वनि को सुन कर निद्रा भङ्ग होने पर जब खड़ा होता है, तब नगर में चारों ओर हलचल थी। मन्त्रियों से प्रश्न करता है कि कोई दीपावली नहीं, कोई पर्व का दिन नहीं दिख रहा है, कोई नन्दीश्वर, पर्युषण जैसे पर्व नहीं हैं, फिर ये श्रावकों की टोली आज कहाँ जा रही है? मुमुक्षु! उद्यान में पुष्प खिले हों और भौंरे शान्त हों, ऐसा सम्भव नहीं है। वीतरागी दिगम्बर तपोधन नगर में पधार जायें, ऐसा कौन-सा काला भौंरा होगा जो शान्त बैठ जायेगा? वह तो निर्ग्रन्थों के चरणों में जाकरके भक्ति के संगीत गुनगुनायेगा-ही-गुनगुनायेगा। जीव की अभवितव्यता की पहली पहचान है, जीव के मिथ्यात्व की पहली पहचान है कि नगर में वीतरागी गुरु विराजमान हों और हम दर्शन को न पहुँच पायें। यह हमारे परिणामों की कलुषता की पहली पहचान है। पर के राग में, पर के द्वेष में, क्या स्वयं की प्रज्ञा काम नहीं कर रही है जो दूसरे के कारण हम एक गुरु के पास भी न पहुँच पायें? क्या करूँ, क्या करूँ, क्या करूँ ? मैं परवश हूँ। धर्म के लिये कोई परवश नहीं होता। सारे नियम तोड़ देना, सारी बाड़ियाँ तोड़ देना। कोई यूँ कहे कि मैं तुम्हें खाना खाने को नहीं दूँगा यदि तुम सद्गुरु के दर्शन करने चले गये। कहना मैं भीख माँग कर खा लूँगा, लेकिन दिगम्बर गुरु की वन्दना के बिना नहीं रह सकता हूँ। जो देव से दूर करे, शास्त्र से दूर करे, गुरुओं से दूर करे, उससे बड़ा जगत् में तेरा शत्रु नहीं हो सकता। पंचमकाल की आस्था है कितनी-सी? काँच के ग्लास को टूटने में देर लग सकती है, पर पंचमकाल की आस्थाओं को छूटने में देर नहीं लगती। आपके मुख से, आपकी वाणी से उन शब्दों का प्रयोग होना चाहिये जिससे कि निर्ग्रन्थों के प्रति लोगों की आस्था बढ़े। श्री वर्मा पूछता है, मन्त्री जी! आज

हमारे यहाँ कौन-सा पर्व है? मन्त्री कहता है कि मालूम करता हूँ। तभी वनपाल पुष्प लेकर खड़ा हो गया। असमय में सूखी बाबड़ियाँ पानी से लबालब भर गई, सूखे सरोवर पानी से भर गये, सूखी लतायें पुष्पित हो गई, असमय में उद्यान में फूल खिल गये, फल लद गये। वनपाल कहता है, बागवान! कल तो कुछ भी नहीं था, आज इतना सब पुष्प, फल, इतना पानी कैसे? धरती के देवता, वीतरागी तपोधन, स्वानुभूति की अनुभूति में लवलीन, शत्रु-मित्र के प्रति जिनकी साम्य परिणति हो, एकत्व-विभक्त में लवलीन, ऐसे वीतरागी सात सौ महामुनिराजों के दर्शन वनपाल करता है। **एक मुनि की वन्दना करने से कोटि-कोटि जन्म के पाप धुल जाते हैं** और जिस जीव को सात सौ दिगम्बर वीतरागी महामुनिराज एक स्थान पर दिखाई दें तो क्या कहना? पूरा नगर दिगम्बरमय हो गया था। उसके श्रीमुख से निकल पड़ा 'महासाहू, महासाहू, महासाहू दिगम्बरा।' इस भूमण्डल पर साधुओं में कोई महासाधु है, उसका नाम दिगम्बर साधु है। बगीचे का माली साष्टांग नमस्कार करता है। एक माली के भाव बदल गये, परन्तु अहो श्रावको! तुम्हारे भाव यदि न बदले, तो भव दीर्घ है। जिसकी आँखों से दिगम्बर में दिगम्बरत्व न दिखे, उसके नेत्र 'नेत्र' नहीं हैं, काँच के गोलक हैं। जिसकी आँखें मुनिराज को देखना पसन्द न करें, जिसके नयनों में निर्ग्रन्थ योगी की मुद्रा न झलके, उसके नेत्र काँच के कंचे हैं, आँखों के गोलक नहीं हैं। **जिस जीव को कभी दिगम्बरों के हाथ में ग्रास रखने के भाव न हों, उनके हाथ 'हाथ' नहीं हैं, साँप के फणा हैं। जिसका भाल कभी भावलिङ्गी श्रमणों के चरणों में नहीं झुका, वह सूखे सड़े श्रीफल के समान है।**

ज्ञानी! सुनी बात भी सत्य नहीं होती, देखी बात भी सत्य नहीं होती। जब तक सत्य को नहीं पहचाना, तब तक असत्य को सत्य मत मान लेना। ईर्ष्या में आकर के लोग महावीर को भी गाली देते थे। तीर्थंकर महावीर के शासन-काल में पाँच लोग और ऐसे थे जो अपने को तीर्थंकर कहते थे और जैसे-ही वर्द्धमान को कैवल्य हुआ, वे पाँचों तीर्थंकर पता नहीं कौन-से बिल में बिला गये। सत्य तो सत्य होता है।

बागवान सोचता है कि जिसको प्रातः उठ करके जिनदेव, जिनवाणी, जिनगुरु का अवलोकन हो जाये, उसकी पर्याय तो धन्य हो गई। पुण्यात्मा भाग्यवान् जीव को स्वप्न में भी निर्ग्रन्थ योगी दिखाई देते हैं, पापियों को स्वप्न में भी भोग दिखाई देते हैं। ऐसे भी अभागे जीव मिल जायेंगे कि सोते-सोते चद्दर भी फाड़ दिये, क्योंकि उनको स्वप्न आ रहा था कि मेरे कपड़े की दुकान में ग्राहक खड़ा हुआ है, उसको मैं कपड़ा दे रहा हूँ, सो अभागा कैंची से कपड़ा काट रहा था, सो उसने स्वप्न में चद्दर ही फाड़ दिया। पापियों की दृष्टि है। पुण्यात्मा जीव को स्वप्न भी आते हैं कि आज में दिगम्बर तपोधनों के हाथों में ग्रास रख रहा हूँ। मुनि के साथ तत्त्वचर्चा के स्वप्न आ रहे हैं। पुण्यात्मा जीव को प्रशस्त स्वप्न आते हैं, पापी जीव को खोटे ही स्वप्न आते हैं। तीर्थंकर की माँ को सोलह स्वप्न आये, क्योंकि महापुरुष को गर्भ में रखे हुये थी। वनपाल पुष्प-फलों को चुन करके, प्रसन्न होकरके राजा श्रीवर्मा की राज्यसभा की ओर चल देता है। धन्य हो उस वनपाल के लिये, जो स्वार्थी नहीं था। मैंने तो वन्दना की है बन्ध के नाश के लिये, हम अपने सम्राट को भी वन्दना करायेंगे। वह सम्राट को सूचना देता है कि आज हमारा नगर धन्य है, आज हम धन्य हैं, यह भूमि भी पवित्र हो गई जहाँ वीतरागी तपोधन विराजमान हैं। हे स्वामी! आप भी वन्दना के लिये चलो।

ज्ञानी! बेटे की शादी के लिये, जहाँ नवकोटि जीवों की हत्या होगी एक बार के अब्रह्म में, उसके लिये तू पीले कार्ड छोड़ता है, हजारों लोगों को फोन करके बुलाता है। यदि बुलाना ही है तो ऐसे काम में बुलाओ जो मोक्षमार्ग का सहकारी बनता हो। निर्ग्रन्थों की वन्दना के लिये हजारों लोगों को बुलाओ। ऐसा कोई श्रावक न हो जिसको निर्ग्रन्थों के प्रति आस्था न रहे। धन्य हो उस वनपाल को, उसने शीघ्र ही जाकर समाचार दिये, स्वामी! अकम्पनाचार्य महाराज सात सौ योगियों के साथ आपके राज-उद्यान में विराजमान हैं। राजा इस शब्द को सुनते ही अपने सिंहासन को छोड़ देता है और सात पग आगे चलकरके वहीं से साष्टांग नमस्कार करता है।

तू अपने सिंहासन पर बैठा हुआ था, सामने से दिगम्बर साधु आ रहे थे, साधु

के रूप को देख करके भी जो अपने आसन को नहीं छोड़ पा रहा है, देखकर के योगी का अपमान कर रहा है, उसी समय वह मिथ्यादृष्टि जीव है। नगर में साधु पधारे, सामने से साधु आ रहे थे, तुम मुख मोड़ कर निकल गये। ज्ञानी! सूर्यमुखी फूल बनो।

प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य ये सम्यग्दृष्टि की पहचान है। संवेग का अर्थ होता है धर्म और धर्मात्मा को देख करके, धर्म के फल को देख करके हर्षित हो जाना। जिस जीव का चेहरा धर्मात्मा का नाम सुनते ही लटक जाये, यह मिथ्यादृष्टि की पहली पहचान है। ज्ञानियो! साँप कभी सीधा नहीं चलता और मृग कभी टेड़ा नहीं चलता। जब साँप बामी में प्रवेश करता है, तब वह टेड़ा चलनेवाला भी सीधा हो जाता है, लेकिन दुर्जन पुरुष कभी सीधा होता ही नहीं है। सत्य के आगे सत्य जानते हुये भी सत्य को झुकना कभी दुर्जन ने सीखा ही नहीं है। जिनकी दृष्टि हो कि मैं सत्य को नहीं मानूँगा, सत्य को नहीं स्वीकारूँगा, वे सम्यग्दृष्टि कैसे? अँगूठी में सोना है कि नहीं, यह तभी मालूम पड़ेगा जब कसौटी तेरे हाथ में आयेगी। तेरी सासू ने अंगूठी पहना दी, पर अभी सत्य मत मान लेना। कहीं पॉलिस करवा कर पहना दी हो। सत्य तभी मानना, जब तुम्हारे हाथ में कसौटी आ जाये और तुम उस पर कस कर देख लेना। मुमुक्षु! सोने की परीक्षा कसने पर होती है और मनुष्य की परीक्षा बसने पर होती है। जब तक किसी के साथ रह न लो, तब तक किसी पर विश्वास नहीं करना। आदमी में साम्यता है कि नहीं, यह विषमता में पता चलता है। तू कितना ही शान्त हो, जब दूसरा शास्त्री सामने बिठाऊँगा, तब मालूम पड़ेगा कि शान्त है कि कषायी है? आप मेरी बातों का बुरा मत माना करो, लेकिन थोड़ा मान लिया करो। यथार्थ में तभी पहचान होती है जब बराबर की शक्ति सामने हो, तब भी तू शान्त बैठा रहे। अब कहना कि सज्जन पुरुष है।

जैसे-ही सम्राट ने वन्दना की, चारों मन्त्री (बलि, वृहस्पति, नमुचि, प्रहलाद) देखते हैं कि राजा तो यहीं से मुनियों की वन्दना कर रहा है। चारों वक्रपरिणामी। बल्कि यूँ कहना चाहिये कि वे अजगर के मुख के तुल्य थे। श्रीविहीन। जातीयता

भिन्न विषय है, आस्था भिन्न विषय है। **वचनों की चाटुकारिता, बुद्धि की चातुर्यता लोकप्रिय तो बना सकती है, लेकिन मोक्षप्रिय नहीं बना सकती। वचनों से तुम सज्जनों को ठग सकते हो, लेकिन विश्वास रखना, वचनों से कर्मों को नहीं ठग सकते हो। आप माता-पिता को दगा दे सकते हो, लेकिन बेटा! अपने कर्मों को दगा नहीं दे सकते हो।** गुरु को भी छल सकते हो, देश को छल सकते हो, समाज को छल सकते हो, लेकिन आज तक ब्रह्माण्ड में तीर्थंकर बननेवाली आत्मा में ऐसी ताकत नहीं आयी कि वे कर्मों को ठग सकते होते। कर्मों ने आदिनाथ स्वामी से कह दिया था कि सुनो ज्ञानी! मैं आपको भी नहीं छोड़ूँगा। तुमने मुसिका लगवाया था, तो छः महीने तक मुसिका लग गया। ज्ञानियो! यह मत सोचना कि पुण्य की सत्ता में कुछ भी करते रहो, कर्म तुझको माफ कर देंगे। ज्ञानी! कर्म किसी को माफ नहीं करते।

राजा ने कहा-नगर में मुनिराज आये हैं, सभी श्रावक जा रहे हैं, हे मन्त्रीवर! मेरी कुल-परम्परा से निर्ग्रन्थों की वन्दना हुई है, हमारी कुलपरम्परा में सदैव नमोऽस्तु शासन जयवन्त हुआ है, हम योगियों की वन्दना करने जायेंगे। शब्द सुनते ही उन मिथ्या-बुद्धि जीवों के मिथ्यात्व के अंगारे झुलस पड़े। वह बोलते हैं? महाराज! वे निर्वस्त्र बुद्धिविहीन हैं। मल-लपेटे होते हैं। आप-जैसे सम्राट उनके चरणों में झुकेंगे क्या? महाराज श्रीवर्मा कहते हैं कि ये रोष का समय नहीं है। पर इन निराधमों को सत्तर कोड़ा-कोड़ी संसार में भटकने से किञ्चित् भी डर नहीं लगता है। जिनको सत्तर कोड़-कोड़ी सागर संसार में भटकने की फुर्सत हो, वे केवली, श्रुत, संघ, धर्म इनका अवर्णवाद करें और जिनको संसार में नहीं भटकना है, वीतराग मार्ग को देखकरके वे किंचित् भी ग्लानिभाव न लायें। सिद्धों के असंख्यातवें भाग, अभव्य सिद्धों के अनन्त गुणे कर्म का आस्रव-बन्ध एकसमयप्रबद्ध काल में होता है। ज्ञानी! जब तुमने सारे करणानुयोग के ग्रन्थ को समझ रखा है और जान रहे हो, फिर अपनी मति को ठीक करो। निर्ग्रन्थों के प्रति अशुभ भाव मत लाना। मन्त्रियो! आपको नहीं जाना है तो मत जाइये, लेकिन मेरी वन्दना में विघ्न मत करो। जब सम्राट चलने को तैयार हो ही गये तो बेचारों

को पीछे-पीछे जाना ही पड़ा।

धन्य हो आचार्य भगवन्तों की दूरदर्शिता को। दिगम्बर परम्परा में आचार्यपरमेष्ठी के आठ विशेष गुण होते हैं। उन आठ गुणों में एक विशेष गुण होता है दूरदर्शित्व। छत्तीस गुणों में आठ विशेष गुण हैं। उनके एक दूरदर्शित्व गुण होता है कि बाल मुनि है, वृद्ध मुनि है, युवा मुनि है और त्यागीगण हैं। एक बच्चे को जन्म देने वाले दो होते हैं। दो के बीच में एक पलता है। माँ और पिता। दो के बीच एक को पालने में भी कितनी कठिनाई महसूस होती है? फिर गुरु को तो एक होकरके भी दो होना पड़ेगा। **जब शिष्य का अनुग्रह करें, तो माँ बनके देखें और जब शिष्य का निग्रह करें, तो बाप बनकर देखें। दो गुण गुरु के अन्दर नहीं हैं, वह संघ का संचालन नहीं कर सकते।** स्वयं के जनाये को पाल पाना कठिन है। कितने घरों से जन्म कर आये, उनको एकसाथ बिठालना कितना कठिन है? जिसके पास सात सौ हों, धन्य हो उनके चारित्र को। एक मुनि को सम्हालना हाथी को सम्हालने के तुल्य होता है। यदि योगी का चित्त शान्त है, तो पता ही नहीं चलता, हजारों एकसाथ रहें, कोई तनाव नहीं। साधु का मन विचलित हो गया, कहीं गुस्सा करें, कहीं कुछ करें तो एक भी भारी पड़ता है।

आचार्य महाराज ने प्रातः सामायिक के बाद जब श्रीमुख से मौन खोला, अपनी शिष्यमण्डली को आदेश कर दिया कि आज सम्राट आयेगा, मन्त्रीगण आयेंगे, कोई भी श्रावक आयेगा, परन्तु पूरे संघ का मौन है। मुनि की शोभा मौन है। धन्य है उन शिष्यों को, क्यों, क्या कुछ नहीं। गुरु-आज्ञा शिरोधार्य।

जो प्रज्ञ पुरुष होते हैं, भले ही प्राणों का वियोग क्यों न हो जाय, लेकिन गुरु के वचनों का उल्लंघन नहीं करते हैं। नहीं-तो शिष्य पूछ सकते थे, स्वामी! ऐसा क्यों? धन्य हो उन निष्पृही श्रमणों को, नाम के आगे निष्पृही लगाने से निष्प्रहता नहीं आती, निष्पृही चर्या होने से निष्प्रहता आती है। आज तो लोग कब मुख्यमन्त्री पधार रहे, कब प्रधानमन्त्री पधार रहे, उनकी प्रतीक्षा में कहो सामायिक छोड़ कर बैठ जायें। कर लूँगा मंच पर ही सामायिक। उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक वे, जो राजा मन्त्री के आने पर मौन लेने को तैयार हों और

एक वे, कब पधार रहे, कब मेरा उनके साथ फोटो खिंचे? धिक्कार हो तुम्हारी राग परिणति को। पर्याय की फोटो में उलझ करके, परिणामों का विघात करके चारित्र का नाश क्यों कर रहे हो? **चित्रों में चारित्र खोज रहे हो। चित्रों में चारित्र नहीं होता है। चारित्र तो चित्तों में होता है। तुम उसको उतना बड़ा साधु मानते हो जिसकी गली-बाजार में जितनी अधिक फोटो लगेगी। जितना समाज का पैसा बरबाद होगा, उतना ऊँचा साधु कहलायेगा। नहीं, यह चारित्र की पहचान नहीं है, यह चित्त की इच्छाओं की वृत्ति की पहचान है। चारित्र की पहचान तो निष्प्रहता है।** धन्य है उन श्रमणों को, सात सौ के सात सौ योगी गुरु-आज्ञा शिरोधार्य कर लेते हैं। श्री-वर्मा सम्राट सैन्यबल के साथ जैसे ही उद्यान के समीप पहुँचता है, अपने हाथी से उतर गया। नहीं देखे अस्त्र, नहीं देखा राज्यपने का अहं। निर्ग्रन्थों के चरणों में क्या राज्य? निर्ग्रन्थों को देखकर सम्राट श्रीवर्मा ने सबसे पहले तीन प्रदक्षिणा दे सिर नायो। आजकल तो मन्दिरों की व्यवस्था ही भंग हो गई। रागियों के मकान मन्दिरों से लग गये। सो भले परेशान हों, लेकिन भूमि नहीं छोड़ सकते। राजमार्ग यह है कि गृहस्थ का मकान मन्दिर की दीवाल से स्पर्शित नहीं होना चाहिये। वेदी की ही परिक्रमा नहीं, सबसे पहले मन्दिर की परिक्रमा होनी चाहिये।

निःसङ्गोऽहं जिनानाम्। जिनेन्द्र के मन्दिर को देख करके निशङ्क हो करके तीन प्रदक्षिणा लगानी चाहिये। इसके बाद मन्दिर में प्रवेश होना चाहिये। ये है आगम व्यवस्था।

तीन प्रदक्षिणा दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।

पहले तीन परिक्रमा लगाई, फिर नमस्कार किया, इसके बाद पूजा की, फिर स्तुति की। तीन प्रदक्षिणा लगा करके राजा बैठ जाता है। किसी भी साधु ने हाथ उठाकरके आशीर्वाद भी नहीं दिया। देखो पवित्र बुद्धि का सोच और अपवित्र बुद्धि का सोच।

सम्राट सोचता है कि धन्य हो। धनवान् को देख करके, बलवान् को देख करके, सम्राट को देख करके कौन प्रभावित नहीं होता ? परन्तु धन्य हो इन योगियों

को। मुझ सम्राट के आने पर भी अपनी साधना को एक पल भी भिन्न नहीं किया। यदि पलक उठाकर भी देखेंगे तो साधना में विघ्न तो आयेगा ही। सम्राट यूँ चिन्तन कर रहा है और दुष्ट मन्त्रियों का चिन्तवन सुनिये-देखो महाराज! वे मच्छर अच्छे हैं जो काटने के पहले सूचना देते हैं। ये मच्छर तो मात्र शरीर का रक्त चूस कर चले जायेंगे। वे मच्छर खोटे होते हैं जो हृदय में काट करके श्रद्धा के रत्न को नष्ट कर देते हैं। उन मच्छरों से दूर रहना जो कान में आकरके भरें कि वे ऐसे , वे ऐसे। तू जाने कौन-कौन? मेरी श्रद्धा को मत तोड़। मुझे तो वीतरागी धर्म दिखाई देता है। 'प्रवचनसार' ग्रन्थ में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने लिखा है। भूल कहाँ है? आप लोग स्वाध्याय नहीं करते हो। स्वाध्याय करो, ग्रन्थ खोलो। जो आगम को नहीं जानता, उसका कल्याण तो हो जायेगा, लेकिन जो आगम को जानकर भी आगम को नहीं जानता, उसका कल्याण होनेवाला नहीं है। जो तत्त्व को तो नहीं जानता, लेकिन इतना जानता है कि जो भगवान् ने लिखा वह सत्य है, उसका तो आज्ञा सम्यक्त्व पल गया। जो तत्त्व को जान करके मात्र तर्क में लगा हुआ है, तब तक भगवान् ही निकल जायेंगे, तब वह पहचानेगा कि भगवान् थे कि नहीं थे? तब तो हो गया कल्याण, गया काम से।

मन्त्रियों ने कहा, राजन्! ये निरे मूर्ख लोग हैं, आपको मालूम होना चाहिये कि अज्ञानता को छुपाने का सुन्दर उपाय है मौन धारण कर लेना। जैसे किसी विद्यार्थी को स्कूल से भागना हो तो वह अध्यापक से कहता है 'सर-सर! मेरे सिर में दर्द हो रहा है।' सिरदर्द का कोई थर्मामीटर नहीं होता, पेटदर्द का कोई थर्मामीटर नहीं होता। स्कूल से भागने का सुन्दर उपाय है। जैसे स्कूल से भागने के लिये बच्चे बहाने बनाते हैं, ऐसे-ही अपनी बुद्धि की न्यूनता को छुपाना है, तो मौन लेकर बैठ जाओ। पर अज्ञानी को कौन समझाये? वह यह भूल गया था कि **'मौन सर्वस्य साधनम्' ब्रह्माण्ड की सबसे उत्कृष्ट साधना मौन है। जो मौन होकर जीवन जीता है, उसके जीवन में एक दिन ऐसा आता है कि उसके सर्वाङ्ग से वाणी खिरती है।** राजा वापस आ रहा था, मन्त्रीगण अशुभ चर्चायें ही कर रहे थे। इसी मध्य में एक घटना घटी। श्रुतसागर नाम के मुनिराज

चर्या करके वापस आ रहे थे। उनको गुरु-आज्ञा का बोध नहीं था। वे पहले चर्या को जा चुके थे। सामने से योगी को आहार करके आते देख करके मन्त्री श्रीवर्मा सम्राट से कहता है, 'महाराज! देखो यह साधु बैल के समान पेट भर कर चला आ रहा है। वे श्रुतसागर महाराज अनेकान्त-स्याद्वाद विद्या के पारंगत पण्डित। क्षण मात्र में स्याद्वाद सूर्य उद्घटित हुआ और अपनी भाषासमिति का ध्यान रखते हुये कहते हैं—दिगम्बर मुनि के प्राण हैं वचन गुप्ति, भाषा समिति, सत्य धर्म। कितना ही कुछ हो जाये, वे अपनी वाणी को सम्हाल कर बोलेंगे। निर्ग्रन्थों के मुख से कभी अश्लील भाषा का प्रयोग नहीं होता है।

राजन्! क्या आपके मन्त्री पाण्डुरोग से ग्रसित हैं? क्यों? 'तक्रं पीतोऽयं।' न्याय में एक छल विद्या होती है। 'नव कम्बलम्।' नव का अर्थ 'नौ' भी होता है और नव का अर्थ 'नया' भी होता है। कम्बल नया है कि नौ हैं?

'तक्रं पीतोऽयं।' मन्त्री कह रहे थे कि मट्ठा पीकर आये हैं। मुनिराज ने ऐसा स्याद्वाद का प्रयोग किया, क्या मट्ठा पीला होता है? 'तक्रं न पीतोऽयं, तक्रं धवलोऽयं।' महाराज! इन मन्त्रियों को पाण्डुरोग हो गया क्या? ऐसा क्षणमात्र में शास्त्रार्थ किया। चारों-के-चारों मन्त्री स्याद्वाद-अनेकान्त सूर्य के सामने परास्त हो गये। हारने के बाद मंत्रीगण ऊपरी मुस्कराहट हँसे। मात्र चेहरे की मुस्कराहट है, भीतर कड़वाहट है। वे मन्त्री अन्दर-ही-अन्दर सोच रहे थे, 'ओ हो! जिनको मैं नंगा समझता था, यह मात्र वस्त्रों से नंगे अवश्य हैं, लेकिन बुद्धि से नंगे नहीं हैं।

श्रावको! ध्यान रखना, इन निर्ग्रन्थों को नंगा मत समझना। ये **निर्ग्रन्थ नग्न होते हैं, नंगे नहीं होते हैं। नंगे वे होते हैं, जो वासना से भरे होते हैं और कपड़े रहित होते हैं। साधु नंगे नहीं होते, नग्न होते हैं। मोक्षमार्ग नंगों का मार्ग नहीं है, नग्नत्व का मार्ग है।** सारे जगत् में किसी का कोई भेष, किसी की कोई मुद्रा है, लेकिन हे मुमुक्षु! अरहन्त शासन की कोई मुद्रा यदि है तो नग्नत्व है। इन ज्ञानियों से कहना तुम कितने ही मोक्षमार्ग की बात कर लो, तुम अहोभाग्य क्यों नहीं मानते हो कि कपड़ों से लदे हो, भवनों में रह रहे हो, तब भी तुम दिगम्बर हो? ये तुम किसके नाम पर दिगम्बर हो? दिगम्बर गुरु को नहीं मानोगे

तो दिगम्बर किस बात पर? परीषह/उपसर्ग सहन योगी करे, उनके नाम पर तुम कितने अच्छे से कहते हो कि मैं दिगम्बर हूँ। जिसके गुरु दिगम्बर हैं, जिसके देव दिगम्बर हैं, उसके भक्त भी दिगम्बर हैं। इन दिगम्बर योगियों के धैर्य को देखो।

अन्दर में झुलसते-झुलसते चारों मन्त्री राजा के साथ नगर चले जाते हैं। मुनिराज श्रुतसागर आचार्यमहाराज के चरणों में पहुँचते हैं। ये दम्भ नहीं था, अहं नहीं था, क्योंकि **सच्चा शिष्य अहं में डूबकर गुरु से बात नहीं करता है। गुरु के सामने क्रोध से आँख उठाना पाप है, ऊँची भाषा बोलना तो महापाप है। जीवन में ध्यान रखना, देव-शास्त्र-गुरु के सामने कभी ऊँची आवाज मत निकालना। न गुरु के सामने किसी से ऊँचा बोलना, न किसी को डाँटना।** दम्भ मत दिखाना। आप दम्भ दिखा रहे तो आप तो पहले ही नीचे गिर चुके हो, क्योंकि आपके पास इतना विवेक नहीं है कि गुरु के सामने कितनी ऊँची भाषा से बोलना चाहिये? ज्येष्ठों के सामने कभी ऊँची भाषा नहीं बोलना। शीलवन्त बनो। सुशील कभी गुरु के सामने ऊँची भाषा नहीं बोलते हैं। पिता का सच्चा बेटा होगा तो कभी पिता की आँखों से आँखें नहीं मिलायेगा, डाँटना तो दूर है। पिता ने इतना ही बोल दिया, 'बेटा! ऐसा मत करो।' वही पिता ऐसे बेटे को उत्पन्न कर पायेगा जो स्वयं सुशील होगा। बेटों से दूरी बना कर रखोगे तो बेटे तुम्हारा सम्मान करेंगे। तुम बेटों को गाल पर खिलाओगे तो बाल दूर नहीं होते, बेटे तुम्हारे बाल खींचेंगे। मर्यादा में रहिये, मर्यादा में रखिये। उपसर्ग/कष्ट सहन कर लेना, परन्तु कभी निर्ग्रन्थ तपोधन से ऊँची आवाज में बात नहीं करना।

शिष्य कैसे कहता है, सुनिये ध्यान से। ये नहीं कहा 'स्वामी! मैं शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करके आ गया।' 'भगवन्! क्षमा करो। मुझे आप का आदेश ज्ञात नहीं था। मैंने आपकी अनुमति के बिना मन्त्रियों से शास्त्रार्थ किया है।' इन शब्दों को सुनते ही अकम्पन स्वामी के मुख से निकल पड़ा-हाय! कर दिया नाश पूरे संघ का। शिष्य के नेत्र सजल हो गये—'स्वामी! क्या हुआ?' बेटे! योगियों को तूने मृत्यु के कण्ठ में भेज दिया। काँप गये श्रुतसागर महाराज—स्वामी! इसका निराकरण क्या हो सकता है? मेरे निमित्त से सात सौ मुनिराज श्वासहीन

हो जायेंगे। स्वामी! आज्ञा दो। धन्य हो गुरु का दूरदर्शित्व। बेटा! तू सबल है। जिस भूप्रदेश पर शास्त्रार्थ हुआ था, वहीं जाकर तुम कायोत्सर्ग करो। नहीं कहा शिष्य ने कि मैं अकेले कैसे जाऊँगा, क्या करूँगा? यह व्यर्थ की बातें हैं। शीघ्र ही गुरु के चरणों में माथा टेका और गुरु ने कह दिया कि जाओ, बेटा। न मोह गुरु का शिष्य पर आया, न गुरु के प्रति ये भाव आये कि मेरा गुरु कितना क्रूर है कि मुझे अकेला छोड़ रहे हैं। ये शिष्य की शिष्यता है। शास्त्रार्थ हुआ था, उसी भूमि पर जाकर ध्यानस्थ होकर खड़े हो गये। चारों मन्त्रियों ने रात्रि में षडयन्त्र रचा। बोले, मेरा पराभव हुआ है, इसका बदला लेना चाहिये। एक भी साधु को छोड़ने का नहीं। ये क्रूर परिणाम करके नंगी तलवार लेकरके रात्रि के समय वे उद्यान की ओर चल दिये। रात्रि में देखते हैं कि श्रुतसागर मुनिराज वहीं ध्यानस्थ हैं। ओह! उन बेचारों ने तो कुछ बोला भी नहीं था, इसलिये उनको छोड़ो, राजा के सामने तो मेरा सम्मान इसी ने गिराया है, इसी का काम तमाम करो।

अज्ञानी मित्र की अपेक्षा ज्ञानी शत्रु श्रेष्ठ है। अज्ञानी मित्रता तो दिखायेगा। विवेकहीन ऐसा काम कर बैठेगा कि तुम्हारी कोटि-कोटि समय की साधना का कब अपयश फैल जाये। अधिक सुधार के राग में भी बिगाड़ होता है। सुधार के लिये बेटे को भी समझाओ तो उस भाषा में समझाना कि बेटा! तुम परनारियों को मत देखना। तू गलत समझा रहा था। कोई सुनेगा तो यही कहेगा कि जरूर इनका बेटा बिगड़ चुका है। आपने अपने मुख से अपने बेटे की इज्जत का नाश किया है। 'बेटे को यूँ समझाते, बेटा! अपने कुल-परम्परा का ध्यान रखना, शील का पालन करना।' इस भाषा का प्रयोग करना चाहिये था। जिससे सुननेवाला यही कहता कि ज्ञानी अपनी सन्तान को कितनी अच्छी शिक्षा दे रहा है? इसलिये समझाने के पहले समझ कर आना चाहिये। ऐसी भाषा का प्रयोग मत कर लेना जिस भाषा से तुम्हारा भगवान् ही बदनाम हो जाये। अज्ञानी मित्र की अपेक्षा ज्ञानी शत्रु श्रेष्ठ है।

चारों मन्त्रियों ने कहा कि तलवार से प्रहार करो। मंत्रियों को ज्ञात था कि गौहत्या, नारीहत्या, ब्राह्मणहत्या इन सब हत्याओं से कोई खोटी हत्या है तो उसका

नाम है यतिहत्या। श्रावको! मैं आपसे स्पष्ट कह रहा हूँ, आपको हृदय की व्यथा सुना रहा हूँ। **साधु के प्राण निकाल लेना मात्र हत्या नहीं है। यदि तुमने साधु को संयम से शून्य कराया है, तो यह भी यति-हत्या है। यति उतना ही होता है, जब तक साधु है। साधु तब तक है, जब तक संयम है। यदि आपने साधु के हाथ में ऐसे उपकरणों को भेंट किया है जो साधु के योग्य नहीं, तो विश्वास मानो, वह यतिहत्या ही है।** हे भगवान्! मेरी आँखें कभी साधु को टी.वी. के सामने न देखें। मैं तो साधु को हर समय सामायिक, ध्यान, षट् आवश्यकों में देखना पसन्द करता हूँ। आगम यह कहता है कि यदि साधु विश्राम में है, तो उस समय भी नमोऽस्तु नहीं करना। आगम में निषेध है। जब विश्राम में सच्चे साधु को नमोऽस्तु करना निषेध है, तो जो अपने षट् आवश्यक से रहित होकरके मोबाइल से बात कर रहे हों, टी. वी. देख रहे हों, उस समय हम कैसे नमस्कार करें? महाराज! ये सब बन्द करो। आप तो अपने साधु के रूप में आओ, फिर मैं आपकी वन्दना करता हूँ। आगम में नमस्कार का समय दिया है। जब साधु प्रसन्न हो, आपके अभिमुख देख रहा हो, गद्गद् भाव से युक्त हो। जब गुस्सा कर रहे हों, उस समय आगम में नमस्कार करने का निषेध है। जब वे शान्त हो जायें, तब नमस्कार करना।

वे योगिराज ध्यानस्थ खड़े हो गये। पर बुद्धि देखो, उनको मालुम था कि यति पर कैसे प्रहार कर सकता हूँ? तो प्रह्लाद कहता है बलि से, मन्त्री जी! आप ही ज्येष्ठ हो, आप सबसे पहले वार करो। बोले, 'नहीं, चारों एकसाथ करो।' सोचो, क्या निर्णय चल रहा है? एक दिगम्बर मुनि पर वार। भैया! मुझे तो आश्चर्य होता है। उन मन्त्रियों के वार की बात सुन करके आप लोगों की आँखें डबडबा रही हैं। आज तलवार के वार तो नहीं होते हैं, पर वाणी के वार साधु पर साधु करे, तब लगता है कि हाय! अब कोई गुरु भी बचानेवाला नहीं है। गुरु भी मौन लिये है। मौन आशीर्वाद दे रहा है 'बेटा! तुम करो उपद्रव।' लेकिन समय सबका समाधान है। अति की इति नियत होती है। सबके दिन एकसे नहीं होते हैं। ऐसा नहीं होता कि शिष्य बड़बड़ाता रहे और गुरु को पता न हो। गुरु

मौन लिये मुस्कराता रहे। वह तो तलवार का वार था, ये वाणी के वार हैं।

चारों ने तलवार को उठाया। कोई नहीं होता है, तब भी सब कोई होता है। श्रुतसागर महाराज ने कोई देवी की आराधना नहीं की, न कोई देवता की आराधना की, न पद्मावती को पुकारा, न धरणेन्द्र को पुकारा। दिगम्बर योगी इन सबसे दूर होते हैं। 'चत्तारि शरणं पव्वज्जामि'मात्र इन चार की शरण में जाता हूँ। परमार्थदृष्टि से 'अप्पा शरणं पव्वज्जामि' एकमात्र मुझे आत्मा की शरण है। जब तुम्हारे ऊपर संकट के दिन आयें तो न मित्र के घर जाना, न माता-पिता के घर जाना। भैया के घर तो भूल कर मत चले जाना। बहनो! ध्यान रखो, भले ही रक्षाबन्धन का दिन हो, पर तुम्हारे जीवन में कष्ट के दिन आ जायें तो भैया के घर भी नहीं जाना। देखो उन अंजना सती को। सबने ठुकरा दिया। माँ ने मुख नहीं देखा तो भाई क्या तुम्हारी रक्षा करेगा? संकट के दिन किसी के घर मत जाना। जा सको तो 'चत्तारि शरणं पव्वज्जामि।' महेन्द्र राजा ने अपनी बेटी को घर में नहीं घुसने दिया। ज्ञानियो! जगत् में कोई किसी का नहीं होता है। जीवन में जीना हो तो दो के साथ जीना। विश्वास रखना अपने भाग्य पर और विश्वास रखना अपने भगवान् पर। तीसरे पर कभी विश्वास रखना ही नहीं। मेरा भाग्य साथ दे रहा है तो विश्वास रखना जगत् में अग्नि पर पटकी जाने वाली सीता को भी अग्नि का नीर हो गया और सोमा के लिये कालिया नाग भी हार हो गया। बहनो! भाई के घर में कभी दु:ख रोने मत जाना। राखी बाँध ा आओ, परम्परा में चल रहा है, सो बाँध देना, लेकिन यह कहने मत जाना कि मेरे संकट में तुम सहयोग करना। कौन किसके संकट में सहयोग करता है? जो संकट में सहयोग करेगा, वह है 'केवली पण्णत्तो धम्मं शरणं पव्वज्जामि।' धर्म की शरण है, तो दुनियाँ साथ देगी। धर्म की शरण नहीं है, तो दुनियाँ मुख मोड़ लेगी। ऐसा हमने प्रत्यक्ष देखा है। यह मैं अनुभव के जीवन से बोल रहा हूँ, शास्त्र तो बोल ही रहा है। मैंने इतनी अल्प वय में सब दिन देख लिये हैं। साध ु भी साधु का साथ नहीं देता। **जब तुम्हारा समय नहीं होता तो कोई किसी का साथ नहीं देता। साथ देगा कोई तो निज का भाग्य ही साथ देगा। जब**

भाग्य भी साथ न दे, तब भावना साथ देगी। कभी-कभी भाग्य भी साथ नहीं देता, तो फिर परिणामों की विशुद्धि साथ देगी।

जैसे ही चारों ने वार किया, जब कोई नहीं था, यक्ष का आसन हिल गया। ओ हो! वीतरागी तपोधन पर उपसर्ग? उस क्षेत्र के यक्ष ने, जैसे-ही मन्त्री ने प्रहार के लिये हाथ उठाया, उसे कील दिया। चारों-के-चारों खड़े-के-खड़े रह गये। चन्द्रमा भी इस उपद्रव को झेल नहीं सका, कालीरात्रि भी काली करतूत को नहीं झेल पाई और शीघ्र ही सूर्य का उदय हुआ, रश्मियाँ बिखर गईं, नगरवासी आना प्रारम्भ हुये। चारों मन्त्री कीलित खड़े थे। सम्राट को सूचना दी गई कि महाराज! चारों मन्त्रियों ने योगी पर उपसर्ग किया है। धन्य हो श्रीवर्मा राजा के लिये। वह सम्राट तुरंत पहुँचता है और कहता है कि इन लोगों ने मेरे राज्य को कलंकित कर दिया। उन चारों को फाँसी की सजा सुना दी। धन्य हो योगी की समता को। 'अर्घावतारण असि प्रहारण में सदा समता धरें।' ये निर्ग्रन्थ योगी हैं जिनके शत्रु-मित्र में साम्यभाव है। महाराज कहते हैं कि इनका प्रायश्चित (फल) इनको मिल गया है। इनको छोड़ दो। मृत्युदण्ड देना कोई दोष की शुद्धि नहीं है। इनको जीने दो, यही प्रायश्चित है। मर गये तो कब भव सुधार पायेंगे? जीते रहे, तभी तो भूल सुधार पायेंगे। इनको आशीर्वाद है, इनको मृत्युदण्ड मत दो।

आचार्य महावीरकीर्ति महाराज के ऊपर राजाखेड़ा गाँव में उपसर्ग हुआ था। शान्तिसागर महाराज के ऊपर भी हुआ। पुलिस ने पूछा 'स्वामी! क्या दण्ड दिया जाये?' वे योगी कहते हैं, मेरी बात मानोगे? बोले, हाँ। 'बस, इनको छोड़ दिया जाये। बेचारों का कोई दोष नहीं है। अपराध अज्ञानता में हुआ है।' धन्य हो। ये श्रमणों का धर्म है, ये मुनियों का धर्म है। यह धर्म नहीं होता है कि इनके नाम पर वे पम्पलेट बाँटे और उनके नाम पर वे पम्पलेट बाँटे। ये विधर्मी लोग हैं। उनका तो मुनित्व नष्ट हो चुका है। आप कुछ भी कर लो, वे मुनि बचे ही नहीं हैं। मुनिपना होता है कि वात्सल्य के साथ धर्म-धर्मात्मा की रक्षा के भाव हों। तुम क्या गुरु की जय बोलोगे? हजारों की श्रद्धा को तुड़वा दिया एक

दिगम्बरत्व के ऊपर। क्या करूँ? मात्र ढोंग का जीवन है। धर्म को समझो। यदि मुनिराज श्रावकाचार ही पढ़ लें, तो कोई भी किसी के प्रति अशुभ नहीं बोल सकता है।

कभी साधु-साधु भी तुमको लड़ते मिल जायें, तो मुस्कराना, अश्रद्धा मत करना और जिनवाणी के सामने दस बार झुकना। हे भगवती माँ जिनवाणी! आगम कितना सत्य है? आगम एक अक्षर भी झूठा नहीं है। आपको मालूम होना चाहिये चक्रवर्ती के सोलह स्वप्न, चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न। दो स्त्रियाँ नग्न नृत्य कर रही हैं, उसका फल क्या था? पंचमकाल में साधु-साधु झगड़ेंगे, यही तो हो रहा है। सत्य ही हो रहा है, झूठ क्या हो रहा है? जिनवाणी सत्य है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"वैराग्य सुख का कारण है"

अहो ते सुखितां प्राप्ता ये कामानलवर्जिताः।
सद्वृत्तं विधिना पाल्यं यास्यन्ति पदमुत्तमम्॥ 125॥

अन्वयार्थ-अहो = अद्भुतता है कि **ये** = जो **कामानलवर्जिता** = कामरूपी आग से नहीं जलते हैं **ते** = वे **सुखितां प्राप्ताः** = सुख की दशा को पहुँच गये हैं वे ही **विधिना** = विधिपूर्वक **सद्वृत्तं** = सम्यक्चारित्र का **पाल्यं** = पालन करके **उत्तमं पदं** = उत्तम मोक्ष पद को **यास्यन्ति** = प्राप्त कर लेते हैं।

भावार्थ-हे आत्मन्! जो कामरूपी अग्नि से रहित हैं अर्थात् जिनका हृदय कामरूपी अग्नि से नहीं झुलसा है, वे ही सुख अवस्था को प्राप्त हुए हैं। ऐसे ही प्राणी विधिपूर्वक समीचीन चारित्र का पालन कर उत्तम पद को प्राप्त करेंगे।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा के भूतार्थ गुणों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं—हे तत्त्वज्ञानी! ये जीव प्रतिक्षण प्रतिपल स्वआत्मकल्याण की भावना से युक्त होता है। वैराग्य की जननी बारह भावना है। द्वादश अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करता हुआ वैरागी अहोरात्रि को व्यतीत करता है। शरीर थक कर चाहे निद्रा में चला जाये, परन्तु अपने वैराग्य की भावना को नहीं थकने देता। चारित्र उनका ही चमकता है, जिनका वैराग्य दमकता है। जबतक वृक्ष की जड़ हरी है, तब तक पुष्प पत्र हरे दिखते हैं अन्यथा न डालियाँ हरी दिखती हैं, न फल ही स्वच्छ दिखते हैं। जड़ मजबूत है, जड़ हरी है, तो सम्पूर्ण वृक्ष हरा है। जिसके वैराग्य की जड़ मजबूत है, हरी-भरी है, उसके ज्ञान-दर्शन-चारित्र सारे चमकते दिखते हैं। जिसका वैराग्य नष्ट हो चुका है, उसके संयम को कोई जीवन्त नहीं रख सकता है। वैराग्यविहीन चारित्र विधवा का शृंगार है। नारी का शृंगार पति मात्र के लिये होता है। जिसके पति का वियोग हो चुका है और वह शृंगार किये बैठी है, तो यह शृंगार किस बात के लिये है? **चारित्र की शोभा वैराग्य के साथ है। वैराग्यविहीन चारित्र प्राणरहित शरीर है, जैसे शरीर से श्वास निकल चुकी है। आत्मा के निकलने के बाद शरीर में क्या दिखाई**

देगा? मात्र दुर्गन्ध-ही-दुर्गन्ध है और लम्बे समय तक रखा रहा तो कीड़े और पड़ जायेंगे। मृतक शरीर में अवशेष कुछ नहीं बचा दुर्गन्ध के अलावा। ऐसे-ही जिसके हृदय से वैराग्य के प्राण निकल चुके हैं, उस चारित्रवान् के पास मात्र इच्छाओं की पूर्ति की दुर्गंध होगी, उसके पास और कुछ नहीं बचा है। प्राणविहीन शरीर में कुछ नहीं दिखता है, ऐसे ही वैराग्यविहीन संयम के पास कुछ नहीं है।

साधु को वैराग्य की रक्षा करना चाहिये। वैराग्य का आनन्द कुछ अलग ही है। जीवन में आपने सभी आनन्द देखे, राग के बहुत आनन्दों का वेदन किया। एक क्षण को अपनी आत्मा से कहो कि मैंने अपनी पर्याय में नाना विषयों की अनुभूति की है, एक क्षण को वह अनुभूति करना चाहता हूँ जो एक वैरागी की होती है जब सारा लोक आँखों से आँसू टपकाता है, तब वैरागी का चेहरा मुस्काता है। जगत् में हाय-हाय होती है, वैरागी आनन्दित होता है। क्लेश, अशान्ति, दुःख ये सारे-के-सारे वहीं हैं, जहाँ वैराग्य का अभाव है। वस्तु में कुछ नहीं है। वही भवन, वही गलियाँ, वही अटारियाँ। एक क्षण को आनन्द दे रही थी राग का, लेकिन वैराग्य होते ही ऐसा लगता है कि कब यहाँ से निकल जायें। जिसको अभी प्रदर्शिनी को देखने के भाव हैं, जिसको बाहर के द्रव्यों को देखने के भाव हैं, जिसको किसी शहर को देखने के परिणाम हैं, यानि अभी वैराग्य का अभाव है। कुछ नहीं देखना। देखने की कामनायें अभी अवशेष हैं तो उसे देखो जो देखने की बात कर रहा है। जो सारे लोक को दिखवा रहा है, उसे क्यों नहीं देख रहे हो? मोक्षमार्ग मात्र उसके लिये है जो उसे देखने के लिये चल पड़े जो सारे लोक को देख रहा है। उसका नाम मोक्षमार्ग है, अन्य कोई मार्ग नहीं है, अन्य कोई हेतु नहीं है। आचार्यभगवन् यहाँ पर 125वें श्लोक में उसी वैराग्य की बात कर रहे हैं। भोगियों की ओर दृष्टि डालते हुये कह रहे हैं कि तुम कहाँ भटक रहे हो? जिस क्षण वैराग्य हो जाता है, उसी क्षण ज्ञान होता है। ज्ञान का होना ही वैराग्य है। ज्ञानी तो सारे जगत् के प्राणी हैं। जो ज्ञान को विषयों में ले जा रहा है, ज्ञेय को तू ज्ञान का विषय बना रहा है, तब तक तेरी अज्ञानधारा है। जब तू अपने ज्ञान को वैराग्य की ओर मोड़ देता है, तू ज्ञान को चारित्र की ओर

ले जाता है, तब तेरा ज्ञान ज्ञानभूत परिणत होता है। वही ज्ञान ज्ञानभूत परिणत हो रहा है जिसका ज्ञान श्रद्धान को ग्रहण कर रहा है, चारित्र को ग्रहण कर रहा है। निज के भावों को उल्लसित कर रहा हो, उस ज्ञान का नाम निज ज्ञान है। सब अपने हाथ में है, कोई भी विषय पर के हाथ में नहीं है। किसी व्यक्ति को मिठाइयाँ अच्छी लगती हैं, किसी को नमकीन अच्छा लगता है। जो अच्छा लग रहा है, वह वस्तु के हाथ में है कि व्यक्ति के हाथ में है? समझो। अच्छा लगना वस्तु के हाथ में नहीं है, व्यक्ति के हाथ में है। इसलिये विश्व में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो सर्वथा हेयभूत हो। जिसको तुम बुरा कहते हो, वह किसी को अच्छा दृष्टिगोचर हो रहा है। जो तुमको अच्छा दृष्टिगोचर हो रहा है वह किसी को बुरा लग रहा है। ज्ञानियो! वस्तु में अच्छाइयाँ या बुराइयाँ किंचित् भी नहीं हैं। हे व्यक्तियो! तेरे राग में अच्छाइयाँ-बुराइयाँ हैं। जो भवन तुम्हें सुहावने लगते हैं, वे वैरागियों को असुहावने लगते हैं। व्यसनी पुरुष के लिये जो स्थान सुहावने दिखते हैं, वे एक सज्जन पुरुष के लिये असुहावने दिखते हैं। कुछ नहीं है। अभी जीव को ज्ञान नहीं हुआ।

भगवान् चन्द्रप्रभु स्वामी पूर्व पर्याय में दर्पण को देख रहे थे। दर्पण में चेहरा देखते-देखते उनको एक सफेद बाल दिख गया। बाल देखते-देखते अरे! ये यम का दूत आ गया है। मैंने पूरा जीवन विषयों में लिप्त कर डाला है, पतंगे की भाँति झुलस गया। एक दीपक के ऊपर पतंगा उड़ कर आ रहा था। उस असंज्ञी को विवेक नहीं था। चक्षु-इन्द्रिय के वशीभूत हो करके अपने जीवन को नष्ट कर रहा है। देखा प्रकाश पर कैसे जीव गिर रहे हैं? कैसे-कैसे जीव झुलस रहे हैं? एक क्षण को जलता दीप देखो, उसके ऊपर पतंगा घूम रहा है, तू सामने बैठा तटस्थ होकर देख रहा है। उस बेचारे को यह मालूम नहीं है, रोशनी के राग में जीवन की रोशनी को नष्ट कर रहा है। जगत् में यही तो हो रहा है। भोगों की रोशनी के राग में वैराग्य की रोशनी को नष्ट कर रहा है। विषयों की रोशनी के राग में जीवन की पर्याय को नष्ट कर रहा है। जितने चकाचौंध हैं, सामने हैं। हेलोजन का प्रकाश आपकी आँखों को तिलमिला रहा है। पतंगे को खाना मिलता है, भोजन नहीं मिलता। तुमने जितनी पर्याय का नाश भोजन के

लिये नहीं किया, उतना पर्याय को देखने में ही किया है। जितने आयुकर्म के निषेकों का क्षरण खाने में नहीं किया, जिस शरीर में खाना रखा था, उसके देखने में, उसके सजाने में सर्वाधिक क्षरण किया। बेटा! सत्य बताना। तुम दिन में दर्पण कितनी बार देखते हो और सिर पर हाथ कितनी बार फेरते हो? ऐसे-ऐसे अज्ञानी जीव मिल जायेंगे जो भगवान् जिनेन्द्र की प्रतिमा के पीछे दर्पण रखा होगा तो वहाँ भी जाकरके पहले धीरे से अपना ही चेहरा देख लेता है। बोला, 'भगवान्! इतना तो लाभ हुआ, भूत व भविष्य की पर्याय झलके या न झलके, परन्तु वर्तमान का चेहरा तो झलक गया। आपके पीछे लगे दर्पण में मैंने देख लिया है। हे पर्याय का राग! जिनको दर्पण साधन साक्षात् प्राप्त है, उनके राग फिर भी मन्द हो जायें, परन्तु जिनको दर्पण नहीं मिल पा रहा, लोकमर्यादा में जी रहे हैं, तो वे कहो सामने रखी चौकी, जिस पर परछाई पड़ रही है, उसको ही देखने बैठ जायें। आयुकर्म के निषेक कहाँ नष्ट किये? जितना भोजन में नष्ट नहीं हुआ, उतना शरीर को देखने में समय नष्ट हुआ है।

ओ हो! चन्द्रप्रभु स्वामी पूर्वपर्याय में चिन्ता में डूब गये। मैंने खुली आँखों से पर के चेहरे का भोग किया। दूसरे की चमड़ी को देख करके कितना गद्गद् हो रहा था? जैसे मुख में रखी सामग्री को गुटकता है, ऐसे ही रागी पर के चेहरे को देखकर भी गुटकता है। आप गहरी बातें पकड़िये। वैराग्य का विषय चल रहा है। इन सब रागियों को मालूम है कि जब इच्छित द्रव्य तुम्हारे सामने दिखाई दे जाये, तो वह भी कण्ठ में उतरता है। जब तीव्र वासनायें, तीव्र कषायें सताती हैं और लिप्त हो गया पर की चमड़ी में, तो तेरे कष्ट में तरंगें उत्पन्न हो रही हैं, पूरे शरीर में रोमाञ्च खड़े हो रहे हैं। जो रोमाञ्च पर के शरीर को देखकर हो रहे हैं, वह रोमाञ्च परमात्मा को देख कर हो जाते तो कर्म की निर्जरा हो जाती है। भगवान् को देखकर शुष्क खड़ा है और नारी को देखकर रोमाञ्च हो रहा है। तपोधन दिख जायें तो तेरा चेहरा उतर रहा है और राग के साधन दिख जायें तो मुस्करा रहा है। **जिसके संसार की दुर्गति नियत हो चुकी है, वह जीव परमेष्ठी को देखकर उदास हो जायेगा और रागी को देखकर खुश हो जायेगा। उसकी नरक की तैयारी हो गई है। नरकभूमि बाट जोह रही है उसके लिये**

जो परमेष्ठी को देखकर चेहरा उदास कर रहा है। घर में मामा आ जायें तो भानजा खुश हो जाता है। हे भानजे! तुम मामा को देखकर खुश हो रहे हो, ऐसे ही महात्मा को देखकर खुश हो जाते तो तेरे कर्मों की निर्जरा हो जाती। बच्चों को माँ के बाद मातुल के पास आनन्द आता है। माँ और मामा तो मात्र राग की पीठ ठोकेंगे, महात्मा तुझे वैराग्य की गोदी में बिठायेगा। ज्ञानियो! वैराग्य की गोदी में जाना है तो माँ और मामा के राग से दूर हो जाओ। दर्पण को देखते-देखते काले बाल सफेद हो गये, पर दर्पण ने क्या किया? न देखता तो कम-से-कम ये भाव तो न आते कि मेरे बाल सफेद हो गये। देखते-देखते बाल ही नहीं बचे, सफेद हो गये। किसी के झर गये। दर्पण देखते-देखते चिन्तन जारी था। जब पर की पर्याय को खुली आँखों से देख कर भोग रहा था, तब फिर राग सताता है। पर के चेहरे को तो आँखों से भोग लिया, अपने चेहरे का भोग कैसे करूँ? पर के चेहरे को तो नंगी आँखों से भोग डाला और स्वयं के चेहरे का भोग कैसे करूँ? सो दर्पण सामने रख करके भोगा। ध्यान दो, भोग चल रहा था, तभी आयुबन्ध का अपकर्ष काल आ गया, तो स्वयं के ही शरीर में जाकरके कीड़ा बन जाये। आयुबन्ध अपकर्ष काल आ गया और तिर्यञ्च आयु का बन्ध कर लिया और मृत्यु को प्राप्त होकरके जब तक विमान की तैयारियाँ हो रही थी, तब तक वह जीव उसी शरीर में आकरके कीड़ा बन चुका था। लोग यूँ कह रहे थे कि वह तो स्वर्गस्थ हो गया, परन्तु उसी शरीर में कीड़ा बन कर माँस के पिण्ड का भक्षण करना प्रारम्भ कर चुका था। जब संस्कार का समय आया, तब एकसाथ दो शरीर का संस्कार हो गया। जिसमें पूर्व में था, वह तो जला-ही-जला, जो तूने वर्तमान में शरीर प्राप्त किया था, वह भी साथ में खाख हो गया। और कदाचित् राग के वशीभूत हुआ पर के चेहरे को देख रहा था, कहीं पर के चेहरे को देखते-देखते आयुबन्ध अपकर्ष काल आ गया और तिर्यञ्च आयु का बन्ध हो गया, तो दूसरे के शरीर में जाकरके पसीने में कीड़ा बन गया। ये जुआँ कौन बन रहे हैं? **जिन जीवों को दूसरे के शरीर में राग था, दूसरे के शरीर में चिपक रहे थे, ऐसे पापी उनके शरीर में जाकर जुँआ बनते हैं।** अब चेहरा मत बनाओ। जो है, सो है। नारी में इतना लिप्त था कि यदि कोई कहेतीर्थ वन्दना

को चलो, तो 'अरे! मैं नहीं जा सकता हूँ।' किसी ने कहा कि अभिषेक-पूजन करो। नहीं कर सकता हूँ। मैं एक क्षण भी दूर नहीं हो सकता हूँ। मैं तो अपनी सुन्दरी का चेहरा देख रहा हूँ। हे पागल! तू देख ले अपनी सुंदरी का चेहरा। आयु तेरी पूर्ण हुई तो उसी सुन्दरी के शरीर में जाकर जुआँ बन जायेगा। चिपका रह। फिर वही सुन्दरी निकाल-निकाल कर, पकड़-पकड़ कर फेंकेगी। कुछ ऐसे पापी अभागे लोग होते हैं जो जीवों को धूप में डाल देते हैं, गोबर में फेंक देते हैं। अब देख लो वह सुन्दरी तेरा क्या कर रही है। सुन्दरी में तूने अपना सुन्दर रूप खो डाला और आज असुन्दर बन कर चिपक गया।

ज्ञानी! वस्तुस्वरूप समझो। मान लो मेरी बात, अभी मौका है। नहीं-तो इन ज्ञानियों से पूछो, कैसे तड़फ रहे हैं? मेरे मित्र! विश्वास रखना, **जितने जुएँ बने हैं वे सब पर के शरीरों के रागी हैं। जो पर शरीर में लिप्त थे उन्हीं शरीरों में जाकर जुऐं बने हैं और जिनको अपनी दुर्गति नहीं करना है, तो आज से परशरीर के ममत्व का त्याग कर दो।** दर्पण देखते-देखते पूरी पर्याय का तर्पण कर दिया। एक बाल देखा चन्द्रप्रभु स्वामी ने और देखते ही कहते हैं कि अहो! मैंने ये क्या किया? वैराग्य हो गया। जो राज्य सुहावना लग रहा था, जो नारियाँ आनन्द दे रही थीं, जो भवन/भूमियाँ सब सुखमय प्रतीत हो रही थी, वह दृष्टि क्षणमात्र में बदल गई। मैं कहाँ उलझा हूँ? वस्तु छुड़ाओगे तो व्यक्ति रोयेगा। वैराग्य हो गया तो वस्तु छोड़ देगा। मित्रो! जो वैराग्य का आनन्द है, यथार्थ समझिये, यह सूखी भाषा नहीं चल रही है। जो वैराग्य का आनन्द है, वह कुछ-और ही है। जिसके बिना एक मिनिट नहीं रह सकते थे, उन्हें देखना एक मिनिट भी पसन्द नहीं आ रहा है। कैसे रहेंगे जंगल में, कैसे झेलेंगे ठण्डी-गर्मी को, कैसे झेलेंगे भूख-प्यास को, जो यूँ सोचा करते थे और वैराग्य होते ही कहाँ भूख गई, कहाँ प्यास गई। जिनको राई के दाने स्पर्श करने पर पीड़ा दिया करते हों, जिनका भोजन कमल की नाल में चावल रखकरके फिर पकाया जाता हो, मैं किसका नाम ले रहा हूँ? सुकुमाल। अहो धनपतियो! तुम्हारे पास क्या है? सुकुमाल की माँ से पूछो। रत्न-कम्बल बेचने के लिये एक व्यापारी आया। उसकी कीमत को देखकरके राजा उनको खरीद नहीं सका। सुकुमाल की माँ ने उस

रत्न-कम्बल को खरीद करके अपनी बहू के लिये जूतियाँ बनवा दी। जूती छत पर पड़ी हुई थी। चील ने समझा कि कोई माँस का टुकड़ा है, सो वह उठाकर ले गया। वह जाकरके राजा के भवन की छत पर गिरी। रानी ने देखकर राजा से कहा कि यह रत्नजड़ित जूतियाँ किसकी हैं? राजसभा में चर्चा हुई, ये तो उसी कम्बल की हैं जो अपन ने खरीदा नहीं था। हमारे नगर में ऐसा कौन-सा सेठ है जिसके घर में इसकी जूतियाँ बनवाई गई हों। मन्त्री कहता है, 'महाराज! ये नगरसेठ सुकुमाल के घर की हैं।' उनको बुलाया जाय। वे आ नहीं सकते, बहुत नाजुक हैं। मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। राजा के समाचार आये। सुकुमाल की माँ ने सारी व्यवस्था करके रखी। राजा के सम्मान के लिये रत्नों के थाल भर कर रख लिये। जैसे ही राजा ने घर में प्रवेश किया, राजा की आरती उतारने के लिये जब घृत का दीप जलाया गया, तो सुकुमाल की आँखों से पानी झरने लगा। राजा पूछता है, क्या आपके बेटे को कोई रोग है? नहीं, महाराज! क्षमा करना। इतना ही नहीं। जब भोजन के लिये बैठे, तो राजा के साथ भोजन चल रहा था। एक-एक चावल उठा कर चुन रहे थे। राजा से रहा नहीं गया। बात क्या है? तब माँ कहती है, महाराज! आपके आने पर मैंने घृत का दीप जलाया। इसने आज तक सूर्य की रोशनी नहीं देखी, कोई दीपक जलता नहीं देखा। रत्नों के प्रकाश में रहता है और मखमल के गद्दों पर रहनेवाला है। आपके सम्मान में हमने राई का छिड़काव किया था, यह पलंग पर गिर गई, सो उसको चुभ रहा है। भोजन में चावल आपके आने पर हमने मिश्रण कर दिया है। ये कमल के पत्र पर सिझे हुये सुवासित चावलों का सेवन करता है। राजा भी सोचता है कि इतना सुकुमाल? जो इतना सुकुमाल था, पर माँ का तीव्र राग, बेटे को घर के बाहर नहीं जाने दिया। जब देखा कि आयु तीन दिन की अवशेष है, माँ नहीं छोड़ेगी, उनके ही मामा ने नगर में चातुर्मास किया। निष्ठापन के दिन भवन के बगल में 'तिलोय पण्णत्ति' का पाठ किया। उस पाठ को सुनते ही वैराग्य हो गया। सब स्मृतियाँ दृष्टिपटल पर सामने आ गई। तीनों लोक में ऐसा कोई प्रदेश नहीं जहाँ मैंने जन्म नहीं लिया।

मेरे भैया! एक कमरे के राग में तुम भैया को दुश्मन मत बनाना। यह कहता

है कि इस भूखण्ड का स्वामी मैं, वह कहता मैं। भूमि कब कहती है कि मैं तेरी पत्नि हूँ? हे भूपतियो! व्यभिचारी दृष्टि छोड़ो। पत्नि ने कब कहा कि तू मेरा स्वामी है? पर तू अपने आप में स्वामी बन कर बैठा रहा। बड़े-बड़े स्वामी चले गये। किले को देखकर आओ, कहाँ गये स्वामी? जिसने बनवाया था, वह भी गया और जिसने अधिकार जमाया था, वह भी गया। बनानेवाला नहीं बचा, बनवानेवाला नहीं बचा, रहनेवाले भी नहीं बचे। यदि कहीं आपकी नियत बदल रही हो तो आज ही दूसरे की चाबी उसके हाथ में देकर आ जाना, बड़े प्रेम से कहना। भैया! आकाश में बादल छाये और बादलों से पानी गिरा और मिट्टी गीली न हो, ऐसा होता नहीं है। जब मिट्टी गीली हो सकती है, तो मैंने जिनवाणी सुनी है, मेरा हृदय गीला न हो, ऐसा हो नहीं सकता है। इसलिये आज से मैं बैर छोड़ता हूँ। यदि तुमने पति को उल्टी शिक्षा दे दी हो कि माँ से हिस्सा माँगो, तो आज उसको ठीक कर देना। वनवास दिया जा सकता है, पर वनवास पर रखा नहीं जा सकता।

कैकई ने भरत के लिये राज्य माँग लिया था। राम जंगल चले गये, परन्तु वन गये राम, सो बन गये राम। न जाते राम, न बनते राम। बनना हो तो वन चलो। घर में रह कर बिगड़ते-ही-बिगड़ते हैं।

ज्ञानियो! 'तिलोयपण्णत्ति' का पाठ सुनते ही घर से निकलने के भाव हुए, लेकिन अब निकलने को तो मिलने वाला था नहीं। जो बन्ध के कारण थे, वे मोक्ष के कारण भी तो होते हैं। जो साड़ियाँ राग में बाँध रहीं थीं, वे साड़ियाँ आज तिरने के साधन बन गईं। तू तो ऐसा यहाँ तक आ गया, फिर घर चला जायेगा। भैया! पत्नि की सड़ियाँ बाँध-बाँध करके दीवाल से बाँध कर लटका दीं। वे पापी हैं जो साड़ियों से गला घोंट कर मृत्यु को प्राप्त हो जायें और वे पुण्यात्मा जीव हैं जो साड़ियों को बाँध करके संसार से पार हो जायें। वे साड़ियों के सहारे नीचे उतर गये, माँ को पता नहीं चल पाया। जाकरके मामा से मिले। मामा हों तो ऐसे हों। उनके चरणों में पहुँच गये। जिनको राई के दाने चुभा करते थे, जब राग था तब राई चुभ रही थी। राग चला गया तो कंकड़-पत्थर भी समझ में नहीं आये। पहली बार जमीन में उतरे थे इसलिये पैर रखते ही छिल गये, रक्त निकलना प्रारम्भ हो गया। दीक्षा ले करके जंगल पहुँच कर ध्यानस्थ हो

गये। मित्रो! कभी भी जीवन में पुण्य की सत्ता में शत्रु बनाकर मत जाना। सियालनी अपने बच्चों सहित निकल पड़ी। पूर्व का बैर उमड़ पड़ा। जहाँ-जहाँ रक्त के धब्बे पड़े हुये थे, वहाँ-वहाँ से जाकर पहुँच गई वहाँ। जहाँ सुकुमाल मुनि ध्यानस्थ थे।

बेटा! चाहे भाई हो, चाहे भाभी हो, चाहे माँ हो, चाहे मामा हो, कुटुम्ब के लोगों के साथ भी कभी शत्रुता बाँध कर मत जाना। सबसे ज्यादा परिचित यही होते हैं और सबसे ज्यादा दुःख देने वाले यही होते हैं। सियालनी ने बच्चों सहित पहुँच करके मुनिराज का पैर पकड़ लिया। रक्त की धारा बहने लगी। ज्ञान-वैराग्य की शक्ति उनको निश्चल खड़ा किये हुये थी।

'सम्यग्दृष्टि नियतं भवति ज्ञान-वैराग्य शक्तिः' सम्यग्दृष्टि जीव के ज्ञान-वैराग्य शक्ति नियत होती है। ज्ञानशक्ति से जानता है, वैराग्यशक्ति से विरक्त होता है। जिसकी ज्ञानवैराग्य शक्ति क्षीण हो चुकी होती है, उसको कोई संयम में रोक कर रख नहीं सकता। पैर भकना शुरू कर दिया, रक्त के फौब्बारे फूट पड़े। यह था 'समयसार'। यहाँ कहना-

'अहमिक्को खलु शुद्धो, दंसण-णाण मइयो सदा रूवी।'

निश्चय से मैं शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानमयी हूँ, अरूपी हूँ। जगत् का परमाणु मात्र भी मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। सुख-सुविधाओं में संकट के काल में निज की साम्य परिणति को सुरक्षित रख पाना इससे बड़ा जगत् में कोई पुरुषार्थ नहीं है। विपत्ति के काल में जो मुस्कराना जानता है, वह विपत्ति को विपत्ति में डालना जानता है। विपत्ति के काल में जो मुस्कराना नहीं छोड़ता है, उसको देखकर विपत्तियाँ ही विपत्ति में पड़ जाती हैं कि अब मैं क्या करूँ? विपत्तियाँ तो रुलाने को आती हैं, हँसाने थोड़े-ही आती हैं। तत्त्वज्ञानीजीव विपत्ति के काल में भी मुस्कराता है। उसे देखकर विपत्तियाँ ही विपत्ति में पड़ जाती हैं। धन्य है उन योगीश्वर को। सियालिनी शरीर भकती रही, योगी कर्म को नष्ट करते रहे। मामा मुनिराज खड़े थे। हे जीव! तू ये क्या कर रहा है? हे कषाय! तू भगवान् को भी नहीं छोड़ती। हे कषाय! तू निर्ग्रन्थों पर भी वार कर देती है। मित्रो! बध करना तो पाप है ही, किसी को बदनाम करना भी घोर पाप है। बेटा यह तुम्हारा अहोभाग्य है कि छोटी अवस्था में तुम तत्त्व सुन रहे हो। कभी किसी को अपमानित

और बदनाम करने का विचार मन में मत लाना। प्रतिशोध की भावना ही निज आत्मा का शोषण है। भोजन-पानी छोड़ देना, नीरस कर लेना सरल है, परन्तु बदले की भावना का त्याग पहले कर देना। साधु बनने के पहले बदले की भावना छोड़ देना। बदले का भाव रहा तो कपड़े ही बदल पाये, निज को कहाँ बदल पाये? देह के कपड़े उतार देने से कोई बदलाव नहीं होता है, भावों की कषाय बदल जाये, उसका नाम बदलाव है। धन्य हो योगीश्वर! भूल क्या हो गई थी सुकुमाल महाराज से? सुनना ध्यान से। बगल में बेटा बैठा है, उसके गाल पर भी चाँटा नहीं मारना, क्योंकि वह समझदार हो गया है। तेरी परिणति तेरे हाथ में है। तेरे गाल पर चाँटा मार करके मैं भविष्य का शत्रु नहीं बनाना चाहता हूँ। कुछ नहीं था। जो पैर भख रही थी, वह पूर्व भव की भाभी थी। देवर ने अहंकार में आकरके भाभी को पैर मार दिया था। बैर कह रहा है जो पैर मारा था, वही पैर भख लिया। ज्ञानियो! कोई पुरुष खोटा नहीं है, कोई नारी खोटी नहीं है। खोटा तो बैर है। बैर बाँध कर मत जाना। वैराग्य लेकर चले जाना।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि खाज हो जाये तो कितना कष्ट होता है? कण्डूक खुजाने में आनन्द आता है, लेकिन खुजाने के बाद क्या होता है? खाज खुजाने में मीठी-मीठी अनुभूतियाँ दे रही है, फिर खुजाने के बाद जब सी-सी करता है, तो पता चलता है। अहो भोगियो! ये भोगों की अनुभूतियाँ, वासनाओं की खुजलाहट है। खुजाने में तुमको आनन्द आता है, लेकिन जब कर्म का उदय आता है, तब सी-सी करता भागता है। क्या करे? पर सत्य यह है कि जिनको खुजली नहीं हुई है, वे ही तो सुखिया हैं। खुजली हो भी जाये तो नाखूनों से खुजाना मत, ओषधि का उपयोग कर लेना, जिससे शमन हो जाये। भोगों की खुजली पड़े तो तत्त्वज्ञान की ओषधि का प्रयोग कर लेना, कोई निर्ग्रन्थ तपोधन के पास चले जाना यदि आत्मरक्षा चाहते हो तो। जब-जब अशुभ भाव आयें तो पुण्यपुरुषों के पास जाकर बैठ जाना, आप अशुभ से बच जाओगे। पापियों के पास बैठोगे तो आप गिरोगे-ही-गिरोगे। वे ही सुखिया हैं जो कामवासना की अग्नि से अपनी रक्षा किये हैं। अग्नि में हाथ जायेगा तो फोले तो पड़ेंगे ही। विषयों की भट्टी में जायेगा तो कषायों के फोले तो पड़ेंगे, कर्म के फोले तो पड़ेंगे-ही-पड़ेंगे।

सद्व्रतों को धारण तो कर लिया, लेकिन विधिपूर्वक पालन नहीं किया, तो काम बननेवाला नहीं है। युवाओं ने चौका लगाया, उनकी आस्थाओं से पूछो। भोजनसामग्री मिल भी जाये, लेकिन भोजन बनाने की विधि मालूम नहीं हो, तो वह सारी सामग्री को बिगाड़ देगा। ऐसे ही जिस जीव ने चारित्र धारण कर लिया, लेकिन पालन करने की विधि नहीं जानता है, तो वर्तमान का सुख भी नष्ट कर लिया और भविष्य का सुख भी उसके हाथ से गया। इसलिये संयम का पालन विधिपूर्वक होना चाहिये। अग्नि पर भोजन तपता है, पकता है, उसका मतलब यह नहीं कि इतना जला दो इतना जला दो कि जल ही जाये। ऐसे-ही कुछ ऐसे अनाड़ी लोग तपस्वी बन जाते हैं जिनको कुछ विवेक है नहीं। मैं ऐसे उपवास करूँगा, ऐसा करूँगा तो फिर वैसा करूँगा असमय में ऊपर गये। अरे भाई! कितना तपाना? विधि तो होनी चाहिये। शरीर को इतना ही खींचना कि जिससे शरीर टूटे न। सल्लेखना करना चाहिये, कुमरण नहीं करना चाहिये।

जं सक्कइ तं कीरइ।

जितनी सामर्थ्य है, उतनी तपस्या करो। जितनी सामर्थ्य नहीं है, उतना श्रद्धान रखो। श्रद्धान करने से भी अजर-अमर पद को प्राप्त करेगा। कभी खींचना नहीं और देखा-सीखी साधना मत करना।

आगम कह रहा है कि सामर्थ्य होने पर भी जो तपस्या नहीं करता है, वह चोर है।

लोग सोचते हैं कि पर की वस्तु को हरण करना मात्र चोरी है, जबकि अपने वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम को छुपा कर रखना भी चोरी है। यदि ज्ञानी दस उपवास करने की सामर्थ्य रखता है और एक भी न करे, तो पक्का डाकू है। इसका मतलब आप नहीं हो क्या? शक्ति से अधिक भी नहीं करना, शक्ति को छुपाकर भी नहीं रखना। दो उपवास की सामर्थ्य हो तो एक कर लेना। क्यों? कल अन्तराय आ जाये तो उसके लिये भी शक्ति सुरक्षित रखो। बस साधक को इतना विवेक होना चाहिये। जो इतना विवेक नहीं रखते, वे तड़पते हैं।

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि सद्व्रतों को विधिपूर्वक पालन करो, समीचीन चारित्र का पालन करो। जो विधिपूर्वक समीचीन पालन करता है, वह उत्तम पद को प्राप्त होता है। यदि विधिपूर्वक भोजन बनता है तो तुम्हारी थाली में

सुगन्धित सामग्री पक कर आती है और आप स्वाद पूर्वक शान्ति से भोजन करते हो। ऐसे ही जो विधिपूर्वक संयम का पालन करता है, उसका चारित्र पक जाता है तो यह पका हुआ चारित्र मोक्ष का स्वाद देता है। साधको! विधिपूर्वक पालन करना और गुरु की साक्षी में करना। आपकी टेढ़ी दीवार स्वयं को समझ में नहीं आती, सामनेवाले को समझ में आती है। मकान बनानेवाला कारीगर एक धागा-सा लिये रहता है, जिसमें लट्टू लगा रहता है। उसे दीवाल में टाँग कर दीवाल का टेढ़ापन देखते हैं, उसे गुनिया कहते हैं। मकान के टेढ़ेपन को नापने के लिये गुनिया होती है और परिणामों की टेढ़ को नापने के लिये गुणस्थान होता है। आजकल तो वाटर लेबल से नाप होने लगी है। पानी से बड़ा सुन्दर कौन होगा? बिल्कुल लेबल पर चलता है। ज्ञानियो! परद्रव्य को नापने के लिये अनेक यन्त्र बना लिये हैं, निज के परिणामों को नापने के लिये भी एक यन्त्र बना कर चलना। आज इतने ठण्डे क्यों हो रहे हो? यथार्थ मानना, ऐसे ही परिणाम तुम्हारे घर में होने लग जायें तो पिच्छि-कमण्डलु की बहुत तैयारियाँ करनी पड़ जायेंगी। ऐसे परिणाम घर में भी रखो।

भोगों को चाहने वाला अज्ञानी, मोह के वश होकरके, धर्म को पालने में भी आगामी भोगों की आकांक्षा कर बैठता है। महावीर जी, तिजारा, पद्मपुरा बहुत लोग जाते हैं। वहाँ भक्त कम, भिखारी ज्यादा हैं। कैसे अज्ञानी लोग हैं कि तीर्थंकर तक को शनि ग्रह पर बिठाल दिया। मैं चाहता हूँ कि सबको शनि लग जाये। बड़ा भाग्य है शनि लगने से। लोग ये कहते हैं कि जिसको शनि लगा, उसके कुछ नहीं बचेगा। मैं तो कहता हूँ कि सबको शनि लग जाये, किसी के पास कुछ न बचे, सो सब दिगम्बर बन जायें। परिग्रह उतार दो तो शनि कुछ नहीं करता। कर्मक्षय के लिये पूजा विधान करने वाले तो अंगुलियों पर गिनने लायक हैं। जो व्यक्ति धर्म भी भोगों के लिये करता है, वह उसके समान है जैसे किसी को धागा चाहिये था सो उसने अपने माँ के रत्नों के मंगलसूत्र को चूर्ण कर दिया कि माँ मुझे धागा चाहिये। हे अभागे! धागे को निकालने के लिये रत्नों के मंगलसूत्र को तोड़ दिया है। ऐसे-ही जो भोगों के लिये धर्म को न्यौछावर कर रहा है, वह उसी अभागे के समान है जो रत्नों के मंगलसूत्र को तोड़ करके धागे को निकाल

रहा है।

ज्ञानी ने भोजन किया। अब उसे बर्तन माँजने के लिये राख चाहिये थी। उसने रत्नों के हार को जला कर राख बनाई और जूठी थाली माँज रहा है। जो व्यक्ति मनुष्यपर्याय प्राप्त करके भोगों में लिप्त हो रहा है, उसे ऐसे-ही मान कर चलना जैसे वह रत्नों को राख करके जूठी थाली माँज रहा है। तुमसे जैसा बने, वैसा करो। मैंने तो कह दिया– 'जं रुच्चई तं कुज्जा' आज अपने घर जाकर सबसे कह देना, हे ज्ञानियो! राख के पीछे रत्नों को मत जलाओ। भो ज्ञानियो! भोगों के पीछे मनुष्यभव मत नशाओ।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



'भोगार्थी कौनसा अनर्थ नहीं करता?'

भोगार्थी य करोत्यज्ञो निदानं मोहसङ्गतः।
चूर्णीकरोत्यसौ रत्नं अनर्थसूत्रहेतुना॥ 126॥

अन्वयार्थ- यः भोगार्थी = जो भोगों को चाहनेवाला, **अज्ञः** = अज्ञानी **मोह सङ्गतः** = मोह के संयोग से मोही होकर धर्म पालते हुए भी **निदानं करोति** = निदान यानि आगामी भोगों की वांछा करता है **असौ** = वह **अनर्थसूत्रहेतुना** = निष्प्रयोजन सूत के लिए **रत्नं** = रत्न को **चूर्णी करोति** = चूर्ण कर डालता है।

भावार्थ-भोगों को चाहनेवाला जो अज्ञानी मोह के संयोग से मोही होकर धर्म का पालन करके भी आगामी भोगों की वांछा करता है, वह मानो तुच्छ सूत्र (डोरा) के लिये रत्नों के हार का चूर्ण करता है अर्थात् हार को तोड़ता है।

"वैराग्य भावना भाओ"

भव-भोग-शरीरेषु भावनीयः सदा बुधैः।
निर्वेदः परया बुद्धया कर्मारातिजिघृक्षुभिः॥ 127॥

अन्वयार्थ-कर्मारातिजिघृक्षुभिः = कर्मरूपी शत्रुओं को पकड़ने की इच्छा करने वाले **बुधैः** = बुधिमान को, **भव-भोग-शरीरेषु** = संसार, भोग और शरीर में **निर्वेदः** = वैराग्य **परया बुद्धया** = बड़ी बुद्धिधमानी के साथ, **सदा भावनीयः** = सदा मनन करना चाहिए।

भावार्थ-कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वाले बुद्धिमानों को उत्कृष्ट बुद्धि के द्वारा निरन्तर संसार, शरीर और भोगों में निर्वेद (वैराग्य) भाव का मनन करना चाहिए।

सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी में परमसमरसी भाव की प्राप्ति के उपाय की व्याख्या कर रहे हैं। वस्तुतत्त्व की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब वैराग्य की ज्योति तुम्हारे अन्दर में जाज्वल्यमान है। जिसको तुम निहार रहे हो, जिसको

तुम देख रहे हो, वह नष्ट होनेवाला है। जिससे आप द्वेष कर रहे हैं, वह भी तुम्हारे साथ नहीं होगा। जिससे प्रीति कर रहे हो, वह भी तुम्हारे साथ नहीं होगा। पर्याय दृष्टि से कितने द्रव्य उत्पन्न हुये हैं और कितने द्रव्य नष्ट हुये हैं? एक भी पर्याय शाश्वत् सम्भव नहीं है। जिनके चमकते चेहरे थे, वे मलीन हो गये। जिस पर भौंरे मड़राया करते थे, वे फूल जमीन में झड़ कर मिट्टी बन चुके हैं। पुष्पों की माला को हर कोई गले में डालना चाहता है। जब वह माला दूसरे के गले में पड़ चुकी होती है, फिर उस माला को मल के ही रूप में देखा जाता है। दूसरे के गले में पड़ी माला को तुम मल स्वीकारते हो, तो हे मुमुक्षु! जो गले ही मलभूत हैं, उन गलों को क्यों स्वीकारते हो? उस पुष्प को देखो जो अर्थी पर पड़ चुका है, उसे उठाना पसन्द नहीं करते हो। जो पुष्प मृतक के शरीर पर पड़ चुका है, उसे कोई उठाना स्वीकारता नहीं है। वही तो शरीर है, जिसे तू सजाया करता था। आज उससे स्पर्शित पुष्प को उठाना पसन्द नहीं कर रहे हो, तो इस चैतन्यशून्य देह में राग किस बात का? जिसमें आत्मा है, वही तो मुर्दा होगा। मृतक को तुम हेय देखते हो। मृत्यु होने के पहले हेय देखना प्रारम्भ कर दो। मृत्यु होने के पहले हेय देख लेगा तो योगी बन जायेगा और मृत्यु के पहले तू देह को उपादेय मानेगा तो यह भोगी की पहचान है।योगी मरने के पूर्व भी तन को मृतक ही मानता है, देह को मृत्युभूत ही मानता है और भोगी देह को ही सर्वस्व मानता है। जितने पाप हो गये, जितने पाप हो रहे हैं, सब शरीर-आश्रित हैं। क्या किया है? देह के आलम्बन को लेकर तू तपोधन तो बन सकता था, तपस्या करके कर्मातीत हो सकता था, लेकिन देह का आलम्बन लेकर देह में विदेही का विवेक नहीं रखा। अनित्य पर नित्यदृष्टि जिसकी है, वही बहिर्दृष्टि है। अध्रुव पर ध्रुवदृष्टि है, वही बहिर्दृष्टि है। कौन-सा शरीर-धारी यहाँ पर ऐसा है, जिसको अपना शरीर नहीं छोड़ना पड़ेगा? शरीर छूटेगा। ज्ञानी! जन्मदेनेवाले नहीं बचे, तो जन्म लेनेवाले भी नहीं बचेंगे। जो शाश्वत् है, उस पर लक्ष्य क्यों नहीं है?

चाहे वाहन हो, चाहे विमान हो, चाहे भवन हो, चाहे झोपड़ियाँ हों, सभी अशाश्वत् हैं। चलते-चलते चला गया। सोते-सोते चला गया।एक अज्ञानी खाते-खाते ही चला गया। भैया! कम-से-कम विश्राम के समय तो मुख में गुटका मत रखो। सोते-सोते तो कम-से-कम मुख में मत रखो। चलते-चलते तो कम-से-कम मुख बन्द रखो। प्रश्न है कि लौंग-इलायची खाने से किसका पेट भरता है? खाद्य, स्वाद, लेह, पेय ये चार प्रकार का आहार है। मुझे इतना डर लगता है कि कहीं खाने को नहीं मिला तो क्या होगा? एक क्षण भी मुख को शुद्ध नहीं रखना चाहता है। पेट भर कर आया, लेकिन इच्छा नहीं भरी, सो लौंग खाकर आ गया। पेट भर कर आया था, फिर मुख में इलायची रख कर चल दिया। रास्ते में किसी का धक्का लग गया, सो खाते-खाते ऊपर चला गया। लौंग-इलायची खाना थी, सो उसी समय मुट्ठी भर कर खा लेता और मुखशुद्धि करके प्रत्याख्यान कर देता कि अब मैं जब तक पुनः भोजन नहीं करूँगा, तब तक का त्याग है। इस तरह त्याग के साथ तो मरण होता। कितनी लिप्सा बढ़ चुकी है एक-एक ग्रास के लिये। जैसे घास के लिये पशु झगड़ते हैं, ऐसे तुम झपट रहे हो। भोजन की भूख बहुत कम है। उन जीवों से भी मिल लेना, जो खाते एक बार हैं, लेकिन नाम की भूख विशाल है। ये जीव एक बार भोजन करके चौबीस घण्टे निकालने की सामर्थ्य रखता है, परन्तु पूजा की भूख एक मिनिट भी शान्त नहीं बैठने देती। पेट भरने के लिये बहुत नहीं चाहिये पड़ता और पेट व पेटियाँ भी भर जायें, परन्तु अन्दर की लालसा के लिये बहुतकुछ चाहिये पड़ता है। किसके मान बचे हैं, किसके सम्मान बचे हैं?

बेटा! कपड़े उतार देना सरल है, घर छोड़ देना सरल है, लेकिन अन्दर की मानकषाय को उतारकर फेंक पाना बहुत कठिन है। पहले कपड़े नहीं उतारना चाहिये, पहले मान उतारना चाहिये। मान उतरेगा, तभी महान् बन सकेगा। जब तक मान नहीं उतर पा रहा है, तब तक महान् नहीं बन पायेगा। मुमुक्षु! महान् बनना है तो मान को उतारकर फेंक दो। कषाय भीतर है, वस्त्र तो बाहर के हैं। इनको उतारकर फेंकना कठिन नहीं है, अन्दर की कषाय को फेंकना बहुत कठिन

है। प्रतिदिन नष्ट होते देखते हैं, पानी के बुलबुले को विलीन होते देखते हैं, फिर भी मिट्टी के पुतले मिट्टी में ही लिप्त होते हैं। घरघूले देखे आपने? बारिस के मौसम में जब रिमझिम पानी गिरता है, मिट्टी गीली होने लगती है, छोटे-छोटे बच्चे पैरों को मिट्टी में छुपा करके एक घर-जैसा बनाते हैं, उसका नाम घरघूला है। कितनी बार बनाते हैं, कितनी बार मिटाते हैं, मुमुक्षु! बच्चे पैर से बनाते हैं, तुम हाथों से बनवा रहे हो। कितने बार मिटेंगे, कितने बार बनेंगे? पर रहने को नहीं मिलेगा। घरघूले बना रहे हैं। सबको मिटा देती है, सबको मिला लेती है, उसका नाम मिट्टी है। इस मिट्टी की देह को देखकर अपने परिणामों को मिट्टी-तुल्य मत करो। यह विश्वास रखो, कितने ही ऊँचे मिट्टी के टीले खड़े कर देना, ये टीले भी मिटेंगे और जिस तन से ये टीले खड़े किये, वह तन पहले ही मिट जायेगा। कौरवों के महल कहाँ हैं, पाण्डवों के महल कहाँ है? और तो ठीक है, वे तीर्थंकर महावीर जिस नन्द्यावर्त महल में जन्म लिये थे, वे महल कहाँ हैं? ज्ञानियो! जिस महल में ऋषभदेव का जन्म हुआ, वह चौरासी खण्ड का महल था। तीर्थंकर-जैसा पुण्यात्मा जीव जिस महल में जन्म लिया था, वह महल भी नष्ट हो गया और जनमने वाला भी निर्वाण को प्राप्त हो गया। मैं किस सोच में जी रहा हूँ? क्या मेरे द्वारा निर्मित भवन बचेंगे? और भवनों के राग में भावनाओं को क्यों दूषित कर रहा है? भवन तो नियम से नष्ट होंगे। भावनाओं को पवित्र कर लेगा, तो परमात्मा बन जायेगा।

भवनों के राग में भावना को दूषित मत करो। आज भाई ही भाई से क्यों नहीं बोल रहा है? जिस पिता ने तुझे जन्म दिया था, उससे ही नहीं बोल रहा है। मुझे भवन नहीं मिला जो मैं चाहता था। कहीं मर गया तो उसी भवन के बिल में चूहा बनेगा, चींटी बनकर घूमेगा, छत-छत पर बन्दर बनकर घूमेगा। मानो मेरी बात। चाहे तुम योगी हो, चाहे तुम भोगी हो, भवनों का राग रहेगा तो भावनायें तो दूषित होंगी ही। उन भैयों से पूछो, उस दिन की याद करो जब माँ ने तुम दोनों को एक कटोरे में खीर खिलाई थी एक आँगन में बैठा करके, लेकिन तूने आँगन में ही दीवार खड़ी कर दी। यह आँगन की दीवार नहीं है, यह भावनाओं

की दीवार है जो आँगन में दिखाई दे रही है। जिस घर के आँगन में दीवार खड़ी हो चुकी है, उस घर को झाँक कर आना और निर्णय कर लेना।

साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानं।

साधन से साध्य का ज्ञान 'अनुमान' कहलाता है। अनुमान लगा लिया गया है कि जब दीवाल इतनी ऊँची दिखाई दे रही है, तो भीतर कितनी बड़ी दीवाल खड़ी हो चुकी होगी दो भाइयों के बीच में?

इंजीनियर साब! आप अपनी बुद्धि से बताओ, रोड़ का नक्शा पहले बनाया कि रोड़ पहले बनाई? पहले नक्शा बनता है। रोड़ तो बहुत दिन बाद बनती है। ज्ञानी! सत्य बताना, रोड़ बहुत दिन बाद अवश्य बनती है, लेकिन आपको वेतन मिलना कब से प्रारम्भ हो जाता है? रोड़ बन पाये या न बन पाये, तूने तो नक्शा बना दिया है, सो तुझे वेतन मिलना प्रारम्भ हो जाता है। हे ज्ञानियो! घर में चाहे दीवाल खड़ी हो पाये या न हो पाये, पर भीतर दीवाल खड़ी हो चुकी थी, कर्म का आस्रव तो जारी हो ही चुका था। पुलिया या भवन का नक्शा पहले बनाता है। बिना नक्शा बनाये भवन खड़ा नहीं हुआ। तो जब से नक्शा बनाया है, तब से आस्रव प्रारम्भ हो चुका है। भैया! बाहर की दीवाल तो बाद में खड़ी हुई, पहले भीतर दीवार खड़ी हो चुकी थी। भीतर दीवार खड़ी हो चुकी है, इसे लोक में कैसे बताया जाये, तो उसके लिये बाहर की दीवार खड़ी की गई है। उनके घर में दो चूल्हे जलेंगे जिनके हृदय में चूल्हे जल चुके थे। जब हृदय के चूल्हे नहीं बुझ पाते हैं, तब घर में दो चूल्हे जल जाते हैं। ऐसा नहीं है क्या? है, ऐसा ही है। यदि घर में बहू के हृदय में चूल्हा न जले, तो सासू का चूल्हा हटाकर अपना चूल्हा न बनाये। उस चूल्हे की आग तो तभी तक जलती है जब तक रोटी पकानी पड़ती है, लेकिन भीतर के कषाय के चूल्हे इतने गरम हैं कि उनकी आग कभी बुझती ही नहीं है, चाहे स्वयं राख हो जाय। बुरा तो नहीं लग रहा? 'नहीं, चोट लग रही है।' विश्वास मानो, किञ्चित् भी तत्त्व समझ में आ रहा है तो मेरे मित्र! आँगन में दीवार खड़ी मत करो। हे श्रावको! माँ के आँगन में दीवार खड़ी मत करो और हे श्रमणो! जिनवाणी के आँगन में कषाय

की दीवार खड़ी मत करो।

हे श्रावको! जन्म देनेवाली माँ के आँगन में दीवाल खड़ी मत करो। हे श्रमणो! माँ भगवती जिनवाणी के आँचल का पान करनेवाले योगियो! तुम जिनवाणी के आँगन में दीवार खड़ी मत करो। कुछ नहीं होगा, पर्याय नष्ट हो जायेगी, जीवन नष्ट हो जायेगा। परिणति नहीं सुधरी तो गति सुधरनेवाली नहीं है।

भोग छोड़ देना सरल है, भोजन छोड़ देना सरल है, परन्तु भव का राग छोड़ पाना कठिन है। ये भव का राग पेर रहा है कि विशुद्धसागर के नाम पर हर नगर में एक भवन खड़ा होना चाहिये, उसमें विशुद्धसागर लिखा होना चाहिये, उनके नाम का मण्डप होना चाहिये, धर्मशाला होना चाहिये। भोग छोड़ दिये, लेकिन भव का राग नहीं छोड़ रहा है, पर्याय का राग नहीं छूट रहा है। इसी कारण से जीव लिप्त हो रहा है। आगरा में देखो किला खड़ा हुआ है। सुबह से उन पर जब कोई नहीं पहुँच पाता है, उससे पहले कौए पहुँच जाते हैं। आपको याद नहीं है, वे कौन हैं? जो राग के वश बनवाकर गये थे, वे बेचारे आर्त्तध्यान से मर गये, अब देखने को कैसे मिलेगा, सो कौये बनकर बैठने को आ गये हैं। जिन-जिन को कौआ बनकर आना हो, तो बड़े-बड़े भवन खड़े करके चले जाना। अब टिकिट लगने लग गया है, सो टिकिट की शक्ति नहीं है, सो कैसे जा पाओगे? सो आकाश मार्ग से कौआ बन कर पहुँच जाओगे। ज्ञानी! कहीं ताला नहीं खोल पाया, इसके पहले ही कहीं तू घर छोड़ गया, तो कहीं यह राग न रह जाये कि ताला पड़ा रह गया था तो उड़ कर आना पड़ेगा फिर।

देखो भैया! कुछ भी सोचो, जो है सो है। आप यहाँ क्यों और क्या नहीं कर सकते हो। मुझे तो आश्चर्य होता है, मन्दिर में कहीं काला नाग निकल पड़े, तो ये पण्डित हजारों को झूठे चमत्कार का हल्ला कर देगा, आ हा हा! धरणेन्द्र आ गये, पद्मावती आ गयी। ऐसा धरणेन्द्र है जो तुम्हारे मन्दिर में साँप बनकर घूमेगा। उसको आना होगा तो विक्रिया से कोई भी रूप में खड़ा हो सकता है। ऐसा भी तो हो सकता है कि किसी को दिखाई भी न दे। धरणेन्द्र आकरके चूहा पकड़ेगा क्या? मन्दिर में साँप निकल पड़ा, मुख में चूहा दबाये हुये है, फिर

भी ये अज्ञानी हल्ला कर रहा है कि धरणेन्द्र आ गये, देव आ गये। देव अमृतभोजी होते हैं, चूहाभोजी नहीं होते हैं। मैं यह जान कर बोल रहा हूँ, क्योंकि ये पंचमकाल इतना खोटा चल रहा है, कि घर-घर में देवता आ रहे हैं, घर-घर में भगवान् बन रहे हैं और घर-घर में चमत्कार हो रहे हैं, जबकि है कुछ भी नहीं। शुद्ध वञ्चना चल रही है, ठगाई। दुनियाँ के भूत भगा दिये और स्वयं का भूत उतार नहीं पाये। अरे भूताविष्टो! भूत तो कोई भी भगा देगा, परन्तु मोह का भूत भगाओ तब जाने कि तुमने भूत भगाया। भूताविष्ट को शीघ्र ठीक किया जा सकता है, लेकिन मोहाविष्ट को ठीक करो। 'समयसार' जी ग्रन्थ में दोनों की चर्चा की है। भूताविष्ट, मोहाविष्ट। अपने पास भूत भगाने का मन्त्र है–

विघ्नौघा प्रलयं यान्ति शाकिनी भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥

कितने ही विघ्न हों, प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं। शाकिनी, डाकिनी, भूत, पिशाच, विष निर्विश हो जाते हैं भगवान् जिनेन्द्र के नाम का उच्चारण मात्र से।

एसो पञ्च णमोयारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम्॥

प्रथम महामंगल है, सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाला है। इस महामन्त्र का पाठ करने से सारे भूत उतर जाते हैं। लेकिन मोह का भूत फिर भी नहीं उतरा। इस मोह के भूत को उतारो।

महाराज जी! उपाय बताओ।

हे ज्ञानी! कोई उपाय नहीं है। जो बटन तूने बन्द करके रखे हैं, उनको खोल दे और जो गाँठ बाँधी है, सो खोल दे। बस, ज्ञानी! कुछ नहीं है। जो है सो है। दिगम्बर स्वरूपोऽहं। जो तू थाली लेकर माँगता है कि दे-दो, क्या बनाया है? उस हाथ से अंजुली लगा कर चल देना और एक में पिच्छि-कमण्डलु ले लेना। बस, दिगम्बर स्वरूपोऽहं। बस, कुछ नहीं करने का। जो भावनायें भवनों में लगी हुई हैं, उनको हटा करके निजानन्द में लगा देना। दिगम्बर स्वरूपोऽहं। अब क्या पूछना है?

साधुओं को प्रतिक्षण जाग्रत रहना चाहिये। आप तो मात्र अपनी दो आँखों से देखते हो, लेकिन तुम्हें हजारों आँखें देखती हैं।

साधुओं की चर्चा, चर्या, वृत्ति ऐसी होना चाहिये कि जिससे देश में, विश्व में शान्ति का वातावरण हो, अशान्ति का वातावरण न हो जाये।

पर्याय की अध्रुवता में ध्रुव की खोज मत करो। ध्रुव भगवान्-आत्मा को छोड़कर अध्रुव में मत जाओ। अध्रुव का परित्याग कर दो और ध्रुव पर लक्ष्यपात करो। यही वैराग्य का उत्कृष्ट मार्ग है। उस वैराग्य की सन्तान को सुरक्षित करनेवाली अनुप्रेक्षा माँ है। जणाणंद जणणीयो

बालक मेले में गुम जाये, उस मेले में कितने ही स्वयंसेवक घूम रहे हों, उस बच्चे को गोदी में उठाकर लायें, उसको पेड़े खिलायें, खेलने के लिये खिलौने देदें, तब भी बेटे की आँख के आँसू शान्त नहीं हो रहे। कितनी ही प्रदर्शिनी दिखाओ, झूला दिखाओ, दुकान दिखाओ, भारत की राष्ट्रीय मिठाई जलेबी है, उसको कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। मंच पर लेकर गये, 'भैया! बच्चा गुम गया है, किसका है?' माँ दौड़ते-दौड़ते आ जाये कि बेटा मेरा है, ज्ञानी! माँ का हाथ खाली था, कुछ भी नहीं था, मात्र माँ उसको ले लेती है तो उसकी मुस्कराहट प्रारम्भ हो गई, उसके आँसू समाप्त हो गये। न गोली खिलाई, न गुब्बारे दिये, फिर भी यह मुसकरा क्यों रहा है?

'जणाणन्द जणणीओ।' जगत् के आनन्द कहीं हैं तो माँ की गोदी में हैं। जैसे बालक की रक्षा माँ की गोदी में है, ऐसे ही वैराग्य-बालक की रक्षा अनुप्रेक्षाओं की गोदी में है, बारह भावनाओं की गोदी में है। जिस योगी के हृदय से बारह अनुप्रेक्षा माता का हाथ सिर से हट गया है, उस वैराग्य-बच्चे की मृत्यु हो गई। माँ नहीं पालेगी तो बेटे का क्या होगा? अनुप्रेक्षा नहीं पाओगे मुनियो! तो तुम्हारे वैराग्य के बच्चे के बच्चे मर गये। ये सत्य है। दीपक रखा हो तो प्रकाश में आपको अच्छा लगता है। वैसे ही कुल का दीप पुत्र है। वह ही नष्ट हो जाये, उस भवन की क्या शोभा? इतनी बड़ी-बड़ी बिल्डिगें खड़ी हुई हैं और सन्तान

ही नष्ट हो जाये तो भवन तूने किसके लिये बनाये? 'समयसार' जी में सम्प्रदान शक्ति कह रही है कि किसके लिये?

हे ज्ञानी! तूने चारित्र धारण कर लिया, सुन्दर पिच्छि ले ली है, सुन्दर कमण्डलु ले लिया, यदि वैराग्य की सन्तान ही मर गई, तो ये किसके लिये? सैंतालीस शक्तियों में सम्प्रदान शक्ति का वर्णन अमृतचन्द्र स्वामी ने 'समयसार' की आत्मख्याति टीका में किया है।

केवलज्ञान पर अधिकार लाना है तो सर्व विशुद्ध होना पड़ेगा। यदि वैराग्य को जीवन्त रखना है, तो अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन प्रारम्भ करो। बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन करो। अध्रुव है, अनित्य है। चाहे तुम माँ की गोद में खेलो, चाहे तुम भवनों में या दुर्गों में रहो, परन्तु बेटा! जब मृत्यु आती है तो माँ की गोद से भी उठा ले जाती है। तिर्यञ्च को भी मैंने तड़पते देखा है। गाय का बछड़ा मर गया, गाय बिलखती देखी है। बन्दरिया के बच्चे को कोई जरा-सा छू ले तो कैसे दौड़ती है? हे ज्ञानी! तू दूसरे से तो सन्तान की रक्षा कर सकता है, पर यमराज कब किसके बेटे को छीन ले जाये, किसी का वश नहीं चलता है। **'यमस्य करुणा नास्ति'**। अपने घर में जाकर कह देना, माँ! मेरा भाव बन रहा है, भवनों को छोड़करके भावना को सुधारना चाहता हूँ। माँ पूछे क्यों? माँ! यमस्य करुणा नास्ति। हे जननी! यमराज को करुणा नहीं है, इसलिये मैं जाता हूँ। कहाँ? जहाँ वर्द्धमान गये हैं, वहाँ चलना चाहिये। क्या तुम लोग जनवासे में गये? वहाँ चले गये जहाँ दुनियाँ जाती थी। अरे! ऐसे जनवासे में जाओ, ऐसी कन्या से शादी करो जो तुम्हें छोड़े ही ना। उसके साथ शादी करके आ गये जो युवावस्था को छीन लेती है। शील को भङ्ग कर देती है, ऐसी पिशाचनी को तू पकड़ कर आ गया। शादी करना थी तो उसके साथ करता जो हर समय तेरे को सिद्धशिला में बिठाल कर रखती। ऐसी मुक्तिवधू के साथ शादी करता। मुक्तवधू के कन्त बनना था।

हे भगवान्! वह दिन कब आये जब मैं कर पकडूँ उस नारी का, जिसमें कर नहीं देना पड़े। जो कर्म से छुड़ा दे, उस नारी का कर पकड़ो। जो कर्म में लिप्त कर दे, उस नारी का कर छोड़ो।

आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि जब माँ के आँचल से भी यमराज बेटे को छीन लेता है, तो बेटो! रोड़ पर चलते हुये तुम्हें कौन बचानेवाला है? जबतक यम मेरी गर्दन को नहीं पकड़ता है, तब तक धर्म का सहारा ले लो। 'धम्मं शरणं पव्वज्जामि।' जब कोई सहारा नहीं दिखेगा, तब धर्म ही सहारा होगा। कोई नहीं होगा, तब धर्म ही होगा। चाहे वन हो, भवन हो, अटवी हो, श्मसान हो, सबके बीच कोई शरण होगा तो धर्म होगा। भैया भी झगड़ सकता है, विभीषण भी शत्रुदल में मिल सकता है, लेकिन अपना धर्म किसी के साथ नहीं मिल सकता है। भीतर का निर्णय करके उठो। प्रवचन तो कई बार सुने हैं, लेकिन स्वयं का निर्णय करो। यहाँ से जब जाया करो, थोड़ा बदल कर जाया करो। घर के सदस्य यूँ समझें कि आप वह नहीं आये जो गये थे। उनको महसूस होना चाहिये कि हाँ, प्रवचन सुनकर आये हैं।

मित्रो! विश्वास रखो, ये शब्द निमित्त मात्र हैं। यह मेरा हृदय बोल रहा है। जब अपना कोई नहीं होगा, तब धर्म होगा। सारा जगत् तो स्वार्थ के लिये हाँ-हाँ करता है, परन्तु धर्म को कोई स्वार्थ नहीं। 'हे धर्म! मां पालय।' हे धर्म! मेरा पालन करो। बाहर का आदमी तो भीख भी डाल देगा, लेकिन जिसको तुमने सबकुछ दिया है, वह आग ही लगा देगा, भीख नहीं डालेगा। जिनको हिस्से देकर जाओगे, वे तो आग लगायेंगे और जिनको कुछ नहीं देकर जाओगे, उनके कन्धों पर जाओगे। संसार विचित्र है। समझ में नहीं आया क्या? आया हो तो किसी को कुछ मत दो। जितना कमा कर रखा है सब मन्दिर में दे जाओ। जब तेरे आगे-पीछे कोई नहीं है, तो इस चक्कर में मत पड़ना कि भैया कि भतीजा? कुछ नहीं। 'जो है, सो है।' न लेना, न देना, मगन रहना। देखो, साधु कितने खुश रहते हैं। क्यों? 'न लेना, न देना, मगन रहना।' रोयें वे, जिनको लेना-देना हो। मुस्करा लो मुस्करा लो, यही तो मुस्कराने का समय है। वो तो मुझे भी पता है कि घर जाकर तुम्हारा क्या होना है?

जो बुद्धिमान पुरुष होता है, उसे कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने के लिये अपनी बुद्धि के द्वारा निरन्तर संसार, शरीर, भोगों से निर्वेद भाव का चिन्तवन

करना चाहिये। प्रतिक्षण प्रतिपल मैं कर्मशत्रुओं से कैसे विजयी होऊँ? ऐसा भावना में आना चाहिये, क्योंकि कर्म तो कर्म है, वे कभी नहीं सोचेंगे कि इस आत्मा को छोड़ दो।

कर्म कर्महिताऽऽबन्धि जीवोजीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभाव-भूयस्त्वे स्वार्थं को वा न वाञ्छति॥ 31 इष्टो.॥

कर्म तो कर्म का ही हित चाहेंगे। यदि जीव तुम्हें अपना हित चाहिये है, तो कर्मों से दूर हो जाओ। कर्मों से दूर कब हो पाओगे? जब करतूती से दूर होओगे। कर्म करतूती तेरी अच्छी नहीं है तो कर्म से दूर होने वाला नहीं है। हजार माला लेकर बैठ जाना कि मैं कर्म से दूर हो जाऊँ, लेकिन क्या खोटे कर्म से दूर हो रहा है? अशुभ कर्म का परित्याग करो तो कर्म अपने आप चले जायेंगे। मित्र, एक अच्छी बात सीख लो। दूर से मेहमान आते दिख जायें, तो अपने मकान में ताला लगाकर खिसक जाओ। अब कौन मीठा खिलाये, कौन दूध पिलाये, उनकी आवभगत करे? वे देख न पायें, उसके पहले खिसक जाना। न वे यह कह पायेंगे कि हम आये थे और तुमने कुछ नहीं किया।

'सूने घर का पाहुना, ज्यों आवे त्यों जाये।' ऐसे-ही तुम तो अपने मोह-भवन पर ताला डाल दो वैराग्य का। अब वे कर्म आयेंगे भी, तो कुछ कर नहीं सकते। 'सूने घर का पाहुना, ज्यों आवे त्यों जाये।' मेहमान आये, और कहीं ज्यादा सेवा कर दी, तो एक दिन को आयेगा और तीन दिन रुक जायेगा। अब मेरे समझ में आ गया कि लोगों के सम्मान कम क्यों हो गये? बहन भी घर में राखी बाँधने आयी है, चार दिन अधिक रुक जाये, तो घुमाकर बातें करें कि दीदी अब कब जा रही है? ये पंचमकाल खोटा काल है। चार लोग भोजन करने बैठे तो पहले से उठ जाया करो। अपनी इज्जत चाहते हो तो सबसे पहले उठ जाया करो। मित्र सबसे अंत में उठे तो सब देखेंगे। अब समझो, मैं भोजन की बात नहीं कर रहा हूँ, बात कुछऔर है। जब पूरा घर ही उठ कर चला जायेगा, फिर तू जाये, तो कोई आनंद नहीं। किसी की आयु अधिक हुई और अन्य सदस्य ऊपर चले गये हों, तो रिस्तेदार भी घूर-घूर कर देखते हैं कि ये परमेश्वरा कब तक रहेगा, सब तो चले गये? मेरे मित्रो! ऐसा होने लग जाये तो मरने के पहले

पिच्छि-कमण्डलु लेकर चले जाना। मरोगे भी नहीं, मुनिराज कहलाओगे। कहीं कण्डे-डण्डे के साथ गये, तो मरघट जाना पड़ेगा। पिच्छि-कमण्डलु के साथ गये तो मुनिराज बन जाओगे। क्या विचार है आप सबका? इतना निर्णय कर लेना।

तूने घर में पता नहीं क्या-क्या लाकर रख लिया है। एक पिच्छि और कमण्डलु भी रख लेना। जब इतना परिग्रह रखे ही हो, तो एक पिच्छि कमण्डलु हर श्रावक के घर में टँगा होना चाहिये। कदाचित् ऐसा नियोग बन गया, परिणाम विशुद्ध हुये, अन्तिम श्वास निकल रही हो, कोई साधु नहीं मिल पाये, तो घर के सदस्यों से कह देना कि हमने तुम्हारा इतना हित किया, कम-से-कम तुम इतना कर देना कि अन्तिम समय में मुझे पिच्छि-कमण्डलु दे देना। कहीं बच गये तो रख मत देना, फिर पालन करना। अरे! पंचमकाल है, सब स्पष्ट बोलना पड़ता है। मित्रो! अपने घर में एक-एक पिच्छि-कमण्डलु जरूर टाँग लेना। अरे! इसलिये टाँग लेना कि देखते रहना कि हमारा धर्म ये है। हमसे माँगने मत आना। हमारे पास तो एक ही है। जयपुर से पिच्छि लेकर आओ, बनारस से कमण्डलु लेकर आओ और रख लो घर में। कदाचित् कोई मुनिराज पधारें, उनके पास ये उपकरण नहीं हैं, तो उनके काम आ जायेगा और तेरा दान हो जायेगा। जैसे आप घर में अनेक सामग्री रखते हो, वैसे ही ये सामग्री भी रखना चाहिये। कब किस जीव को वैराग्य हो जाये?

संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होकर कर्मों से अपनी आत्मा की रक्षा करना। भैया! आसाढ़ का महीना लगते ही जो छोटे गरीब किसान होते हैं देहातों में, वे पुराने छप्परों को तो निकाल देते हैं, क्योंकि पानी गिरने वाला है, नये-नये छप्पर बना लेते हैं और जिनके पक्के मकान हैं वे छतों को सुरक्षित करने लगते हैं। भैया! पानी आने के पहले सुरक्षा कर लो, यमराज के आने के पहले अपनी तैयारी कर लो। आचार्य महाराज कह रहे हैं कि **हे जीव! जब तक तेरा शरीर मृत्युरूपी वज्र से नहीं घिरता है, तब तक कर्मरूपी शत्रुओं के नाश करने में अपना मन लगा लो। मृत्यु के पहले तू अपनी रक्षा कर ले।** इस दुर्लभ मनुष्यभव को प्राप्त करके इसका सदुपयोग कर ले। काम, अर्थ। (बस, इतना ही तो संसार है) भोग, परिग्रह। काम, कामिनी। श्री, स्त्री। इसी का नाम संसार

है। श्री और स्त्री, ये दो छूट जायें तो तू श्रीजी बन जाये। न श्री को छोड़ पा रहा है, न स्त्री को छोड़ पा रहा है बेचारा। अरे बेचारो! विचारो, तुम्हारा क्या होगा?

इस दुर्लभ नरदेह को प्राप्त करके परिग्रह और भोग इन दो का संग छोड़ दो, आसक्ति का त्याग कर दो और हमेशा निरन्तर धर्म्यध्यान का सेवन करो। यदि इन्द्रियजालों को छेदना है तो इतना काम कर लो। भैया! जो जाल में फँस जाता है, कबूतर जाल में फँस गया, खरगोश जाल में फँस गया, तो उस जाल को तोड़ना बड़ा कठिन होता है।

आज घर में जाकर जरूर कह देना 'यमस्य करुणा नास्ति।' अब तो मैं दीक्षा ले रहा हूँ।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"करने योग्य कर्त्तव्य"

यावन्न मृत्युवज्रेण देहशैलो निपात्यते।
नियुज्यतां मनस्तावत् कर्मारातिपरिक्षये॥ 128॥

अन्वयार्थ - **(यावत्)** जब-तक **(देहशैलः)** यह शरीररूपी पर्वत **(मृत्युवज्रेण)** मरणरूपी वज्र से **(न निपात्यते)** नहीं गिराया जावे **(तावत्)** तब-तक **(कर्मारातिपरिक्षये)** कर्मरूपी शत्रुओं के नाश करने में **(मनः नियुज्यतां)** मन को लगाना चाहिए।

भावार्थ- वीर योद्धा उस समय तक बराबर प्रयत्नशील रहता है तब तक कि अपने शत्रु का जड़मूल से नाश नहीं कर डालता है। इसी न्याय से कर्मरूपी शत्रु के क्षय के लिए ज्ञानी को निरन्तर अपना मन लगाना चाहिए। तथा ऐसा आत्मध्यान का अभ्यास करना चाहिए जिससे वीतरागता प्रकट होवे, क्योंकि वीतराग भाव ही कर्मों के विनष्ट करने में कारण है। वह काम जितना शीघ्र हो कर लेना चाहिए। मानवदेह में ही कर्मों का क्षय हो सकता है। मरण के आने का निश्चय नहीं है, अतएव मरण आने के पहले ही शीघ्र-से-शीघ्र जो कुछ अपना आत्महित बन सके, कर लेना चाहिए।

॥सद्-देशना॥

मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है।

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, जयवन्त हो श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमण संस्कृति।

ज्ञानियो! आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' में संसार की असारता एवं शरीर के विनाशीक स्वभाव का व्याख्यान कर रहे हैं।

ज्ञानियो! जो भी सम्बन्ध है, स्वभाव नहीं है। आयेराम, गयेराम; सदाराम, आतमराम। यह शरीर विनाशीक एवं अशुचि है। पुद्गल का परिणमन निरन्तर चलता रहता है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य। ज्ञानी! वस्तु का विनाश नहीं होता, अपितु वस्तु का परिणमन होता है।

ज्ञानियो! जो भव्यजीव होता है, वह इस नश्वर शरीर से तप करके आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है और शास्वत, निराकुल, अव्याबाध सुख को प्राप्त करता है। जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह इस शरीर के माध्यम से भोग भोगकर संसार-सागर में घोर दु:ख प्राप्त करता हुआ भ्रमण करता है।

ज्ञानियो! दुग्ध तपाने के लिए दुग्ध तपाना नहीं पड़ता है। दुग्ध तपाने के लिए तपेली (वर्तन) को पहले तपाना पड़ता है। उसके माध्यम से दुग्ध को तपाया जाता है। वैसे-ही ज्ञानियो! आत्मा को शुद्ध करने के लिए शरीर को तप-साधना, व्रत-उपवास के माध्यम से तपाया जाता है। आत्मसाधना के लिए शरीर भी माध्यम है।

ज्ञानी! कृषक को देखा? कृषक गाड़ी में ओंगन डालता है, क्यों? क्योंकि वह चलते हुए आवाज (चीं-चीं) न करे। वैसे-ही साधुपुरुष इस देह को चलाने के लिए योग्य, प्रासुक अल्पाहार देते हैं, जिससे धर्मसाधना निर्विघ्न चलती रहे।

ज्ञानियो! भगवत् कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि- "यावत् देहशैल: मृत्युवज्रेण न निपात्यते" जब तक यह शरीररूपी पर्वत मरणरूपी वज्र से नहीं गिराया जावे, "तावत् कर्मारातिपरिक्षये मन: नियुज्यतां" तब तक कर्मरूपी शत्रुओं के नाश करने में मन को लगाना चाहिये।

"हे भव्यात्मन्! जब तक तेरा यह शरीर मृत्युरूपी वज्र से भस्मीभूत नहीं किया जा रहा है, तब तक तू कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करने में अपने चित्त को लगा।

मुमुक्षु! कर्मकलंक से रहित होना है तो निर्ग्रन्थ अवस्था ही एकमात्र साधन है। जब भी निर्वाण होगा, तब निर्ग्रन्थ अवस्था से ही हो सकेगा। एकमात्र रत्नत्रय की साधना ही कर्मों को भिन्न करने में सहायक है।

ज्ञानियो! निर्ग्रन्थ मुनि अवस्था कर्मक्षय मात्र के लिए है। यदि तीर्थंकर मुद्रा को भी धारण करके विपरीत कार्य किया तो कर्मबन्ध ही करोगे, निर्बन्ध कभी नहीं हो पाओगे। निर्बन्ध होना है तो निर्ग्रन्थ बनो। अहो! धन्य है निर्ग्रन्थ दशा।

मुमुक्षुओ! निर्ग्रन्थ मुनि ही धरती के सच्चे देवता हैं, जो पिच्छि-कमण्डलु-शास्त्र के अलावा तिल-तुष मात्र भी परिग्रह अपने पास नहीं रखते हैं। ज्ञानियो! कुन्दकुन्द देव ने लिखा है कि जो मुनि संयम के साधन से अतिरिक्त अन्य परिग्रह को धारण करता है, तो वह निगोद का पात्र है। मुनि बनना, परन्तु कर्मक्षय के लिए।

ज्ञानियो! जयवन्त हों वीतरागी तपोधन श्रमण, जिन्होंने सकल परिग्रह को बुद्धिपूर्वक त्याग दिया है एवं आत्मसिद्धि के लिए आत्माराधना कर रहे हैं। वीतरागी तपोधन किसी को श्राप नहीं देते, किसी को वरदान नहीं देते और नित्य ही कर्मक्षय के लिए या तो आत्मा में लीन रहते हैं अथवा करुणा भाव से भव्यों को कल्याण हेतु जिनेन्द्र के वचनों का पान कराते हैं।

ज्ञानी! दिगम्बर तपोधन, धरती के देवता, वीतरागी मुनि अनेक विधाओं के पारगामी होते हैं। मन्त्र-तन्त्र, ज्योतिष, हस्त-रेखा, निमित्त-शास्त्र के ज्ञाता होते हैं, फिर भी आत्मसिद्धि को प्रधान करके आत्मसाधना करते हैं। मन्त्रादि के जानकार होकर भी उसका कभी व्यापार नहीं करते हैं। ओ हो! "धण्णा ते भयवन्ता", धन्य हैं धरती के देवता। महामुनि सनत कुमार को एक क्षण निहारो।

ज्ञानी! जो तीर्थंकर की मुद्रा को धारण करके मन्त्र-तन्त्र, ज्योतिष-विद्या का व्यापार करता है एवं आत्मसाधना को छोड़कर भूत-प्रेतादि को उतारना, कीलना आदि कार्य करता है, विद्याओं का व्यापार करता है, इनका प्रयोग कर आहार ग्रहण करता है, अपनी प्रसिद्धि के लिए तन्त्र-मन्त्र करता है, यह सब साधना में एवं महाव्रतों में दोष है।

ज्ञानी! जानना सरल है, परन्तु विद्या को पचाना अत्यन्त कठिन है। यह वीतरागियों का निर्मल मार्ग है, इसमें निर्मल साधना करना ही श्रेष्ठ है। रत्नत्रय को धारण करके आत्मसिद्धि का लक्ष्य रखना ही श्रेष्ठ है। रत्नत्रय ही निर्वाण का हेतु है।

ज्ञानी! विपरीत श्रद्धान है, मिथ्याभाव है। मित्र उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट तप कर लेना, उपवास कर लेना, परन्तु वह कुतप निर्वाण का साधन नहीं है। मिथ्यात्व

संसारभ्रमण का मुख्य हेतु है। इस जीव ने अनादिकाल से मिथ्यात्व का सेवन करके संसार-संतति को विस्तृत किया है।

ज्ञानी! कुतप करना सरल है, सुलभ है, परन्तु मिथ्यात्व को छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है। इस जीव ने अनेक भवों में अनेक बार कुचारित्र को धारण किया, काय-क्लेश किया, परन्तु सम्यक् श्रद्धान नहीं कर पाया। ज्ञानी! **संसार के दुःखों से मुक्त होना चाहते हो तो सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त करो। सम्यक्त्व के साथ की गई रत्नत्रय की साधना ही मुक्ति का कारण है। यह वीतरागी श्रमणपरम्परा है। यहाँ नग्नता मात्र से निर्वाण नहीं है। निर्ग्रन्थ भाव, वीतराग भाव, सम्यक्त्व के साथ रत्नत्रय की आराधना, संयम-साधना से मुक्ति सम्भव है।**

ज्ञानी! निर्वाण चाहिये, तो निर्ग्रन्थ भेष को धारण करो। वीतराग भाव ही मुक्ति का साधन है। सम्यक्त्व के साथ की गई संयमसाधना ही सर्वज्ञदेव के शासन में मान्य है। यह "नमोस्तु शासन" निर्ग्रन्थों का शासन है। यहाँ पर वीतराग भावों के साथ ही वीतराग भेष वन्दनीय है। वन्दना भी उनकी करना, जिनकी वन्दना से कर्मों का आस्रव-बन्ध न हो। निर्ग्रन्थों की वन्दना करना, परन्तु निर्बन्ध होने के लिए ही करना। वीतराग मुद्रा आत्मसिद्धि मात्र के लिए ही ग्रहण करना, वित्त इकट्ठा करना वीतरागी का कार्य किंचित् भी नहीं है। यह वित्त-रागियों का नहीं, यह वीतरागियों का मार्ग है। यह रत्नत्रय का मार्ग है।

ज्ञानियो! यह राग वह आग है जो जीव को कल्याण के मार्ग में नहीं लगने देती है। रागी जीव सम्यक् निमित्त मिलने पर भी कल्याण मार्ग को प्रशस्त नहीं करता है। मोह का मद जिसे चढ़ जाता है, वह भव-भव में भटकता है। रागादि से संयुक्त जीव अपने आत्मस्वरूप पर किंचित् भी दृष्टिपात नहीं करता है।

जैसे मलिन दर्पण में रूप दिखाई नहीं देता है, वैसे-ही मलिन हृदय वाले रागी को आत्मस्वरूप दिखाई नहीं देता है।

पूज्यपाद स्वामी ने भी 'इष्टोपदेश' में कहा है कि—

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान्-पदार्थानां, यथा मदन कोद्रवैः॥ 7॥

मोह से आवृत्त (ढँका) ज्ञान निश्चय से स्वभाव को प्राप्त नहीं होता है, जैसे नशीले कोदों का सेवन करने वाला मदमत्त हुआ पुरुष पदार्थ को समीचीन नहीं जान पाता है।

ज्ञानी! मलिन शरीर वाले को कैवल्य प्रकट हो सकता है, परन्तु यदि रागादि कषाय की किंचित् भी लगार है, तो कैवल्य प्रकट नहीं हो सकता है। आत्मसिद्धि करना है, तो रागादि का परित्याग करो और निज-स्वरूप की ओर निहारो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



धर्म्यध्यान का सेवन करो

त्यज कामार्थयोः सङ्गं, धर्मध्यानं सदा भज।
छिंद्धि स्नेहमयान् पाशान् मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्॥ 129 सा. स.॥

अन्वयार्थ-दुर्लभम् मानुष्यं प्राप्य = इस दुर्लभ मानव-जन्म को पाकर **कामार्थयोः सङ्गं त्यज** = तू काम भोग और द्रव्य विभूति अथवा परिग्रह का ममत्व छोड़ **स्नेहमयान् पाशान्छिंद्धि** = स्नेहमयी जालों को छेद **धर्मध्यानं सदा भज** = और धर्मध्यान का सदा सेवन कर।

भावार्थ-हे आत्मन्! इस दुर्लभ मानव-भव को प्राप्त कर कामभोग और परिग्रह के संग (आसक्ति) को छोड़, निरन्तर धर्म्यध्यान का सेवन कर और स्नेहमयी पाश को छेद।

नरक वेदना का कारण

कथं ते भ्रष्ट-सद्वृत्ता विषयानुपसेवते।
पञ्चधाऽन्तरिता तेषां नरके तीव्रवेदना॥ 130 सा. स.॥

अन्वयार्थ-ते भ्रष्ट सद्वृत्ता कथं पञ्चधा विषयान् उपसेवते = वे सच्चारित्र से भ्रष्ट होकर क्यों पाँच प्रकार के विषयों का बार-बार सेवन करते हैं? **अन्तरित** = पश्चात्-विषयों के सेवन के बाद **तेषां नरके तीव्रवेदना** = उन्हें नरक में तीव्र वेदना भोगनी पड़ेगी।

भावार्थ- हे भव्यात्मन्! विषय-कषायों का परित्याग करो, नहीं-तो चारित्र से भ्रष्ट होने के कारण नरक में तीव्र वेदना को सहन करना पड़ेगी।

नारकीय वेदना का कारण

सद्वृत्तभ्रष्टचित्तानां, विषया-सङ्गिग सङ्गिनाम्।
तेषामिहैव दुःखानि, भवन्ति नरकेषु च॥ 131 सा. स.॥

अन्वयार्थ-सद्वृत्तभ्रष्टचित्तानां = जिनका मन सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट हो गया

है। **विषया सङ्ग सङ्गिनाम्** = तथा जो इन्द्रियों के विषयों में मगन हैं **तेषां इहैव दुःखानि** = उनको यहाँ भी दुःख होते हैं, **नरकेषु च** = तथा मरने के पश्चात् नरकों में जाकर घोर वेदना सहनी पड़ती है।

भावार्थ-जिनका मन सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट है तथा जो इन्द्रिय-विषयों में आसक्त हैं, उनको इस लोक में भी दुःख ही प्राप्त होता है तथा वे मर कर भी नरक में जाकर महान् दुःख भोगते हैं।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में ध्रुव सौख्य-स्वभावी भगवान्-आत्मा के सहजस्वरूप का व्याख्यान करते हुये समझा रहे हैं—अहो ज्ञानी! वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है। उसे न कोई भङ्ग कर सका है, न कोई कर सकेगा। ये जीव राग कर सकता है, ये जीव द्वेष कर सकता है, लेकिन वस्तु के स्वभाव का अभाव नहीं कर सकता। अग्नि का धर्म उष्ण है, वह शीतल नहीं हो सकती है। व्यक्ति कह सकता है कि मैं अग्नि को शीतल कर सकता हूँ, लेकिन जिसका जो धर्म है, उसका कभी लोप नहीं होता। एक द्रव्य का परिणमन निज द्रव्यभूत है, परद्रव्यभूत निजद्रव्य का परिणमन नहीं होता है। जिस द्रव्य का जो स्वभाव है, वह है। आप उसे बदलने के परिणाम तो कर सकते हो, लेकिन किसी को बदल नहीं सकते हो। जितना अधिक पर के सुधार के भाव रखोगे, मुमुक्षु! स्वयं का तो बिगाड़ कर सकोगे, लेकिन पर का सुधार नहीं कर सकते हो। जिस जीव की जो पर्याय है, जिस जीव की जो परिणति है, उसे हम बदल नहीं सकते। आज तुम चाहो कि मैं तिर्यञ्च की तिर्यञ्च पर्याय को बदल दूँ तो यह सम्भव नहीं है। तिर्यञ्च की पर्याय के बदलने के तुम किञ्चित् भी कर्त्ता नहीं हो सकते। यदि पशु की पर्याय आपने बदल दी, तो उसकी परिणति का क्या होगा? तिर्यञ्च चाहे तो अपनी पर्याय को बदल सकता है, नारकी चाहे तो अपनी पर्याय को बदल सकता है, लेकिन नारकी की पर्याय को परमात्मा बदलना चाहे तो परमात्मा थक जायेंगे, लेकिन नारकी की पर्याय को नहीं बदल पायेंगे। कण-कण स्वतन्त्र है।

भीतर प्रवेश करके तत्त्व को समझो। सम्बन्धों के बन्ध में बन्ध करके आप

ये समझ रहे हो कि मैं सबको सुधार कर रखे हूँ, लेकिन जो सुधरा होता है, उसे ही आप सुधार पाओगे। जो बिगड़ा है, उसे सुधारने की तुम्हारे पास कोई शक्ति नहीं है। सम्बन्धों के राग में आप कह लेते हो कि मैं इसको सुधार लूँगा, लेकिन जिसमें सुधरने की क्षमता है, उसे ही सुधार पाओगे गेहूँ के आटे से रोटी बनाई जा सकती है, पर राख में रोटी का स्वाद नहीं दिया जा सकता है। प्लास्टिक के लिये फलों के आकार तो दिये जा सकते हैं, लेकिन प्लास्टिक के अंगूर को खाकर अंगूर का स्वाद नहीं आ सकता है। पर की पर्याय को पररूप करने की तुम सामर्थ्य नहीं रखते हो। ज्ञानियो! जिस द्रव्य की जो पर्याय है, जिस द्रव्य का जो गुण है, उस द्रव्य का वही गुण होगा, वही पर्याय होगी। द्रव्य की सत्ता त्रैकालिक है, उसका उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य त्रैकालिक है। उसको बदलने की सामर्थ्य परमात्मा में भी नहीं है, आप में कब से आ गई? कागज के फूलों को बनाया जा सकता है, पर कागज के फूलों को सुगन्धित नहीं किया जा सकता है। सुगन्ध छिड़क भी दोगे तो कुछ क्षण बाद समाप्त हो जायेगी। ऐसे-ही यहाँ पर आचार्य महाराज कह रहे हैं कि तुम कहाँ भूल कर रहे हो? सम्बन्धों में उलझ करके यह सोच रहे हो कि मैं इसको सुधार लूँगा, लेकिन कोई किसी को नहीं सुधार पाता है। तीर्थंकर ऋषभदेव से पृच्छना करो, हे स्वामी! आप-जैसा इस युग का प्रथम तीर्थंकर, आप सारे जगत् को सर्वोदयी देशना दे रहे हो, कल्याणकारी देशना दे रहे हो, आप अपने नाती को क्यों नहीं सुधार पाये? आश्चर्य! हाथी तक को सुधार दिया, लेकिन नाती को नहीं सुधार पाये। जिसकी उपादान की योग्यता पवित्र है, उस हाथी को तो सुधार करके श्रावक बनाया जा सकता है, लेकिन नाती के मिथ्यात्व को सुधार करके भगवान् नहीं बना पाये। भरत का पुत्र मारीचि अपने दादा ऋषभदेव के समवसरण में बैठा हुआ था, लेकिन फिर भी अहंकार ने दादा नहीं देखे और निकल कर चला गया यह कहते हुए कि भविष्य का मैं भी भगवान् हूँ।

सलाह देना तो सीखना, परन्तु सुधारना मत सीखना। करुणाबुद्धि से आप नहीं भी चाहोगे, लेकिन करुणा ऐसी वस्तु है कि वह बिना बोले रह नहीं सकती।

अन्तिम श्वास निकल रही है, शरीर के लक्षण से मालूम चल जाता है कि यह जीव आज ही चला जायेगा, फिर भी करुणा ऐसी रहती है कि भैया! कोई दवाई और दे दो, वैद्य को और बुला लो, जबकि उसे मालूम है कि अब यह जीव बचेगा नहीं। ये करुणा है। करुणा कार्य करायेगी। करुणा बचाने का कार्य तो करायेगी, लेकिन करुणा बचा नहीं पायेगी। बचेगा अपने आयुकर्म के नियोग से।आप करुणा कर सकते हो, आप दया कर सकते हो, परन्तु किसी पर आप करुणा करके रक्षा नहीं कर सकते हो। व्यवहार यही कहेगा कि मैंने रक्षा कर ली है, पर सत्य यह है कि आयु अवशेष थी, इसलिये रक्षा/करुणा भाव था, वह सहकारी हो गया। आयु शेष न होती तो बचता कैसे? आयु पूर्ण नहीं होती तो जगत् में किसी वैद्य की मृत्यु ही नहीं होती। धनवन्तरि कहाँ है? 'कल्याणकारकम्' के कर्त्ता उग्रदत्याचार्य जैनाचार्य हैं। यह बहुत बड़ा आयुर्वेदशास्त्र है जिसमें वनस्पति रसायन इन औषधियों का प्रयोग लिखा है। सारे शरीर के अंग-प्रत्यंगों का व्याख्यान कर गये। कैसे भोजन करें? कैसे पानी पियें? हर विषय का वर्णन 'कल्याणकारकम्' में किया है, लेकिन वे कल्याणकारकम् के कर्ता भी आज हमारे बीच में नहीं हैं। इसलिये सत्य पर जिओ, सत्य पर चलो।

सत्य को समझ लिया जाये तो बहुत अच्छा होगा। सुगन्ध बाहर नहीं है, सुगन्ध भी भीतर है। सुगन्ध की खोज करें, उसी जंगल में है, इन्हीं वृक्षों में है। जब छाल छील दी जाती है, तो सुगन्ध आने लगती है। जब कर्मों की छाल छील दी जाती है, तो शुद्धात्मा की सुगन्ध आने लगती है। चन्दन के वृक्ष बाहर में सुगन्धित नहीं होते, भीतर में सुगन्धित होते हैं। जब तक पहचान नहीं पा रहा है, तब तक बबूल और चन्दन को एकरूप देखता है। जब पहचान हो जायेगी, तब समझ में आता है। एक छिलने पर भी सुगन्ध देता है, कटने पर भी सुगन्ध देता है और जलने पर भी सुगन्ध देता है; जबकि बबूल दुर्गन्ध-ही-दुर्गन्ध देता है। सज्जन पुरुष, ज्ञानी पुरुष संकटों में, उपसर्गों में भी अपनी देह (शरीर) का लोभ नहीं करते हैं। उनका नाम साधु है। ज्ञानियो। जीवन में बन सको तो उस चन्दन के मूठे की भाँति बनना जो घिसने पर भी सुगन्ध देता है, किसी को

दुर्गन्ध नहीं देता। मलयागिरि चन्दन में सुगन्ध डाली नहीं जाती, सुगन्ध होती है। ऐसे-ही तत्त्व की प्ररूपणा है, वस्तुस्वभाव है। अंतरङ्ग का जो भास है वह डाला हुआ नहीं होता, वह तो होता है। जीवन में साम्यमय जीवन जीना हो तो जगत् को सुधारने के त्याग का संकल्प ले लेना। मैं आज से जगत् में किसी को सुध ाारूँगा नहीं, मात्र समझा दूँगा। आपके हाथ में सुधार है क्या?

पण्डित का बेटा पण्डित नहीं बन पाता। चक्रवर्ती का बेटा कभी चक्रवर्ती नहीं बनता। इसलिये चक्रवर्ती का बेटा इस अहंकार में न डूबे कि मैं चक्रवर्ती का बेटा हूँ। वह चक्रवर्ती का बेटा अवश्य है, लेकिन चक्रवर्ती नहीं है। चक्रवर्ती दीक्षा ले ले या ऊपर चला जाये तो सारा वैभव समाप्त हो जाये। पिता के पुण्य पर बेटो! मत मुस्कराना और बेटों के पुण्य पर पिता भी न मुस्कराये।

सब काम में सबके हाथ लगवा लेना, लेकिन भाग्य में किसी का हाथ नहीं लगता। एक श्रीफल चढ़ाने के लिये पूरी समाज का हाथ लग सकता है, परन्तु एक के भाग्य में दूसरे के भाग्य नहीं लगते। जब भाग्य स्वतन्त्र है, तो भव भी स्वतन्त्र है। बिना भावों की स्वतन्त्रता के किसी का भव स्वतन्त्र होता नहीं है। भव स्वतन्त्र हुये बिना भावों की स्वतन्त्रता होती नहीं है। नारकी के नरक में जाते ही उसके परिणाम नारकभूत हो जाते हैं।

किसी का सम्बन्धी मरण करके यदि बिल्ली का बच्चा बन जाये और अच्छे धनपति कुल का जीव था, धर्मात्मा था, लेकिन बात यह थी कि धर्म भी करता था तो ऐसे करता था जैसे बिल्ली छुपकर चूहे को पकड़ती है। हर काम छुपके। धर्म के क्षेत्र में भी माया की किञ्चित् कमी नहीं थी। ऐसा जीव कलुषित परिणाम करके बिल्ली का बच्चा हो गया। सामने अवधिज्ञानी मुनिराज बैठे हुये थे। धीरे-से पूछते हैं, भो स्वामी! मेरा मित्र मृत्यु को प्राप्त हो गया है, कौन-सी पर्याय को प्राप्त हुआ है? ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिये कि तेरे भवन के बगल में एक कक्ष है, उसमें बिल्ली ने आज प्रसव दिया है, वह बिल्ली का बच्चा हो गया। 'वह बिल्ली का बच्चा कैसे हो गया? वह तो बड़ा धर्मात्मा था, शान्तचित्त था।' भूल जाओ यह पागलपन। बिल्ली का बच्चा जन्म लेते ही दौड़ने लगता

है, पोत-जन्म है। वह फुदक रहा था। किसी ने नहीं सिखाया, वह चूहे के बच्चे की ओर दौड़ रहा था। ज्ञानी! यह तो बताओ कि इस जीव को चूहा पकड़ना किसने सिखाया? जो मेरे साथ दूध-रोटी खाया करता था, वह चूहा क्यों पकड़ रहा है, मित्रो! जीवन में कभी भूल मत कर लेना, दूध-रोटी खानेवाले चूहे पकड़ने चले जाते हैं। बगल में थाली में दूध-रोटी थी, लेकिन भावों में पर के विशुद्ध भावों का घात करने के परिणाम थे, इसलिये वह जीव मर कर चूहे को पकड़ने वाला बिल्ली का बच्चा हो गया। जो जीव जिस पर्याय में पहुँच जाता है, उस पर्याय की प्रत्यासत्ति से वे गुण अपने-आप आ जाते हैं। इसलिये आप इस तनाव से मुक्त हो जाओ कि मैं अपने परिवार को, समाज को, देश को सुरक्षित कर लूँगा। जो जिस कुल में पहुँचता है, उस कुल के संस्कार अपने आप सुरक्षित रहेंगे। जिसके कुल खोटे हों और परिणाम खोटे हों, उन्हें भगवान् भी नहीं सुधार सकते हैं। सम्यक् तत्त्व की विवेचना तो करना, लेकिन किसी को सुधारने मत चले जाना। अब बिल्ली के बच्चे से कहो कि तुम चूहा मत पकड़ो, तो बहुत मुश्किल है। शायद उसको जातिस्मरण हो जाये। यदि नहीं हुआ तो तुम सुधारने वाले नहीं हो। बस, इतना ही कर पाओगे, दया को करना। यह बहुत बड़ी बिडम्बना है। दया के पीछे अदया मत कर बैठना। यह विद्या जैनत्व मात्र के अन्दर है।

बिल्ली का बच्चा चूहा पकड़ रहा था, आपको चूहे पर दया आ गई, और गुस्से में आपने बिल्ली को डण्डा मार दिया कि वह हिंसा क्यों कर रहा है? हे पापी! तूने दया के लिये अदया क्यों कर दी? ये दया नहीं थी, यह अज्ञान था। दया करना दया करके। जो घात कर रहा था, उसकी भी रक्षा होनी चाहिये थी और जिसका घात कर रहा था, उसकी भी रक्षा होनी चाहिये। आपके लिये तो दोनों जीव हैं। बस, यही तत्त्व की भूल हो रही है। ये लगता है कि पूरी पर्याय निकल जाये, फिर भी समझ में न आ पाये। जब तक यह समझ में नहीं आया, तब तक मोक्षमार्ग तुमसे बहुत दूर है। दया करना दया करने के लिये। यह वो दर्शन नहीं है जिसमें सिंह को मारने की विद्या सिखाई जाती हो। यह

वह शासन है जिसमें सिंह को श्रावक बनने की विद्या सिखाई जाती है। सिंह को मार दिया तो तुमने क्या किया? अपराधी को फाँसी पर चढ़ा दिया तो क्या किया? प्राणदण्ड दिये हैं।

अपराधी को निरपराधी बनाने की ताकत जिसमें है, वह जिनशासन है। श्रावक बना कर, महावीर बना कर खड़ा कर दिया, उसका नाम जैनदर्शन है। वह कौन था? सिंह मृग पर पंजा मार रहा था। यदि मुनिराज यों कहते कि उपदेश किस लिये है? पाप को छोड़ चुके हैं। परमात्मा बनें, इसके लिये उपदेश है। जो पाप कर रहे हैं, वे बहिरात्मा से अन्तरात्मा बनें, इसलिये उपदेश है। यदि पापी के लिये उपदेश नहीं देते तो उसके पाप कैसे छूट पायेंगे? उपदेश देना, सुधारना नहीं। जीवन में कभी अनुभव करके देख लेना कि जो माधुर्यता में गुण है, वह कहीं नहीं है। यह वो भारत देश है जिसमें एक श्रावक अमरचन्द दीवान ने शेर को भी दूध-जलेबियाँ खिलाई थीं। यह बहुत पुरानी घटना नहीं है। जयपुर कोई बहुत प्राचीन शहर नहीं है। भैया! आपके दर्शन में बहुत सारी गूढ़ रहस्यमयी विद्यायें हैं। मुट्ठी बन्द करने में ही कितने गुण हैं। ये तन्त्र है। मौसम ठण्ड का है, अंगुलियाँ ठिठुर रही हैं, तुम्हारे पास अग्नि है नहीं, तो क्या करना चाहिये? मुट्ठी बन्द कर लो। यह गर्मी कहाँ से आ गई है? गर्मी आयी नहीं है, गर्मी थी। वह जा रही थी, उसको रोक रखा है। बस, मुमुक्षु! हमारे पास वे विद्यायें हैं। भगवान् कहीं बना नहीं जाता, भगवान् कहीं से बनाया नहीं जाता है। तुम्हारी जो भगवत्ता विषयों में बह रही थी, उसको बाँध कर रख लिया, जाने नहीं दिया, वही प्रकट हो गई, उसका नाम भगवान् है। शक्ति तुम्हारे पास है। संघात करते ही शक्ति संग्रहीत होती है। पानी बह रहा है, रोक कर बाँध में विद्युत बना रहे हैं, उसमें गर्मी प्रकट हो रही है। पानी में शीतलता थी कि गर्मी थी? पवनचक्की से आप विद्युत बना रहे हो। हर वस्तु में दो धर्म हैं। पानी में अग्नि है, पवन में अग्नि है, प्रक्रिया भिन्न है। जिससे अग्नि बुझाई जाती है, उससे अग्नि बनाई जाती है। जिन भावों से भगवान् मिलता है, उन भावों से भगवान् प्रकट होता है। प्रक्रिया भिन्न है, वस्तु एक है।

आज भारत सरकार और विदेशी सरकार जैन के बच्चों को बड़े सम्मान के साथ देखती है। समाज का **चित्त जितना स्वस्थ होता है, जितना स्वच्छ रक्त होता है, जितने पवित्र परिणाम होते हैं, उसकी बुद्धि उतनी विकसित होती है।** जब एक अच्छे कुल का श्रावक इतने अच्छे स्तर पर काम कर सकता है, तो भारत की भूमि पर लगभग पन्द्रह सौ पिच्छियाँ विचरण कर रही हैं, इनके भोजन शुद्ध होते हैं, इनमें हर काम शुद्ध होते हैं, इनकी भाषा शुद्ध होनी चाहिये। इनके भोजन और भाषण इतने शुद्ध होते हैं, इनके अन्दर शक्ति का संचय होता है। इस विद्या को जगत् के सारे प्रपञ्चों को गौण करके, प्रतिष्ठा विधि और रङ्गमंच को गौण करके वह विद्या आपको प्रकट करना चाहिये। उनके अन्दर ऐसी कौन-सी शक्ति है जो नरक के नारकी को भी शान्ति दिलाती है? उस रासायनिक तत्त्व का उद्घाटन होना चाहिये।

भिलाई के पंचकल्याणक में जापान के एक प्रोफेसर आये थे। पूरा पंचकल्याणक देखा और पूरी सी. डी. बना कर ले गये। वे जैनदर्शन पर रिसर्च कर रहे हैं। वह मेरे से बोले—महाराज जी! मेरा अच्छा संयोग था कि मैं अच्छे समय में अच्छे स्थान पर आ गया। सागर की दीक्षाओं में जापान से उसका एक आदमी आया था और वह पूरी सीडी बना कर ले गया। कभी भी वक्ता यह न सोचे कि मैं मात्र सदन में प्रवचन कर रहा हूँ। पता नहीं कौन-सा व्यक्ति उस प्रवचन को कहाँ लेकर जा रहा है।

उस विद्या को समझा जाना चाहिये, वह कौन-सी शक्ति है। आज जो वैज्ञानिक यहाँ से बैठ करके विश्व को प्रभावित कर रहे हैं, विदेशों को प्रभावित कर रहे हैं, तो ऐसी भी कोई शक्ति थी जो एक ही स्थान अवधपुरी में जन्म लेकरके तीनलोक को प्रभावित कर रही थी। वह कौन-सी शक्ति थी। **'बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च।'**

जिसके शक्त्यांश अधिक होते हैं, वह अपनेरूप परिणत करा लेता है। इसलिये शक्त्यांश संग्रहीत करना चाहिये। मुट्ठी बन्द कर लें तो ताकत आती है। पत्थर हथेली में रख कर फेंक दो, कितनी दूर जायेगा? पत्थर मुट्ठी में बन्द करके

हाथ घुमा कर फेंकना। दूरी किसकी अधिक होगी? मुट्ठी बन्द वाले की। जब मुट्ठी बन्द में पत्थर ज्यादा दूर जा सकता है, बस, हमारे तीर्थंकरों ने यही तो सिखाया है कि मुख बन्द करके चलेगा तो तेरी शीघ्र सुगति होगी। मुख ज्यादा खोलेगा तो तेरी गति हीन होगी। इसलिये भगवान् वर्द्धमान ने बारह साल तक मौन धारण किया। उनको मालूम था कि जितना मौन रखेंगे, उतनी जल्दी गमन होगा, क्योंकि शक्ति का संचय होता है। आज से खोज करना प्रारम्भ करो।

यदि ज्ञानी गाय के दूध में घृत की खोज कर रहा है और भैंस का दूध न रखे, यदि मिलावट कर देगा, तो घृत तो अधिक मिल जायेगा, लेकिन स्वर्णतत्त्व नहीं निकाल पायेगा। भैंस के दूध में मद है, भैंस के दूध में ताकत है, भैंस के दूध में घृत अधिक है, शक्ति निहित है, लेकिन स्वर्णतत्त्व नहीं है। लेकिन गाय के दूध में स्वर्णतत्त्व है। दिखेगा कब? जब घी निकल आयेगा। भैंस का घी सफेद होगा और गाय का घी पीला होगा। आप वर्तमान के वैज्ञानिकों को सामने रख करके, जैनदर्शन के वैज्ञानिकों को सामने रख करके, जैनदर्शन के वैज्ञानिक तथ्य बोलोगे, तो आपने गाय के दूध में भैंस का दूध मिला दिया, फिर आप वीतराग वैज्ञानिक नहीं कहलाओगे, भौतिक वैज्ञानिक ही कहलाओगे। आप इतनी साधना करो और अपने मस्तिष्क में ही स्फुटित करो कि जैनदर्शन में जो तत्त्व है, क्या बात है कि भगवान् तीर्थंकर गर्भ में आये तो रत्नों की वर्षा और जन्म होते ही नारकी को शान्ति का वेदन हो रहा है। इसको वस्तुस्वभाव से पूछिये। जिसमें सड़ांध अधिक होगी, वह दुर्गन्ध दूर तक फैंकता है। जिसमें सुगन्ध अधिक होगी, सुन्दर गुलाब का फूल कहीं भी खिला होगा तो पूरी गली सुगन्धमय हो जाती है, क्योंकि सुगन्ध के परमाणु अधिक हैं। ऐसे-ही जिस जीव ने अन्तस् में पुण्य के परमाणुओं को अधिक संग्रहीत किया है, वह पुण्य के परमाणु जब बिखरना प्रारम्भ करते हैं, तब नरक के नारकी को भी शान्ति देना प्रारम्भ कर देते हैं। सिंह को श्रावक बनाया, कैसे बनाया? जैसे जब संगीत होगा तो उसके हाथ-पैर अपने आप थिरकने लगते हैं। जब संगीत के स्वर से जगत् को घुमा सकते हो, तो जिनवाणी के स्वर से जगत् का कोई भी परिणमन करा सकते हो।

वे कहीं यूँ कहते कि 'हे पापी शेर! तू ये क्या कर रहा है?' तो वह पापी शेर सुधरनेवाला नहीं था, क्योंकि आपने पहले ही पापी शब्द का प्रयोग कर दिया है। वह सोचता कि मैं तो पापी हूँ ही, अब कैसे तिरूँ? मुनिराज ने ये नहीं कहा-हे पापी तिर्यञ्च। मुनिराज कहते हैं—अहिंसा का नाद करने वाले हे भावी भगवान्! आप ये क्या कर रहे हो? आप तो अहिंसा का नाद करने वाले हो। पंजा खिंच गया, आँखों से आँसू टपक गये। जो सिंह था, उसे आत्मबोध हो गया। आत्मशोध हुआ तो सिंह क्षणमात्र में सच्चा श्रावक बन कर खड़ा हो गया। भगवान् बनने के संस्कार सिंह की पर्याय में प्रारम्भ हुये। ज्ञानियो! आज से किसी बच्चे को बिगड़ा मत कहना।

जब शेर को भी श्रावक बनाया जा सकता है, तो बिगड़ों को भी भगवान् बनाया जा सकता है। इसलिये आज से किसी को बिगड़ा मत कहना। अज्ञानी-से-अज्ञानी जीव क्यों न हो, परन्तु वो भी ज्ञानी है। मैं अज्ञानी हूँ, इस बात को जान रहा है, किससे जान रहा है? ज्ञान से जान रहा है, इसलिये ज्ञानी है। ध्रुव सत्य है कि पाप करते -करते, खोटे काम करते-करते उसका ज्ञान प्राप्त करता है कि मैं क्या कर रहा हूँ? पापी को भी पापी कहना बन्द कर दो। पापी को भी भगवान् कहोगे, तो विश्वास रखना, प्रसंशा भी व्यक्ति को सुधार देती है। आपको मालूम है कि यह कैसा है, तो उससे विपरीत उसे कहना। ओ हो! मुझे ऐसा कहा जा रहा है, धिक्कार हो मुझे। मैं तुम्हें श्रावक के रूप में देखता हूँ, और कुछ नहीं देखता हूँ। वह पूजा के अलावा कुछ-और करता होगा, तो उसे सोचना पड़ेगा कि धिक्कार हो मुझे, मैं क्या कर रहा हूँ?

ज्ञानी! समय हो गया, जाना नहीं है क्या? ठीक है, इससे आगे कहाँ जाओगे? बहुत अच्छा है कि न जाओ, न जाओ। वहाँ कुछ नहीं है, वहाँ तो रोना ही है। ज्ञानी! आनन्द का जीवन जीना है तो विश्वास रखो कि ये ही पल है कि श्रावक के अन्तस् में जिनवाणी की बूँदें पड़ रही हैं। घर में पहुँचते ही हाय-हाय करोगे। जो है, सो है। सत्य है, शेर को भावी भगवान् कह करके महावीर बना दिया। इसलिये मित्रो! आज से किसी को अशुभ शब्दों का प्रयोग मत करना। यही समता

है। किसी के हृदय में चोट शब्द की लग गई और उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई और वह ऊपर चला गया, तो पञ्चेन्द्रिय की हिंसा का पाप तेरे सिर पर जायेगा। द्रव्यहिंसा हो या न हो, भावहिंसा तो हो ही गई। जहाँ भावहिंसा है, वहाँ भावबन्ध तो हो ही गया। जहाँ भावबन्ध हुआ, वहाँ नियम से द्रव्यबन्ध हुआ है।

एक व्यक्ति को कैन्सर हो गया। जब वह डाक्टर के यहाँ पहुँचता है तो वह जोर से कहता है बड़ी सज्जनता के साथ 'ओ हो! मुझे कैसे हुआ कैन्सर? मैं गुटका नहीं खाता हूँ, मैं बीड़ी-सिगरेट नहीं पीता हूँ। मैं कुछ भी नहीं करता। मुझे कैंसर हुआ कैसे?'

बोले' बेटा! जरा धैर्य रखो। उसे कैंसर निकला सिगरेट का। वह कहता है कि मेरे दादा ने नहीं पी, मैंने कब पी?

भाई! सुन। तूने नहीं पी, अच्छी बात है। ऐसे भी अज्ञानी जीव हैं जो सिगरेट पीते नहीं, लेकिन कोई पीते दिख जाये तो उसे धुआँ बड़ा अच्छा लगता है। जब कोई पीता था, तो तू हर समय बगल में बैठता था। जब भी श्वास लेता था नशा करने वाले ने मुख से पिया, तूने नाक से पिया है, पर सिगरेट तो दोनों ने पी है। सिगरेट पीने वाले के बगल में बैठने से उसके धुयें से उसको कैंसर हो गया ऐसे-ही मुमुक्षु! तुम द्रव्य से पाप न भी कर पाये हो, पर भावों से तुमने इतना बन्ध कर लिया कि पाप करने वाला सातवें नरक गया और कान में बैठा तन्दुल मच्छ सातवें नरक गया। उसने एक भी जीव को नहीं मारा, मात्र भाव करता रहा, यानि भावों का धुआँ पीता रहा। इसलिये, भैया! दूर रहना, बच कर रहना। द्रव्यहिंसा से भी बचकर रहना और भावहिंसा से भी बच कर रहना।

आचार्यमहाराज यही कह रहे हैं। आत्मरक्षा करो, पर से नहीं, स्वयं से। पर तुम्हें घातने आयेगा तो शरीर पर ही बार करेगा और परिणाम घातने आयेगो तो तेरी परिणति पर, गति पर घात करेगा। पर से मत घबराना। जितना घबरा सको तो स्वयं के अशुभ भावों से घबराना। यही प्रार्थना करना कि हे भगवन्! जगत् में किसी भी प्राणी के प्रति मेरे अशुभ भाव न आ पायें। कोई तलवार का वार भी कर रहा हो, पर उसे कोई मारने आ जाये तो मेरा हाथ उसे बचाने के लिये

चला जाये। कोई तेरे शरीर पर वार करता है' तब तुझे बचाने के लिये कोई उस पर वार करने लग जाये, तो तुम अपना हाथ अपने ऊपर मत ले जाना, पर उसके ऊपर रक्षा का हाथ ले जाना। इसका नाम वीतरागी दिगम्बर मुनि का धर्म है। कमठ ने उपसर्ग किया। जिन पर उपसर्ग किया, उन्हीं के चरणों में सम्यक्त्व प्रकट कर लिया। जिसके पास जो होता है, वही देता है।

ज्ञानी! तुझे चाहिये था नीबू। तालाब के अन्दर वृक्ष था। उसमें बड़े-बड़े नीबू लगे हुये हैं। ठण्डी का मौसम है। अब तू पानी में उतरना चाहता नहीं है। उस पर एक बन्दर बैठा हुआ है। तुझे नीबू चाहिये तो तू क्या करेगा? इस ज्ञानी ने एक पत्थर उठा कर फेंक दिया। जब पत्थर फेंका, तो बन्दर तो बन्दर, उसने तुरन्त नीबू तोड़ कर मार दिया, तुझे नीबू मिल गया। जिसके पास जो होता है, वही देता है। जीवन में इस बात को हृदय में रख लेना।

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः॥ 23 इष्ट.॥

अज्ञानी की उपासना करोगे तो अज्ञान मिलेगा और ज्ञानी की उपासना करोगे तो ज्ञान मिलेगा। जिसके पास जो होता है, वह वही देता है।

यहाँ पर आचार्यमहाराज कह रहे हैं, हे जीव! जगत् की सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग कर दो। कामवासना का त्याग कर दो, यदि यथार्थ में मुक्ति चाहते हो तो। संसार में सबसे बड़ी दुःख की लता परिग्रह है। जिनको कष्ट/पीड़ा है, वह परिग्रह की महिमा है, इसलिये हमेशा धर्मध्यान का आलम्बन लो।

राग की रस्सी से बँधे बेचारे वहीं जायेंगे जिस खूँटे से आये थे। हे जीव! स्नेह के पाश को दूर से तोड़ दे। इस मनुष्यपर्याय की दुर्लभता को पहचान। ये महादुर्लभ है। जिस जीव ने अपने सम्यक्चारित्र का, सम्यक्त्व का, सम्यक् आचरण का विघात कर लिया है, वह नष्ट हो गया है। ऐसा अज्ञानी हुआ जीव, जिसके संयम को पाँचों ने हरण कर लिया है, पाँच इन्द्रियों ने तेरा संयम छीन लिया है, पाँच पापों ने तेरा संयम छीन लिया है, ऐसा प्राणी तू विषयों का सेवन क्यों करता है? इनका सेवन करके जब मृत्यु को प्राप्त होगा, तो इसका फल

नरक की तीव्र वेदना ही सहन कर पायेगा, और-कुछ नहीं कर पायेगा। ज्ञानियो! जगत् के लोगों से कह देना-'जलने से पहले जलना छोड़ दो। कर कुछ भी नहीं पायेगा, राग ही कर पायेगा, द्वेष ही कर पायेगा, राख ही हो जायेगा, राख किसी को नहीं पायेगा।'

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"अपने को ठगने वाला"

विषयास्वादलुब्धेन रागद्वेषवशात्मना।
आत्मा च वंचितस्तेन यः शमं नापि सेवते॥ 132 सा. स.॥

अन्वयार्थ-यः = जो कोई **विषयास्वादलुब्धेन** = पंचेन्द्रियों के विषयों के स्वाद की लुब्धता से **रागद्वेषवशात्मना** = राग-द्वेष के आधीन होता हुआ, **शमं नापि सेवते** = शान्तभाव का सेवन नहीं करता **तेन** = उसने **आत्मा वंचितः** = अपने आपको ठगा है।

भावार्थ-जो मानव विषयों के आस्वादन से लुब्ध होकर और राग-द्वेष के वशीभूत होकर अपनी आत्मा को ठगते हैं, वे कभी शान्तभाव का सेवन कर सुख को प्राप्त नहीं कर सकते।

"कृत कर्म का फल"

आत्मना यत्कृतं कर्म भोक्तव्यं तदनेकधा।
तस्मात् कर्मास्रवं रुद्ध्वा स्वेन्द्रियाणि वशं नयेत्॥ 133 सा. स.॥

अन्वयार्थ-यत् = जो **कर्म** = कर्म बन्ध **आत्मनाकृतं** = आत्मा ने किया **तत् अनेकधा भोक्तव्यं** = उसी का फल अनेक प्रकार से भोगना पड़ता है **तस्मात्** = इसलिए **कर्मास्रवं** = कर्मों के आस्रव को **रुद्ध्वा** = रोककर **स्वेन्द्रियाणि वशं नयेत्** = अपनी इन्द्रियों को वश में करे।

भावार्थ-अपने किये हुए जो कर्मबन्ध हैं, उनका फल अनेक प्रकार से भोगना पड़ता है, इसलिए कर्मों के आस्रव को रोककर अपनी इन्द्रियों को वश में करना चाहिए।

॥सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन। जयवन्त हो श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक भगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मविकास के उन महान् सूत्रों को प्रदान कर रहे हैं, जो एक सहज जीवन की उन्नति के लिये परम आवश्यक हैं। आनन्द गुण है, आनन्द आत्मा का एक धर्म है। उस आनन्द धर्म के साथ जीव ने मोह को रख लिया है, उनका अनुभव कर रहा है। 'आनन्द आ गया।' आनन्द गया कहाँ था? आनन्द क्या रसना के विषय में है? आनन्द क्या स्पर्श के विषय में है? आनन्द क्या चक्षु के विषय में है? आनन्द क्या कर्ण के विषय में है? नीला रंग भी दिख रहा है, श्वेत-श्याम वर्ण भी दिख रहा है, पर इष्ट का वियोग हो गया हो, पाँचों रङ्ग विद्यमान हैं, वे आनन्द क्यों नहीं दे रहे हैं? जो परद्रव्य है, वह चक्षु-इन्द्रिय का विषय है। यदि पाँच वर्णों में आनन्द है, तो हर समय आपको आनन्द देना चाहिये। रङ्ग कितने ही हों, परन्तु असाता का उदय है तो रंगों में आनन्द आता नहीं है। वे रङ्ग आपको बेरंग लगते हैं। जब तक साता का उदय है, तब तक रंगों में आनन्द है। सातों स्वर तभी तक आनन्द देते हैं, जब तक तेरे साता का उदय चल रहा है। असाता का उदय आता है तो 'भैया! मैं तुम्हें एक भजन सुनाता हूँ, पंचम स्वर में सुनाता हूँ।' 'भैया! हल्ला मत कर। तुझे भजन दिख रहा है, मुझे प्राणों की पड़ी है।' कुछ रहस्य है जो यह कह रहा है कि पाँच इन्द्रियों में आनन्द है। पाँच-इन्द्रिय के विषय विद्यमान हैं। पाँच वर्ण हैं, सात स्वर रखे हुये हैं, आठ स्पर्श दिखाई दे रहे हैं। हल्का, भारी, कड़ा, नरम, रूखा, चिकना, ठण्डा, गरम। तुझे जो चाहिये वो स्वीकार कर ले, लेकिन आज पिता जी की मृत्यु हो गई है। कहना भाई! मखमल चाहिये है क्या? आज तुझे जो चाहिये वह ले ले, लेकिन आँखों में पानी मत डाल। इष्ट का वियोग दिखाई दे रहा है, उस काल में आठों स्पर्श आनन्द नहीं देते हैं। आनन्द के सहकारी साधन होने पर भी कार्यकारी नहीं हैं। यदि कार्यकारी है तो, हे मुमुक्षु! तुम्हारे ज्ञान-दर्शन में जो ज्ञायकभाव है, वह ज्ञायकभाव होने पर भी आनन्द नहीं है। रागी के लिये ज्ञायकभाव दिखाई नहीं देता। सत्ता में साता का उदय चल रहा है तो जगत् के सारे आनन्द आनन्दभूत दिखते हैं, अन्यथा कोई आनन्द नजर नहीं आ रहा है। स्वर देख लिये, सुगन्ध भी है, दुर्गन्ध भी

है। घ्राण-इन्द्रिय के विषय हैं। पाँच इन्द्रियों के सत्ताइस विषय रखे हुये हैं। मन का विषय चल ही रहा। अट्ठाइस विषय हैं। ज्ञानियो! आनन्दगुण कह रहा है कि मैं हूँ अवश्य, पर मैं वेदन उसी का करता हूँ, जिसका तू वेदन करना चाहता है।

घर में आनन्द आता है कि नहीं? यदि नहीं आता होता, तो आज तक घर छोड़ा क्यों नहीं? पाप पंक में फँसे होने पर भी आनन्द आता है। हर व्यक्ति के आनन्द लेने के तरीके भिन्न-भिन्न हैं। जो मार्ग में झाड़ू लगा रहा है, उसे भी आनन्द आ रहा है। अपनी पर्याय अपने कार्य के आनन्द में लिप्त है। जो व्यक्ति नदी के तट पर बैठ कर दूसरे के वस्त्र धो रहा है, उसको भी आनन्द आ रहा है। आप जिस धुन में लगे हो, उसमें भी आनन्द आ रहा है। बिना आनन्द के तुम कोई कार्य नहीं कर पाओगे। बिना आनन्द के तुम जीवन नहीं जी पाओगे। जो सन्तुष्टि है, वही आपका आनन्द है। आप अपने कार्य में लगे हो। यदि आप इसमें सन्तुष्ट नहीं रहोगे, तो उन्मत्त हो जाओगे, पागल हो जाओगे। यदि आपने अपने से बड़ों को देखा, आपने अन्य को देखा और उनके कार्य आपको अच्छे लगने लग गये, तो आपको अपना कार्य अच्छा नहीं लगेगा। आपको अच्छा नहीं लगा, सो आपका आनन्द नष्ट हो गया। तत्त्वज्ञानीजीव एक गहरे निर्णय में प्रवेश करता है। हर व्यक्ति अपनी धुन में है। एक चींटी भी आनन्द में डोल रही है। एक चींटा भी आनन्द में डोल रहा है। श्वान से लेकर हाथी तक आनन्द में डोल रहा है। जो जीव पर के आनन्द को देखेगा, उसका आनन्द नियम से भङ्ग होगा। तू आनन्द में तभी तक है, तब तक अपने आनन्द में आनन्दित है। तू उसी क्षण आनन्द से विहीन हो जायेगा, जिस क्षण तू पर का सुख देखना प्रारम्भ कर देगा। निज में दु:ख बहुत होता नहीं, निज में कष्ट बहुत होता नहीं। बहुत सारा कष्ट वहाँ होता है या तो पर का दु:ख है या तो दु:खी है, पर का सुख हो। अहो रागियो! जिसमें तुम्हारा राग होता है, उसके दु:ख को देखकर तू दु:खी होता है। जिसमें तेरा द्वेष होता है, उसके सुख को देखकर तू दु:खी होता है। पर न कहीं दु:ख था, न कहीं सुख था। भैया! यदि तेरे इष्ट का सिर दर्द करता है। तो तू

दु:खी हो जाता है और तेरे अनिष्ट का सिर दर्द करे, तो तू सुखी हो जाता है, प्रसन्न हो जाता है। अब बताइये, ये दोनों सुख-दु:ख तुझे किसने दिये?

कल्पनाओं का जीवन जीव सर्वाधिक जी रहा है। उस कल्पनाओं के जीवन में बन्ध भी होता है और कल्पनाओं के जीवन में मोक्ष भी होता है। अभी इसी मंच पर तू बैठा-बैठा नारी की कल्पना करने लग जाये तो तेरे शरीर की धातु झरना प्रारम्भ हो जायेगी। अशुभ की कल्पना की, सो शरीर की क्षीणता प्रारम्भ हो जायेगी और उसी स्थान पर तू नारी को भगवान्-आत्मा देखने लग जाये तो तेरे कर्म की निर्जरा प्रारम्भ हो जायेगी।

पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ये पाँच ध्यान हैं। क्या आप सागर के मध्य हो? क्या सागर के मध्य सुमेरू है? चिन्तन चल रहा है। विशाल सरोवर/समुद्र है, उसमें सुमेरू पर्वत है। सुमेरू की चूलिका देख रहा है। चूलिका पर सिंहासन रखा हुआ है। सिंहासन पर जाकर तू बैठ गया है। निहारो, मैं सिंहासन पर हूँ और देखते-देखते तू सिंहासन पर दिखाई देने लग गया। युवाओ! तुम्हारे जीवन में कितनी घटनायें घटी हैं। वह सिंहासन तुम्हारे सामने नहीं था, पर आप सिंहासन पर थे। पृथ्वी धारणा। बैठे-बैठे आपने कमलों की रचना कर ली। नाभिकमल है, हृदयकमल है, उन कमलों का तुम चिन्तन कर रहे थे। ये सब कल्पना चल रही थी। नाभिकमल में अग्नि प्रज्जवलित होती है। हृदयकमल में आठ पंखुड़ी का कमल जलना प्रारम्भ हो गया। वहाँ से ओम ओम ओम की आवाज चल रही थी। चिन्गारियाँ स्फुटित हुई, और जाकरके झुलसा दी। आठों पंखुड़ियाँ जल कर भस्म हो गई हैं। अग्नि धारणा पूर्ण हुई। तूफान चलने लगा है और सारी-की-सारी राख उड़ गई। धूसर अवस्था पड़ी हुई है। वायु धारणा। आप ध्यान में बैठे कल्पना कर रहे थे कि मैं बादलों को निहार रहा हूँ। रिमझिम पानी गिरना प्रारम्भ हुआ। मूसलाधार पानी गिरा, सारी राख धुल गई है। अब मैं स्फटिक-तुल्य स्वच्छ हो चुका हूँ। जलीय धारणा। स्फटिक पारदर्शी है। मैं पररूपों से भिन्न हो चुका हूँ। एकमात्र चैतन्यपिण्ड ज्ञानस्वरूपी आत्मा शेष है। सब नष्ट हो चुका है, कुछ बचा ही नहीं है। पुरुषाकार स्वच्छ चैतन्यपिण्ड निहार रहा है। परमज्ञायकभाव में लीन

हो रहा हूँ। **तत्रूपवती** धारणा में बैठ गया। इसमें बैठ करके चिद्स्वरूप का वेदन कर रहा है। वेदनकर्त्ता ध्यान में कभी अरहन्त का ध्यान करता है, तो कभी स्वयं अरहन्त होकर निहारता है। न वहाँ अरहन्त थे, न तू अरहन्त था, परन्तु ध्यान करते-करते तू अरहन्तों का वेदन कर रहा था। वहाँ कर्मों की निर्जरा हो रही थी।

नारी के चिन्तवन से, नाम-स्मरण से विकार आ सकते हैं, तो परमात्मा का नाम लेने से अविकारी दशा बनती है, जबकि न वहाँ नारी थी, न परमात्मा था; चिन्तन किया था। **पर का शुभ चिन्तन करेगा तो आनन्द पर्याय प्रकट दिखेगी, पर का अशुभ चिन्तन करेगा तो दुःख पर्याय तेरे हृदय में जन्म ले लेगी। पर पुरुष, परस्त्री, परवस्तु आपको सुख देने नहीं आता, आपको दुःख देने भी नहीं आता है।** आज आप चिन्तन करो कि ये मुझे देखकरके मुस्कराता है, ये मुझे देखकरके मुख फेरता है, तो आपकी कषाय भड़कना प्रारम्भ हो जायेगी। वस्तु बदलने की आवश्यकता नहीं है, चेहरा बदलने की आवश्कता नहीं है। बदलना चाहो तो मात्र दृष्टि को बदल दो। वस्तु कहाँ बदलती है? दृष्टि ही तो बदलती है।

यहाँ कई लोग ऐसे होंगे जिनकी ससुराल आगरा में ही है। जिसके साथ तेरा सम्बन्ध हुआ है, शादी के पहले कभी मिलन हुआ था क्या? मन्दिरों में कभी मिली? जिस कन्या को यह सामान्य रूप से देखता था, कभी राखी भी बँधवा लिये थे, बहिन भी मान लिये थे, क्योंकि वह नगर की बेटी थी। परन्तु वस्तु कहाँ बदली? सात चक्कर क्या पड़ गये, इसकी दृष्टि बदल गई। जिसको सामान्य रिश्तों से देखता था, उसको पत्नि के नाम से देख रहा है। पापी हो गया। वस्तु कहाँ बदली, दृष्टि बदल गई। **दुःख को दूर करना चाहते हो, संक्लेशता से मुक्त होना चाहते हो, तो वस्तु बदलने का विचार समाप्त कर दो, मात्र दृष्टि को बदल** दो। प्रत्याख्यान कर दो। यदि तेरे मन में भाव है कि आज मुझे अमुख से लड्डू खाना है, उसके हाथ में लड्डू आ चुका। यदि तू यह भाव रखता कि लड्डू खाऊँगा, खाऊँगा, तो हर समय में तू तनाव में रहेगा और हाथ में लड्डू देखकर भी आज मैं इच्छा नहीं करता हूँ, आज मैं लड्डू खाने का त्याग करता

हूँ, तो अब कितने ही लड्डू उसके हाथ में रखे रहें, लेकिन अब उसका कष्ट समाप्त हो चुका है।

इन ज्ञानियों से पूछो। जिस दिन इनके दो समय भोजन करने का भाव होता है और संध्या की बेला आ जाये और किसी कारणवश विलंब हो जाये, तो फिर परिणामों से पूछना क्या होता है? 'अनथऊ की बेला हो रही है और ये मुझे जाने नहीं दे रहे हैं, कितना समय हो रहा है?' भोजन करेगा दस मिनिट, लेकिन संकल्प-विकल्पों का भोजन इतना कर चुका है कि पिण्डि का पिण्ड खड़ा कर लिया है। जिस दिन अष्टमी या चतुर्दशी होती है, एकासन का नियम सुबह ही ले लिया है, कोई पूछता है 'भैया भोजन?' तो मुस्कराकर कहता है—'आज तो एकाशन है, अतः घर पर ही करूँगा।' पर को ग्रहण करना ही मुस्कराहट का नाश करना है। मुस्करा कर, आनन्द के साथ बोलता है संयम को ऐसे मस्ती में बोलना जानता है। और असंयम के साथ बोलता है, 'भैया! कछू है कि नहीं।' भिखारी बन गया बेचारा।

परवस्तु को ग्रहण करने का भाव जहाँ होगा, वहाँ नियम से छोटापन होगा, ओछापन होगा। जो परवस्तु को छोड़ देगा, वह सिंह-जैसा दहाड़ेगा। आनन्द कहाँ है? भोग में आनन्द है कि योग में? भोग में आनन्द होता तो जगत् में कोई योगी ही नहीं बनता। योग में ही आनन्द होता, भोग में नहीं होता, तो सारा जगत् योगी बन जाता। यह वस्तुव्यवस्था है, इसे आप समझिये। एक तरफ की बात कर दो तो आदमी भ्रमित हो जाता है। अब मैं क्या कह रहा हूँ? यदि योग में आनन्द नहीं होता, तो जगत् में कोई साधु न बनता। भोग में आनन्द न होता, तो सारा जगत् साधु बन जाता। अन्वय-व्यतिरेक तर्क की दृष्टि से आप व्याख्यान कीजिये।

ध्रुव सत्य यह है कि दोनों के आनन्द भिन्न-भिन्न हैं। आनन्द रोटी में भी है, आनन्द मिठाइयों में भी है। रोटी का टुकड़ा तो मजदूर भी नमक के साथ खाते मिल जाता है। हर व्यक्ति मिठाइयाँ नहीं खाता, पर आनन्द दोनों में है। भोगों में आनन्द है क्या? भोगों के आनन्द की महिमा तो देखो, जिसकी शक्ति हीन होती है, जिनकी शक्ति क्षीण होती है, वे हीन आनन्द में ही सन्तुष्ट होते

हैं। वह भोगियों की संख्या है। बहुत सारे ग्रामीण, देहातों में रहने वाले, जंगलों में रहने वाले जीव मकुइयाँ-बेर खाते हैं, उसमें आनन्द लूटते हैं। जिसने बेर-मकुइयों का आनन्द लूटा हो, उस व्यक्ति के पास वही खाने को है, उससे कहो कि अंगूर का स्वाद कैसा होता है, सेब फल का स्वाद कैसा होता है, तो वह बता नहीं पायेगा।

जो बेर, मकुइयाँ, करोंदा जैसे फलों को उठा-उठाकर खा रहा हो, मुस्करा कर खा रहा हो, और-तो क्या, ऊमर, कठूमर, पाकर, अंजीर ऐसे अभक्ष्य फलों का सेवन कर रहा हो, तब भी कहता हो कि आनन्द आ गया, तो फिर समझ में आ गया कि तेरा पुण्य इतना ही है। तू बेर, मकुइयाँ, उदम्बर फलों को खाकरके आनन्द लूट रहा है, रसना-इन्द्रिय की पुष्टि कर रहा है। सुन! इतना-सा पुण्य लेकर आया कि तुझे बेर-मकुइयाँ मिल गई, लेकिन उन बेरों में, मकुइयों में, ऊमर, कठूमर आदि फलों में कोटि-कोटि जीवों को खा रहा है, इससे पुण्य बढ़ रहा है कि नष्ट हो रहा है? ध्यान दो, अब तू वहाँ जाने वाला है जहाँ यह भी नहीं मिलेगा, मात्र नरक की मिट्टी को उठाकर खायेगा और तड़पेगा। इतनी गम्भीर वेदना। **यदि प्रथम नरक की मिट्टी का एक कण मात्र, प्रथम पटल का एक परमाणु मात्र भी इस भूमि में डाल दिया जाये, तो आधे कोश के जीव उस मिट्टी को सूँघने मात्र से मर जायेंगे।** विषय पर ध्यान दो। आनन्द। बेर-मकुइयों में आनन्द लूट रहा था। निज का निज में जो आनन्द है, वह योगीगम्य है।

पर-निरपेक्ष आनन्द योगीगम्य है, परसापेक्ष आनन्द भोगीगम्य है। अहो भोगियो! परसापेक्ष आनन्द ले करके अधोगति का गमन ही कर पाओगे, परनिरपेक्ष आनन्द लोगे तो उर्ध्वगमन करोगे। बस, आनन्द है। आनन्द गुण है, आनन्द आत्मा का धर्म है। आनन्द नाम का गुण न होता तो हम जी नहीं सकते हैं। सन्तुष्टि सबसे महान् वस्तु है और सन्तुष्टि सबसे हीन वस्तु है। भैया! तेरा कण्ठ बड़ा सुरीला है। आप चाहते तो देश के बहुत बड़े संगीतकार हो सकते थे। पर आपने क्या किया? कुछ भजनों को ही कुछ सभा में बोल करके अपने आप को प्रसन्न समझ

लिया, सो आप सन्तुष्ट हो गये। कुछ ज्ञानी अपने ज्ञान में सन्तुष्ट हो गये और सन्तुष्ट होने के कारण इतने आनन्द में लीन हो गये कि ये चाहते तो विधानाचार्य बन सकते थे, श्रमणाचार्य भी बन सकते थे, परन्तु जीव सन्तुष्ट हो गया। जैसे-ही सन्तुष्ट होता है, वहाँ विकास रुक जाता है। बटलोई चूल्हे पर रखी है। रासायनिक तत्त्व से समझना। उसमें उबाल आता है। जितना पानी भरा होगा या जितनी ऊँची बटलोई होगी, उसका उबाल उतना ऊँचा जायेगा। यदि बर्तन छोटा है और पानी कम है, तो वह पानी वहीं गिर जायेगा और यदि आधा बर्तन पानी आधा वर्तन खाली, उस पर ढक्कन,उबाल आने दो, ढक्कन तक स्पर्श करेगा। वाष्पित होगा तो उस पानी में औसत धर्म प्रकट हो जायेगा? ऐसे तुम्हारा विकास का बर्तन छोटा है, आप सन्तुष्ट हो गये हो, ऊपर उठ नहीं पा रहे हो, क्योंकि सन्तुष्टि ने आपको दबाकर रखा है। ज्ञान के क्षेत्र में सन्तुष्टि नहीं होना चाहिये, जब तक कैवल्य प्रकट न हो जाये। चारित्र के क्षेत्र में सन्तुष्टि नहीं होना चाहिये, जब तक यथाख्यात चारित्र प्रकट न हो जाये। ज्ञानियो! शास्त्र पढ़ने के लिये शास्त्र मत पढ़ना, श्रुतकेवली बनने के लिये श्रुत का अभ्यास करना। केवली बनने के लिये जिनवाणी का अभ्यास करना, कोई दूसरा उद्देश्य नहीं रखना।

नदी सागर की ओर बह रही है। वह किसी को पानी देती नहीं है। सागर की ओर बह रही है, पर मार्ग में जहाँ-जहाँ से निकलती है, कितने सारे लोग कोई पुष्प के रूप में पानी ले रहे हैं, कोई प्लेट में पानी ले रहा हैं, कोई क्यारियों में पानी ले जा रहा है, पर नदी तो अपनी बहती चली जा रही है। ऐसे-ही योगियों को महासागर सिद्धशिला में अपने को विराजमान करना है। ऐसे बहते रहना चाहिये। मध्य में तुमसे कोई लोटे में भर कर ले जा रहा है। लोग जो उपयोग करना चाहें, करने दो, लेकिन अपनी दृष्टि, अपना उपयोग मात्र महासागर सिद्धालय में मिलने का है। यदि नदी पर बाँध बाध दिया और खेतों में पानी चला गया, तो पानी वहीं सूख गया। क्षयोपशम क्यों रुक गया? क्योंकि आपने गृहस्थी की क्यारियों में अपने उपयोग को लगा दिया है, आपके सामने इतने सारे विकल्प आकर खड़े हो चुके हैं, जो किसी को दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। इतने सम्बन्धों

के उप-सम्बन्ध बन चुके हैं। उन सम्बन्धों में स्व-स्वभाव को भूल चुका है। इसको भूल मत जाना। शास्त्री जी! ऐसा नहीं है क्या? यदि आप जिनवाणी लेकरके घर में बैठ करके स्वाध्याय करते, तो दूसरे से उदास होना पड़ेगा। यदि चार रिस्तेदार आ गये, तो उनको खुश करने के लिये झूठा चेहरा भी दिखाना पड़ता है। कभी मुस्कराहट नहीं होती तो झूठी मुस्कराहट छोड़ता है। पर को खुश देखने के राग में स्वयं को माया युक्त होकर चेहरा बनाना पड़ता है। पूछो व्यापारियों से। किसी वस्त्रव्यापारी से पूछना, कोई ग्राहक आया पूरे थान-के-थान पटकवा दिये, तब भी बेचारा मुस्करा कर लपेट कर रख रहा है, लेकिन भीतर-ही-भीतर झुलस रहा है कि एक भी कपड़ा लिया नहीं और पूरी मेहनत करा दी। कुटिल समता दिखा रहा है। धन कमाने के लिये कुटिल समता चाहिये पड़ती है, तो भगवान् बनने के लिये सत्य समता चाहिये पड़ती है। कुटिल समता 'समता' नहीं है। इनकी समता तब देखनेलायक होती है, जब घर में दामाद पहुँच जाये। भैया! तुम जैन हो, अहिंसा तुम्हारा धर्म है। इन बेचारों की दम मत लिया करो। तुम्हारे पहुँचते ही कुटिल मुस्कराते हैं। हृदय कहता है कि कुछ माँग न पड़े। कहीं माँग लिया, नहीं दे पाया, तो क्या हो जायेगा? दूसरे से कुछ भी माँगोगे तो भावहिंसा नियम से लगेगी। इसलिये हमारे दिगम्बर जैन आम्नाय में साधुओं के बाईस परीषह में एक परीषह है याचना।

माँगन मरण-समान है, मत माँगो कोई भीख।
माँगन से मरना भला, यही सद्गुरु की सीख॥

जैनपरम्परा में किसी के सामने हाथ नहीं फैलाये जाते। माँगन मरण-समान है। अभी तेरा सब सम्मान कर रहे हैं। तू अभी बोल दे 'भैया! अध्यक्ष जी! मुझे इतना द्रव्य चाहिये ग्रन्थ प्रकाशन के लिये।' वह कितना ही मुस्करायेगा, लेकिन बेचारे की श्वासें तुरन्त ऊपर-नीचे शुरू हो जायेंगी कि यह आपत्ति कहाँ से आ गई? मुख से कहे या न कहे, लेकिन चेहरा कहेगा। इसलिये युवाओ! ध्यान रखो, माँ समझायें, बहन समझाये, चाहे भाभी समझाये, कोई भी सम्बन्धी समझाये, बहुत अच्छा हो कि तुम मुनिमहाराज बन जाना और नहीं बन

सको, शादी कराने गये, तो वहाँ जाकरके अपने घर का नंगापन मत दिखाना, अपने घर की दरिद्रता को प्रकट मत करना। वहाँ भोजन करने बैठा, लेकिन कर नहीं रहा है। क्या चाहिये? रूठे थे। धिक्कार हो। जिनसे रूठे, क्षमा माँग लेना। क्यों अपने घर का दु:खड़ा रो रहा था?

मैं एक बार एक शादी में गया। मैंने देखा कि ये भैया भोजन क्यों नहीं कर रहा है? सबकुछ तो रखा हुआ है थाली में। एक तरफ नोट भी रखे हुये थे। मैंने कहा, रुपया खायेगा क्या? नहीं, इसे सोने की चैन चाहिये है, इसलिये बैठा हुआ है। मैंने कहा, अभागे! भोजन कर ले। तू चेन के पीछे चैन क्यों खो रहा है? सारा संसार इसी में जी रहा है। जहाँ 'माँगना' शब्द आया, समझलो कि तुम्हारा सबकुछ गया। तब तक तुम्हारा साधुत्व है, तब तक तुम्हारा पुरुषत्व है, तब तक तुम्हारा व्यक्तित्वपना है, जब तक तुमने किसी के द्वार पर 'दे दो' शब्द का प्रयोग नहीं किया। जैसे-ही 'दे दो' शब्द का प्रयोग किया, वह तो गया।

विषयानन्द परसापेक्ष है, आत्मानन्द परनिरपेक्ष है। रागी भी मुस्कराते दिखता है, वैरागी भी मुस्कराते दिखता है, बात क्या है? महाराज भी मुस्कराते हैं, आनन्दमय। धनपति भी आनन्दित हो रहा है। परन्तु दोनों में महान् अन्तर है। एक का आनन्द 'आनन्द' भङ्ग करेगा, दूसरे का आनन्द 'परमानन्द' में बदलेगा। भोगी का आनन्द, धनपति का आनन्द परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान चल रहा है और योगी का आनन्द धर्मध्यानभूत है, वह परमानन्द में बदलेगा, सिद्धपर्याय को प्रकट करेगा। इसलिये सन्तुष्टि बहुत अच्छी वस्तु है। विषयों से सन्तुष्ट हो जाना, उनसे दूर हो जाना; परन्तु ज्ञान व चारित्र में सन्तुष्ट मत हो जाना, उसको आगे लेकर चलना। साधना में सन्तुष्टि नहीं होना चाहिये कि बस, अब बहुत कर लिया। अन्यथा समझ लो कि ह्रास प्रारम्भ हो गया। ज्ञानी कहे महाराज जी! मैं एकासन करता था। बहुत दु:ख है। क्यों? 'था', उसकी साधना भूत में चली गई। कोई साधक कहे कि मैं पहले ऐसा विरक्त रहता था, तो इसका मतलब है कि अब तुम विरक्त बचे नहीं हो, आसक्ति बढ़ गई है। आपका 'था' शब्द नहीं लगना चाहिये, 'है' शब्द लगना चाहिये। मैं इतने श्लोक याद कर लेता था, मतलब अब बन्द। मैं

इतने घण्टे सामायिक करता था, मतलब अब विशुद्धि समाप्त हो गई है। क्या साधना को सन्तान के रूप में जन्म दिया तूने? साधना को सन्तान के रूप में जन्म नहीं देना। सन्तान को व्यक्ति एक बार जन्म देता है और जन्म देकर फुर्सत हो गया। अब प्रसन्न है कि बेटा बड़ा होगा तो वृद्ध-अवस्था में काम आयेगा। साधना सन्तान नहीं है। सन्तान को इसलिये जन्म दिया कि मैं जब वृद्ध होऊँगा तो सन्तान के द्वारा पलूँगा। अभी पाल लो सन्तान को। जितने अच्छे से सन्तान को पालोगे, वृद्ध-अवस्था में सन्तान तुम्हारा पालन करेगी। ज्ञानियो! तुमने सन्तान को जन्म दिया है। साधना सन्तान नहीं है। कारण? साधक साधना की शक्ति से युक्त हो करके लोक में ख्याति को प्राप्त हो चुका, अब कहीं साधना मन्द पड़ गई, तो यूँ कहना चाहिये कि साधना को जन्म देकरके छोड़ दिया है। अब उस साधना का प्रभाव तुम्हारा जीवन पूरा करा रहा है। तेरी साधना वर्तमान में समाप्त हो गई। हे ज्ञानी! साधना सन्तान नहीं है। सम्यग्दृष्टि साधक की साधना सन्तान नहीं होती, सनातन होती है हर समय। इसलिये साधना को सन्तान का रूप मत दे देना।

पुण्य का द्रव्य भी तुमको पाप में ले जा सकता है। जितने पाप में गये हैं, पुण्य के द्रव्य का दुरुपयोग करके ही गये हैं। जितने जीव दुर्गति को प्राप्त हुये हैं, वह पुण्य के द्रव्य का दुरुपयोग करके ही हुये हैं। रावण, कीचक आदि पुण्य के द्रव्य का सही उपयोग नहीं कर सके, सो दुर्गति को प्राप्त हो गये। जो पुण्य के द्रव्य का सही उपयोग कर लेते हैं, वे सिद्धशिला पर जाकर विराजमान हो जाते हैं। राम के पास भी पुण्य का द्रव्य था, वर्द्धमान के पास भी पुण्य का द्रव्य था, आपके पास भी पुण्य का द्रव्य था। सम्यक् उपयोग किया, सो जिनालय में आकरके तत्त्व-उपदेश सुन रहे हो वही गाड़ी का पैट्रोल यहाँ आने में जला है, यही द्रव्य मदिरालय की ओर जाता तो नष्ट होता। वैश्यालय की ओर जाता तो भी जलता, पर वहाँ पाप का ही बन्ध करता। यह पुण्य के द्रव्य का दुरुपयोग किया। मोक्षमार्ग असहाय मार्ग है। यूकेलिप्टस का वृक्ष जब अंकुरित होता है, सीधा ऊपर की ओर जाता है। किसी की सहायता नहीं लेता, सीधा स्वयं जाता है।

बहुत सारे लोग नाम सुनकर काम कर बैठते हैं, फिर रोते हैं बाद में। वस्तु को पहचानो, नाम सुनकर निर्णय मत करो। कर्नाटक गये, किसी ने कहा 'हालू-हालू', तुम भाग गये। नाम सुनकर मत भागो, वस्तु को पहचानो। जो वस्तु नहीं पहचानता है, उसे पछताना पड़ता है। भाषा समझ में नहीं आती, लेकिन वस्तु समझ में आती है। ध्यान दो, किसी भी क्षेत्र में जाना, आप भाषा को नहीं पहचान पाओगे। जितने भ्रम खड़े होते हैं, भाषा में होते हैं, वस्तु में कोई भ्रम नहीं होते हैं। कोई निश्चय की भाषा में बोल देता है, कोई व्यवहार की भाषा में बोल देता है, कोई मराठी बोलता है, कोई कन्नड़, कोई अंग्रेजी, कोई कहीं की भाषा बोलता है। भाषा में व्यक्ति भ्रमित हो जाता है, वस्तु में कोई भ्रमित नहीं होता है। हर जगह रोने का तरीका, हँसने का तरीका एकसा है। लड़ने का तरीका भी हर जगह एक-सा ही है। किसी दूसरे प्रान्त में जाकर पानी पीना हो तो पानी मत माँगना, नहीं तो परेशान हो जाओगे। तुम तो इशारे से कह देना, हर व्यक्ति समझ जायेगा कि प्यासा है। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जान कर भी नहीं बताते। कर्नाटक में एक युवा मिला। उससे पूछा अमुख गाँव का रास्ता कहाँ है? वह बोला, 'मेरे से हिन्दी नहीं बनती' और बोल हिन्दी में ही रहा था। जिसे न बताना हो, सो सुन्दर उपाय 'मेरे से बनता नहीं है।' इसलिये भाषा में गये, सो भाव बिगड़े। ये बहुत बड़ी भूल जीवन में कभी नहीं करना। **भाषा के ज्ञानी को ज्ञानी कहना मत सीख लेना। भाषा का ज्ञान कोई तत्त्वज्ञान नहीं होता है। तत्त्वज्ञान वस्तुस्वभाव का होता है।** हमारा देश क्यों छला गया? गरीब क्यों हो गया? क्योंकि विदेशी लोगों ने अपने देश की भाषा बोली, सो तुम ऐसे देखने लग गये जैसे ज्ञानी आ गया। अरे! आपको मालूम होना चाहिये कि श्वान अपनी भाषा बोलता है, इन्सान अपनी भाषा बोलता है, कौआ अपनी भाषा बोलता है, कोयल अपनी भाषा बोलती है। इनकी भाषा के बोलने से वस्तु बदल जायेगी क्या? इसलिये कुन्दकुन्द स्वामी ने एक सुन्दर सूत्र दिया है–

भाषा अनेक रूप होती है, वस्तु एकरूप होती है। जो है, सो है। इससे बड़ा कोई सूत्र नहीं मिलेगा। यह विशुद्धसागर का सूत्र नहीं है, कुन्दकुन्द स्वामी का

सूत्र है। 'जो सो दु सो चेव।' उसका हिन्दी है 'जो है, सो है। आप लोगों ने सोच लिया कि महाराज जी ने बना लिया। मेरे से तो कुछ भी नहीं बनता और बनाने के चक्कर में भी नहीं हूँ, क्योंकि जब तक बनाते रहोगे, तब तक संसार में बन्धकर रहना पड़ेगा। बनाना छोड़ दोगे तो भगवान् बन जाओगे। कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि विषयों के आनन्द में लिप्त मत हो जाना, नहीं तो फँस जाओगे। साँप को टोकनी में क्यों बन्द होना पड़ा? कालिया नाग स्वतन्त्र विचरण करने वाला, सपेरे की टोकनी में क्यों बन्द हो गया? सपेरे की बीन की आवाज को सुनकरके प्रभावित न होता, तो हे नाग! तुझे टोकनी में न फँसना पड़ता। ऐसे ही जगत् की भाषाओं में उलझ करके अपने भावों के भगवान् को किसी की टोकनी में मत फँसा बैठना। इस वस्तुस्वरूप को समझो। जिसने जन्म दिया था, दस दिन के अन्दर भूल गया। **जिसने नौ माह पेट में रखा हो, उसे भूल गया, किसके राग में? घर में देवी आयी, उसने मधुर बोलना शुरू किया, तू उसमें इतना लिप्त हो गया कि जन्म देने वाली माँ को भी उल्टा-सीधा बोलने लगा। धिक्कार हो तेरे परिणामों को।** माताओ! बुरा मत मानना। अब 'जो है, सो है।' माताओ! आपको घोर पाप का बन्ध होगा किसी के बेटे को उसकी माँ से अलग करोगे तो। तुम बच जाओगे क्या? किसी की बेटी को लेकर आये हो, तुम बच जाओगे क्या? समझो ध्यान से। मधुर भाषण सुन करके बेटा माँ से दूर नहीं होना चाहता था, पर क्या शब्दों की महिमा है, क्या वासनाओं की महिमा है, कि किसी की बिटिया को लेकर घर छोड़ना पसन्द करता है, पिता को छोड़ना पसन्द करता है, माँ को छोड़ना पसन्द करता है, यहाँ तक कि अभागा धर्म को छोड़ना पसन्द करता है, लेकिन वासनाओं को नहीं छोड़ पाता। कुलकलंकी बन सकता है, लेकिन कुल का तिलक बन जाओ, इसका नाम सन्तान है।

भैया! बचकर रहना। जो माँ को छोड़ सकता है नारी के राग में आ करके, वह जिनवाणी माँ को भी छोड़ सकता है। इसलिये ऐसे रागियों पर विश्वास नहीं करना। आगम क्या कहता है, मैं उसकी बात मानता हूँ। **जिसने किसी नारी को अपना हाथ न सौंपा हो, किसी नारी का हाथ न पकड़ा हो, नारी विहीन**

हो, भय विहीन हो, कषाय विहीन हो, लोभ विहीन हो, ऐसे निर्ग्रन्थ की वाणी ही सत्यार्थ वाणी है। जहाँ राग व भय है वहाँ सत्य की बात नहीं हो सकती है। ऐसा आचार्य उमास्वामी बोल रहे हैं। माताओ! काम छोड़ देना, लेकिन तत्त्वार्थ सूत्र की वाचना सुनना, जिससे जीवन में फिर से नारी न बनना पड़े। यदि नारी नहीं बनना है, तो 'तत्त्वार्थ सूत्र' जब पढ़ो तब पढ़ो, लेकिन मायाचारी आज से ही छोड़ देना। भाइयो! आपको यदि स्त्री नहीं बनना है तो, ये स्त्रियों-जैसे बाल, आभूषण, माँग, वस्त्र और उन-जैसी भाषा, उनसे लड़ना, उनसे बातें करना छोड़ दो, नहीं-तो अगली पर्याय स्त्री की नियत है। ऐसा 'गोम्मटसार कर्मकाण्ड' में लिखा हुआ है। जो पुरुष स्त्रियों से ज्यादा झगड़ता है, उसे स्त्री बनना पड़ता है। इसलिये लड़ाई-झगड़ा मत करना। भैया! सत्य है, यदि नाटक में भी तुमने स्त्री का पाठ किया है तो समझ लो कि नोकर्म खड़ा कर लिया। नाटक में बहुत सारे लोग रोते हैं। आँसू नहीं गिरते, पर रोते हैं। वे असाता कर्म का आस्रव कर रहे हैं। सिद्धान्त में किसी का कुछ नहीं चलता। वस्तुस्वरूप तो ऐसा ही है। यदि आपको पुरुष बन कर रहना है, तो सम्यक् पुरुषार्थ करो, उत्कृष्ट काम करो, नियम से जीव पुरुष बनेगा।

रागद्वेष के वश हुआ आत्मा विषयों के आस्वादन से लिप्त हो करके अपनी आत्मा को अपने ही द्वारा ठग रहा है। किसी को खोटी दृष्टि से देखोगे, उसे तो मालूम नहीं है कि मुझे कौन देख रहा है, पर हे देखनेवाले! तुझे तो पाप का बन्ध हो ही रहा है। स्वयं को ठगा। परन्तु वे कभी सुख का, शान्त भाव का सेवन नहीं कर पाते, यह विश्वास मानो। **जिसने छुपकर भी पाप किया है, उनकी शक्ति तो भङ्ग हो ही गई। डर लगा रहता है कि कोई देख न ले, कोई प्रकट न कर दे, किसी को मालूम न चल जाये। हर समय दुःखी होते हैं। ऐसे अंगुलियों पर गिनने लायक जीव मिलेंगे जो अपने आप को कह सकें कि मैं निर्दोष हूँ।** वीरो! मुझे तुम्हारी कोई वीरता नहीं चाहिये। पिताओ! अपनी सन्तान से कह देना कि मुझे आपसे कोई सुख नहीं चाहिये। बस, मुझे इतना चाहिये कि तू इतनी ताकत से कह सके कि मैं अपने कुल की आन-बान-शान

की रक्षा करूँगा। मुझे कौन हीन देख सकता है? क्योंकि मेरा संयम श्रेष्ठ है। भैया! हीनता, दीनता वहीं है जिसका मन भोगों से हीन हो चुका है। अशुभ करने वाले में ताकत नहीं होती। शीलवन्त पुरुष हजारों लाखों कुशीलों के बीच में ऐसे होगा जैसे हजारों-हजारों हाथियों के बीच में एक शेर बलबान होता है। ऐसे ही हजारों रागियों भोगियों के बीच में एक सम्यक् योगी श्रेष्ठ होता है। उसके पास शरीर की बाहुबल नहीं, संयम की ताकत है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"निर्वाण सुख का कारण"

इन्द्रियप्रसरं रुद्ध्वा, स्वात्मानं वशमानयेत्।
येन निर्वाण-सौख्यस्य, भाजनं त्वं प्रपत्स्यसे॥ 134 सा. स.॥

अन्वयार्थ-इन्द्रियप्रसरं रुद्ध्वा = इन्द्रियों की इच्छाओं के विस्तार को रोक करके **स्वात्मानं वशं आनयेत्** = अपने आत्मा को अपने आधीन रक्खे **येन** = जिससे **त्वं** = तू **निर्वाण सौख्यस्य भाजनं प्रपत्स्यसे** = निर्वाणसुख का पात्र हो जायेगा।

भावार्थ-हे भव्य! इन्द्रियों की इच्छाओं के विस्तार को रोककर अपनी आत्मा को अपने आधीन रख, जिससे तू निर्वाण सुख का पात्र हो जायेगा।

॥सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन। जयवन्त हो श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक भगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा की उन असमान-जाति दशाओं की व्याख्या कर रहे हैं, जिनके माध्यम से जीव आज तक संसार में भटक रहा है। 'अनादि सम्बन्धे च।' कर्म का सम्बन्ध चिद्रूप भगवान्-आत्मा को प्रभावित किये है। कर्म का प्रभाव आत्मधर्म पर है। कर्म पुद्गल की सूक्ष्म पर्याय है।

स्थूल-स्थूल, स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्म-सूक्ष्म ये पुद्गल की छः अवस्थायें हैं। इन छः धाराओं में पुद्गल अपने स्वभाव में परिणमन करता हुआ भी अपने ही विभाव में परिणमन करते हुये भी जीव को प्रभावित करता है और जीव प्रभावित हो रहा है। जो पुरुष के द्वारा निगला जा रहा है, उसका नाम पुद्गल है। कुन्दकुन्द की परम्परा में चलते-चलते इस रहस्यमयी परिभाषा के कर्त्ता भट्ट अकलंक स्वामी 'राजवार्तिक' में लिख रहे हैं कि जो पुरुष के द्वारा निगला जाता है, उसका नाम 'पुद्गल' है। यह आपको प्रथम परिभाषा दृष्टिगोचर

हो रही है। अभीतक हम यही सुनते रहे हैं कि जो पूरण-गलन स्वभावी है, उसका नाम पुद्गल है।

ज्ञानी! तू पुद्गल को कुछ भी पुद्गल दे दे, तो भी पुद्गल को पूरन-गलन से बचा नहीं सकता है। हे जीव! तू पुद्गल को राग से देख सकता है, तू पुद्गल को द्वेष से देख सकता है, लेकिन पुद्गल की रक्षा करने में तेरा कोई पुरुषार्थ नहीं है। यदि तू राग-द्वेष करेगा, तो वह तुझे नरकपर्याय भेंट में दे देगा। यदि तुम इस पुद्गल को राग प्रदान कर रहे हो, द्वेष प्रदान कर रहे हो, तो पुद्गल कहेगा कि आप विकल्प मत करो, कीचड़ में पत्थर फेंक दो, तो वह कीचड़ कहेगा, भाई! तू मुझे यह भेंट दे रहा है, तो मैं तुझे भी बिना दाग के नहीं छोड़ूँगा, मैं तेरे ऊपर अवश्य आऊँगा।

मुमुक्षु! श्वेत वस्त्र धारण किये हो और कीचड़ पर पत्थर फेंक रहे हो, तो कीचड़ तो कीचड़ है ही, उसका क्या बिगड़ेगा? जब भी बिगड़ेगा तो श्वेत वस्त्रों का ही बिगड़ेगा। ऐसे-ही **जब तुम किसी महापुरुष के ऊपर अशुभ विचार करोगे, तब तो नीच गोत्र का बन्ध होगा-ही-होगा। यदि हीन पुरुष पर तुम अशुभ विचार करोगे, तब भी बन्ध होगा। यदि आपने अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया है, अशुभ परिणाम किये हैं, तो करणानुयोग कहेगा कि बन्ध तो होगा। कीचड़ पर पत्थर फेंकोगे तो कीचड़ तो चिपकेगी। कषाय विचार नहीं करने देती कि इसका परिणाम क्या होगा? जब जीव के भावों में कामविकार के भाव सताते हैं, तो उस काल में अपने आप को नहीं सम्हाल पाता है। अशुभ कर्म किया, कामसेवन किया तो शरीर क्षीण होगा, बुद्धि नष्ट होगी, स्मरणशक्ति क्षीण हो जायेगी,** तब उसको समझ में आता है कि हाय मैंने क्या किया है? न ब्रह्मी काम में आयेगी, न बादाम काम में आयेगी यदि तेरी भीतर की शक्ति का अभाव है तो।

ज्ञानियो! लाखों बल्ब लगा दो, इनमें प्रकाश नहीं है। आप कहोगे कि सामने तो दिख रहे हैं। यह आपकी भूल है। यदि विद्युत नहीं है, तो बल्ब क्या करेंगे? प्रकाश विद्युत में है, ऐसे-ही शक्ति बादाम में नहीं, शक्ति ब्राह्मी में नहीं, शक्ति तेरे वीर्य में है। वीर्य नष्ट हो गया तो बादाम क्या करेगी? चित्त की विशुद्धि

है तो चारित्र है। चित्त की विशुद्धि नहीं है तो न पिच्छि कार्यकारी है, न कमण्डलु कार्यकारी है, न दिगम्बर मुद्रा कार्यकारी है। चित्त की विशुद्धि है तो चारित्र की सिद्धि है। पिच्छि-कमण्डलु में चारित्र होने लग जाये तो किसी वृक्ष पर पिच्छि-कमण्डलु टाँग दो, तो क्या वे चारित्रवान हो पायेंगे? जब सल्लेखना हो जाती है, तो एक वृक्ष पर पिच्छि-कमण्डलु टाँग कर आ जाते हैं, तो क्या वृक्ष को चारित्रवान बना कर आ गये? कदाचित् सल्लेखना लेने वाले की देवदुर्गति हो गई अशुभ भावों से। देवों की भी दुर्गति होती है। जीवन में एक बार 'तत्त्वार्थ सूत्र' को बहुत अच्छे से समझना। देवदुर्गति किसकी होती है? यदि तू मुनिराज बन गया और जिनलिङ्ग धारण करके आपके गुरुमहाराज ने कहा, बेटा! अमुख साधना ऐसे करना, अथवा संघ का कोई कार्य ऐसे कर लेना। आप सोचो, कहो कि क्या दूसरे साधु नहीं हैं? मेरे से ही सब काम करवाते हैं, दूसरे साधु से आचार्यमहाराज बोलते ही नहीं हैं। ऐसे अशुभ परिणाम गुरु के प्रति साधु के हो रहे हैं। आसुरी वृत्ति, पैशाची वृत्ति, इन सब वृत्तियों का वर्णन 'भगवती आराधना' में लिखा हुआ है। जो जीव अरहन्त मुद्रा को प्राप्त करके भी आसुरी वृत्ति का प्रयोग कर रहा है। जैसे नरक में अम्बरीष असुर जाति के देव जाते हैं। नारकियों को एक दूसरे का बैर बताकरके लड़ाते हैं। मान लो कि तेरी माँ ने आँखों में अंजन लगाया था, उनको विभङ्गावधि खोटा ज्ञान लगाता, कहता, देखो-देखो, ये तेरी माँ का जीव है, इसने तुम्हारी आँखों को फोड़ा था।

छतरपुर के पास धुवेला स्थान है। वहाँ ऐसे-ऐसे काँच रखे हुये हैं, बड़े-बड़े लम्बे-चौड़े दर्पण रखे हुये हैं। आदमी सीधा चले, उसमें उल्टा दिखे। दुबला-पतला आदमी मोटा दिखे। एक ऐसा भी काँच था, उसको हटा दिया है, उसके सामने कोई कितने भी कपड़े पहन कर जायेगा, वह नंगा ही दिखेगा। कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, इनमें ऐसे लैंस लगे हुये हैं, ऐसा उल्टा क्षयोपशम है कि उनके अन्दर जो भी पहुँचता है, उल्टा ही दिखता है। ऐसे-ही जिस जीव की बुद्धि दुर्बुद्धि हो जाती है, उसको सम्यग्ज्ञान भी विपरीत दिखता है। सद् श्रद्धान भी विपरीत दिखता है। सद्चारित्र भी विपरीत दिखता है और खोटे में समीचीनता दिखती है। यह विपरीत क्षयोपशम का प्रभाव है। इसमें आपको किसी प्रकार का विकल्प नहीं

करना चाहिये। उस जीव का क्षयोपशम ही ऐसा है, उसमें आप क्या कर सकते हो?

रक्त से कहीं शान्ति मिलती है क्या? जिसको दुर्गति का बन्ध हो गया है, राजा अरविन्द छिपकली के रक्त से दाह रोग ठीक कर रहा था। उसको चन्दन के छींटे शाति नहीं दे सके। धन्य हो उन बेटों के लिए। सम्बन्ध तो सम्बन्ध है, सम्बन्ध कोई धर्म नहीं है। सम्बन्ध के राग में धर्म से वैराग्य मत ले लेना।

ज्ञानियो! यदि तुम्हारा पिता मदिरापान करता है तो पिता के सम्बन्ध से पिता तो कहलायेगा, लेकिन मदिरा के कारण पिता सज्जन नहीं हो जायेगा। कहीं पिता आपसे कहे, बेटा! सिगरेट लेकर आओ। यदि तू सच्चा पुत्र है धर्म का, तो यूँ कहना, पिताजी! इस सिगरेट को पीकरके जिनकुल को मत लजाओ। इस शरीर की आँतों को धुआँ बना करके असमय में मुझे पिता विहीन करके मत जाओ। क्या बोलना? अच्छी भाषा बोलना, हे तात्! आपको अपने से प्रीति नहीं है तो विकल्प मत करो, पर मुझ अभागे को पिताविहीन बनाकर मत जाना, क्योंकि तुम सिगरेट पिओगे, तो कैंसर होगा। मदिरापान करोगे तो रोग होगा, आप असमय में चले जाओगे, फिर मैं पिता किससे कह पाऊँगा? आपको अपने पर करुणा नहीं है तो कम-से-कम मेरे पर तो करुणा करो। **'वचनं किं दरिद्रता?'** भिखारी आ जाये तो दान देना पड़ता है। कोई चन्दा वाला आ जाये तो आपको रसीदकट्टा कटाना पड़े। लेकिन भैया! अच्छी भाषा बोलने में तुम्हारे कौन-से पैसे खर्च होते हैं? तीव्र कषाय, तीव्र मान अच्छे वचन नहीं बोलने देता है।

प्रिय वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं किं वाक्येऽपि दरिद्रता॥सा.स.॥

प्रिय वाक्य प्रदान करने से सारे विश्व के प्राणी सन्तुष्ट हो जाते हैं, इसलिये प्रिय वचन ही बोलना चाहिये। वचन बोलने में कौन-सी दरिद्रता है? यदि पिता को समझाना हो, तो अच्छी भाषा में समझाना—पिता जी! आपकी करुणा आप पर हो या न हो, परन्तु मुझ पर तो करुणा करो। लोग मेरे से कहते हैं, बेटा! तू तो रोज मन्दिर जाता है, परन्तु तेरे पिता जी तो दिखाई ही नहीं देते। कह देना,

'हे तात्! कम-से-कम हमारे कुल की तो रक्षा करो और मेरी रक्षा करो, मन्दिर चलो।' अच्छी भाषा का प्रयोग करना।

धन्य हो उन बेटों के लिये। दोनों पुत्रों ने निर्णय लिया कि ऐसा भी कहीं होता है कि रक्त से रोग का उपशमन हो? वे तो अभागे लोग हैं जो रसायन वनस्पति औषधियों को छोड़ करके, मुख से न सही, बॉटलों से खून को ढार रहे हैं। इन अज्ञानियों की नियम से दुर्गति है। पिता की बात सुन करके पुत्रों ने निर्णय कर लिया। सम्बन्ध तो सम्बन्ध है। सम्बन्ध का राग बन्ध है। सम्बन्ध के राग में लिप्त हो गये तो मेरी दुर्गति भी नियत है। 'पिता' पिता अवश्य हैं, पर पिता की परिणति तो पिता नहीं है। उन बेटों ने जो निर्णय लिया, आगरा के बेटे भी वही निर्णय लेना। **यदि पिता अशुभ करे और पिता अशुभ की प्रेरणा करे, तब भी निर्णय माता-पिता की बुद्धि से नहीं लेना, निर्णय ले सको तो माँ जिनवाणी से लेना। तत्त्व का निर्णय सम्यक् होगा तो तेरी गति सुगति होगी।** उन बेटों ने पिता की इच्छा की पूर्ति के लिये मृगों का घात नहीं किया।

भावों की वर्तमान की दशा से भविष्य की गति का बोध होता है। भावों की वर्तमान की दशा से भूत की परिणति का भी बोध होता है। पूर्व संस्कार पवित्र न होते तो, वर्तमान में इतने अच्छे भाव कैसे? कुछ ऐसे बालक हैं, आप समाज में खोजें जिन के माता-पिता भले-ही मन्दिर न जाते हों, पर सन्तान प्रातः उठते ही रोज जिनालय को ओर दौड़ती है। गुरुओं के चरणों में बैठे हैं, इसका तात्पर्य क्या है? ये पूर्व भव के संस्कार पड़े हुये हैं, जो धर्म की ओर ले जा रहे हैं। जो वर्तमान में धर्म में लवलीन है, उसकी भविष्य की गति तो नियम से पवित्र है। इसलिये ध्यान रखना, धन से धर्म को मत तौलना, बुद्धि से धर्म को मत तौलना, धर्म को भावों से ही तौलना। बहुत से युवा इसी बात पर दुःखी हैं कि मेरा दिमाग ही नहीं चलता, मेरे घर में पैसा नहीं है। ये सब व्यर्थ की बातें छोड़िये। तुम तो यह देखो कि तुम्हारे परिणाम धर्म में लग रहे हैं कि नहीं? ये धनवान् बुद्धिमान तो कहो नीचे चले जायें। रावण धनवान् भी था, बलवान् भी था, बुद्धिमान्

भी था। जिसकी सोने की लंका हो, जिसका स्फटिक मणि का भवन हो। उसने अनेक विद्यायें सिद्ध की थीं? वह धनवान् था, बलवान् था, बुद्धिमान् था, परन्तु वर्तमान का पुण्य हीन था। धर्महीन था, धर्मवान नहीं था, इसलिये नरक में जाकर गिर पड़ा। सबकुछ तुम्हारे हाथों में रखा हो, और एक ओर धर्म रखा हो, कोई छीनने आ जाये, तो पहले आप क्या दोगे? आपके एक हाथ में स्वर्णमुद्रायें, भोगसामग्रियाँ हैं और दूसरे हाथ में धर्म रखा हुआ है, कोई यूँ कह रहा है कि मुझे धर्म दे दो, आप सब रख लो, तो आप क्या दोगे? कह देना कि तू मेरे प्राण लेना चाहे तो ले जा, तन ले जाना चाहे तो ले जा, धन लेना चाहे तो ले जा, लेकिन मैं जिसके सहारे यहाँ तक आया हूँ, उस धर्म को नहीं दे सकता हूँ। चत्तारि शरणं पव्वज्जामि, धम्मं शरणं पव्वज्जामि। मैं सबकुछ दे सकता हूँ, लेकिन अपने वीतराग धर्म को नहीं दे सकता हूँ। शेष सब तो फिर मिल जायेंगे, लेकिन श्रद्धाधर्म का मिलना, चारित्रधर्म का मिलना बहुत दुर्लभ है।

उन दोनों बालकों ने पिता की उस आज्ञा को स्वीकार नहीं किया जिस आज्ञा में मृगों के घात की बात की थी। सम्बन्धियों की उन बातों को मत स्वीकार लेना जिससे तेरे धर्म का नाश होता हो। वे असुर जाति के देव नरकों में लड़ाते हैं। ऐसे वे जीव **जिन्होंने धर्मात्मा का भेष स्वीकार किया, धर्म के मार्ग पर भी आये, लेकिन एक दूसरे के प्रति अशुभ भाषण, अशुभ चिन्तन, अशुभ मन्तव्य प्रारम्भ किया, झगड़ों की चर्चायें की, इसका नाम असुरी वृत्ति है। यदि इन आसुरी वृत्ति से तुम युक्त हो रहे हो, तो देवदुर्गति हो जायेगी, तुम भी असुर जाति के देव बनोगे।**

"कन्दर्प कौत्कुच्य"

कन्दर्प रूप भाषा बोलना, कुचेष्टा करना और धर्मात्मा के भेष में हो, आगम कहेगा कि कदाचित् मन्द कषाय से पुण्यास्रव भी हुआ, लेकिन ऐसी जगह जाओगे कि भूत, व्यन्तर आदि में भी और-हीन जाति के देव बनोगे, किल्विषिक आदि देव बनोगे। किल्विषिक को तो कई स्थानों पर प्रवेश ही नहीं है। उच्च जाति के देव तो उन्हें स्पर्श ही नहीं करते। ये तो बहुत स्थूल बातें हैं, कौन स्पर्श करता, कौन नहीं करता, अपन यहाँ अपने भीतर बात कर लें। जब मेरे अन्दर स्वयं

अच्छी भगवद्-भक्ति के परिणाम उत्पन्न होते हैं, उन परिणामों को तुम कैसे संग्रहीत करते हो, चिपकते हो। आँखों से नहीं दिख रहा है। जब आपको नगर में निर्ग्रन्थ के दर्शन होते हैं उस समय के हर्षित भाव, अरहन्त का अभिषेक होता है उस समय के हर्षित भाव, निर्ग्रन्थों को दान देते हैं उस समय के हर्षित भाव, छोटे-छोटे बच्चे भी कहते हैं कि अभी भूख नहीं लगी। वे भी भूखे खड़े पड़गाहन कर रहे और कहते 'महाराज! आनन्द आ गया।' बेटा! तुझे किस बात का आनन्द आ गया? यही धर्मानन्द है। यही आत्मानन्द है सविकल्प। इतने सारे श्रावक यहाँ बैठे हैं, गद्गद् भाव आ रहे हैं। ये आपके भीतर का आनन्द हिलोरें ले रहा है। जब तुम्हारे शुभकर्म के परिणाम होते हैं, आपके द्वारा कोई शुभ काम हो जाता है, तो क्या भाव करते हैं? हे भगवान्! ऐसे परिणाम मेरे जीवनभर रहें। जब-जब तुम अरहन्त के पास जाओ, मन्त्र और आरतियाँ कितनी ही पढ़ लेना, लेकिन इतना जरूर सोचना, हे प्रभो! जो परिणाम मेरे आज हैं, जीवन की अन्तिम बेला में ऐसे-ही परिणाम रहें, मुझे और कुछ नहीं चाहिये। क्योंकि लोग अन्त समय में हाय-हाय करते देखे जाते हैं। जन्म तो मेरे माता-पिता ने सम्हाल लिया। कैसे जन्मे, कैसे बड़ा किया? जन्म तो पराधीन सम्हल गया। लेकिन मरण को सम्हालने के लिये कोई दूसरा काम नहीं आयेगा, मरण तो तेरे परिणाम ही सम्हालेंगे। जन्म तो पर ने सम्हाल लिया है, मरण तो तुझे ही सम्हालना पड़ेगा। इसलिये भगवान् के चरणों में यूँ कहना 'हे प्रभो! जैसे आज मुझे निमित्त मिल रहे हैं, ऐसे-ही मिलते रहें' शुभ भावों को आप पकड़ रहे हो, स्पर्श कर रहे हो? हाँ।

जैसे क्रोधरूप परिणाम होते हैं, मान-माया-लोभभूत परिणाम होते हैं, विकारी परिणाम होते हैं, भले-ही जीव रोक नहीं पाये, फिर भी उनको अपने पास रखना पसन्द नहीं करता है। यही शूद्र अवस्था है, यही अस्पर्श अवस्था है। जैसे अस्पर्श को छूना तुम पसन्द नहीं करते हो, ऐसे-ही ये अस्पर्श परिणाम हैं, इनको रखना पसन्द मत करो। तेरे भीतर ही शूद्र है। तेरा हाथ यदि मस्तक में लग जाये, तो तू धोता नहीं है और नाभि के नीचे कहीं भी हाथ लग जाये तो द्रव्य अशुद्धि हो गई है, धो लो हाथ। **जिनवाणी कहती है कि जिनवाणी के वाचन के काल में नाभि के नीचे हाथ नहीं जाना चाहिये। दोनों हाथ ऊपर रखो। नाभि के**

नीचे हाथ गया तो द्रव्य अशुद्ध हो गया। शुद्धि के साथ जिनवाणी पढ़ोगे तो अल्प ज्ञान में ही कैवल्य प्रकट करायेगा। द्रव्यशुद्धि का ध्यान नहीं रखा तो बहुत ज्ञान में भी दुर्गति का कारण बनेगा। नाक में हाथ डाल लिये, कान खुजा रहे हो, आँख का कीचड़ निकाल लिया, उसी हाथ से पृष्ठ पलट लिये। हे अभागे! तू क्या कर रहा है? द्रव्यशुद्धि ही नहीं है, तो भावशुद्धि क्या होगी? समता ही समाधि है। अपन तो आनन्द लूट रहे हैं समाधि का। ऐसे-ही प्रतिदिन समाधि चलेगी तो नियम से समाधिमरण होगा। श्वास के अन्तिम क्षण तक भी आगम में स्वाध्याय का वर्णन है। जीवन में कभी भी स्वाध्याय मत छोड़ देना। ग्रन्थ खोजते न बने तो मात्र ॐ पढ़ लेना, यही स्वाध्याय है। णमोकार की माला फेर लेना भी स्वाध्याय है। लेकिन स्वाध्याय मत छोड़ना दुर्गति से बचना है तो।

अपने परिणामों को निहारो और स्वयं को निहारो। मैं शूद्रभूत हूँ या ब्रह्मभूत हूँ? जब-जब अशुभ काम करने के परिणाम आयें, अपने परिणामों से कहना 'ओ हो! मेरे भाव शूद्रभूत बन रहे हैं।' और जब-जब तुम्हारे परिणाम निर्मल हों, तब कहना 'ब्रह्मस्वरूपोऽहं'। मेरे परिणाम ब्रह्मरूप बन रहे हैं। 'एकत्व-विभक्त स्वरूपोऽहं।' मैं एकत्व-विभक्त स्वभावी हूँ। ये ही भाव मेरे मित्र हैं, ये ही भाव मेरे गुरु हैं, ये ही भाव मेरे परमात्मा हैं। मुझे तो स्वप्न ऐसे आते हैं। कभी आचार्य विरागसागर जी से, कभी आचार्य विद्यासागर जी से तत्त्वचर्चा हो रही है, कोई प्रश्न कर रहा है। आप आश्चर्य करोगे, अद्‌भुत आनन्द इस उपदेश में आता है। जब अशुभ समय आने को होता है, तब स्वप्न भी अशुभ आना प्रारम्भ हो जाते हैं। सीता से पूछो। सीता को स्वप्न में दिखा था कि मैं काली साड़ी पहने जा रही हूँ। मेरी दायीं आँख फड़क रही है। श्री राम को जब स्वप्न बताया तो वे समझ गये कि कोई अशुभ की सूचना है। कुछ नहीं, महामन्त्र की आराधना करो।

पुरुष की बायीं आँख और नारी की दायीं आँख फड़कना अशुभ की सूचना है। परन्तु ध्यान रखना, आँख के फड़कने से न शुभ होता है, न अशुभ होता है। यह तो मात्र सूचना है। यह निमित्त ज्ञान है और तीर्थंकर की माँ से पूछो।

ओ हो! जिसके लिये निर्धूम अग्नि दिख रही है, सोलह स्वप्न दिखाई दे रहे हैं। लक्ष्मी दिख रही है, मालायें दिख रहीं हैं। ये शुभ स्वप्न है। इनके दिखने से शुभ नहीं हुआ है, ये शुभ होने की सूचना देने आये थे। जब तुम्हारे अन्तस् में शुभ स्वप्न आते हैं, तो सुबह से तुम्हारा चित्त भी प्रसन्न होता है। परन्तु शुभ स्वप्न तभी आ पायेंगे, जब तुम्हारा चित्त पवित्र होगा और चारित्र पवित्र होगा। जिनके चारित्र ही विकृत हो चुके हैं, उन्हें स्वप्न में भी भोग ही दिखाई देंगे। अहसास तभी होगा, जब चेतना होगी। जिनके चेतना ही निकल गई हो, उन्हें कुछ भी अहसास नहीं होता। अपने आपको बिल्कुल सम्हाल कर रखना। अपन सब का मरना तो नियत है, लेकिन जीते-जीते मरना, मरते-मरते मत मर जाना।

जब तेरी उच्च गति की नियतता सामने आती है, तो तेरे अन्तस् में ब्रह्मसूत्र गूँजते हैं। 'एकत्व-विभक्त स्वरूपोऽहं' यह तभी गूजेंगे, जब यह गूँजेगा कि सबके साथ अवश्य हूँ, पर सबके साथ नहीं हूँ। सबके बीच में तो रहना। अपने जीवन में चाहे तुम श्रमण बनके जिओ चाहे श्रावक बनके जिओ। प्रत्येक मणि, प्रत्येक मोती अपने आप में स्वतन्त्र है। उस मणि को एक टोकनी में भर कर रख दो। संग्रहीत/संघटित रूप से इकट्ठे दिख रहे हैं, फिर-भी प्रत्येक मणि की ज्योति भिन्न-भिन्न ही है, ऐसे ही हमारा जैनदर्शन कह रहा है। कि जगत् के जीव स्वभाव से एकत्व अवश्य हो सकते हैं, फिर भी निज चतुष्टय की अपेक्षा से सभी भिन्न-भिन्न ही हैं। एक दूसरे की ज्योति से किसी का कोई प्रयोजन नहीं है। एक मणि दूसरे मणि की ज्योति को नष्ट करने की सामर्थ्य नहीं रखती है। ऐसे-ही हे ज्ञानियो! तुम किसी जीव की चेतना को नष्ट करने में समर्थ नहीं हो। मात्र राग-द्वेष कर पाओगे, किसी के चित्-स्वरूप को नाश करने की कोई सामर्थ्य नहीं है। बस रागद्वेष करके, मन मलिन करके, अपनी गति को मलिन कर पाओगे, लेकिन किसी दूसरे की मति को मलिन नहीं कर पाओगे। 'स्वतन्त्रतः कर्ताः।' कण-कण स्वतन्त्र है। कभी भूल मत जाना। स्वप्न भी देखना, भले ही राग भरे स्वप्न देखना, तब भी मस्तिष्क में यह बनाकर रखना कि कण-कण स्वतन्त्र है। यदि नरक में भी याद आ गई, तो यह सूत्र आपको सम्यक्त्व प्रकट करा देगा।

किसमें बँधे हो? कुछ नहीं है, कोई कहीं नहीं बँधा, मात्र राग में लिप्त हो। क्यों भाई! यह वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है, तुम चिन्ता मत करना कि नरक की व्यवस्था कैसे चलेगी? स्वर्ग की व्यवस्था कैसे चलेगी? सिद्धालय की व्यवस्था कैसे चलेगी? चिन्ता मत करो, हर जगह की व्यवस्था व्यवस्थित चल रही है। जिनको जहाँ जाना है, उनके परिणाम वैसे बनते दिखाई दे रहे हैं। यदि पंचमकाल में कोई जीव खोटे भाव नहीं करेगा, तो नरक कैसे भरेंगे? और पंचमकाल में कोई शुभ भाव नहीं करेगा, तो स्वर्ग की व्यवस्था कैसे बनेगी? एक राज्य में कितने सारे मन्त्री बना दिये जाते हैं। कोई गृहमन्त्री, कोई शिक्षामन्त्री। सब अपने-अपने विभाग को देख रहे हैं। ऐसे ही चारों गतियों की धारायें लगी हुई हैं, वे परिणामों में लगी हुई हैं। जैसे परिणाम करोगे, उसे वहाँ छोड़ दिया जाता है। कोई किसी को छोड़ने नहीं जाता। हमारे यहाँ की बड़ी स्वतन्त्र व्यवस्था है। वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है, परमात्मा से बद्ध नहीं है।

आज बहुत बड़ा तूफान आ गया है कि हर व्यक्ति श्राप देने लग गया है। जो विपरीत मान्यतायें थीं, वे जैनियों में प्रारम्भ हो रही हैं। योगियों में खास करके। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो भूत लग जायेंगे, देव उठा ले जायेगा। देवों में ऐसी ताकत होती तो स्वयं क्यों भटक रहे हैं? तुम स्वयं भगवान् क्यों नहीं बन गये? तुम समय पर नहीं आये तो तुम्हारे घर में लूट हो जायेगी, तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। इन बातों से घबरा करके भय संज्ञा को प्राप्त मत हो जाना। यदि ऐसे सबकुछ होने लग गया, तो वस्तुव्यवस्था की व्यवस्था ही समाप्त हो जायेगी। अणु-अणु स्वतन्त्र है। मैं तो श्मसान घाट में विश्राम कर आया हूँ, लेकिन एक भी भूत लगने नहीं आया। उसे पता है कि इनसे कौन पल्ला लगाये। रात्रि में चले, सो निशाचर। जैन मुनि रात्रि में नहीं चलते। जंगलों में, अटवियों में निवास करते हैं, डर उन्हें लगे, चैन से नींद उन्हें नहीं आती जिनके गले में चैन होती है। इन योगियों को किसी प्रकार का विकल्प नहीं होता है। इन तूफानों से आत्मरक्षा करना, क्योंकि आजकल तो ये हो रहा है कि यदि तूने मेरा काम नहीं किया तो ऐसा हो जायेगा। महाराज! कहीं किसी जीव का आयुकर्म नियत हो, उस दिन तुम्हारे मुख से निकल पड़ा, कहीं अशुभ घटना घट गई, आप दिगम्बर मुनि हो,

अपने दिगम्बरत्व की हँसी करा दोगे। जैन मुनियों को कहीं भी ऐसी भाषा बोलने का आदेश आगम में नहीं है। ध्यान रखना जीवन में, नहीं-तो तू महाराज बन जाये और आकरके लोगों परेशान करना शुरू कर दे। साम्यस्वभाव में जीना, समरसीभाव में जीना। व्यर्थ के भूत-भभूतों की बातें करके किसी को भयभीत मत करना। डराना भी हिंसा है, स्वयं डरना भी हिंसा है। जो-जो कषायिक भाव हैं, वे हिंसाभाव हैं। भयभीत होना भी हिंसा है और भयभीत करना भी हिंसा है। हिंसा करोगे तो अधोगति में जाओगे। नरक की वेदना का कारण क्या है? नरक की वेदना से विदित रहो, ऐसा चिन्तन करो, हे प्रभो! मुझे कभी नरक की वेदना न भोगना पड़े। यदि यह भाव आ रहा है, तो मेरे मित्र! आज से एक काम करना, वर्तमान के भावों को व्यथित मत करना। वो नियम से नरक की वेदना नहीं वेदता है, स्वयं के परिणामों का व्यथितपना ही वेदता है।

यहाँ आचार्यमहाराज कह रहे हैं, हे जीव! किसी से नहीं मिलना और यह कभी मत कहना कि इन्होंने मेरे अशुभ भाव करा दिये। प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र है। आपने मुनिराज को नमोऽस्तु किया, उन्होंने आपको हाथ उठाकर आशीर्वाद दे दिया, कुछ होता है कि नहीं? होता है। वह तो आशीर्वाद की मुद्रा ही दिखायें, लेकिन जो हो रहा है, वह स्वयं में भीतर ही हो रहा है। किसी पहलवान ने मुक्का करके दिखा दिया, कुछ हो रहा है कि नहीं? उसने तो मात्र मुट्ठी बाँधी थी, वह तो मात्र अपने काययोग का परिणमन करा रहा था, लेकिन जो तुम्हारे भीतर हो रहा है, वह तुम्हारी भय संज्ञा है। मुनिराज ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया तो तुम्हारे अन्दर जो गद्गद् भाव आ रहा है, धर्मात्मा को देखकर तुम्हारे अन्दर जो विशुद्धि बनी है, यह आपके संवेग भाव का परिणमन हुआ है। पर वस्तु प्रभाववान् तभी होती है, जब तुम्हारा उपादान तद्रूप परिणमित होने की क्षमता रखता है। यदि आपके उपादान में प्रभावित होने की योग्यता नहीं है, तब प्रभाववान् आपको प्रभावित नहीं कर सकता। अशुभ से भी प्रभावित होता है तो तेरा ही परिणमन और शुभ से भी प्रभावित होता है तो तेरा ही परिणमन। आचार्यभगवान् यहाँ कह रहे हैं कि वह जीव जिसका चित्त सद्व्रतों से भ्रष्ट हो चुका है, पहले चारित्र पतन नहीं होता, **पहले चित्त का पतन होता है। उन चित्रों**

को पहले देखा। तू उन चित्रों में चित्त को ले गया। उन चित्रों को देख करके चित्त को विचित्र किया। चित्रों को देखकर चित्त को विक्षिप्त किया और चित्त विक्षिप्त होते ही चारित्र विक्षिप्त हो गया। अभागों का कैसा परिणमन चल रहा है, कितने पाप का आस्रव हो रहा है? पहले धन कमाया, उसमें पाप किया। फिर धन को तूने चित्रों को देखने में व्यय किया, उसमें पाप किया। फिर चित्त को विकृत करने में पाप किया। अब बताओ, नरक नहीं मिलेगा तो क्या स्वर्ग मिलेगा? इधर मत देखो, भीतर देखो। क्या मिलेगा? कोई कहे कि भैया! स्वाध्याय कर ले, तो कह रहा है कि नींद आ रही है। कितनी रात तूने बिना निद्रा के भोगों में गवाँ दी है, याद करो। वे रात्रि अब कब आयेगी? क्या सर्वज्ञ के ज्ञान में तेरी वह पर्याय नहीं झलक रही थी? धर्म के काम करने के लिये कहता है कि अब थक गया हूँ। पर जीवन की प्रथम बेला से लेकरके आँख खुलने से आँख बन्द होने तक सबसे ज्यादा आँखें खोलकर किसको देखा? भगवान् को तो कभी-कभी आँख खोलकर देखा होगा, पर पापों की वृत्ति को तूने आँख खोलकर भी देखा और आँख बन्द करके भी देखा। दुकान में बैठा-बैठा आँख खोलकर पैसा कमाने में पाप कर रहा था और चारपाई पर लेट भी गया, नींद नहीं आ रही, आँखें बन्द किये, तब भी सोच रहा है। यदि तुझे दिन भर समय न मिले और दुकान की चिन्ता में नींद नहीं आ रही थी, उसी सड़े समय को तू भगवान् के लिये दे दे। ओ हो हो! अस्सी-नब्बे साल का जीव हो गया, अब कह रहा 'हे भगवान्! तुम्हारी जय हो।' हाथ काँप रहे हैं, मुण्डी हिल रही है, शरीर में आँखों से आँसू टपक रहे हैं, कीचड़ बह रहा है, श्लेष्मा बह रही है, अब भगवान् के द्वार पर आ गया 'हे स्वामी!' फिर भी मैं अच्छा मानता हूँ, पर इतना अवश्य कहूँगा कि मेरे भगवान् इतने हीन हैं क्या, कि जब तू चमक रहा था पिण्डखजूर जैसा, उस चमकती पर्याय को तो भोगों के लिये सौंप दिया और ये सड़ा शरीर भगवान् के द्वार पर लेकर आ गया है। आजकल ऐसा ही तरीका आ गया है। सामान खराब होने लग जाये, फिकने लग जाये, तब कहता है कि गाय को खिला आओ, भिखारी को दे दो। देना ही था तो अच्छी सामग्री दे देते। अन्तिम बची रोटी किसको देते हो? लोकपरम्परा में पहली रोटी गाय

की, अन्तिम रोटी श्वान की। भैया! तुम हमारे प्रभु को उस जगह मत भेजो कि बची बचाई आयु-कर्म के निषेक, अब कह रहा 'हे भगवान्! अब तो आप ही हो।' अरे ज्ञानी! पहले बीच की पर्याय तेरी कहाँ गई? उस समय तो भूल ही गया था कि भगवान् हैं भी कि नहीं? पर ध्रुव सत्य है, तब कोई नहीं देखता।

जब नाती ने ठोकर मारी, बेटे ने ठोकर मारी, पत्नि भी छोड़कर भाग गयी, अब कहता है 'भगवान्! मेरी तो तोसों बनी, तातें करत पुकार।' ये कब याद आती है? जब सब से कह ली, कोई ने नहीं सुनी। फिर वे ही भगवान् दिखना प्रारम्भ हो जाते हैं। फिर द्रोपति भी कहती है 'हे स्वामी! आप ही हो।' पहले युधिष्ठिर को देखा। पाण्डवों को एक-एक को देख लिया। जब कोई का बल काम में नहीं आया, तब फिर कहती है—

'एसो पंच णमोयारो सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलम्॥

आप तो जगत् में कहीं नहीं जाना, प्रभु के चरणों में जाना और कहना, हे स्वामी!

एक ग्राम पति जो होवे, सो दुखिया दुःख खोवे।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

जब कोई नहीं दिखता है, तब कहना कि एक गाँव का सरपंच होता है, वह भी सुन लेता है। आप तो तीनलोक के नाथ हो, मेरी तनक सुन लो। इसलिये किसी के द्वार पर मत जाना, भगवान् के चरणों में चले जाना। जब धनपति व लोकपति न सुने, तब हमारे प्रभु सबकी सुनेंगे। पर यह व्यवहार की भाषा है भगवान् न किसी की सुनते हैं, न किसी को सुनाते हैं। वो तो 'जो है, सो है।' बोले, महाराज! सब आनन्द किरकिरा कर दिया। ज्ञानी! किरकिरा नहीं किया, सही कहा है।

जो विषय के सङ्ग से सहित हैं, परिग्रह में लिप्त हैं, उन्हीं जीवों को नरकों में दुःख होता है। यदि आपको इन नरकों के दुःखों को सहने नहीं जाना है, तो इन्द्रियों की इच्छाओं को रोक करके अपनी आत्मा को आत्मा के वश कर लो और वह स्वयं ही करना होगा।

ताँगे के घोड़े में लगाम लगी हुई है, खिंच रहा है। जैसे वह रस्सी से बंधा हुआ है, उसके मुख में नकेल/लगाम पड़ी हुई है, ऐसे ही हे ज्ञानी! तू चारित्र की लगाम और ज्ञान-वैराग्य की रस्सियों से अपने इस मन-घोड़े को वश कर ले, तो तू दुर्गति से बच जायेगा। नहीं-तो घोड़ा कहीं भी पटक देगा। घर जाकर अपने मन-घोड़े से कह देना, हे मन घोड़े! तू मेरी बात मान ले।

ताँगे के घोड़े की आँखों पर पट्टी रहती है, ऐसा क्यों? विराट भीड़ में चला जा रहा है, फिर भी ताँगा का घोड़ा दौड़ता चला जा रहा है। आँखों में पट्टी इसलिये है कि तू औरकुछ मत देख। उतना ही देख, जितना मार्ग है।

ऐसे ही हे योगियो! श्रावको! आँखों पर पट्टी बाँध लो। उतना ही देख जिससे रत्नत्रय मार्ग दिखाई दे, आगे-पीछे कुछ मत देख। आगे-पीछे देखने में गिर जायेगा। ओ मन-घोड़े! यह मैं नहीं कह रहा हूँ, 'तत्त्वानुशासन' में आचार्य नागसेन स्वामी ने उस मन को घोड़ा कहा है। इसको वश करना है तो ज्ञान-वैराग्य की रस्सी का प्रयोग करो। जो इस मनरूपी घोड़े को वश कर लेता है, वह आत्मा को आत्मा के अधीन कर लेता है, जिससे तू शीघ्र ही निर्वाण सुख को प्राप्त कर लेता है। जाओ, निर्वाणसुख को प्राप्त करने जाओ।

पर्याय रही तो कल फिर चर्चा करेंगे। घर जाकर भोजन बाद में करना, पहले मन-घोड़े से कह देना कि आज तुझे क्या-क्या डालूँ? क्या-क्या खिलाऊँ? कुछ कम खा, अच्छे से चल, जिससे मेरी दुर्गति न हो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"शान्ति नहीं मिलने का कारण"

सम्पन्नेष्वपि भोगेषु महतां नास्ति गृद्धता।
अन्येषां गृद्धिरेवास्ति शमस्तु न कदाचन॥ 135 सा. स.॥

अन्वयार्थ-भोगेषु सम्पन्नेषु अपि = विषयभोगों की पूर्णता होने पर भी **महतां** = महान् पुरुषों की **गृद्धता** = लोलुपता **नास्ति** = उनमें नहीं होती है **अन्येषां** = अन्य मिथ्यादृष्टि जीवों की **गृद्धिः एव अस्ति** = उनमें लोलुपता होती ही है **तु कदाचन शमः नास्ति** = उससे उन्हें किंचित् भी शान्ति नहीं मिलती है।

भावार्थ-विषयभोगों की पूर्णता होने पर भी उनमें महान् पुरुषों की लोलुपता नहीं होती। अन्य मिथ्यादृष्टि जीवों की विषयभोगों में लोलुपता होती ही है। उस लोलुपता के कारण उन मिथ्यादृष्टियों को सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं होती।

दिगम्बरत्व का महत्व

षट्खण्डाधिपतिश्चक्री परित्यज्य वसुन्धराम्।
तृणवत् सर्वभोगांश्च दीक्षां दैगम्बरी स्थिता॥ 136 सा. स.॥

अन्वयार्थ-षट्खण्डाधिपतिः चक्री = छः खण्ड का स्वामी चक्रवर्ती सम्राट भी **वसुंधरां** = इस पृथ्वी को **च सर्वभोगान्** = और सर्व भोग्य पदार्थों को **तृणवत्** = तृण के समान **परित्यज्य** = छोड़कर **दैगम्बरी दीक्षां स्थिता** = निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनि की दीक्षा को अङ्गीकार करता है।

भावार्थ-छह खण्ड का स्वामी ज्ञानी, चक्रवर्ती सारी पृथ्वी को और सम्पूर्ण भोगों को तृणवत् तुच्छ जानकर छोड़ देता है और दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

॥ सद्-देशना ॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन। जयवंत हो श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र को मंगल पीयूषवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी ग्रन्थ में जीवद्रव्य के स्वभाव-विभाव अवस्थाओं का विवेचन करते हुये समझा रहे हैं। पुण्यात्मा जीव की धारा और पुण्यक्षीण जीव की धारा, इन दोनों पर दृष्टिपात करो। एक जीव सुलभ-से-सुलभ द्रव्यों के मिलने पर भी उदासवृत्ति से युक्त है और दूसरा जीव नहीं मिलने पर भी तीव्र गृद्धता से युक्त है। वस्तु के सद्भाव में भी निर्वेद भाव को प्राप्त होकरके निर्बन्धक हो रहा है और वस्तु के अभाव में भी राग को प्राप्त होकरके बन्धक हो रहा है। दोनों की धारायें देखो। एक अभाव में भी बन्ध कर रहा और दूसरा सद्भाव में भी निर्बन्धता को प्राप्त है। सद्भाव होने पर भी अभाव को देखो। जो सद्भाव में अभाव देखता है, उसे अभाव में कभी रोना नहीं पड़ता, विलखना नहीं पड़ता है। बिलखते वे हैं, जो सद्भाव में अभाव नहीं देख पाते, अभाव में सद्भाव देखना चाहिये था, वहाँ लक्ष्य नहीं है। एक वे भिखारी हैं जो अभाव में सद्भाव देखकर बँध रहे हैं और एक वे भिक्षु हैं जो अभाव में सद्भाव देख करके परमानन्द में लीन हो रहे हैं। भिखारी अभाव में सद्भाव देखकरके तीव्र पाप के बन्ध को प्राप्त हो रहा है और निर्ग्रन्थ तपोधन अभाव में सद्भाव देख करके निर्वाण को प्राप्त हो रहे हैं। अभाव में सद्भाव देखो, सद्भाव में अभाव देखो। भाव-अभाव, अभाव-भाव, भावाभाव।

इन चार बातों का ध्यान रखना सत्, असत्, असत्-सत्, सतासत। आगम के गूढ़ रहस्यों में चिन्तन की आवश्यकता है। जो हमारे ग्रन्थों में गुन्थित है, उस पर लक्ष्य नहीं जा रहा है। एक तपोधन वर्तमान की मनुष्यपर्याय में विराजते हैं। उनकी वर्तमान पर्याय में सिद्धपर्याय का अभाव है। मुनिराज की मनुष्यपर्याय की सत्ता में सिद्ध सत्ता का अभाव होने पर भी वे निर्ग्रन्थ तपोधन बने क्यों? सिद्ध सत्ता चाक्षुष नहीं है, फिर भी साम्राज्य पद को छोड़ करके निर्ग्रन्थ मुनिमुद्रा को धारण कर लिये हैं, उस जीव से पृच्छना करो कि आपने वर्तमान के उपस्थित भोगों को छोड़ करके ये दु:खी जीवन, पराधीन जीवन मुनिचर्या को क्यों अंगीकार कर लिया है? दु:खी जीवन क्यों? वर्तमान की पर्याय के प्राप्त भोगों को बुद्धिपूर्वक छोड़ा है। यदि वैराग्य नहीं है, तो मुनि से बड़ा दु:खी जगत् में कौन

होगा? हर वस्तु उनकी पराधीन है। यदि वैराग्य है, तो उनसे बड़ा जगत् में कौन सुखी होगा? उनकी हर वस्तु स्वाधीन है। वैराग्यविहीन त्यागी से बड़ा कोई दु:ख नहीं है। जिसने निरपेक्षता को समझ लिया है, उससे बड़ा कोई सुखिया जीव संसार में नहीं मिलेगा। जिसने क्षमा करना सीख लिया है, उसके रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं। जिसने क्षमा करना सीख लिया है, उसका मानसिक तनाव शीघ्र दूर होता है जो क्षमा करना नहीं जानता है, वह अपने जीवन में कभी सुखी नहीं हो पायेगा, निरोग नहीं हो पायेगा।

माताओ! ध्यान से सुनना, जिनवाणी का कथन भिन्न है और लोक की व्याख्यायें भिन्न हैं। **जिसने उपेक्षा करना सीख लिया है, उससे बड़ा जगत् में कोई सुखी जीव नहीं मिलेगा। वैराग्य उसके मुख पर टपकता है, चारित्र चारों ओर चमकता है जिसने उपेक्षा भाव को जान लिया है।** जो उपेक्षा की अपेक्षा कर रहा है, उसकी अपेक्षा की उपेक्षा नियत है। एक लाख रुपये आपने किसी को दिये और उस जीव ने आपके रुपये देने के भाव नहीं रखे, आप एक बार माँगते हो, विश्वास रखना, जब तुम माँगने जाओगे, भले ही आपका द्रव्य था, लेकिन उस दिन आप नीचे होओगे और वो ऊपर होगा। जब भी माँगने जाओगे, माँगने वाला नीचे होता ही है। आप किसकी बात कर रहे हो? तीर्थंकर जैसे महामुनि को अंजुली नीचे करनी पड़ती है। माँगना अच्छी बात नहीं है। ग्रहण करना अच्छी बात नहीं है, इसलिये जैनशासन में ग्रहण करने का प्रत्याख्यान होता है। जो साधु बनते हैं वे ग्रहण करके नहीं बनते, छोड़ करके एक रंग के धारण करना पड़ते हैं। कोई सफेद धारण करता है तो कोई गेरुआ या कषायले धारण करता है। किसी को भेष बनाना पड़ता है, तिलक लगाना पड़ते हैं, परन्तु यहाँ तो सारे भेष का विसर्जन करना पड़ता है। उसका नाम साधु होता है। भेषों का विसर्जन ही साधु है। भेषों में राग है, भेषों में ममत्व है। भेषों का साधु नहीं चाहिये, भावों का साधु चाहिये। (दिगम्बर परम्परा में) न लपेटा हुआ साधु पूज्य होता है, न लपेटा परमात्मा पूज्य होता है। जो पर में लिप्त होते हैं, वस्त्र-आभूषण से सुसज्जित होते हैं, रागियों और वैरागियों में अन्तर तो दिखना चाहिये। संसारी और ईश्वर में अन्तर तो दिखना चाहिये। साधु उसे स्वीकारा है, यथाजात स्वरूपोऽहं।

जैसा जन्मा था, वैसा होना चाहिये। प्रकृति का चाहिये, विकृति का नहीं चाहिये। जितने भेष बनाये जाते हैं, वे सब विकृति के भेष हैं। प्रकृति का भेष केवल नग्न स्वरूप है। भाई! विकृति के भेष में यदि तेरा सम्मान जाता है, तो सम्यक् में दोष आता है। हमारे यहाँ उन प्रतिमाओं तक की पूजा नहीं है जो संग्रहीत करके बनाई जाती हों। यहाँ थोपा हुआ धर्म नहीं है। यहाँ प्रकट किया धर्म है। बाहर से मिट्टी को संग्रहीत करके बनाई गई प्रतिमायें हमारे यहाँ पूज्य नहीं हैं। पाषाण से निकाली गई प्रतिमाओं को पूजा जाता है। व्यर्थ का पाषाण निकालकर भगवान् को निकाल लिया जाता है। भेदविज्ञान की छैनी से व्यर्थ के काषायिक भाव को हटा करके परमात्मा को प्रकट किया जाता है, वह परमात्मा पूज्य है। संग्रह तो कषाय की लिप्तता है।

आकिंचन्य पर दृष्टि ही नहीं है, वहाँ धर्म क्या होगा? जहाँ ग्रहणत्व भाव है, घृणत्व भाव है, विश्वास रखो, माँगने वाले पर कोई-न-कोई ग्लानि करता ही है। तू कितना ही दानी हो, यदि कोई तेरे द्वार पर मन्दिर के लिये भी दान लेने पहुँच जाये तो एक क्षण तेरी नाक सिकुड़ती है 'सुबह से इनको यही काम था क्या?' त्यागने में आनन्द आता है, देने में आनन्द नहीं आता। इसलिये जैनदर्शन में जो दान की परिभाषा है, वह 'देना' है ही नहीं। क्या करूँ? आजकल ऐसी परम्परा प्रारम्भ होगई है कि संगीतकारों, गीतकारों और पण्डितों से जबरजस्ती बेचारों को पेरा जाता है। तुम्हारे यहाँ महाराज के आहार हो जायेंगे, एक लाख लिख दो। ओ हो! साधु का आहार भी अब बेंच कर मिलेगा, बिना पैसे के साधु को दान देने भी नहीं मिलेगा। कितना विकार आ चुका है? 'मूलाचार' पर विकार। जिस घर में लाखों का दान मिलेगा, उस घर में साधु के आहार हो जायेंगे। ये साधुमार्ग नहीं है, यह विकृत मार्ग है। इस विकृत मार्ग को आप भयभीत होकर सहन करोगे तो आगे सत्यार्थ मार्ग का लोप हो जायेगा। यह विकृत मार्ग है और ज्ञानी लोग इसे तालियाँ बजाकर सहन करते हैं। तीर्थंकर जैसे महायोगीश्वर/महामुनिराज उस घर में नहीं जाते थे जिस घर में कोई दान लिखायेगा।

शान्तिसागर जी के गुरु देवेन्द्रकीर्ति जी को देखिये। ऐसे अहं को गलन करने

की सामर्थ्य इस युग में किसी को थी तो वो थे मुनि देवेन्द्रकीर्ति। जब वे आहार को जाते थे तो वापस में दान का सवा रुपया लेते थे और जब शान्तिसागर जी ने दीक्षा ली, तो उन्होंने इस प्रवृत्ति को स्वीकार नहीं किया। कर्नाटक में जो उपाध्याय होते थे, वे साधु की व्यवस्था बनाते थे। उनको श्रावक के यहाँ से दान मिलता था। वह जो कहेगा, वहीं जाना होगा महाराज को। जिन शान्तिसागर की परम्परा का तुम जयनाद करते हो, उन शान्तिसागर जी की चर्या को भी तो स्वीकार करो। आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने कभी किसी के घर में दान नहीं माँगा। जब उनके कई दिन तक उपवास हो गये, आहार नहीं हुये, क्योंकि जो उपाध्याय बोलता था वे उसके अनुसार नहीं जाते थे। कई दिन चावल मात्र खाकर रहना पड़ा, पानी पीकर रहना पड़ा, निराहार भी रहना पड़ा। उपाध्याय को गुस्सा आ गई कि ये हमारी व्यवस्था भङ्ग कर रहे हैं, क्योंकि महाराज के आहार होते थे तो उनको पैसा मिलता था। जब लोगों ने कहा कि आप उपाध्याय जी की बात क्यों नहीं मानते हो? तो शान्तिसागर महाराज ने ग्रन्थ दिखा दिये, देखो, ये परम्परा गलत है।

सत्यार्थ मार्ग है कि मुनि की गोचरी होती है, मधुकर वृत्ति होती है। जैसे मधुकर (भौरा) पुष्पों पर परागकण का पान करता है, लेकिन पुष्प में छेद नहीं करता, ऐसे-ही मुनि श्रावक के घर में आहार तो लेते हैं, परन्तु वे श्रावक को कष्ट नहीं देते हैं। गोचरी मधुकर-वृत्ति है। गाय को घास दिखती है, घसियारा नहीं दिखता। छोटा है कि बड़ा है, गरीब है कि अमीर है, उसको नहीं दिखता। उसको तो घास दिखती है। ऐसे-ही दिगम्बर मुनि को तो शुद्ध (प्रासुक) आहार दिखाई देता है, बाकी के सेठ-साहूकार दिखाई नहीं देते। ऐसी वृत्ति है निर्ग्रन्थों की। चन्द्र चर्या है। यदि कहीं यह चन्द्रमा ज्ञानी के हाथ में दे दिया जाता, तो जैसे विशिष्ट नेताओं के नगरों में कभी बिजली नहीं कटती, वह अपने मित्रों के घर में प्रकाश करवाता रहता है, परन्तु गरीबों को छोड़ देता है। भगवन्! बहुत अच्छा हुआ कि प्रकृति की बहुत सारी व्यवस्थायें इन मनुष्यों के हाथ में नहीं सौंपी। न आक्सीजन की, न पानी की, देखो। जो नलों का पानी पीते हैं, कितने परेशान होते हैं? कुये का पानी पिओ तो परेशान नहीं होओगे। वायु, धूप, सूर्य-चन्द्रमा का प्रकाश, ये

किसी के हाथ में नहीं सौंपे गये। साधु के हाथ में भी नहीं। ये पंचमकाल है। ये अपने भक्तों-भक्तों को देते हैं। जैसे चन्द्रमा अमीर व गरीब के घर में बराबर प्रकाश देता है, ऐसे ही ये वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन गरीब-अमीर सभी श्रावकों के घर से निकलते हैं, वे किसी एक के द्वार पर नहीं जाते हैं। ये जिनमार्ग है, उन्मार्ग नहीं है। जिनमार्ग में उन्मार्ग को स्वीकार नहीं किया जाता। जब शान्तिसागर महाराज ने शास्त्र दिखाये, तो लोगों को समझ में आया।

आप कहोगे कि देवेन्द्रकीर्ति को आप महान् क्यों कह रहे हो? वे महान् इसलिये हैं क्योंकि उनके भीतर में आर्जव-मार्दव धर्म था। जिसके अन्दर आर्जव-मार्दव धर्म नहीं होगा, वह अपनी भूल कभी सुधार नहीं सकता। तत्त्व का ज्ञान कठिन नहीं है, ऋजुता का होना कठिन है। झुकना सीखो, नमना सीखो। नभ में जाना है तो नमना सीखो। देवेन्द्रकीर्ति ने निर्णय लिया कि मेरा शिष्य शान्तिसागर सही है। इसलिये अपने शिष्य के पास जाकरके निवेदन करते हैं कि आज से मैं तुम्हें अपना गुरु स्वीकारता हूँ। आप मुझे दीक्षा देकरके मेरा कल्याण करो। धन्य है ऐसे ऋजु परिणामी जीव को। वह अपनी भूल को स्वीकार करके, अपने शिष्य से दीक्षा लेकरके सल्लेखना की ओर जाते हैं। मार्दव-आर्जव धर्म का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है? वे शान्तिसागर महाराज, जिनने किसी के द्वार पर हाथ नहीं फैलाये। व्यक्ति को ऐसे-ही महानता हासिल नहीं होती है। **विपरीत मार्ग को चाहे ज्येष्ठ करे, चाहे श्रेष्ठ करे, विपरीतिता तो विपरीतिता ही होगी।** उसे सम्यक् नहीं कहा जा सकता है। इसलिये ध्यान से सुनो, सत्य तो सत्य है और असत् हो असत् है। धन्य है उन निर्ग्रन्थ योगी को, जो असत् में सत् देख रहा है।

असत् में सत् नहीं देखेगा तो तेरी गृहस्थी भी नहीं चल सकती। माँ! दुग्ध में घृत आँखों से दिखता है क्या? वर्तमान में तो पर्यायदृष्टि से दुग्ध में घृत असत् रूप है, लेकिन एक गोपिका उस असत् में भी सत् को देख रही है, तभी तो दुग्ध में से घी निकाल पाती है। किसान बीज में फसल को देखता है। मुमुक्षु! यदि आपको असत् में सत् न दिखता, होता तो कभी गर्भाधान न होता। रज-वीर्य में आँखों से सन्तान नहीं दिखती है, लेकिन तब भी आपको असत् में सत् दिखाई

देता है, तभी सन्तान का जन्म होता है। जब असत् में सत् देखता है, तब सन्तान जन्म लेती है। ऐसे ही ज्ञानियो! जो रागी-भोगी जीव होता है, वह असत् में भी सत् देखता है।

चक्रवर्ती-जैसा सुख को भोगनेवाला जीव असत् में सत् देख रहा है वर्तमान के भोगों के सत् को असत् मान करके कि ये सम्यक् नहीं है, लेकिन जो प्रभुत्व सत्ता है वह दिख नहीं रही है। वह जीव वैराग्य को प्राप्त हुआ है किस बल पर? जो आत्मा का परमानन्द अशरीरी भगवत्ता में है, सिद्धपर्याय में है, उसे साधु देख रहा है, भोगी नहीं देख रहा है। जो छियानवें हजार रानियों के बीच में बैठा हुआ है, ऐसा चक्रवर्ती असत् में सत् देख रहा है। दुनियाँ आँखों से देख रही है कि वह चक्रवर्ती बैठा है, छियानवें हजार रानियों को झाँक राह है, पर हे अज्ञानी! चक्रवर्ती की भूमिका कुछ-और ही चल रही है। इसलिये आँखों से जो देखा जा रहा है, उसे सत् मत मानिये। कुछ ऐसा भी है जो आँखों से तो दूसरा दिखता है। छियानवें हजार रानियों के साथ रहने वाला भरतेश घर में वैरागी कैसे हो सकता है?

बुन्देलखण्ड में कहते हैं कि हड़िया पर पारा रखा जा सकता है, परन्तु कहने वालों के मुख पर पारा नहीं रखा जा सकता। पारा यानि ढक्कन, हड़िया यानि मटका। तू चाहे कि दुनिया मुझे अच्छा कहे, तो ऐसा कभी सोच मत लेना। सुख से रहना चाहता है तो दूसरे के मुख से अपनी प्रशंसा सुनने का त्याग कर दो। ये सोचना बन्द कर दो कि दूसरे के मुख से अपनी प्रशंसा होगी। इतना सोच लो कि मैं जितना अच्छा होता जाऊँगा, उतनी मेरी निन्दा प्रारम्भ हो चुकी है। कैसे स्वीकारा जाता है? **जब तुम कोई अच्छा काम करना प्रारम्भ करोगे, तो सबसे पहले आपको अनुत्साहित किया जायेगा, जिससे तू हतोत्साहित हो जाय। जब तू हतोत्साहित नहीं होयेगा और तेरा काम दिखना प्रारम्भ हो जायेगा, फिर तेरा विरोध होगा। जब विरोध होते-होते उसकी सीमा उच्च शिखर पर पहुँच जायेगी, फिर धीरे-से तुझे स्वीकार कर लिया जायेगा। फिर लोग तेरे सेवक बन जायेंगे।** नियम से, जब तब तेरे उत्कर्ष का समय

आयेगा, एक समय विरोध आयेगा।

जब देश में चुनाव होते हैं तो माहौल कैसा होता है? एक दूसरे नेता का विरोध प्रारम्भ हो जाता है। जब वह जीत ही जाता है, हारने वाले को भी हार मान कर उसको प्रधानमन्त्री स्वीकार करना ही पड़ जाता है। तीर्थंकर महावीर स्वामी दीक्षित हुये। जब तक कैवल्य नहीं हुआ, हजारों खड़े हो गये थे, अनेक लोग अपने को भगवान् मानते थे, लेकिन जब वर्द्धमान को कैवल्य हुआ, तो अपने-आप को भगवान् मानने वालों ने अपने-आप स्वयं ही महावीर को भगवान् मान लिया। उपसर्ग करने वाला भी नमस्कार करने बैठ गया था। इसलिये जीवन में जब-जब तुम्हारा विरोध प्रारम्भ हो चुका हो, परन्तु विरोधियों को उत्तर देने मत जाना। अपने विकास को और वृद्धिमान करना।

उज्जैन में जब महावीर स्वामी पर उपसर्ग चल रहा था, तब उन्होंने यह नहीं कहा कि मेरे ऊपर उपसर्ग मत करो। नहीं, उपेक्षा। वन्दना की भी करो उपेक्षा, उपसर्ग की भी करो उपेक्षा, तो तुम सच्चे वन्दनीय हो। जो सच्चा वन्दनीय होगा, वह निज की वन्दना की भी उपेक्षा कर देता है और उपसर्ग की भी उपेक्षा कर देता है। उसे मालूम होता है कि सुख भी पुण्य की पर्याय है, वह भी पुद्गल की पर्याय है। सुख पुण्य है, पुण्य का उदय पुद्गल की पर्याय है। दु:ख पाप का उदय है, वह भी पुद्गल की पर्याय है। मैं पुण्यभूत नहीं हूँ, मैं पापभूत नहीं हूँ। मैं तो जो हूँ, सो हूँ। चिद्रूप हूँ मैं। जब मैं पुण्य-पापभूत नहीं हूँ, तो पुण्य-पाप पर हर्ष-विषाद कैसा? यह है उत्कृष्ट चारित्र, जिसने पुण्य-पाप को साम्य स्थान पर रख दिया है और दोनों को कह दिया कि ये मेरी वस्तु नहीं हैं। मैं तो चैतन्य धातु से निर्मित चैतन्य आत्मा मात्र हूँ।

भैया! आपको स्वीकारना होगा कि तत्त्व की भूल चल रही है और आप जिनवाणी के रहस्यों को उद्घाटित क्यों नहीं कर रहे हो? मूल विषय पर लक्ष्य क्यों नहीं जा रहा है? आँखों से दिखने वाले विषय तो दुनिया जानती है। सास-बहू की व्याख्या करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कैसे लड़ना पड़ता है और कैसे घर बसाकर पुचकार कर रखना पड़ता है, इन सभी को हमसे ज्यादा अच्छा आपको है। ये सब पाँच पाप के प्रोफेसर बैठे हुये हैं। अचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने

'समयसार' की आत्मख्याति टीका में लिख ही दिया है कि ये गृहस्थ तो पापों के प्राचार्य हैं। कैसे पाप करना पड़ता है, कैसे छल-कपट करना पड़ता है, बात कैसे बनाना पड़ती है? मैं अपना काम बनाने के लिये तो हजारों झूठ बोलता हूँ। यदि महाराज से भी झूठ बोलना पड़ जाये, तो उनको तनाव नहीं। हाँ, भैया! कई श्रावक ऐसा भी कर लेते हैं। यदि ज्ञानी का मकान दो फर्लांग दूर है और निर्मल सदन में आने का रास्ता वहाँ से भी दूर है और सीधा भी है। यदि उसको अपने द्वार से महाराज को निकालना है, तो दस कि. मी. से पीछे लग जायेगा, 'महाराज! बहुत बढ़िया मार्ग है, वहाँ से ही चलना है।' बेचारे महाराज तो गऊ हैं। गाय को किसान जिस ओर ले जाये, सो चलो भैया। बाद में मालूम चला कि उनका मकान मार्ग में था, इसलिये मार्ग अच्छा था। एक श्रावक ने मुझे अपना गाँव बताया बारह कि. मी. और वयालीस कि. मी. निकला। उसको मात्र अपने द्वार से निकालना था तो बारह कि. मी. का वयालीस कि. मी. चले। बीच में नदी पड़ी। दूसरे दिन संघ पहुँचा। बाद में कहता है—महाराज! यदि ऐसा नहीं बोलते, तो मेरे द्वार पर आपके चरण कैसे पड़ते?

हे ज्ञानी! ध्यान रखना, भक्ति ऐसी करना जिससे साधु की चर्या में विघ्न न आये। फिर तो जहाँ पैर पखार लिये और जहाँ नमस्कार कर लिया, वही तुम्हारा द्वार है। द्वार थोड़े-ही सिर टेकेगा, शीश तो तुझे ही टेकना है, चाहे द्वार पर टेक या यहाँ पर टेक।

गृहस्थ भी असत् में सत् देख रहा है। सम्राट सुलभ-से-सुलभ द्रव्य को प्राप्त करके भी एक कह रहा है कि राग में लिप्त है; परन्तु जिसके पास कुछ नहीं है, वह वैराग्य में झूल रहा है। चक्रवर्ती भरतेश घर में वैरागी। जिसको यह बात नहीं पची, वह पहुँच गया 'ऐसा हो ही नहीं सकता।' भरतेश ज्ञानी थे। बुलाया दरबार में कि आप पधारें। वह घबराया, 'स्वामी! आदेश करें।' आदेश बाद में होगा। यह तेल का कटोरा है लबालब भरा हुआ। इसको हाथ में रख कर मेरे अन्तःपुर में घूम कर आइये। रनवास में हमारी पट् महिषी सुभद्रा क्या कर रही हैं, देखकर आइये। परन्तु ध्यान रखना, आपके पीछे मेरा सैनिक चलेगा, उसके हाथ में नंगी तलवार होगी, जिस क्षण तेल की बूँद जमीन में गिरेगी, उसीक्षण

तलवार तेरे गर्दन पर होगी। देखकर आइये। बेचारा हाथ में कटोरा लिये निकला अब बताओ, वह कहाँ देख रहा था? एक ओर तेल की बूँद दिख रही थी दूसरी ओर गर्दन दिख रही थी। पूरे रनवास में घूम कर आ गया, पर यह नहीं देख सका कि सुभद्रा क्या कर रही है। वापस आ गया। चक्रवर्ती जब पूछते हैं कि कहो क्या देखा? तो वह कहता है कि बाद में बताऊँगा, पहले अपना कटोरा उठा लो। क्यों? आपको सुभद्रा दिख रही है, मुझे अपनी गर्दन दिख रही है। स्वामी! क्षमा करो, मैंने सुभद्रा को नहीं देखा, क्योंकि मेरी दृष्टि में तेल से कटोरा मात्र लबालब भरा दिख रहा था और दूसरी ओर मेरी दृष्टि गर्दन पर थी कि कहीं एक बूँद भी तेल गिर गया, तो मेरा सिर चला जायेगा। मित्र! जैसे अपनी गर्दन पर लक्ष्य था, ऐसे ही इन छयानवें हजार रानियों के बीच बैठ कर भी मुझे अपनी आत्मा दृष्टिगोचर होती है, आत्म-कटोरे के तेल पर दृष्टि है।

छियानवें हजार रानियों के बीच सत् में था, पर देख रहा था असत् को। असत् सिद्धपर्याय थी। असत् में सत् की सत्ता को नहीं जान पाओगे, तब तक साधु बनना भेष धारण करना मात्र है। वर्तमान की असत् पर्याय में सिद्ध पर्याय है। जब तक उसे नहीं देख पा रहे हो, तब तक तुम्हारा साधु बनना निष्फल है। उद्देश्य क्या है? जो दिखती है, उसे देखने नहीं जाना पड़ता है। देखा उसे ही जाता है, जिसे देखा नहीं होता।

मित्रो! मैंने पाँच-इन्द्रिय के भोगों को अनन्त काल से देखा, जाना है, अतः अब उसे जानने की क्या आवश्यकता है? जिस अशरीरी भगवान्-आत्मा को देखा नहीं है, जाना नहीं है, उसे जानना चाहिये, इसलिये मुनि बनना चाहिये। यदि मुनि बनकर भी उसी में तुम लिप्त हो गये जिसे जाना देखा है, तो अभी कोई बड़ा काम नहीं हुआ है। नहीं-तो बन गये महाराज और लग गये ईंट-चूने में, तो क्या किया? ज्ञानी! असत् में सत् को देखो। एक जीव असत् में सत् देख करके पाप में लिप्त हो रहा है, वह भिखारी खड़ा हुआ है।

तू पुण्यात्मा जीव तभी तक है जब तक तू किसी नारी के पल्ले में नहीं पड़ा। जब तक तेरा विवाह नहीं हुआ है, तब तक तू भी ब्रह्मचर्य के साथ रह सकता

है, बहुत पापों की निर्जरा कर सकता है।

असत् में सत् को देख रहा है। परस्त्री में दृष्टि जा रही है, पर-नारियों पर दृष्टि जा रही है यानि पाप का बन्ध कर रहा है, वह भिखारी के तुल्य है। जिसके पास एक झोपड़ी भी नहीं है, फिर वह जिस मकान से भी निकलता है यही सोचता है कि यही होता। वह इतना भोला नहीं है जो द्वार-द्वार पर कहता है ' धन्यवाद हो। दूधो नहाओ, पूतो फलो।' हे भिखारी! तेरे कितने विशुद्ध परिणाम चल रहे हैं। तू सबको धन्यवाद दे रहा है, उनके विकास के लिये दे रहा है कि चुटकी भर आटा के लिये दे रहा है? ज्ञानी सत्य को सुनो और सत्य को समझो।

अपने पण्डित जी जब कहीं विधान करने खड़े होते हैं, एक मायाचार का श्रीफल होता है, उसको लपेटा और कुण्ड में चावलों के बीच में छुपा दिया, उस तेरा पर हवन किया, फिर उसे निकाल कर चिल्लाता है, आ हा हा! चमत्कार-चमत्कार। अग्नि जल रही थी, तब भी श्रीफल नहीं जला, क्योंकि यह मन्त्रित श्रीफल है। जिसके घर में जायेगा, वह धन-सम्पत्ति से भर जायेगा। अरे ज्ञानी पण्डित! तू ही सबसे पहले अपने घर में रख ले। पण्डित जी कहते हैं, महाराज! ऐसे-ही कहना पड़ता है, तब ज्ञानियों की जेब खाली होती है। वह पण्डित भूल गया कि इन श्रीफलों से सम्पत्ति बरसती होती तो कर्नाटक में तो कोई गरीब ही नहीं मिलता, क्योंकि उनके यहाँ श्रीफल लटकते मिलते हैं। जिनके खेतों में नरियल के वृक्ष हैं, पर वे धनी नहीं हैं।

श्रेणिक ने पूछा सेठ से, 'मामा! ये खेत खब चुका, कि खबेगा?' सेठ सोचता है कि अच्छा पागल मिला। फसल खड़ी हुई है, फिर भी यह पूछ रहा है। उसका मतलब यह था कि किसान के खेत में फसल जरूर खड़ी हुई है, लेकिन वह किसान पहले से ही ऋण लेकर बैठा हुआ है, यानि कि खा चुका, इसलिये उसको तो अब दूसरा ही खायेगा। चाहे हीरे की खदानें हों चाहे मार्बल की हों, खेत वालों को नहीं मिल रही हैं। वह तो पुण्यात्मा ही पुण्य का भोग कर पाता है। **क्षीण पुण्यात्मा के घर में सम्पत्ति होती अवश्य है, लेकिन वह उसका उपभोग नहीं कर पाता। भूल मत कर लेना, ऐसा ही है। क्षीण पुण्यात्मा के यहाँ उत्पन्न भी हो जाये, पर क्षीण पुण्यात्मा को भोगने के लिये नहीं मिलती।**

वह ऐसे मान कर चलना कि किसी पिता की सुन्दर कन्या। वह पिता के लिये नहीं है, वह बेटी देखने मात्र के लिये है। भोग्यसामग्री तो दूसरे की होगी। ऐसे-ही गरीबों के खेतों की सम्पत्ति भी है। पन्ना के खेतों में हीरे निकलते हैं। खेती करने तक तो खेत उनके लिये हैं, पर हीरा निकलेगा तो वह शासन का है। भूमिगत द्रव्य शासन का है, यह न्याय-नीति है। यह नीति-न्याय नहीं होगा, तो व्यभिचार खड़ा हो जायेगा। स्वयं की बेटी स्वयं के भोग के लिये नहीं होती है, इस बात को भूल मत जाना। जगत् में ऐसे भी पापीजीव हो चुके हैं। हर विषय का ज्ञान होना चाहिये। सत् में असत्। जो वस्तु तुम्हारे सामने नहीं है, उसका त्याग भी तो कर सकते हो?

जैनदर्शन में त्याग 'दान' है, छोड़ना 'दान' नहीं है और देना भी 'दान' नहीं है। कोई माँगता है कि एक लाख दान दे दो, तो वह दान नहीं कहलायेगा। एक विशेष बात समझना। ऐसा काम सीखो जो तुरन्त फलित होता हो। अन्य जगह तुम दान देने जाओगे तो उसमें समय लगेगा। किसी तीर्थ में दान दे रहे हो, देना चाहिये, तीर्थ का भी ध्यान रखना चाहिये। सम्मेदशिखर, गिरनार आदि अपनी सिद्धभूमियाँ हैं। आपको ही रक्षा करना है। लेकिन विशेष बात मैं क्या कह रहा हूँ? उनके साथ-साथ शीघ्रफलित होने वाला द्रव्य। यदि तुम एक लाख या एक करोड़ भी दान देकर आये हो, सम्मेदशिखर की वन्दना करने जाओ, यदि आप पाँच वन्दना का भाव करके गये हो, तो कम-से-कम सात दिन लेकर जाओ। पाँच वन्दना करके थक जाओ तो एक दिन विश्राम कर लेना। फिर एक दिन वहाँ चौका लगाकर शुद्ध भोजन करना। वहाँ जो साधु हैं, उनका पड़गाहन करके आहार भी देना। यदि पूरे देश की समाज ऐसा निर्णय कर लेती है, तो जो साधु को ऐसे भटकते देखते हैं, समाचार मिलते हैं तो बहुत बुरा लगता है। ज्ञानी! ऐसा आपने कब किया? शीघ्र फलित होने वाला द्रव्य, चौका लगायेगा, उस समय देखना। जब स्वयं का चौका और स्वयं पानी खींच कर लाये, अपने हाथों से बनाया हो, उसके परिणाम देखना। फिर जब देता है तब गद्गद् भाव। और जिस योगी को तुमने दान दिया है, वह शीघ्र फलित होता है। उनसे तुम्हें तत्त्व-उपदेश सुनने मिलेगा। लोभ भी गया, कषाय भी गई, विशुद्धि मिली और साथ में ज्ञान

मिला।

भैया! जब तुम किसी मुनि के हाथ पर ग्रास रखना, तो यह मत कहना कि महाराज! लो आहार। 'कहना हे स्वामी! मेरा यह ग्रास आपको शिवाालय की यात्रा कराये।' जब तू वाहन में तेल डालकर आचार्य महाराज के दर्शन कर सकता है, योगी के पेट में तू तेल डालेगा तो वे सिद्धालय की वन्दना करेंगे। जब तुम साधु को दान देने जाना तब यही कहना 'हे स्वामी! यह मेरा ग्रास बैल की घास बन कर न जाये, क्योंकि बैल को खिलाई गई घास तो मल-मूत्र बनना है। हे स्वामी! यह मेरा ग्रास गाय के मुख में गयी घास है। मुख से ये घास जायेगी तो आँचल से दूध बरसायेगी। हे स्वामी! आपको यह ग्रास इसलिये दे रहा हूँ कि मेरा यह ग्रास सिद्ध परमात्मा को प्रगट करेगा। हे भावी भगवान्! यह ग्रास नहीं, यह सिद्धालय का पाथेय है। जब तुम्हारे घर मुनि आयें, तो सिद्ध भगवान् को देखना। ये भावी सिद्ध परमेश्वर हैं। इसलिये किसी भी तीर्थ में जाओ, यदि वहाँ साधु हैं, तो एक दिन रुक जाओ, वहाँ शुद्ध भोजन करो और साधु को भी आहार कराओ। तीर्थ में दिया गया दान बहुत महान् फलित होगा। भले ही आपको अन्य जगह दान में कमी पड़ जाये, लेकिन साधु के आहारदान में कभी कमी मत करना। इन पत्थरों से तीर्थ नहीं बने। ये पत्थर क्यों तीर्थ बन गये? यदि ये निर्ग्रन्थ तपोधन तीर्थ न होते, तो पत्थरों की पहचान कहाँ से होती?

सभी को खिलाना पड़ रहा है ऐसा क्षीण पुण्य वाला बोलेगा। जबकि पुण्यात्मा कहेगा 'अहोभाग्य मेरा है कि मुझे अतिथिसत्कार का मौका मिल रहा है।' ज्ञानी! भाषा और भाव सब समझ में आते हैं। ये बातें मात्र यहाँ की नहीं चल रही हैं। सारे देश को पता चलना चाहिये कि वस्तुस्वरूप क्या है? कहाँ लिप्त हो रहे हैं, धर्म के मर्म को भूल रहे हैं। क्या चमत्कार दिखाया हमारे पण्डित ने? नहीं, यह चमत्कार नहीं है। चमत्कार तो यह है–

काले कलौ चले चित्ते देहेचान्नादिकीटकेः।
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूप धरा नराः।। य. ति. च.।।

कलिकाल में चित्त चलायमान है, देह अन्न का कीड़ा बना हुआ है, फिर भी

जिनेन्द्र के रूप को धारण करने वाले पुरुष दिखाई दे रहे हैं, यह पंचमकाल का चमत्कार है।

आराधना करो, भूत-भभूत से और झाड़ा-फूँकी से दूर रहो। यदि सत्य सिद्ध साधना है तो देखा होगा आचार्य विमलसागर महाराज को, सम्मेदशिखर की रक्षा में कितना बड़ा काम किया। ऐसा कुछ करके दिखाओ। आचार्य विमलसागर आज इस भूमि पर होते, तो हमारा गिरनार किसी दूसरे के हाथ में न होता। उस टोंक पर नेमिनाथ ही होते, कोई अन्य नहीं हो सकता था। कभी-कभी पुरानों को भी याद कर लिया करो। ऐसे योगी भी उस पर्वत पर पहुँचे थे जिन्होंने अम्बिका देवी को बुलवा दिया था—'आदि दिगम्बरा, आदि दिगम्बरा, आदि दिगम्बरा।' आप विश्वास मानो, सत्य तो सत्य ही है।

हे जीव! चक्रवर्ती को देखो, जो होने पर भी निर्ममत्व भाव से युक्त चल रहा है और जिसके घर में कुछ नहीं है, वह हाय-हाय कर रहा है। घर जाकर आज से ही सत् में असत् देखना प्रारम्भ कर देना। जितने सम्बन्धी हैं, बुरा नहीं मानना। जो है, सो है। आप तो सबका अभाव देखना, पाँच-दस साल बाद जिनका अभाव देखोगे, उनका अभाव आज से देखना प्रारम्भ कर दोगे तो दस-पाँच साल बाद तुम्हें रोना नहीं पड़ेगा। रोते वे हैं, जो असत् में रागभूत सत् देखते हैं। जो राग में सत्भूत में सत्भूत मात्र ही देखते हैं, असत् को नहीं देख पाते, वे रोते हैं। प्राय:करके सामान्य झगड़े आपके घरों में होते रहते हैं। तेरी पत्नि कह रही है कि मैं अपने बेटे को डाक्टर बनाऊँगी और तू कह रहा है कि मैं वकील बनाऊँगा। दोनों ऐसे चर्चा में लीन हो गये कि झगड़ा हो गया। एक ज्ञानी पहुँचा, बोला, भैया! तुम क्यों लड़ रहे हो? 'अरे! कुछ नहीं। मैं चाहता हूँ बेटे को वकील बनाऊँ, क्योंकि मेरे बहुत सारे केस पड़े हैं। देवी रात-दिन बीमार रहती है, सो वह कह रही है कि मैं डाक्टर बनाऊँगी। अरे भैया! बच्चे से तो पूछ लो कि वह क्या बनना चाहता है। 'अरे! बच्चा तो अभी जन्मा ही नहीं है।' अभी तो गर्भ में आया है। ऐसे-ऐसे पागलों की भीड़ लगी हुई है।

पुण्यात्मा जीव की प्रवृत्ति हर विषय पर झलकती है। भैया लोगों को तटस्थ

होकर देखा करो। खाने से लेकर जाने तक। शौचालय में भी पुण्यात्मा का पुण्य दिखता है और भोजनालय में भी पुण्यात्मा का पुण्य दिखता है। यह विशिष्ट विषय है। खाने की प्रवृत्ति से पता चल जाता है कि यह कैसे घर का व्यक्ति है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"सम्यग्दृष्टि के विचार"

कृमितुल्यैः किमस्माभिः भोक्तव्यं वस्तुसुन्दरं।
तेनात्र गृहपङ्केषु सीदामः किमनर्थकम्॥ 137 सा. स.॥

अन्वयार्थ-कृमितुल्यैः = कीड़ों के समान **अस्माभिः** = हम लोगों को **किं सुंदरं वस्तु भोक्तव्यं** = क्यों सुन्दर पदार्थों का भोग करना चाहिए? **किं तेन** = क्योंकि उससे तो **अत्र** = इस लोक में **गृहपंकेषु** = घर की कीचड़ में फँसकर **अनर्थकम्** = वृथा **सीदामः** = कष्ट उठाने पड़ेंगे? **भावार्थ**-कीड़ों के समान हम लोगों को क्या मनोज्ञ पदार्थों का भोग करना चाहिए, जिससे इस लोक में गृहस्थपने की कीचड़ में फँसकर वृथा क्यों कष्ट उठाना पड़े।

"कर्मशत्रुओं को जीतने का परामर्श"

येन ते जनितं दुःखं भवाम्भोधौ सुदुस्तरम्।
कर्मारातिमतीवोग्रं विजेतुं किं न वाञ्छसि॥ 138 सा. स.॥

अन्वयार्थ- येन = जिसके द्वारा **ते** = तुझे **भवाम्भोधौ** = इस संसार रूपी समुद्र में **सुदुस्तरं दुःखं जनितं** = अतीव कठिन दुःख प्राप्त हुए हैं **अतीव उग्रं** = ऐसे दुःखद समय में आत्मा के शत्रु इन अत्यन्त भयानक **कर्मारातिम्** = कर्मरूपी शत्रुओं को **विजेतुं** = जीतने की **किं न वाञ्छसि** = इच्छा क्यों नहीं करते हो?

भावार्थ-आचार्य कहते हैं कि हे आत्मन्! जिसके कारण तुझे इस संसाररूपी समुद्र में अतीव दुष्कर दुःख प्राप्त हुए हैं, ऐसे अत्यन्त दुःख देनेवाले कर्मरूपी भयानक शत्रुओं को जीतने की इच्छा तुम क्यों नहीं करते हो?

"इससे बड़ा आश्चर्य क्या है"

अब्रह्मचारिणो नित्यं मांसभक्षणतत्पराः।
शुचित्वं तेऽपि मन्यन्ते किन्नु चित्रमतः परम्॥ 139 सा. स.॥

अन्वयार्थ-अब्रह्मचारिणः = कोई-कोई ब्रह्मचर्य को न पालते हुए **नित्यं** =

सदा ही **मांसभक्षणतत्पराः** = मांसभक्षण में लगे रहते हैं **ते अपि शुचित्वं मन्यन्ते** = तो भी वे अपने आपको पवित्र मानते हैं, **किन्नु अतः परं चित्रं** = इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है?

भावार्थ-आचार्य कहते हैं कि अब्रह्मचारी, नित्य मांस-भक्षण करने में तत्पर मानव भी अपने को शुचि (पवित्र) मानते हैं, इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है?

॥ सद्-देशना ॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन। जयवन्त हो श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमण-संस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक भगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्म-उत्थान के लिये उस परम विद्या का व्याख्यान कर रहे हैं कि हे मुमुक्षु! जब अन्तस् में भेदविज्ञान की धारा का उद्भव होता है, उस काल में संसार के सम्पूर्ण सुलभ द्रव्य अरुचिकर प्रतीत होते हैं। जिसकी पाप की रुचि प्रबल है, उसे साक्षात् परमात्मा के सामने होने पर भी वस्तुस्वभाव दिखाई नहीं देता और जिस जीव की वैराग्य की दृष्टि प्रबल होती है, उसको परमात्मा के सामने न होने पर भी परमात्मा दृष्टिगोचर होते हैं।

भगवान् 'का' नजदीक होना भगवत्ता की प्राप्ति का उपाय नहीं है, भगवान् 'के' नजदीक होना भगवत्ता की प्राप्ति का उपाय है। भगवान् का पास में होना कोई मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्गी का यह प्रमाणिकता का बोधकर नहीं है कि उसके पास में भगवान् हैं। भगवान् के पास में होना मोक्षमार्ग है। सम्यग्दृष्टि जीव भगवान् के पास में होता है। भगवान् तुम्हारे पास में हों, कोई नियत नहीं है कि आप भगवान् के भक्त हो। जो भगवान् का भक्त होता है, हजारों कि.मी. दूर भी भगवान् क्यों न हों, वह उनके पास दौड़कर पहुँच जाता है। आस्थावान् होता है तो सम्मेदशिखर के पास पहुँच जाता है। आस्थावान् होता है तो गिरनार की चोटियों पर चढ़ जाता है। जिसको श्रद्धा नहीं होती है, वह सामने विराजे पारसनाथ के चरणों में भी नहीं पहुँच पाता है। उसके लिये दूरियाँ

भी दूरियाँ नहीं होती हैं। आस्था यदि दूर है, तो भगवान् बहुत दूर हैं। आस्था तेरे भीतर है, तो भगवान् तेरे भीतर हैं, उसके लिये खोज क्या करना? परमात्मा की खोज वे करें, जिन्हें परमात्मा की आस्था नहीं है। भगवान् की खोज वे ही करते हैं जिन्हें भगवत्ता का बोध नहीं होता है। जिन्हें भगवत्ता का बोध होता है, वह न पर्वतों पर खोजता है, न तीर्थों पर खोजता है। वह तो अपनी आत्मा के भीतर भगवान् को देखता है। ज्ञानी! मन्दिरों में, तीर्थों में, पर्वतों पर, नदी के तट पर, सागरों के तट पर आपको प्रतिमा दिखाई देगी, परन्तु आस्थावान् को परमात्मा दिखाई देंगे। जहाँ भी देखेगा, वहीं दिखेंगे। **चाहे गरीब का बच्चा हो, चाहे अमीर का बच्चा हो, सबको मालूम होता है कि रोटी खाऊँगा तो पेट भरेगा, नियत है। ऐसे ही परमात्मा पर श्रद्धान करेगा तो मोक्ष मिलेगा, यह नियत है। ऐसी आस्था जिसके पास है, वही सम्यग्दृष्टि है।**

रोटी के लिये कहाँ-कहाँ भटक लेते हो? ऐसे भी बेचारे ज्ञानी मिल जायेंगे जो स्वप्न में भी रोटी खाते हैं। वहाँ कहना, क्या पुण्य की क्षीणता है? दिन में तो खाया-ही-खाया, स्वप्न भी देख रहा है तो खाने के ही देख रहा है। जिसका पुण्य क्षीण होता है, उसे स्वप्न भी विषयकषाय के आते हैं। जिसका पुण्य तीव्र होता है, उसे स्वप्न में भी भगवान् दिखाई देते हैं, निर्ग्रन्थ गुरु दिखते हैं और जिनवाणी को सुनने के भाव होते हैं। यह पुण्य की प्रबलता है। कुछ नहीं देखना, धन के अभाव में अपने आपको निर्धन मत मान लेना। पुद्गल के टुकड़ों के अभाव में अपने आपको गरीब निर्धन मत मान लेना। यथार्थ में निर्धन तो वे हैं, जो धर्मविहीन हैं। धनवान् वे ही हैं, जिनके हृदय में धर्म विराजमान है। इसलिये आचार्यमहाराज कह रहे हैं कि चक्रवर्ती का परिणमन तो देखो। एक जीव चक्रवर्ती के वैभव को प्राप्त करके भी निर्ग्रन्थता को निहार रहा है। छः खण्ड का स्वामी भी इतने विरक्त भाव से युक्त है कि दैगम्बरी दीक्षा को प्राप्त हो रहा है। लोक में दो ही जीव हैं। एक तीव्र स्तुति का पात्र है, दूसरा तीव्र निन्दा का पात्र है। एक वे जीव हैं जो तपसाधना के लिये चक्रवर्ती पद का विसर्जन कर रहे हैं। इन भोगों में आनन्द नहीं है, घर में आनन्द नहीं है, इन्द्रियसुखों में आनन्द नहीं है, ऐसा विचार करके, शान्ति की खोज के लिये चक्रवर्ती पद का विसर्जन करके,

दैगम्बरी दीक्षा को धारण कर रहा है। एक वह जीव है जो घर छोड़करके मुनि बनने जा रहा है। जिसे समझ में नहीं आ रहा है कि मेरी माँ दुग्धपान कराती थी। जिसे समझ में नहीं आ रहा है कि मेरे घर में सोने के कलश हुआ करते थे, जब छोड़ दिया है, तो स्मरण किस बात का? क्योंकि जैनदर्शन में छोड़ने का नाम 'त्याग' नहीं है। बहुत सारे लोग दे देते हैं, बहुत सारे लोग छोड़ देते हैं। ये सब दान नहीं है। जब वस्तु आपके घर में अधिक हो जाती है, तो आप छोड़ देते हो अथवा बिगड़ जाती है तो आप छोड़ देते हो अथवा कोई माँगने आये तो चेहरा बनाकरके दे देते हो। न छोड़ना दान है, न देना दान है। तो दान क्या है?

छोड़ना दान नहीं है। यदि छोड़ना दान हो गया, तो सुबह से तो छोड़ कर ही आता है। जिसे तूने मध्याह्न में रखा, शाम को रखा, उसे सुबह छोड़ दिया। यदि यह दान हो गया, तो हर प्राणी प्रतिदिन दान देता है, क्योंकि लोक में जितने खानेवाले हैं, सब छोड़नेवाले ही हैं। महापुरुषों को छोड़ कर। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण का आहार होता है, निहार नहीं होता। अतः छोड़ना दान नहीं है। देना भी दान नहीं है। तुझे माँ रोटी देती है, क्या वह दान हो गया? फिर तो हे माता! तुमसे बड़ा दाता जगत् में कौन होगा? क्योंकि तुमने जीवन भर दान दिया। देना भी दान नहीं है। देना दान हो गया, तो आपके ससुराल के पास के लोगों ने आपको क्या-क्या नहीं दिया। अपनी कन्या तुझे सौंपी है, और-भी द्रव्य दिया है, तो सब दान हो जायेगा। पापियों के द्वारा किया गया दान कन्यादान है। जिनागम में कन्या का कोई दान नहीं होता, न गौ दान होता है, न स्वर्ण दान होता है, न भूमिदान होता है। ये सब कुदानता को प्राप्त संज्ञायें हैं। दान तो चार प्रकार का ही है। औषध, शास्त्र, अभय, आहार।

पहले आप बहुत अच्छे से चिन्तन कर लो कि जब छोड़ना भी दान नहीं है तो दान है क्या? देना यदि दान हो जायेगा, तो जो-जो जगत् में दिया जायेगा, वह दान हो जायेगा। जीवन में तू किसको क्या-क्या नहीं दे देता है? सब दान हो जायेगा। वर्तमान में धर्म का लेबल लगा कर अधर्म की पुष्टि हो रही है। चर्चायें धर्म के नाम पर हो रही हैं, परन्तु क्रिया अधर्म की हो रही है। कोई ऐसे

काम भी कर रहा है जिससे अपना व्यापार चला रहा है। खून का भी लोग दान करने लग गये। रक्तदान। यदि ये अपवित्र वस्तुयें भी दान हो जायेंगी, तो जिनेन्द्र के द्वारा प्ररूपित चार प्रकार का दान कहाँ चला जायेगा? अपने देह के स्वार्थों में, अपने भोगों की लिप्सा के राग में लिप्त हो करके अधर्म को धर्म कहने की चेष्टा मत करना। फिर तो जो -जो तुम्हारी इच्छा होगी, उन सबको तुम दान कहना प्रारम्भ कर दोगे। 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रन्थ में पूज्यपाद स्वामी ने जो लक्षण लिखे हैं, वे अमिट हैं।

संयतस्य योग्यं ज्ञानादिदानं त्यागः। सर्वा.॥

संयम के योग्य वस्तु का जो त्याग किया जाता है, उसका नाम दान है। देना दान नहीं, छोड़ना दान नहीं। त्याग का नाम दान है। न माँगना दान है, न देना दान है, न छोड़ना दान है। त्यागो दानं। जो आपने बुद्धिपूर्वक प्रत्याख्यान किया है, किसके लिये? संयत के योग्य, त्यागी के योग्य, निर्ग्रन्थों के योग्य, मुनियों के योग्य जो वस्तु है, उसका त्यागना। इसका नाम दान है। तेरे घर में घड़ी की दुकान है या अन्य असंयमित द्रव्यों की दुकान है और तू कह रहा है महाराज! मैं तो आपको भेंट करना चाहता हूँ। नहीं, ज्ञानी! यह दान नहीं है। आगे तूफान का समय चल रहा है, सँभलकर सुनना है। 'संयतस्य योग्यं-।' नहीं-तो कल महाराज को मोबाइल भेंट करने लगें, लो महाराज। उससे रागियों से चर्चा होगी, समय ही तो नष्ट होगा। समय नष्ट होगा। 'समय' से मेरा कहना है कि जब-जब तुम निर्ग्रन्थों के पास जाया करो तो उनकी आराधना करना, उपासना करना, सेवा/वैयावृत्ति करना, दान देना, तत्त्व उपदेश सुनना, परन्तु उनसे ज्यादा बातें नहीं करना। क्यों? समय निकल जायेगा। आपको यदि जैनदर्शन पर करुणा है, जैनसंस्कृति से अनुराग है, तो ध्यान से सुनना।

भैया! तू अपनी दुकान पर बैठा है। अच्छी ग्राहकी चल रही है। कोई ज्ञानी आपसे कहे कि मुझे आपसे कुछ चर्चा करना है, तो सत्य बताना, आपका मन क्या कहेगा? बात करने का मन करेगा क्या? नहीं। तेरा समय नष्ट कर रहा है, ये तुझे दरिद्री बना रहा है। इसके पास तो कोई काम था नहीं, फुर्सत थी।

यह समय निकल जायेगा, तो तुझे जो लाभ होना चाहिये था वह नहीं हो पायेगा। तू उनकी बातों में लग गया तो तेरी दुकान का क्या होगा? जब आप इतने समझदार हो कि अपनी दुकान के राग में दूसरे से बात करना पसन्द नहीं करते हो, तो इन निर्ग्रन्थों से यहाँ-वहाँ की चर्चा करके इनके समय को बर्बाद करके समय को नष्ट क्यों करवाते हो? समय, समय, समय। ये आपके निर्ग्रन्थ मुनिराज/तपोध्यान जितने समय में स्वाध्याय करेंगे, तप-आराधना करेंगे और उस समय को समय में लगायेंगे। समय यानि आत्मा। समय को समय में लगायेंगे यानि ग्रन्थों का अध्ययन करेंगे, तो आपके मुनिराज ज्ञानी होंगे। ज्ञानी होंगे तो और ग्रन्थ लिखेंगे। इससे श्रुत की परम्परा चलेगी, आगम परम्परा चलेगी। कुन्दकुन्द महाराज यदि चौरासी पाहुड न लिखते, तो आज तुमको 'समयसार' कहाँ से मिलता? यदि कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' न लिखते, तो आपको यह सब सुनने कहाँ से मिलता? हमारे प्राचीन आचार्यों को यदि पूरे समय श्रावक घेरे बैठे रहते, उनका समय नष्ट करते, वे अपना समय आपको दे देते, तो समय को समय नहीं दे पाते, तो क्या आपको समय मिल जाता, आगम मिल जाता?

जो साधक या श्रावक अपने समय को व्यर्थ के कामों में नष्ट करता है, वह जैनदर्शन और श्रमणसंस्कृति का शत्रु है, वह जिनागम का ह्रास कर रहा है। बेटा! यदि तुमको किञ्चित् भी समय मिलता है, तेरे मन में कुछ भी आ रहा है, तो अन्य कुछ नहीं, ॐ की माला फेरने बैठ जाना, णमोकार पढ़ने बैठ जाना। जीवन में कभी तत्त्व-उपदेश धर्म-उपदेश सुना है तो चिन्तन करने बैठ जाना। वे तिर्यञ्च कितने महान् हैं, वे भालू-बन्दर कितने महान् हैं? दिन भर खाना खोजते रहते हैं, अच्छा खा लेते हैं और जब उनको खाना नहीं मिलता, तब भी शान्त नहीं रहते। जो खाया है, उसे निकाल-निकाल करके रुंथन करते रहते हैं। ऐसे जो साधकजीव हैं, उनको जगत् में कहीं खाली समय नहीं है। जब आगम सामने हो तो ग्रन्थ पढ़ो और आगम सामने नहीं हो तो जिसे पढ़ा है उसे चिन्तन में लाओ यदि चित्त की विशुद्धि चाहिये तो। नहीं-तो पंचमकाल में चित्त को विशुद्ध रख पाना बहुत कठिन है। चित्त को विशुद्ध रखना है तो प्रतिक्षण सत्-साहित्य में

मन लगाओ।

अमित्रों का मित्र जगत् में कोई है, उसका नाम जिनवाणी है। जब अपना कोई न हो, सब आपको दुत्कार दें, तो किसी के द्वारे मत जाना, मात्र जिनवाणी खोलकर बैठ जाना। जिनको रात्रि में नींद न आती हो, वे नींद की गोली मत खाना, नहीं-तो पागल हो जाओगे। जितने लोग आज फाँसी लगा रहे हैं, जहर खा रहे हैं, ये अधिकांशतः नींद की गोली खाने वाले लोग हैं। जीवन में नींद की गोली कभी मत खाना। यदि नींद नहीं आ रही है तो बहुत अच्छा, आपका सौभाग्य है। जिनको नींद नहीं आ रही वे भाग्यवान् जीव हैं, क्योंकि जो समय तुम सोने में व्यर्थ में नष्ट करते, उस समय को तुम समयसार में लगा दो तो नींद भी आ जायेगी और नहीं आई तो आत्मा समयसारभूत हो जायेगी। इसलिये समय को व्यर्थ में सोने में नष्ट मत करो। निर्ग्रन्थ तपोधन तो निद्राजयी होते हैं। वे नींद को जीतने के लिये तपस्या करते हैं एक बार भोजन कर रहे हैं। ज्ञानियो जितना कर्मास्रव सोने में होता है, उतना जागने में नहीं होता है। यदि जागते-जागते कोई पाप करने के परिणाम हो गये, तो मन कहीं-न-कहीं यह भी कह सकता है कि नहीं, यह अच्छी बात नहीं है, मुझे नहीं करना चाहिये। यदि सोते-सोते अशुभ परिणाम हो गये, अब कौन कहेगा नहीं करना चाहिये। सोने में वह पाप कर लिया, तो वैसा ही बन्ध होता है जैसा जागने में किया है।

जीवन के इतने लम्बे समय आपने पूर्ण किये हैं, शायद ही ऐसा कोई जीव हो जिसको स्वप्न न आये हों। स्वप्न में भोजन भी कर लेते हैं। स्वाद भी लेते हैं। आनन्द भी भरपूर ले लेते हैं। जितना राग जागते हुये भोजन करने में नहीं होता, उतना स्वप्न के भोजन में होता है। मन का काम प्रतिक्षण चल रहा है यानि स्वप्न में भी कर्म का आस्रव चल रहा है। ज्ञानियो! 'आलोचना पाठ' में कहा है 'सुपने मधि दोष लगाई' स्वप्न में भी दोष उत्पन्न होते हैं। स्वप्न में देखते-देखते शरीर की धातुयें क्षीण हो जाती हैं, फिर आस्रव क्यों नहीं होगा? अवश्य होगा। तुम सोने के लिये चिन्ता में डूबे हो कि मुझे नींद आ जाये। पहले आपने पर की चिन्ता में नींद भंग की, अब तू नींद की चिन्ता कर रहा है सो

और पागल हो जायेगा। नींद पर नींद भङ्ग हो रही है। सम्यग्दृष्टि जीव को मालूम होना चाहिये कि सातावेदनीय कर्म के सत्ता में होने पर ही नींद ले पायेगा, असाता में नींद नहीं ले पायेगा। दर्शनावरणीय कर्म के उदय से निद्रा सताती है और नींद का आना साता का उदय है। ये करणानुयोग की व्यवस्थायें हैं। जिस व्यक्ति को संक्लेशता है, दु:ख है, पीड़ा है, चिन्तायें हैं, क्या उसे दर्शनावरणीय कर्म का अभाव हो गया? ज्ञानी! आज तेरी जेब कट जाये या कोई अशुभ घटना सामने घट जाये, चिन्ता में डूब जाये, सो तुम्हें नींद नहीं आ रही है, सो तेरा दर्शनावरणीय कर्म का अभाव हो गया क्या? नहीं, दर्शनावरणीय का अभाव नहीं हुआ है, असाता का उदय आ गया है। **जगत् के रागरंग साता में ही समझ में आते हैं, असाता में कुछ भी समझ में नहीं आता। दु:ख के दिन में चन्द्रमा की चाँदनी भी झुलसाती है, सुख के दिन में ग्रीष्म काल की दोपहरी में भी आनन्द लूटता है, तपन का पता ही नहीं चलता।**

सुख किसमें है? दु:ख किसमें है? साता में सुख है, असाता में दु:ख है। वस्तु में न सुख है, न दु:ख है। न मौसम में सुख-दु:ख है। बरसात के मौसम में आप यहाँ बैठे हो, क्या दु:ख है? चिन्ता उन्हें है, जिनकी झोपड़ियाँ यमुना के किनारे हैं। कल सूखी थी, आज पानी भर गया है। सबके दिन-एक से नहीं होते। जो घरों में बैठे हैं, वे मुस्करा रहे हैं कि यमुना भर जायेगी तो साल भर पानी पीने मिलेगा। सुख कहाँ है, दु:ख कहाँ है? साता का उदय चल रहा है, तो सुख है, असाता का उदय आ गया तो दु:ख है। आपके ही घर में एक भाई मुस्करा रहा है, दूसरा भाई रो रहा है, क्या करोगे? धन-सम्पत्ति सब भरपूर भरी हुई है, लेकिन शरीर अस्वस्थ हो गया, तो बस, देखते रहो। सामने बेटा, पत्नि, भाई, सब दूध-मलाई खा रहे हैं, लेकिन तू देख रहा है। तुझे तो मूँग की दाल का पानी मिल रहा है। ऐसा भी होता है। बस, इसी समय देखो, हे कर्म! तू कैसा-कैसा सामने उदय में आता है कि सबकुछ होने के बाद भी कुछ भी नहीं होता है। ये आश्चर्य की बात नहीं है, ये प्रतिदिन की बातें हैं। जो पुण्य को भोग चुके थे पूर्व में, वे अब शरीर से भोग नहीं पा रहे हैं। इसलिये पुण्य का

दुरुपयोग मत करना।

कभी-कभी घुन लग जाता है फिर भी धान्य चमकता दिखता है। दाना खोखला हो चुका है, फिर भी चमक रहा है। घुना गेहूँ भी ऊपर से चमकता दिखता है, जबकि कीड़े ने अन्दर पूरा खोखला कर दिया है। ऐसे-ही ऊपर की चमक तो चमकते दिख रही है, लेकिन भीतर का पुण्य खोखला हो चुका है। उनका सारा-का-सारा द्रव्य सामने रखा होने पर भी भोग नहीं कर पा रहा है। जिसके पुण्य के धान्य में विकारों का कीड़ा लग चुका है, वे भोगें या न भोगें, लेकिन विकारभाव से पुण्य का धान्य घुन चुका है।

त्याग के बाद पश्चात्ताप नहीं होता, छोड़ने के बाद पश्चात्ताप होता है, देने के बाद पश्चात्ताप होता है, जबकि त्याग के बाद हर्ष होता है, मुस्कराता है। पाँच का नोट भी गोलक में डाल कर आता है तो मुस्कराता है, आ हा! मैंने दान किया है। ज्ञानी! एक नोट भी तेरी जेब काट कर कोई ले जाये, तो चेहरा लटकाकर जायेगा, 'माँ! कट गई।' छोड़ना पड़ेगा तो कहेगा कि सब कोई दे रहा था, सो मैं भी देकर आ गया। हर्ष नहीं है। त्याग कर जाता है तो प्रसन्न होकर जाता है; क्योंकि त्याग में अकषाय भाव है, त्याग में प्रसाद भाव है, त्याग में आनन्द भाव है। हर्ष परिणाम है देने में और छोड़ने में विषाद है। 'त्याग करे मन हरष विशेखै।' मन में हर्ष की विशेषता के साथ जो त्यागा है, वही दान है। जेब से एक सिक्का त्यागने पर जब तेरा चेहरा मुस्कराता है, तो जिसने आरम्भ-परिग्रह/घर को ही त्याग दिया हो, उसका चेहरा न मुस्कराये, वह त्यागी कैसा? वस्तु के होने पर भी आनन्द आता है और वस्तु के छोड़ने पर भी आनन्द आता है और दोनों आनन्द मुनियों के पास होते हैं। यदि मकान की नींव खोदते समय घड़ा निकल पड़े, तो क्या किसी को बताने जायेगा? अरे! तू तो मिट्टी को और डाल कर उसी पर खड़ा हो जायेगा कि मेरे पैर में काँटा लग गया है, सो वहीं खड़ा है। जब तक लोग चले न जायें, तब तक उसका काँटा ही नहीं निकलेगा।

एक नगर में एक सज्जन थे। वे साधुओं के पास नहीं आते थे, लेकिन प्रवचन सुनने की बड़ी रुचि थी, परन्तु प्रवचन सभा में आने में एलर्जी थी। वहाँ ऊपर

की मंजिल में प्रवचन होता था, नीचे कुआ था। तो जैसे-ही प्रवचन का समय होता था, वे दादा जी एक कलश एक बाल्टी लेकर आते थे। जब तक प्रवचन चलता था, तब तक वे बाल्टी को रगड़ते रहते थे। जैसे-ही प्रवचन समाप्त हुआ, जय बोली गई, तो वे बाल्टी डुबोकर लेकर चले जाते थे। उनका प्रतिदिन का काम था। उस जीव के परिणाम इतने तो अच्छे थे कि प्रवचन सुनना है, लेकिन कोई क्या कहेगा कि तुम तो महाराज की सभा में आ गये। इस राग में बेचारा सभा में तो नहीं आता था, लेकिन पानी भरने के बहाने आकर सुन लेता था। ऐसे भी जगत् में लोग हैं। उसको काँटा लगा था, वह पैसे का काँटा लग गया था, वह नहीं निकल रहा था। पैर का काँटा तो निकल जाता, कोई टेंसन नहीं, लेकिन वह काँटा लगा था कि किसी ने देख लिया तो अभी देना पड़ जायेगा। अथवा शासन को पता चल जायेगा तो पूरा ही चला जायेगा। इसलिये बेचारा वहीं खड़ा था। जब धन मिलने पर इतना गद्गद् भाव आता है और जमीन के धन को घर में जमीन में ही गाड़ दिया और मकान के चबूतरे पर बैठकर मुस्करा रहा है। यह चमक किस बात की है? जड़ रत्नों की इतनी ताकत कि चेहरा चमक रहा है। छोड़ने और मिलने में कितना आनन्द आता है? योगी विषयकषायों का त्याग करते हैं और रत्नत्रय धर्म को स्वीकार करते हैं, इसलिये उनका चेहरा चौबीस घण्टे मुस्कराता है। उनने छोड़ा भी है और ग्रहण भी किया है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि **वह जीव प्रशंसा का पात्र है जो चक्रवर्ती पद को भी साधना के लिये छोड़ रहा है। इससे बड़ा कोई प्रसंशनीय नहीं है। वह जीव घोर निन्दा का पात्र है जो विषयों की आकांक्षा से युक्त होकर तपस्वी पद को छोड़ रहा है।**

भैया! जीवन में बिल्ली की आवाज में मत चलना, नदी की धार में बहना। जीवन में तुम्हारा मन कभी मोक्षमार्ग में चलने का हो, कभी मुनि बनने के परिणाम आयें, त्यागी बनने के भाव हों, तो इस सूत्र का ध्यान रखना कि नदी की धार में चलना, बिल्ली की आवाज में मत चलना। नदी का उद्गमस्थान छोटा-सा होता है, लेकिन धीरे-धीरे फैलते-फैलते सागर बन जाती है; जबकि बिल्ली पहले

तेज बोलती है, फिर धीमे हो जाती है। कुछ ऐसे अज्ञानी-ज्ञानी साधक होते हैं कि जैसे-ही दीक्षा ली, तो जोर से आवाज करते हैं, बहुत दिखाते हैं और बाद में बिल्ली-जैसे म्याऊँ करके रह जाते हैं।

साधना नदी की धार के समान होना चाहिये, बिल्ली की आवाज के समान नहीं। जिसने चक्रवर्ती पद को छोड़ करके जैनेश्वरी दीक्षा ली हो, वह महान् है। त्यागने के बाद स्मृति में लाये कि मैंने छोड़ दिया, अब कैसे जिऊँगा? धिक्कार हो। छोड़ने के बाद स्वीकारना नहीं। इस बात को आचार्यमहाराज कह रहे हैं, हे जीव! जिसे छोड़ दिया है, उसे देखने का विचार नहीं करना। त्याग कर दिया, आपने किसी क्षेत्र या मन्दिर में दान दिया हो, तो कभी किसी से मत कहना कि मैंने इतना दान किया है। जब छोड़ दिया है, तो निर्माल्य हो चुका है, निर्माल्य की याद क्यों?

माना कि किसी ज्ञानी ने बटेश्वर में कमरा बनवा दिया। अब फोन कर देता है कि मैं आ रहा हूँ, मेरा कमरा खोल देना। ज्ञानी! तूने बटेश्वर में दान दिया है, कि अपना घर बनवा लिया है? तूने तीर्थ की भूमि को और घेर कर रखा है। होना ये चाहिये कि जो भी यात्री भगवान् की वन्दना करने आयें, वह भी ठहर सकें, ऐसा विकल्प होना चाहिये था। नहीं, मेरी धर्मशाला है, मेरा कमरा है, पहले मेरे लिये सुरखित रखना। हे ज्ञानी! तू घर में सन्तुष्ट नहीं हुआ तो तूने तीर्थों को भी घेर कर रखा है। तीर्थों में कमरा मत घेरना या रहना। जो तुमने छोड़ दिया है, वह निर्माल्य हो चुका है। स्वयं के द्वारा दी गई वस्तु निर्माल्य है।

आज तो दुनियाँ में ऐसी विचित्र धारायें बह रही हैं। तूने श्रीफल चढ़ा दिया, वह निर्माल्य हो गया। श्रीफल पहले श्रावकों से चढ़वा दिया, बाद में तूने बिक्री करके मन्दिर में दे दिया, यह घोर पाप कहाँ से प्रारम्भ हो गया? पहले चढ़वा दिया, फिर बिक्री कर रहे हो। कम होते तो माली के घर जाते, बहुत सारे आ गये सो बेंच रहा है। ज्ञानी! भीतर ही भीतर घुट रहा था कि माली के घर में इतना द्रव्य चला जायेगा। तुझे माली दिख रहा था कि भगवान् के पास चढ़ाने का उद्देश्य था? उसके बाद कोई प्रयोजन नहीं था। चाहे मुनि के नाम पर चढ़ाओ, चाहे प्रभु के नाम पर चढ़ाओ, चाहे जिनवाणी के लिये चढ़ाओ, जो भी द्रव्य चढ़ेगा,

वह निर्माल्य हो गया। अब वह तुम्हारे भोग के लिये नहीं रहा। अब तुम उसे बेंच करके मन्दिर की दीवाल में नहीं लगा सकते हो। विपरीत मार्ग की पुष्टि नहीं होना चाहिये।

ज्ञानी मुनिराज बन गया। किसी ने अच्छा आहार दे दिया तो अंजली में भरवा लिया और अपने भक्तों को दे दिया। अन्तराय करके बैठ जाओ। मुनियों को देने का कथन आगम में नहीं है। मुनि ज्ञानदान मात्र देते हैं। मुनि, दान का लेते भी नहीं हैं। आप महाराज को आहारदान अवश्य दो, लेकिन वे तुम्हारा आहारदान लेते नहीं हैं, आहार लेते हैं। साधु कभी आहारदान नहीं लेता। इसीलिये मैं किसी तीर्थ में लम्बे समय तक नहीं ठहरता, क्योंकि कहीं तीर्थ में आया दान मेरे हाथ में न आ जाये। श्रावक चौके लगायें, उसमें आहार होना चाहिये। जो आहारदान की रसीद कटी होती है, वह दान साधु नहीं ले सकते हैं। चन्दा-चिट्ठे के आहारदान का त्याग होता है। साधु का त्याग ऐसा दान नहीं होता कि नगर में मुनिराज आये और ज्ञानी खड़ा हो गया, धर्मशाला में चौका लगना है। माताओ! सब इकट्ठा कर लो और पंचायती चौका लगा लो, यह साधु के अयोग्य आहार हो गया। आहार तो साधु वही ले सकता है जो शुद्ध भोजन श्रावक ने अपने लिये बनाया है उससे साधु को आहार कराना चाहिये। यह राजमार्ग है। दान इकट्ठा करके दान दिया तो तेरा क्या था?

खाने को न मिले तो भीख माँग कर खा लेना, लेकिन भगवान् की पूजा और मुनि को दान दूसरे के द्रव्य से कभी मत देना, अपनी कमाई का ही देना। दान स्वयं की कमाई से ही दिया जाता है। यदि तू अलग से कमाने लग गया है और पिता का द्रव्य दान में दे रहा है, तो वह तेरा दान नहीं कहलायेगा। जब तक बेटा कमाना नहीं जानता, तब तक तो पिता के कमाये द्रव्य से पुत्र दान देता चलेगा; लेकिन यदि बेटा कमाने लग गया है, फिर पिता के द्रव्य का दान दे रहा है, तो वह तेरा दान नहीं कहलायेगा। क्योंकि वह उसके लिये परवस्तु है। दान स्व वस्तु का होता है। जो दान देकरके पुनः कह रहा है 'मेरा कमरा।' आगम में लिखा हुआ है कि स्वयं के द्वारा दिये गये दान का

तू भोग कर रहा है तो उसको वही पाप का बन्ध होगा जो स्वयं की पुत्री के साथ व्यभिचार के पाप का बन्ध होगा। पिता ने दान बोला, माँ ने दान बोला और बेटा कह रहा है कि मैं नहीं दूँगा, तो उस बेटे को बहिन के साथ व्यभिचार में जो पाप का बन्ध होता है, वह माता-पिता के द्वारा दिये दान को जो खा रहा है, उस व्यक्ति को वही पाप का बन्ध होगा। बेटो! ध्यान रखना, पिता जी ने कहीं दान की घोषणा कर दी हो, आपको मालूम हो और पिता जी ऊपर चले गये हों, उस द्रव्य को तू दान करके ही आना कि मेरे पिता बोल कर गये थे, इसलिये वह द्रव्य मेरे लिये निर्माल्य हो चुका है।

जिस दिन तुम बोली लगाते हो, उसी दिन शीघ्र दे देना चाहिये, उसको घर में नहीं रखना, क्योंकि अपने लिये वह अब निर्माल्य हो चुका है। ऐसा नहीं कि दस-पन्द्रह दिन या पचास दिन बाद दे दूँगा, तब तक उससे और कमा लूँ। नहीं कमाना, भैया! उसको शीघ्र हटाओ। अपनी जेब में नहीं रखना। उतना ही दान देना जितनी तुम्हारी सामर्थ्य हो। सामर्थ्य नहीं है तो दान नहीं देना, अनुमोदना कर लेना। राजमार्ग यह है कि शक्ति नहीं है तो ऋण लेकर दान मत देना, ऐसा नहीं करना कि आज नहीं है, कमा कर दे दूँगा। आज तेरे परिणाम विशुद्ध थे, अब कल शरीर में सामर्थ्य नहीं बची, कमाने का विकल्प हो कि मुझे देना पड़ेगा, तो तेरे लिये वही परिणाम होंगे जैसे किसी से ऋण लिया, चुकाने में जो कष्ट होता है, उस दान में वही कष्ट होगा। दान वह होता है, जो सामग्री मेरे पास है उसमें से शक्ति के अनुसार दान देना।

आगम की ये व्यवस्था है। वह समाजव्यवस्था नहीं है। मन्दिर की व्यवस्था करना समाजव्यवस्था है, लेकिन दानव्यवस्था यह है 'मन हर्ष विशेष'। जो मन में हर्ष भाव है, वह दान 'दान' है। तुमने जबरजस्ती खड़ा कर दिया कि ये दे देगा, तो समाज में इज्जत के नाते उसने बोल दिया, लेकिन अब उसके घर में क्लेश हो रहा है। पत्नि अलग कह रही है, बच्चे अलग कह रहे हैं, 'तुम्हें दान-ही-दान दिखता है, मेरा क्या होगा?, अब उसके घर की क्या हालत हो रही है? तुमने तो चार लोगों के बीच खड़ा कर दिया।

पण्डित जी! तुम बोलियाँ तो लगवा लेना, परन्तु किसी को पेरना मत। भावुकता में कुछ नहीं कराना। ये पंचमकाल है। मेरे पास कोई आये तो मैं नहीं कहता कि तू व्रत ले ले, क्योंकि उससे नहीं पला, तो वह मुझे कोसेगा और स्वयं तोड़ेगा। तेरे अन्दर वैराग्य हुआ है तो स्वयं व्रत लो, उसके लिये आशीर्वाद है। त्याग किया जाता है और त्याग करके आनन्द आता है। बुद्धिपूर्वक छोड़ना, वही त्याग है। यदि आप आर्यिका बनो, मुनि बनो, तो किसी को पेरना मत। नहीं तो श्रावक घबराने लगेंगे, फिर कोई श्रीफल भी चढ़ाने नहीं जायेंगे चातुर्मास के लिये। श्रावक पहले पता कर लेंगे कि ये पेरते हैं कि प्रेरणा देते हैं? आप विश्वास मानो, समाज बहुत समझदार हो चुकी है, वह सब पता कर लेती है कि इनका पिछला चातुर्मास कहाँ हुआ था, वहाँ उन्होंने क्या-क्या किया था? यह पंचमकाल है, इनके पास दूरसंचार के बहुत अच्छे साधन हैं, सब समाचार ले लेते हैं। ज्ञानियो! ध्यान रखना, त्यागी बनने के परिणाम हों तो त्यागी बनके त्यागी बनना।

आचार्यमहाराज 136वें श्लोक में चक्रवर्ती को साथ लिये हैं। जिसने छः खण्ड का त्याग किया हो, क्या अब वह स्मरण करेगा? मैं हाथियों पर विहार करता था, मैं रथों पर चलता था, यह स्मृति चल रही है, तो छोड़कर तो आये हो, परन्तु छूट कर नहीं आये हो। मैं कूलर में रहता था, फ्रिज का भोजन करता था, पंखों में सोता था, हे ज्ञानी! छोड़ कर आया है, छूट कर नहीं आया। छूट कर आ गया होता तो स्मरण क्यों कर रहा है? वञ्चना है। जिनशासन पर करुणा करो। अल्प साधना करो, पर सत्य साधना करो। बाह्य साधना अधिक करके अन्तरङ्ग भावना को विकृत मत कर लेना। उपवास करके रात्रि में तारे मत गिनना, एकासन कर लेना। उपवास किया है तो रात भर घड़ी मत देखना कि अब कितने बज गये, अब कितने बज गये। तारे मत गिनना, भगवान् का नाम गिनना। उतनी साधना करना जिससे साधना के प्रति श्रद्धा बनी रहे। ऐसी साधना मत करना जिससे साधना पर से श्रद्धा चली जाये। साधना पर से श्रद्धा चली गई तो साधना का फल क्या मिलेगा?

मान लो मेरी बात, कुछ नहीं रखा। रोना, धोना, हँसना, गाना और चले जाना,

इतना ही तो घर में होता है, और क्या होता है? सबसे पहले तू जन्मा तो रोया, पर कुछ लोग हँसे थे। फिर तेरी शादी हुई तो गाना हुये थे, कुछ दिन तक हँस लिये थे। फिर चले जाना। इसके अलावा घर में क्या हुआ था? अरे ज्ञानी! एक बार तो तेरे बाजे बज गये, अब एक बार और बज जायेंगे। एक बार सीधे बज गये, अब उल्टे बज जायेंगे। मेरे साथ चल, रोज बजेंगे, सीधे-सीधे बजेंगे। आपके यहाँ तो बसोरों ने बजाये, यहाँ तो श्रावक बजाते हैं। लेकिन ध्यान रखना, बाजे बजवाने के चक्कर में मेरे साथ मत आ जाना। आपको मालूम होना चाहिये, भैया! महीनों-महीनों हो जाते हैं जब मुझे कमण्डलु उठाने नहीं मिलता और महीनों-महीनों हो जाते हैं जब कोई कमण्डलु उठानेवाला नहीं मिलता। यानि सबके दिन एकसे नहीं होते। एक भैया भिलाई में भीड़ देखकर प्रभावित हो गया, बोला, महाराज श्री! मैं आपके साथ चलना चाहता हूँ। मैंने कहा, क्यों? बोला, आपके साथ इतनी भीड़ रहती है। ज्ञानी! तू चिन्ता मत कर। अभी निर्णय मत कर लेना। इस भीड़ को देखकर मेरे साथ चलेगा तो तुझे रोना पड़ेगा। बोला, ऐसा क्यों बोलते हो? मैं उत्तर नहीं देता हूँ, तुम उत्तर देखना। जब दुर्ग से विहार हो गया, कुछ गाँव और-आगे निकल गये, जब धीरे-धीरे एक-एक आदमी खिसकते गये, जब कोई नहीं बचा, मैंने कहा कि अब देख, क्या करेगा? बोला, महाराज! ऐसा भी होता है? मैंने कहा कि अब लो कमण्डलु। इसलिये **ज्ञानी! भीड़ को देखकर वैरागी मत हो जाना। राग छोड़कर वैरागी होना। मोक्षमार्ग भीड़ का मार्ग नहीं है। मोक्षमार्गी के पास भीड़ हो जाय तो विकल्प नहीं करना, पर मोक्षमार्गी भीड़ में न जाये। समाधि में भीड़ हो सकती है, लेकिन भीड़ में समाधि नहीं हो सकती है।**

नमक की डली में पानी गिरे तो वह पसीज जाती है, पानी-पानी हो जाती है लेकिन तुम्हारे ऊपर इतनी जिनवाणी गिर रही है, फिरभी तुम पसीज नहीं रहे हो? नमक की डली में पानी गिरे तो पानी-पानी हो जाये, सत्य है कि भव्यजीव पर जिनवाणी पड़े तो पानी-पानी हो जाये, लेकिन अभव्य पर चाहे अमृत पड़े फिर भी कुछ होनेवाला नहीं। महाराज! आप सुनाते चलो, मैं सुनता चलता हूँ। अब जो है, सो है।

जब श्रावक का मन पवित्र होता है, तो उसका मन निर्मल हो जाता है। श्रावक चिन्तन कर रहा है। भैया! एक सड़े तिर्यञ्च को देखो, उसके मस्तिष्क में कोटि-कोटि कीड़े बिलबिला रहे हैं। जिस मल के पिण्ड को तुम प्रातः छोड़कर आये थे, दूसरे दिन देखो उसमें भी हजारों कीड़े बिलबिलाते दिखते हैं। वे भी भावी भगवान् हैं, कहाँ पड़े हैं? मल में कीड़े बिलबिला रहे हैं, उसी का भक्षण कर रहे हैं। हे ज्ञानियो! तुझे मल के कीड़े पर दया आती है, पर हे मल के कीड़ो! विषयों के मल में तुम क्यों बिलबिला रहे हो?

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

"आत्मज्ञानी के करने योग्य कार्य"

येन संक्षीयते कर्म संचयश्च न जायते।
तदेवात्मविदा कार्यं मोक्षसौख्याभिलाषिणा॥ 140 सा. स.॥

अन्वयार्थ-येन कर्म संक्षीयते = जिस कारण से पूर्वसंचित कर्मों का क्षय हो जावे **च संचयः न जायते** = व नवीन कर्मों का संचय न हो, **तत् एव** = वह ही काम **मोक्षसौख्याभिलाषिणा** = मोक्ष-सुख के अभिलाषी **आत्मविदा** = आत्मज्ञानी को **कार्यं** = करना योग्य है।

भावार्थ-जिससे पूर्वसंचित कर्मों का क्षय होता है और नवीन कर्मों का संचय नहीं होता है, वही कार्य मोक्षसुखाभिलाषी आत्मज्ञानी मानव को करना चाहिए।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन। जयवन्त हो श्रीजिन नमोऽस्तु शासन और वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक भगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेंद्र की पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा के स्वभाव और विभाव दो धराओं की व्याख्या युगपत् कर रहे हैं। विभाव का अभाव ही स्वभाव है। विभाव में स्वभाव का अभाव ही विभाव है। निज स्वभाव का बोध स्वभाववान् को नहीं होता है, निज स्वभाव का बोध विभाववान् को होता है। जब विभाववान् निज स्वभाव का बोध कर लेता है, तब स्वभाव प्रकट करने का पुरुषार्थ करता है। जब तक विभाव का और स्वभाव का ज्ञान नहीं है, तबतक न स्वभाव की पहचान है, न विभाव की पहचान है; विकार की पहचान है। जहाँ जीव सन्तुष्ट है, वहाँ अशान्ति-ही-अशान्ति है। जब सुख को नहीं पहचान पाता, सुख को नहीं समझ पाता, तब दुःख को ही सुख स्वीकार कर लेता है। यह अनादि की भूल रही है। जब तक जीव ने सुख को नहीं समझा, सुख को नहीं जान सका, तो दुःख को इसने सुख स्वीकार कर लिया है। ऐसा जीव जब तत्त्व की गवेषणा में प्रवेश नहीं कर सका, तो उसने दुःख को सुख ही नहीं स्वीकारा

अपितु दु:ख को सुख का साधन भी स्वीकार लिया। एक साधक ने भी उसको प्राप्त कर लिया और साधक के भेष में सिद्धि की है, तो दु:खभूत सुख की ही सिद्धि की है। मेरी साधना से मुझे स्वर्ग मिले, ज्ञानी! तुमने साधना का प्रयोग क्या किया? साधना का प्रयोग वासना की प्राप्ति। यदि अरहन्त के पादमूल में पहुँच करके, निर्ग्रन्थ के पादमूल में पहुँच करके, भगवती जिनवाणी के पास पहुँच करके यों कहता है, हे भगवान्! हे प्रभो! हे माँ जिनवाणी! मेरी गृहस्थी सुख-साधन से सम्पन्न रहे। अरे अभागे! तूने क्या माँगा? साधना का फल भी वासना स्वीकारा। साधना का फल वासना कि साधना का फल सिद्धि है? हृदय को टटोल लेना और अब प्रश्न करना कि आज तक मैं जिनालय जाता रहा, मोक्ष की भाषा मुख में चलती रही, पर भावों में यही रहा कि सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति हो। जिसे तू सुख-सम्पत्ति कह रहा था, वह सब वासनाभूत थी। तिजारा भी गया, महावीर जी भी गया, पद्मपुरा भी गया, लेकिन सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये। न तूने सम्पत्ति को समझा, न सुख को समझा। जो दु:खभूत फलित हो, वह सुख कैसा? जो विपत्तिभूत फलित हो, वह सम्पत्ति कैसी? जो इन्द्रियसुख की प्राप्ति हुई है, उसका भोग दु:ख देकर जाता है। बड़े-बड़े सम्पत्तिशाली फाँसी लगा लिये, ऐसा क्यों? आपने पढ़ा है कि बहुत बड़े धनपति ने आत्मघात कर लिया है। सम्पत्ति थी, विपत्ति कैसे? जिसकी जेब में करोड़ों का द्रव्य होता है, वह मार्ग में चलते-चलते भयभीत होता है। धीरे-से पूछता है, कोई डर तो नहीं? डर न मार्ग में है, न वन में है, न उपवन है। भय कोई है तो तेरे भीतर जेब में रखी सम्पत्ति है। जिसे तू 'सम्पत्ति' संज्ञा दे रहा है, उसमें विपत्ति है। सम्पत्ति हटा देता, तो सम्पत्ति मिल जाती। **सम्पत्तिशाली वे ही हैं जो सम्पत्तिशून्य हैं, समत्वशाली हैं।** इसलिये निर्ग्रन्थ योगी संसार की सम्पत्ति से युक्त नहीं हैं, पर साम्य-सम्पत्ति से युक्त हैं। उनकी सम्पत्ति कभी विपत्तिरूप फलित होनेवाली नहीं है। डाकू/लुटेरे किसके घर में आते हैं? जिसे आप सम्पत्ति स्वीकार रहे हो, उसके घर में विपत्तिहै।

मित्रो! अधिक जोड़ कर मत जाना, नहीं-तो वृद्ध-अवस्था में तुमको भयंकर दृश्य देखना पड़ेगा। यदि आपके दो बेटे हैं और आपने बहुत सारी सम्पत्ति अर्जित

करके रख ली है तो वह वृद्धअवस्था में तुमको दु:ख देने आनेवाली है। जब तुम्हारे अधिकार छीन लिये जायेंगे, जब तुम्हारा शरीर कार्य करना बन्द कर देगा, जब बेटों का साम्राज्य आयेगा, तो आपके सामने दो लाल लड़ते दिखाई देंगे जैसे बैल लड़ते हैं, वैसे लाल लड़ते दिखाई देंगे। तू उनकी लड़ाई मात्र देख पायेगा, परन्तु सम्पत्ति का भोग तू नहीं भोग पायेगा। फिर तेरे मन में विचार आयेगा 'अहो! मैंने ये क्या किया था? मैंने झगड़ने के लिये खड़ा किया था, कि सुख से रहने के लिये खड़ा किया था?' ध्रुव सत्य है कि विसंवाद वहीं बढ़ते हैं, जहाँ सम्पत्ति विपत्तिभूत खड़ी होती है। और यदि आपने सम्यक् प्रवृत्ति से अर्जित की है, तो वह सम्पत्ति तेरे सम्यक् कार्य में जायेगी।

एक सम्पत्तिशाली पुरुष अरहन्त की प्रतिमा को विराजमान कर रहा है, एक अभागा व्यक्ति जिसने 'धन' कमाया है वह जिनालय में जाकर पंखा लगा रहा है। बस, यही पहचान करना। तेरा द्रव्य धनभूत है, तो मन्दिर में पंखा लग कर आयेगा और सम्पत्तिभूत है, तो अरहन्त के बिम्ब को विराजमान करेगा। एक पुरुष का द्रव्य तीर्थभूमि पर लगा हुआ है जिसकी प्रशस्ति अरहंत प्रतिमा में लिखी हुई है, उस व्यक्ति का भी नाम है। एक व्यक्ति ने तीर्थ में ही दान दिया है, संडास में उसकी पट्टी लगी हुई है। जिसका द्रव्य भावविशुद्धिपूर्वक आया है और भवातीत होने के लिये जा रहा है, वह अरहन्त की प्रतिमा विराजमान करेगा। जिसको हाय-हाय करके अर्जित किया है, ऐसा द्रव्य तीर्थ में भी लगाने जायेगा तो वहाँ उसको संसार का सुख ही दिखेगा, सुविधायें दिखेंगी। ए. सी. कमरों में तो लगा देगा, पर श्रीजी की वेदी में नहीं लगा पायेगा। ये द्रव्य (पैसे) का परिणमन नहीं है, ये द्रव्य का परिणमन है। जैसे तेरे अन्तरङ्ग के द्रव्य का परिणमन होगा, बहिरङ्ग द्रव्य का उपयोग वैसा होगा। जिसका अंतरङ्ग द्रव्य विकृत है, बहिरङ्ग द्रव्य उसका विकारभूत ही लगेगा। एक जीव देह को प्राप्त करके विदेही का पुरुषार्थ कर रहा है और दूसरा जीव देह को प्राप्त करके नरक का पुरुषार्थ कर रहा है। ये भी तो पुरुष बैठे हुये हैं, आपके बीच के युवा हैं, इन्होंने भी शरीर को प्राप्त किया है, युवावस्था को प्राप्त किया है। ये युवावस्था को आप

भोगों की भट्टी में झुलसा रहे हो। बहिरङ्ग द्रव्य का प्रयोग बहिरङ्ग द्रव्य के हाथ में नहीं है, अन्तरङ्ग द्रव्य के हाथ में है। अन्तरङ्ग के द्रव्य से पूछो, आपको पैर लेकर आये हैं कि आप पैरों को लेकर आये हो? शरीर व इन्द्रियाँ कर्त्ता-साधन नहीं हैं, ये करण-साधन हैं। आप पैर को लेकर आये हो, पैर शरीर का अङ्ग है, आपको पैर लेकर नहीं आये हैं। इस बात को स्वीकार कर रहे हो तो जहाँ-जहाँ तू ले जाना चाहता है, वहीं-वहीं तेरे कदम चलते हैं, कि कदम जहाँ चलते हैं, वहाँ तू जाता है? जो व्यक्ति इस भ्रम को लेकर बैठा हुआ है कि भोग भोगो, लिप्त हो जाओ और यूँ कह रहा हो कि मैंने कुछ नहीं किया, यह तो पुद्गल का परिणमन है। देह ने पाप किया है, कर्मों ने पाप किया है, मैं तो त्रैकालिक शुद्ध द्रव्य हूँ। ज्ञानी! कदम लेकर तुझे आये, कि तू कदमों को लेकर आया है?

यह द्रव्यानुयोग की दृष्टि है, यह न्यायशास्त्र की दृष्टि है। हेतु के अभाव में व्याख्यान कैसा? तथोत्पत्ति, अन्यथोत्पत्ति। ये ही सम्पूर्ण सिद्धान्तों को पूर्ण करते हैं। यदि इस देह में आत्मा न होती, तो कदम चलते कैसे? कदम चल रहे हैं, तो आत्मा की सिद्धि क्यों नहीं? पैर ही चलते हैं, तो मुर्दे को क्यों नहीं चलाते हो? कदम चलते हैं तो मुर्दे में कौन-से पैर का अभाव हुआ है? द्रव्य से पाँचों इन्द्रियाँ उस मुर्दे के अन्दर हैं। लगता है कि जैन-आगम को न समझने के कारण, बाहरी चर्चा में जब व्यक्ति उलझ गया, तो कोई पुद्गलवादी हो गया, कोई ईश्वरवादी हो गया। जरा भी कष्ट होता है तो वह धीरे-से कहता है, 'हे भगवान! आप मेरे पर ही क्यों नाराज हो?' जो नाराज हो गया, वह भगवान् कैसा? भगवान् है, तो नाराज कैसा? अपने कर्मों को देखते नहीं हो।

एक मुमुक्षु पारसनाथ के चरणों में पहुँचा और कहता है, प्रभो! मेरे संकटों का शमन हो जाये और तेरे तीव्र अशुभ कर्म का उदय था, संकट तेरे नहीं मिटे, तूने हजार-हजार मन्त्रों की मालायें फेर लीं, अब धीरे-से कहता है 'अरे! मैंने देख लिया, भगवान् में कोई शक्ति नहीं है।' अरे अभागे! अपने अशुभ कर्म को तो कोस नहीं रहा है, भगवान् की शक्ति को दोष दे रहा है। भगवान् तेरे नौकर नहीं हैं जो तेरे संकट दूर करने आयेंगे। यदि संकट दूर करना है, तो उनके जैसी

साधना करो, कभी संकट ही नहीं आयेंगे। संकट देहाश्रित है। जब कर्म ही नहीं बचेंगे, तो संकट कहाँ बचेगा? इसलिये कर्मों का अभाव करो तो संकट समाप्त होते हैं। कहता है कि दु:ख मिट जाये, दु:ख मिट जाये और दु:ख के हेतुओं को मेटना नहीं चाहता। गीला वह हो, जो कपड़े पहने है। निचोड़ना किसको पड़ता है? खुले आकाश में तू खड़ा हो जायेगा तो तुझे ठिठुरना पड़ जायेगा। मुनिराज खुले आकाश में चले जायें तो जितना गिरेगा, उतना बह जायेगा। परन्तु जो कपड़े पहनेगा, उसे ही निचोड़ना पड़ेगा। जो कपड़े उतार कर फेंक चुका है, उसे कुछ नहीं निचोड़ना पड़ता। जो कर्म करेगा, उसे ही कर्म निचोड़ना पड़ेंगे। जो कर्म ही नहीं करेगा, उसे कर्म क्या निचोड़ने पड़ेंगे? एक यूँ कह रहा है कि परमात्मा ने मुझे दु:ख दिया है। विश्व में सबसे सीधा-साधा यदि कोई है, तो उसका नाम ईश्वर है। ज्ञानी कुछ भी करके आता है, भगवान् के नाम पर थोप देता है। यदि भगवान् यहाँ मेरे-जैसे बैठे होते, तो कहते, सुन ज्ञानी! मैंने कब ऐसा तेरा काम किया? कर्म स्वयं कर रहा है और दोष भगवान् को दे रहा है।

तेरा सुकृत तुझे ही फलित होगा, तेरा दुष्कृत तुझे ही फलित होगा। बेटा!जीवन में कभी यह मत कह देना कि मैं पिता के भाग्य से खा रहा हूँ और वृद्ध पिता से बोल भी दिया हो तो आज जाकर चरण छूकर क्षमा माँग लेना कि मैंने जीवन में बहुत बड़ी भूल की है। एक साधक दूसरे साधक से गोमटेश्वर में बोल रहे थे कि यदि आप मेरे गुरु का नाम नहीं लोगे, तो तुमको कोई रोटी खिलाने वाला नहीं मिलेगा। मैं सुन रहा था। मुझे दु:ख नहीं हुआ, कष्ट हुआ। विपाकविचय धर्म्यध्यान सामने आया—अहो! जिनलिंग धारण करके भी ये जीव जिनभाव प्राप्त नहीं कर सका। दिगम्बर जैन मुनि बनके भी जैन नहीं बन सका तो जीवन में क्या बना? **दीक्षा लेने के पहले, मुनि बनने के पहले, साधु बनने के पहले सच्चा जैन बन जाना। मात्र अभक्ष्य का त्यागी, देव-शास्त्र-गुरु का उपासक, इतना ही जैन नहीं है। यह जैनाचरण है; परन्तु जो जैनत्व है, वह है 'कण-कण स्वतन्त्र है अणु-अणु स्वतन्त्र है।' यह सच्चे जैनी की पहचान है।** मेरे किये कर्म को मैं भोगूँगा, तेरा किया कर्म तू भोगेगा। यदि मेरा कर्म पर भोगने लग गया, तो पर का किया कर्म व्यर्थ चला जायेगा। मेरे गुरु का नाम नहीं लोगे तो

रोटी खाने को नहीं मिलेगी, ज्ञानी! तुम अज्ञानता में कहाँ चले गये? गुरु के नाम से रोटी नहीं मिलती। प्रभु के नाम से नहीं मिलती। जो रोटी के लिये गुरु व प्रभु का नाम ले रहा है, वह न गुरुभक्त है, न प्रभुभक्त है। वह तो रोटी का दास है। वह तो रोटी की व्यवस्था के लिये जी रहा है। एक आजीविका को स्वीकार कर लिया है, कि पैसे नहीं कमा सका था सो प्रभु और गुरु का नाम लेकरके पेट पूजा करो। प्रभु या गुरु के नाम से नहीं मिल रही है, यह लाभान्तराय व भोगान्तराय कर्म के उदय (क्षयोपशम) से मिल रही है। यदि लाभान्तराय और भोगान्तराय कर्म का उदय (क्षयोपशम) नहीं होगा और उदय तीव्र चल रहा है, तो अंजुली में आयी हुई रोटी भी तुझे छोड़ना पड़ जायेगी, बीच में बाल आ गया। क्या करोगे?

माताओ! आज से बूढ़ी सासू माँ को सताना मत और यह मत कह देना कि माँ शान्ति से बैठकर खा लो, मैं ही खिला रही हूँ। तू क्या खिलायेगी? उस बुढ़िया का पुण्य न होता तो तेरे-जैसी अच्छी बहू मिलती कैसे? बुढ़िया! तू भी मत कहना कि मेरे घर में आकर तू राज्य कर रही है। ये सब व्यर्थ की बातें छोड़ो। उस बहू का पुण्य न होता तो तेरे घर में उसे राज्य करने कैसे मिलता? आज घर जाकरके अपनी भाषा को बदल देना। भूल से भी, स्वप्न में भी, ऐसा बोल दिया हो तो प्रायश्चित कर लेना। कर्मांश न मुनि को देखता है, न भगवान् को देखता है। वह अपना काम करता है। तीर्थंकर ऋषभदेव को छः महीने तक घूमना पड़ गया। कर्म किसी का सगा नहीं है। वह न किसी से रिश्वत लेता है, न किसी की सिफारिश लेता है। वह कहता हैकि तुम कौन होते हो मुझे रिश्वत देने वाले? मैं तीर्थंकर को नहीं छोड़ता हूँ तो आप हो कौन? ध्यान रखना जगत् में किसी से आपको डर लगे या न लगे, लेकिन कर्मबन्ध से तो डरना, कर्मबन्ध से डरेगा तो नियम से पापों से डरेगा।

कदम तेरे चले, कि कदम तूने चलाये? जीवन में ध्यान रखना, पुद्गल कह कर काम नहीं चलेगा, परमात्मा कह कर काम नहीं चलेगा। आज सारे जगत् में जो अनाचार फैल रहा है, यह दो बातों का फैल रहा है। परमात्मा के नाम

पर भी अनाचार फैल रहा है। तू यह कह रहा है, महाराज श्री! मैंने कुछ नहीं किया, ईश्वर की मर्जी से हुआ है। अनर्थ कर डाला, जीवों के टुकड़े करके फेंक दिये और कह रहा है कि यह ईश्वर की इच्छा से हुआ है। जीवों की आहुतियाँ देदीं और कह रहा है कि ईश्वर की इच्छा से हुआ है और इधर तूने व्यभिचार-जैसे खोटे पाप कर लिये और धीरे-से कह दिया कि पुद्गल का परिणमन पुद्गल में चल रहा है। यह अनर्थ हो गया। 'समयसार' के साथ छल किया गया है। इसे आपको स्वीकारना पड़ेगा। भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक नहीं कुछ भी कर लो। दिन-रात पशुओं जैसा चर रहा है और धीरे-से कहता हैकि आत्मा शुद्ध है, यह तो पुद्गल का परिणमन चल रहा है। ज्ञानी! यह पुद्गल का परिणमन नहीं चल रहा है, यह तेरी परिणति का परिणमन चल रहा है।

मेरा पुनः प्रश्न है कि कदम तुझे लेकर आये, कि तू कदमों को लेकर आया? एक बार उत्तर दे दो, फिर आगे चलते हैं। अपने भीतर का निर्णय बोलना। 'हम पैर लेकर यहाँ आये हैं।' इसका मतलब है कि पूरी सभा यहाँ ज्ञानी है। पैर निमित्तभूत है, उपादान तो तेरा ही है। यदि आत्मा के परिणाम न होते, तो जो पैर प्रवचनसभा की ओर चले हैं, वे कहीं-और भी तो जा सकते थे। जैसा तूने विचार किया था, वैसा अनेक ने भी सोच लिया होगा कि चलकर उपदेश सुनेंगे। जब से तुमने विचार किया था, तब से गुदगुदी प्रारम्भ हो चुकी थी और पुण्यास्रव प्रारम्भ हो चुका था और पापास्रव नष्ट होना प्रारम्भ हो चुका था। ऐसे-ही जब तुम पाप का विचार करते हो, तब पुण्य का बन्ध होना बन्द हो जाता है और पाप का बन्ध प्रारम्भ हो जाता है। जरा-से स्पर्श मात्र के पीछे पूरे जीवन में कलंक लग जाता है। अब चाहे इस पर्याय में कोटि-कोटि द्रव्य कमाकरके मन्दिर खड़ा कर देना, श्री जी विराजमान कर देना, लेकिन हे ज्ञानी! तू 'बालब्रह्मचारी' शब्द को प्राप्त नहीं हो सकता है। कोटि-कोटि जिनालय खड़े कर देना, परन्तु तेरा बालब्रह्मचर्य समाप्त हो चुका है। इस पर्याय में कोई ताकत नहीं कि तुझे बालब्रह्मचारी बना सके। पैकिंग की खुली शील पुनः बन्द कर सकते हो, परन्तु जिसकी जीवन की शील खुल चुकी होती है, उसको बन्द करने की कोई शक्ति

नहीं है। इस पर्याय में पुरुषार्थ करके तुम भविष्य में भगवान् तो बन सकते हो, लेकिन इसी पर्याय में पुरुषार्थ करके तुम बालब्रह्मचारी नहीं बन सकते हो। मुझे मत देखो, हृदय में प्रवेश करके चिन्तन करो। **जीवन का सबसे महान् कोई व्रत है तो कौमार्य व्रत है। जिसने कौमार्य व्रत की रक्षा कर ली है, उसकी कुमरण से रक्षा हो गई है।** अहो कुमारो! अहो कुमारियो! इस कौमार्य व्रत की रक्षा करो। दुनियाँ की क्रीम-पाउडर लगा करके चेहरे को चमका सकते हो, लेकिन बाहर के इन द्रव्यों से शील को नहीं चमका सकते। मेरे पास समाचार आया कि विशुद्धसागर महाराज से बोल दो कि समयसार का प्रवचन करना बन्द कर दो। अहो ज्ञानी! समयसार का प्रवचन बन्द कर दोगे तो तुम मुनिराज बने क्यों हो? मुनि बन कर भी समयसार नहीं पा पाये, तो मुनि बन कर तुमने किया क्या? भैया! इस पर्याय में तुम तीर्थ खड़े कर सकते हो, लेकिन बालब्रह्मचर्य व्रत इस पर्याय में तो प्राप्त नहीं कर सकते हो। अभी तक तो आप मुस्कराते रहे, लेकिन आज चेहरा कह रहा है कि मुझे मालूम नहीं था कि मैं इतनी बड़ी सम्पत्ति अपने हाथ से खो चुका हूँ। इतनी बड़ी सम्पत्ति को न खोने वाले पूरी चौबीसी में पाँच ही हैं। वासुपूज्य, मल्लि, नेमि, पारस, वीर यति।

द्रव्य (वित्त) से द्रव्य-साधन तो जुटाये जा सकते हैं, परन्तु द्रव्य से द्रव्य-सिद्धि नहीं होती है। द्रव्य-सिद्धि चाहिये, तो भाव की शुद्धि चाहिये। भावों की विशुद्धि नहीं है तो कोई द्रव्य की सिद्धि नहीं है। कदम लेकर आप आये हो, यह आपने बहुत अच्छा बोला, मैं प्रसन्न हो गया। **जैसे तुम कदम लेकर आते हो, वैसे इन्द्रियों को लेकर भी जाते हो। इन्द्रियाँ पापों में तुम्हें लेकर नहीं जाती हैं। इन्द्रियाँ करण-साधन हैं, इन्द्रियाँ कर्त्तासाधन नहीं हैं। कर्त्ता जैसे परिणाम करता है, इन्द्रियाँ वैसा परिणमन करती हैं।** जो मुख जिनवाणी बोल रहा है, वही अज्ञानी का मुख गाली बोलता है। जो मुख भगवान् कह सकता है, ज्ञानी कह सकता है, मुमुक्षु कह सकता है, वही मुख तुम्हारे लिये गाली भी दे सकता है। मुख कुछ नहीं कर रहा है, मुखिया जो करवाता है, मुख वही करता है।

ज्ञानी को जब कोई वस्तु नहीं देनी होती है तो वह कहता है कि बेटे की

माँ से पूछना पड़ेगा। जैसे तू पूरा उसके अनुसार ही चलता हो। क्योंकि सीधा मना तो कर नहीं सकता। कहीं दोनों इकट्ठे दिख जायें तब कहो कि अब तो दे दो, तो बोलेगा कि बच्चों से भी पूछना पड़ेगा। समझ लो कि ये शुद्ध बहाने बना रहा है, यह देना नहीं चाहता है, सत्यता यह है। ये तो अन्य बाहर के लोग हैं। बच्चों से पूछना, तो कहेंगे पिता जी से पूछेंगे। ज्ञानी! अब तू तो पिता है, तू ही हाँ/नहीं में उत्तर दे दे।

कभी कहता है कि कान वश में नहीं हो रहे हैं। कभी कहता है कि आँख वश में नहीं हो रही है। कभी कहता है कि नाक वश में नहीं हो रही है। अरे ज्ञानी! तू ही वश में हो जा तो दुनियाँ सब वश में हो गई। **इन्द्रियों को वश में मत करो; अपने ज्ञान को ज्ञान में लीन कर लो, यही इन्द्रियों का वशीकरण है।**

ज्ञानी! तू इस पंखे को बन्द करने आयेगा, फिर उसको करेगा, तो थक जायेगा। अतः एक काम कर, मैन स्विच को गिरा दे, तो सारे पंखे सारे बल्ब अपने आप बन्द हो जायेंगे, शान्ति हो जायेगी। ऐसे ही न तुम कान वश करो, न नाक वश करो, न आँख वश करो। वश करना है तो आत्मा को वश कर लो, तो तेरी सारी इन्द्रियाँ वश हो जायेंगी।

वस्तुस्वरूप समझो। पुनः-पुनः स्वीकारना पड़ेगा कि भारतभूमि के निर्ग्रन्थों को अपने भाषण की भाषा को प्रवचन की भाषा बनाना ही पड़ेगा। भारतभूमि पर जितने भी पिच्छीधारी हैं, इनको भाषण की भाषा समाप्त करके प्रवचन की भाषा स्वीकारना ही पड़ेगी। जिसमें तत्त्व-उपदेश नहीं, वह भाषण मात्र है। जिनेन्द्रदेशना का नाम प्रवचन है। भाषण से कल्याण नहीं होगा। नेता जगत्-मार्ग का भाषण देता है, मोक्षमार्ग का नेता प्रवचन देता है। इतना दोनों में अन्तर होता है। श्रावक इतने शान्त क्यों हैं? इस समय जो आप अनुभव कर रहे हो, उसको अपना ज्ञेय बना लो। परिणामों की धारा ऊपर-नीचे हो रही है। अपनी-अपनी भूलें समझ में आ रही हैं। लोक में आप तटस्थ होकर देखना। पुद्गल कर रहा है, इन शब्दों को लेकरके जीव स्वच्छन्दी हो गये। ज्ञानी! पुद्गल तो पुद्गल का ही कर्त्ता होता है; पुद्गल जीव का कर्त्ता नहीं होता है।

मेरी तर्जनी अंगुली में चींटी काट जाये, तो उसके काटने पर जो लालिमा आयेगी, फूलन होगी, पीड़ा होगी, तो तर्जनी में होगी कि मध्यमा में? तर्जनी में। तर्जनी भी पुद्गल है, मध्यमा भी पुद्गल है। जब तर्जनी का परिणमन मध्यमा में नहीं हो पा रहा है और मध्यमा का परिणमन तर्जनी में नहीं हो रहा है, तो तन का परिणमन चेतन में कैसा और चेतन का परिणमन तन में कैसा? तुम पुद्गल कह करके आनन्द लूट रहे हो। आप वाहन में अवश्य आये हो, लेकिन वाहन आपको लेकर नहीं आया। ध्रुव सत्य यह है कि वाहन अपनी क्रियावती शक्ति से आया है और तुम अपनी क्रियावती शक्ति से आये हो। परन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध अवश्य रहा है। जीव और पुद्गल, दो ही द्रव्य ऐसे हैं जिसमें क्रियावती शक्ति है। जीव कर्म व चेतन को नहीं जान पाया। जब तक शुद्ध चेतना की प्राप्ति नहीं हो रही है, तब तक यदि अपनी चेतना को कर्मफलचेतना से बचाना है, तो कर्मचेतना को प्रशस्त करो। ज्ञानचेतना की ओर भी कर्मचेतना के बल पर जायेगा और कर्मफल चेतना में भी जायेगा तो कर्मचेतना के बल पर जायेगा। ज्ञानियो! ज्ञानचेतनाबीच में रखी हुई है। ज्ञानचेतना को प्राप्त करेगा तो कर्मचेतना से और कर्मफल चेतना में भी जायेगा तो कर्मचेतना से।

आप यूँ मत कहना कि आप कठिन शब्दों का प्रयोग क्यों करते हो? इसलिये करता हूँ कि हमारे इन युवाओं को मालूम चल जाये कि हमारे धर्म की भाषा चिल्लू-पिल्लू नहीं है, प्रौढ़ है। धर्म की भाषा मंत्रित अभिमंत्रित भाषा है। बाहर की भाषा में ताली तो बज जायेगी, दाँत दिख जायेंगे, परन्तु चेहरे पर गम्भीरता नहीं आयेगी। ये धर्म की भाषा है। जयपुर में बापू नगर में वाचना चल रही थी। मैंने एक बालक से पूछा, बेटा! तू इतनी भीषण गर्मी में समयसार सुनने आता है, कुछ समझ में आता है क्या? वह बोला, आचार्य श्री! समझ में तो कुछ नहीं आता, पर आप जो बोलते हो, उसको सुनने में आनन्द आता है, इसलिये मैं आता हूँ। शब्द समझने में आ जाये, कोई बड़ी बात नहीं है। जो सुनने में आनन्द आ रहा है, वही तेरी बात है। वह आनन्द शब्दों का नहीं है, विशुद्धसागर का नहीं है। ये तेरे चित्त में जो विशुद्धि बढ़ रही है, उसका आनन्द है शब्दों को कोई

आनन्द नहीं होता। श्रोता के अन्दर जो विशुद्धि है, श्रद्धा है, उसी में आनन्द है। विशुद्धि और श्रद्धा नहीं है, तो भगवान् भी बोलें तो मारीचि समवसरण छोड़कर भाग जाये। यदि वाणी में आनन्द है, भगवान् में आनन्द है, तो मारीचि को आनन्द क्यों नहीं आया? जब आनन्द आया, तो भगवान् नहीं मिले, श्रावकपना भी नहीं मिला, लेकिन सिंह की पर्याय में दो मुनियों के उपदेश सुनकर महावीर बन गये।

आनन्द श्रद्धा में है, आनन्द विश्वास में है। आनन्द मिठाइयों में नहीं, आनन्द तो माँ की गोदी में है। मेले में गुमे बालक को कोई कुछ भी दे, लेकिन वह शान्त नहीं होता है। माँ की गोद मिल जाये तो चुप हो जाता है। आनन्द किसमें था? माँ में श्रद्धा थी, दूसरे के धमाके-पटाके में कोई श्रद्धा नहीं थी।

वस्तुस्वरूप तो जो है, सो है। ज्ञानियो! आज से अपने अन्तरङ्ग के इस भ्रम को निकाल कर फेंक देना कि पुद्गल का परिणमन चल रहा है। ज्ञानी! चैतन्य का परिणमन चैतन्यभूत है, पुद्गल का परिणमन पुद्गलभूत है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अवश्य है, लेकिन स्वभाव सम्बन्ध नहीं है। कहीं ऐसा सोच करके अशुभ गति में प्रवेश मत कर जाना कि सारे पाप करता रहे और यूँ कहता रहे कि मैं तो कुछ कर ही नहीं रहा हूँ, यह देह कर रही है। ज्ञानी! देह तो कर रही है, लेकिन रसपान कौन कर रहा है, स्वाद कौन ले रहा है, अनुभूति कौन ले रहा है, हर्ष-विषाद किसमें हो रहा है? पुद्गल में नहीं हो रहा है, अशुद्ध आत्मा में हो रहा है। बाहर का अनुभव शुद्ध आत्मा में नहीं है, अशुद्ध आत्मा में है। आगम के शब्दों को विवेक से बोलना, नहीं-तो ये ज्ञानी कल कहेंगे कि फिर तो सिद्धों में भी होगा? ज्ञानी! सिद्धों में नहीं होगा, असिद्धों में होगा। आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं, हे जीव! अपने अज्ञानीपने को छोड़ दो और जो ज्ञानी के करने योग्य कार्य है, उनको करने का पुरुषार्थ करो।

आगम के रहस्यों को पकड़ो। सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा कि भगवान् महावीर की वाणी पंचमकाल में आज भी भारतभूमि पर गूँज रही है। आपकी पर्याय भी झलक रही है और उन पापियों की पर्याय भी झलक रही है जो सुबह से चाय के ग्लास लिये बैठे होंगे। ऐसे भी लोग होंगे, जो घर में बैठे गप्पें कर रहे होंगे, होंठ जला रहे होंगे, परन्तु कानों में जिनवाणी सुनने का भाव नहीं कर रहे।

ज्ञानियो! जिनके अशुभ कर्म तीव्र होते हैं, उनके मन में जिनवाणी सुनने के भाव नहीं आ सकते। आपको मालूम है कि आँखों में सूजे घुसा लिये, लेकिन वर्द्धमान के दर्शन नहीं किये। (ऐसा अन्य ग्रन्थों में आता है कि महावीर की मौसी से लोगों ने कहा, माँ! चलो। वर्द्धमान का समवसरण लगा है। वो कहती है कि कौन वर्द्धमान? मेरे आँगन में नंगा घूमने वाला? मैं उसके दर्शन करूँ क्या?लोगों ने जबरदस्ती रथ में बिठाल लिया। जैसे-ही समवसरण के पास पहुँची, बोली, मैं क्यों करूँ दर्शन? और शलाका लेकरके आँखों में डाल लीं।)

ज्ञानियो! **जिसकी अभवितव्यता प्रचुर है, अज्ञानता प्रचुर है, मिथ्यात्व प्रचुर है, उसे तुम अरहन्त की वाणी नहीं सुनवा सकते हो। जगत् में ऐसे भी लोग हुये हैं जो जिनालय को देख करके कानों में अंगुली डाल कर चला करते थे।** जैनमन्दिर है, कानों में शब्द न पड़ जाये। परन्तु एक शब्द ने मुनिराज बना दिया। कभी-कभी अनिष्ट भी इष्ट होता है। शिवकोटि राजा जब जिनालय के सामने से निकले थे तो कानों में अंगुली लगा लिये। ऐसा नियोग बना कि उसी समय काँटा लग गया। जैसे ही काँटा निकालने को तैयार हुये, कानों से अंगुली निकल गई। अहिच्क्षेत्र पारसनाथ में एक वीतरागी तपोधन 'देवागम स्तोत्र' का पाठ कर रहे थे।

देवागम नभोयान चामरादि विभूतयः।
मायाविष्वपि दुश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्॥ आ. मी.॥

इस कारिका को सुनते ही सम्राट मन्दिर के अन्दर जाने लगा, तो मन्त्री हाथ पकड़ने लगा, 'महाराज! कहाँ जा रहे हो? यह जैनमन्दिर है।' सम्राट बोले, 'छोड़ो यह जिनमन्दिर है, यह समत्व की ओर ले जाने वाला है।' हाथ छुड़ाकर अन्दर प्रवेश किया। सिर झुकाकर मुनिराज से कहता है, 'हे स्वामी! आप जो पाठ कर रहे हो, इसे मुझे समझा दो।' धन्य हो उन योगी की निष्पृहता को। उन्होंने कहा, 'राजन्! मेरे से अर्थ नहीं बनता।' हे स्वामी! पहले तुम्हारे ऋजु परिणामों की वन्दना है। नमोस्तु करो ऐसे मुनि को, जिनने अहंकार में आकर यह नहीं कहा कि हाँ, समझा दूँगा। नहीं बनता था, तो यही कहा कि मेरे से नहीं बनता। जब

तक इतनी सरलता नहीं आयेगी, तब तक मोक्षमार्ग भी दूर है, मोक्ष की बात तो छोड़िये। सरलता के अभाव में मोक्षमार्ग कहाँ? और मोक्षमार्गी बने बिना मोक्ष कहाँ?

मुनिराज कहते हैं, 'राजन्! मेरे से अर्थ नहीं बनता।' राजन् बोले, 'तो क्या आप वह कारिका मुझे पुनः सुना सकते हो?' हाँ, सुना सकता हूँ। राजा ने सुनते ही कहा कि यह है भूतार्थ, यह है सत्य। सेना बाहर खड़ी हुई है, इन्तजार ही कर रही है और वहाँ युद्ध प्रारम्भ हो गया। किससे? कर्मो से। और कान में अंगुली डाल कर चलने वाला केशलुंचन करने लग गया। भगवान् पारसनाथ स्वामी के चरणों में मुनिदीक्षा को प्राप्त हो गया। वे ही शिवार्य स्वामी हुये, जिन्होंने 'भगवती आराधना' ग्रन्थ लिखा। दूरियाँ बना दी गई हैं, लेकिन एक बार नजदीक आ जाये, तो समझ में आता है कि वस्तुस्वरूप क्या है? जब पास में आओ, तब समझ में आता है कि लोग कहते कुछ हैं, होता कुछ अन्य है। होता तो होता ही है। जो कहा जाता है, वह होता हो, ऐसा नियम नहीं होता। दूरियाँ बना दी। गौतम जब तक महावीर के चरणों में नहीं पहुँचे, तब तक अहंकार में डूबे रहे कि मैं कुछ हूँ। जब वे वर्द्धमान के चरणों में पहुँचे, तो शिष्य बनने नहीं गये थे, गुरुता दिखाने गये थे, लेकिन शिष्य बन कर बैठ गये। एक दिन में महावीर के 1503 शिष्य बन गये। ये है वस्तुस्वरूप।

आज घर जाकर कह देना कि न तू मेरा कर्त्ता, न मैं तेरा कर्त्ता। 'होता स्वयं जगत् परिणाम, मैं जग का करता क्या काम?' ऐसा मात्र मन्दिर में कहता है जिससे कि भगवान् की पूजा न करना पड़े। घर में नहीं कहता कि दुकान न चलाना पड़े।

यहाँ यही उपदेश दे रहे हैं कि 'सबके दिन एकसे नहीं होते।' सोलह हजार महारानियों का स्वामी जब जन्मा, तो जेल में और मरण हुआ तो जंगल में। जन्म में कोई थाली बजानेवाला नहीं मिला और मरण हुआ तो जंगल में। कोई अश्रु गिराने वाला नहीं मिला। 'सबके दिन एकसे नहीं होते।' नारायण कृष्ण की मृत्यु जरत् कुमार द्वारा जंगल में हुई। तुम कौन-से खेत की मूली हो? इसलिये कभी

सुख में फूलना मत और दु:ख में कूलना मत। ये दोनों पुद्गल की पर्यायें हैं। 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।' हे मोक्षाभिलाषियो! जिससे नवीन कर्मों का संचय न हो और पुराने कर्मों का क्षय हो, ऐसा पुरुषार्थ करो। इसी से आत्मा की सिद्धि होगी। भैया पानी लेने गया, पर पानी लेकर नहीं आ पाया। स्वर्ण के ग्लास में पानी पीने वाले बलदेव दोने में पानी लेकर आये, पर भैया को पानी पिला नहीं पाये। पिलानेवाला कौन है? जब तक आयुकर्म का पुण्य साथ दे रहा है, तो सारे जगत् में पिलानेवाले हैं। जो पुण्य को पी गया तो कोई पिलानेवाला नहीं है। अहंकार को समाप्त कर देना और हीनभावना मत रखना। कोई किसी को आनन्द देनेवाला नहीं है। तेरा भाग्य है तो श्मशान घाट में भी रक्षा करनेवाले मिल जायेंगे और भाग्य नहीं है तो घर में ही फाँसी देनेवाले मिल जायेंगे, इसलिये कहीं मत जाना, निज के भीतर झाँक कर देखना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"देवगति के सुख"

अनेकशस्त्वया प्राप्ता विविधा भोगसम्पदः।
अप्सरागणसंकीर्णे दिवि देवविराजिते॥ 141 सा.स.॥

अन्वयार्थ-अप्सरागण संकीर्णे = देवियों से भरे हुए और **देव विराजिते** = देवों से शोभायमान **दिवि** = स्वर्ग में **त्वया** = तूने **अनेकशः** = अनेक बार **विविधा** = नाना प्रकार की **भोगसम्पदः** = भोगसम्पदाएँ **प्राप्ता** = पाईं हैं।

भावार्थ-हे आत्मन्! अप्सराओं से भरे हुए और देवों से शोभित स्वर्ग में तूने अनेक बार नाना प्रकार की भोग-सम्पदा प्राप्त की है।

॥ सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' ग्रन्थ में देवगति का व्याख्यान कर रहे हैं। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन।

आचार्य कुलभद्र स्वामी प्राणियों के कल्याण हेतु, तत्त्व-पिपासुओं को जिनेन्द्र की पीयूष सर्वज्ञवाणी का पान करा रहे हैं।

हे मुमुक्षु! हे भव्य! तूने अप्सराओं से परिपूर्ण एवं देवों से शोभित स्वर्ग में अनेकानेक बार सम्पदा को प्राप्त करके जन्म लिया है। स्वर्ग सम्पदा को प्राप्त करके भी शाश्वत सुख को प्राप्त नहीं किया।

श्रमण परम्परा में महान् वीतरागी आचार्यभगवन्तों ने अपनी साधना के अमूल्य समय को निकालकर श्रुत का लेखन करके यह बहुत बड़ी अनुकम्पा की है। विश्वास रखना, यह श्रुत न होता तो आज हमारी संस्कृति का न-जाने क्या होता? बहुत बड़े खट्टे-मीठे दिन हमारे बुजुर्गों ने देखे हैं, परन्तु अन्तस् की आस्था संकट को संकट महसूस नहीं होने देती। कष्ट वहाँ होता है, जहाँ आस्था का अभाव होता है। दुःख वहाँ होता है, जहाँ श्रद्धा का अभाव होता है। माँ से पूछना, प्रसूति की वेदना होती है कि नहीं? पर सन्तान का राग पीड़ा की ओर नहीं ले जाता। ऐसी कौन-सी नारी होगी जिसे यह ज्ञात नहीं होता है कि गर्भाधान होगा तो पुत्र जन्म लेगा, उसकी वेदना मुझे ही सहन करना पड़ेगी। फिर भी पुत्र को जन्म दे रही है, कारण क्या है? मेरा वंश चलेगा, मेरी परम्परा चलेगी। सन्तान होगी

तो सनातन धर्म चलेगा। इस आस्था ने माँ को पीड़ा महसूस नहीं होने दी। सन्तान के राग में जब पीड़ा पीड़ित नहीं होने देती है, तो जिसको शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति का लक्ष्य होता है, उस योगी को उपसर्ग/परीषह की पीड़ा में पीड़ा ही नहीं होती है, क्योंकि तुम्हारा लक्ष्य संसार नहीं है, सनातन शिवत्व है।आस्था में दु:ख नहीं होता है लेकिन अनास्था में पल-पल में पीड़ा होती है। आस्था में पीड़ा नहीं होती, कष्ट नहीं होता, क्लेश नहीं होता है। जिसको आस्था नहीं है, उसको क्लेश-ही-क्लेश है। इसलिये आगम में ज्ञान की बात बाद में की है, चारित्र की बात और-बाद में की है, सबसे पहले श्रद्धा की बात की है। जिसका श्रद्धान पवित्र है, जिसकी आस्था निर्मल है, जिसका विश्वास पवित्र है, उसको जगत् में कोई संकट नहीं है। वस्तु सुख या दु:ख नहीं देती। वस्तु तो वस्तु है। जिसकी जिससे मोह की पूर्ति हो रही है, उससे उसको सुख मिलता है। जिसकी जिससे मोह की पूर्ति नहीं होती है, उससे उसको दु:ख मिलता है; परन्तु वस्तु ने कभी न सुख दिया न दुख दिया। वह वस्तु तो वस्तुभूत है; वह अपने वस्तुत्व गुण से युक्त है।

लोक में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जिसने अपने अस्तित्व धर्म का नाश किया हो, वस्तुत्व गुण का नाश किया हो। अस्तित्व और वस्तुत्व गुण पर दृष्टि यदि चली गई, तो कभी आँख से आँसू नहीं गिर सकता है। हमने सबकुछ सीख रखा है, पर कभी अस्तित्व-वस्तुत्व गुण पर दृष्टि नहीं ले गये। इन पर जैसे-ही दृष्टि जाये, तब धीरे-से प्रमेयत्व गुण पर दृष्टि ले जाना। आगम की भाषा अत्यन्त गूढ़ है। मेरी सत्ता का नाश कब होगा? कभी नहीं। जगत् में किसी द्रव्य की सत्ता का नाश नहीं होता है, तो विकल्प किस बात का है? सत्ता का नाश तो नहीं हो सकता है। सत्ता का नाश हो गया तो द्रव्य का लक्षण समाप्त हो जायेगा। 'सद् द्रव्यलक्षणं' द्रव्य का लक्षण सत् है। बस, कुछ नहीं। रुलाता मोह है, हँसाता मोह है। यदि सत् का बोध हो जाता है तो न हर्ष है, न विषाद है। जो है, सो है। सत् का नाश नहीं होता है, असत् का उत्पाद भी नहीं होता है द्रव्यदृष्टि से। पर्यायदृष्टि से सत् का नाश भी होता है, असत् का उत्पाद भी होता है।

स्वर्ग का देव भी जब सत् को नहीं समझ पाता है तो आकरके एकेन्द्रिय बनता है, वृक्ष (वनस्पति) बन जाता है। जूही, चम्पा, चमेली ये सब कौन हैं? तँह ते चय थावर तन धरे। जो देव स्वर्ग से च्युत होकर आयेगा, वह कभी काँटा नहीं बनेगा, उत्कृष्ट जाति का पुष्प बनता है और जीवन में यह ध्यान रखना कि यह लोक की व्यवस्था है जो व्यवस्थित है। मनुष्य, देव और नारकी इन तीन जीवों को भिन्न कर लो, शेष जितने जीव बचे हैं उन सब की गणना तिर्यञ्च गति में है। यह नियोग है कि कठिन विषय को भी समझने का प्रयास कर रहे हो। **'माया तैर्यग्योनस्य'** मायाचारी का फल तिर्यञ्च गति है। जितने काँटेदार वृक्ष हैं वह भी तो जीव हैं।

ज्ञानी! अकौआ में तीर्थंकर भगवान् विराज सकते हैं, इसलिये सुबह से दाँत घिसने के लिये भगवान् की डाली मत लाया करो। इन दाँतों को साफ करने के राग में तू भावी भगवान् की डाली तोड़ कर ला रहा है। नेत्रों की ज्योति बढ़ाने के राग में तू घास पर चल रहा है, लेकिन ये नहीं देख रहा है कि कितनों की ज्योति नष्ट हो रही है। शरीर स्वस्थ रहे, सो छड़ी लेकर सुबह से घूमने जा रहा है और रास्ते में जो झाड़ी मिली उसमें छड़ी मारता चला जा रहा है। हे अभागे! प्रमादचर्या करके तू कहाँ जाना चाहता है? द्रव्यानुयोग को समझना है तो द्रव्यानुयोग की भूतार्थता को समझिये। निज को भगवान्-आत्मा कहने मात्र से तू भगवान् नहीं बन पायेगा जब तक भावी भगवन्तों की रक्षा नहीं करेगा। हो यह रहा है कि ये बोलता है कि मैं शुद्ध-बुद्ध हूँ। यदि तू शुद्ध-बुद्ध हो सकता है, तो जिसको तू छड़ी मार रहा है, वह भी शुद्ध-बुद्ध शक्ति से सम्पन्न है। घर में बेटे की माँ को सता कर आया है और यहाँ भगवान् से कह रहा है, 'हे स्वामी! क्षमा करो।' हे पुण्यहीन! जो कृतकृत्य हो चुके हैं, वे तुझे क्षमा करने के राग में नहीं बैठे होंगे, वे तुझे गुस्सा करने नहीं बैठे होंगे। जिन पर तूने हाथ नहीं उठाया, जिनके चरणों में मात्र तूने सिर टेका है, उनको गुस्सा किस बात की? भगवान् से कह रहा है 'स्वामी! क्षमा करो।' किस बात की? मैं अपने बेटे की माँ को पीट कर आया हूँ। अरे अभागे! यदि तुझे अपने आप में पश्चात्ताप हो ही रहा था, तो जाकर उसी के चरण पड़ ले जिसको तू पीट कर आया है। तब तो धर्मात्मा है अन्यथा ढोंगी है। यह कब से प्रारम्भ हो गया कि गाय को गाँव

में मारा और नदी में स्नान करने चला गया। वही सिद्धान्त आपके यहाँ आ चुके हैं। आप भी जब तक आँखें काम कर रही हैं, पर्याय में आत्मा विराजी है, इस मिथ्यात्व से आत्मा की रक्षा करो और लोगों की रक्षा करो। नहीं-तो धीरे-धीरे ये बड़ा मिथ्यात्व फैल रहा है कि कुछ भी अनर्थ कर दो और भगवान् के पास चले जाओ।

हुआ क्या? एक नदी में डुबकी मार करके गौहत्या से मुक्त हो रहा था। आपको गौ का अर्थ मालूम होना चाहिये। जो-जो गमन करें, वे सब गौ हैं। आप भी गौ हो। रूढ़ि अर्थ में गाय विशेष को गऊ कहा जाता है। व्याकरण साहित्य में तीन प्रकार के शब्द हैं। योगस्य, रूढ़ित्व, योग-रूढ़ि। जैसे एवंभूत नय में,समभिरूढ़ नय में अभिरूढ़ अर्थ में तुम गाय को पशु कह रहे हो, लेकिन यथार्थ में जो-जो गमन कर रहे हैं, वे सब गाय हैं। जो जो गमन करें सब गौ हैं, अतः किसी भी गौ की हत्या नहीं करना।

सता करके आप ये कह रहे हो कि प्रभु के चरणों में प्रार्थना कर लूँगा। मेरे मित्र! भगवान् के पादमूल में जा करके इतना तो हो जायेगा कि आपके कलुषित परिणाम शान्त होंगे, जिससे कर्म की निर्जरा होगी, इसमें शंका नहीं है, लेकिन बैर समाप्त नहीं कर पाओगे। दो धाराओं में सुनना। यदि तुम बेटे की माँ को सता कर आये हो और भगवान् के चरणों में तुमने माला फेरी है, तो ये तो सत्य है कि प्रभु के पादमूल में गया है तो जितने अंश में साम्य परिणाम हैं, उतनी तेरी कर्मनिर्जरा होगी। कर्म की निर्जरा हो जाये, तू मुक्त भी बन जाये, लेकिन तू बैर नष्ट नहीं कर पायेगा। एक पक्ष की कषाय का उपशमन हुआ है, दूसरे पक्ष की कषाय का उपशमन कहाँ हुआ है? और भगवान् के चरणों में आकरके हो सकता कि आपको वैराग्य ही हो गया। पत्नि को पीटने के बाद तुझे वैराग्य हो गया और सीधे दीक्षा ले ली, तू योगी भी बन सकता है तपस्या करके, लेकिन हे जीव! आपने अपना एक पक्ष देखा, परन्तु जिस जीव को तुम सता कर आये थे, उसकी भट्टी कहाँ बुझी थी? कहीं वह आर्त्त-रौद्रध्यान से मर गई, कहीं श्यालनी बन गई, कूकरी-शूकरी बनकर आ गई, जब तुम ध्यान कर रहे थे, तो सुकुमाल या सुकौशल जैसे तेरा ही भक्षण करने खड़ी हो जायेगी। माँ का ही जीव था, भाभी का ही तो जीव था। माताओ! ध्यान से सुनना, आप ये सोच रहे हो कि

मैंने तो क्षमा कर दिया है, मैंने तो विधान भी करा दिया, लेकिन जिसके साथ तुमने अशुभ किया था, उसके चित्त को शान्त तुमने कहाँ किया है? कर्म का विपाक कह रहा है कि अभी तूने पूर्ण रूप से काम नहीं किया है। जीवन की अन्तिम विदाई होने के पहले जीवन से कषायों को विदा करके जाना। बुजुर्ग/स्याने/बड़े लोग बन जाना। यदि तू यात्रा को जाता है और गाड़ी में चढ़ना होता है, तो सबसे पहले बच्चों को चढ़ा देता है और जब उतरना होता है, तो सबसे पहले बच्चों को उतार कर, फिर स्वयं उतरता है, ऐसा क्यों करते हो? चढ़ने का नम्बर आया तो पहले उसको चढ़ा दिया, उतरने का नम्बर आया तो पहले उसी को उतार दिया। कहीं रह न जाये। मेरे मित्रो! जब तुम चढ़ने को हो, तो पहले कषाय को उतार देना। ऊपर जाने का मन करे तो पहले कषायों को उतार देना और जब उतरने का समय आये, तो उसके पहले भी उनको ही उतार देना।

मेरे राग में भी तू किसी से द्वेष करेगा, तो तू दोनों तरफ से बन्ध को प्राप्त होगा। एक तो राग के कारण बन्ध को प्राप्त होगा, दूसरा दूसरे के द्वेष के कारण बन्ध को प्राप्त होगा, तेरा दोनों तरफ से अहित है। इस बात को यदि समझ नहीं पाये, तो चाहे तुम श्रावकसाधना करो, चाहे तुम श्रमण की साधना करो, लेकिन दोनों अवस्थाओं में कल्याण दिखाई नहीं देता। राग-द्वेष दोनों बन्ध के कारण हैं। पूज्यपाद स्वामी लिख रहे हैं—

रागद्वेष द्वयीदीर्घः नेत्राकर्षण कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ॥ 11 इष्टो.॥

राग-द्वेष दोनों लम्बी-लम्बी डोरियाँ हैं। उन डोरियों के कारण मथानी को घूमना पड़ता है। ऐसे-ही संसार में मुझे ये राग-द्वेष की डोरियाँ भ्रमण करा रही हैं। मित्रो! चाहे पिता हो, चाहे भाई हो, सम्बन्ध बनाकर चलो, क्योंकि तुम संसार में जी रहे हो। इनमें राग-द्वेष करके मत जिओ। चाहे चेला हो या चेली, चाहे शिष्य हो या गुरु, ये मात्र निमित्तभूत तो हो सकते हैं, लेकिन मेरा कल्याण तो मेरा स्वयं का उपादान ही करेगा। गुरु के राग में भी तेरी मिट्टी पिट जायेगी, शिष्य के राग में भी तू संसार में घूम जायेगा। इसलिये मेरे राग में भी, और-तो क्या भगवान् के राग में भी, तुम भगवान् नहीं बन पाओगे। **परमात्मा से राग**

करके तुम स्वर्ग तो जा सकते हो, लेकिन सिद्ध नहीं बन सकते हो। सिद्ध बनने के लिये न राग करना पड़ेगा, न द्वेष करना पड़ेगा, रागातीत-द्वेषातीत मात्र निज की आराधना में लीन होना पड़ेगा। जब तक निज की आराधना में नहीं जा पा रहे हो, तब तक भगवान् को छोड़ मत देना, फिर भी राग नहीं करना, अनुराग करना यदि बन्ध से डर है तो, संसार से डर है तो।

मोक्षमार्गी होना और मोक्षमार्ग पर चलना, इन दोनों में बहुत अन्तर है। मोक्षमार्गी होकर मोक्षमार्ग पर चलोगे तो मोक्ष को प्राप्त कर लोगे। मोक्षमार्गी हुये बिना मोक्षमार्ग पर चल दोगे तो कभी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाओगे। जो मोक्षमार्गी जीव होता है, उसे भव से भय होता है, उसे पाँच पाप से भय लगता है, किसी और से नहीं लगता। यमराज आ जाये, उससे नहीं डरता, पर पाँच पापों से डरता है। मृत्यु से क्या डरना? उससे डर भी गये तो क्या बच पाओगे? इसलिये मृत्यु से कभी मत डरना। आज से ही तैयारी करके चलना। हे मृत्यु! जब तुझे आना हो सो आ जाना, क्योंकि मेरी तैयारियाँ पूर्ण हैं। मृत्यु से वे घबरायें, जिनका धर्म हृदय से मर चुका हो। जिसके गृह-आँगन में पापों की सन्तानें कूद रही हों, उनको मृत्यु से डर लगे। जिनके हृदय में उपशम भाव का संग्रह चल रहा हो, उनको मृत्यु से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये आज से ध्यान रखना, सम्बन्धियों से भी बैर बाँध कर मत चलना और इस भाषा को थोड़ा नियंत्रित करना कि मेरे अन्दर कषाय नहीं है, वे कर रहे हैं तो वे जानें। ये जो शब्द बोले जा रहे हैं, ये भी कषाय ही है। प्रथम प्रयास यह होना चाहिये कि जिससे मेरी कषाय हुई है, उससे भी क्षमा माँग लेना चाहिये। क्यों? मेरे मित्र! हर व्यक्ति पारसनाथ नहीं है। पारसनाथ स्वामी तो दस भव तक सहन करते रहे। कहीं वह जीव तुम्हारे ऊपर उपसर्ग करने आ गया और उस समय आप सहन नहीं कर पाये कषाय भड़क गई, तो जिनमुद्रा में भी तू अशुभ गति को प्राप्त हो जायेगा।

श्रावको! जब भी तुम्हारे नगर में कोई मुनि पधारें तो आपका मन गद्गद् भाव से कहता है कि मैं मुनि को आहार दूँगा। हाँ, आप देना। लेकिन कदाचित् कोई दूसरा भी चौका लगा ले तो उसको मना मत करना। अपने दानान्तराय कर्म के

क्षयोपशम की परीक्षा करना। तेरा पुण्य होगा तो तेरे ही द्वार पर मुनिराज खड़े हो जायेंगे, लेकिन आप किसी से यह मत कहना कि आप बन्द करो, मुझे लगाना है। कभी-कभी धर्म का राग भी बहुत बड़े अशुभ में डुबा देता है। बाद में समझ में आता है।

कंस का जीव वशिष्ट नाम का मुनि था, जिसने अपने पिता को छींके में टाँग दिया था। जो कुणिक की कथा है, ज्यों-की-त्यों कंस की कथा है। मासोपवासी वशिष्ट मुनि मास भर के उपवास करके जब पारणा को आये, तो कंस के पिता का जीव सोचता है कि इनकी पारणा मेरे घर में हो। सम्राट के नाते घोषणा कर दी कि नगर में कोई चौका नहीं लगायेगा। क्यों? यदि कोई लगा लेगा तो मुनिराज वहाँ चले जायेंगे, तो मेरे यहाँ नहीं आ पायेंगे। वे मुनिराज पूर्व के गृहस्थ अवस्था के मित्र थे। फिर तो और गहरा राग। जब पारणा के लिये चले, तब राजा राज्यकार्य में व्यस्त हो गया, ध्यान नहीं दे पाया। मुनिराज ने दूसरे मास का उपवास कर लिया। पुनः आये, तो हाथी ने अपना बन्धन तोड़ दिया, राजा उसमें व्यस्त हो गया। तीसरी बार आये, अग्नि लग गयी, राजा उसमें व्यस्त हो गया। तीन मास के उपवास में शरीर जर्जर हो गया, तब भी अभी तक कोई विकल्प नहीं था। **मुमुक्षु! शरीर क्षीण होने से मोक्षमार्ग क्षीण नहीं होता, पर साम्यभाव क्षीण होते ही मोक्षमार्ग क्षीण हो जाता है। शरीर सूखने के साथ कषायों का सुखाना अनिवार्य है।** नव प्रसूता गाय ने मुनिराज को धक्का मार दिया। जैसे-ही जमीन पर गिरे, तब तक गुणस्थान नहीं गिरा, भाव भी नहीं गिरे। श्रावको। जब तुम्हारे नगर में कोई मुनिराज पधारें, उनके शरीर में कितनी ही पीड़ा क्यों न हो, उनकी वैयावृत्ति करना, लेकिन उनके कानों के सामने मत कहना कि अहो! बहुत पीड़ा है, बहुत कष्ट है महाराज को। हे अभागे! तू कर क्या रहा है? वह रत्नत्रयधारी अपने रत्नत्रय में लीन थे, तूने इन शब्दों का प्रयोग करके उनको शरीर में स्थापित कर दिया। तुम तो यह पूछना, हे स्वामी! आपका रत्नत्रय धर्म स्वस्थ है? कदाचित् शरीर की ओर जा रहे होंगे तो उनको लगेगा कि ये शरीर को नहीं पूछ रहे हैं, रत्नत्रय धर्म को पूछ रहे हैं। आपको युक्ति का बोध होना चाहिये,

आगम का बोध होना चाहिये।

किसी का स्थितिकरण भी करना है तो पहले नजदीक पहुँचोगे, तब कर पाओगे। तुम आत्मीयता नहीं दे पाओगे तो किसी का स्थितिकरण भी नहीं कर पाओगे। पिचके बर्तन की पिचक मिटाना है तो दूर से नहीं मिटा पायेगा। पहले भीतर हाथ डालेगा, ऊपर से पीटेगा, तब पिचक मिटेगी। तू पहले से ही घोषणा मत कर कि इसमें पिचक है। युक्ति और आगम होना चाहिये। **दौड़ती बकरी को किसान पकड़ता है तो हाथ दिखाता है, खाने को देता है, फिर कान पकड़ लेता है। ऐसे-ही आगम कहता है कि कोई धर्म से च्युत हो रहा हो, तो जीवन में ध्यान रखना, पहले उसको दुलार देना, पुचकारना, फिर उसकी खोट निकालना।** आपने पूर्व से ही उसको पास नहीं आने दिया, तो आप जगत् का क्या हित कर पाओगे? हित करने की दृष्टि भी उसी के अन्दर हो सकती है, जिसकी माँ-जैसी ममत्व-दृष्टि धर्मात्मा के प्रति होगी।

महाराज जमीन पर गिर गये, तब भी उनके मन में कोई विकल्प नहीं आया; परन्तु वहाँ से श्रावक निकल रहे थे, उनके मुख से निकल पड़ा-सम्राट कैसा अभागा पापी है? न साधु को आहार देता है, न देने देता है। इन शब्दों को सुनते ही शब्द जहर बनकर कानों में प्रवेश कर गया। जहर मुख में न भी रखा हो, कहीं शरीर में घाव है, कट गया हो, यदि उस छिद्र में भी जहर चला गया, तब भी मृत्यु हो जायेगी। आप एक अंग पर इंजेक्सन लगवाते हो, वह सारे शरीर के रोग को ठीक कर देता है। ऐसे-ही जहर का इंजेक्सन भी सारे आत्मप्रदेशों को प्रभावित करके मृत्यु का कारण बनता है। इसी प्रकार से ध्यान दो, इन कर्णछिद्रों में अशुभ शब्द प्रवेश कर गये तो भावों की विशुद्धि के प्राण निकल जाते हैं और यदि इन कर्णरंध्रों में जिनवाणी चली गई तो अमरत्व का काम होता है। "जिणवयण मोसहमिणं" वट्टकेर स्वामी ने जिनेन्द्र के वचनों को ओषधि कहा है। जब शास्त्र-उपदेश सुनते हो तो परिणामों में गद्गद् भाव आता है। कोई भाषणबाजी करे, यहाँ-वहाँ की बातें करे, तो लगता है कि ये कहाँ से आकर बैठ गया। अपना समय बरबाद कर रहा है। हृदय पीड़ित होता है। जितने युद्ध

हुये हैं आज तक, सबसे पहले कर्णरध्रों में शब्द के जहर जाते हैं।

माँ! तुझे माँ कहा गया है। यदि माँ है, तो मात्र बेटे की माँ मत बनना, जिसने बेटी को जन्म दिया है तो उसकी भी माँ बनकर बैठा करो। किस दृष्टि से? यदि आपने अपने घर में अशुभ शब्दों का प्रयोग किया, तो कम-से-कम तुझे पति पर करुणा न हो हे माँ! तुझे अपने सासू के बेटे पर करुणा न हो, उसे तू 'पर' मानती हो, तो मुझे स्वीकार है, पर कम-से-कम अपनी माँग, मंगलसूत्र पर तो करुणा होनी चाहिये, अपने वैधव्य पर तो करुणा होनी चाहिये। करुणा हो तो मेरी बात सुन लेना। जैसे ही आपने घर में कर्कश शब्दों का प्रयोग किया, तो घर का वातावरण अशुभ होगा। कहीं तेरी बात तेरे पति को, तेरे पुत्र को लग गई और वह सहन नहीं कर पाया, आप विश्वास रखो, यह पंचमकाल कलिकाल चल रहा है, इसमें हृदय कमजोर हो चुके हैं, हृदय की धड़कने बढ़ी और ऊपर चला गया, फिर तुम छुपा लोगे, बताओगे नहीं, कि मैंने झगड़ा किया था। आपके क्लेश के कारण आपके बिछुये उतरते हैं। यदि आपको किञ्चित् भी करुणा हो, तो आज ही कायोत्सर्ग कर लेना। सहन करना, परन्तु बोलना नहीं। पूर्वबद्ध कर्म का उदय न आता तो ऐसा अभागा पति क्यों मिलता, यही सोच कर चलना। पूर्वबद्ध कर्म का उदय न होता तो इतना अच्छा जीव इसे क्यों मिलता? ये सब यहीं तक समझ में आता है। जैसे-ही भवन के बाहर गये, सब समझ समाप्त हो जाती है।

शब्द सुनते ही मुनिराज के शरीर में जहर फैल गया। त्रिमासी उपवास करने वाला जीव अपने आप को नहीं सम्हाल सका। कमजोर शरीर में परिणाम भी कमजोर हो जाते हैं। यह नोकर्म की महिमा है। तपस्वियों से बहुत दूर रहना चाहिये और तपस्वियों से अधिक वार्तालाप नहीं करना चाहिये। तपस्वियों से बहुत ज्यादा भक्ति भी प्रकट नहीं करना, उनकी आँखें देखो कि वो चाहते क्या हैं। यदि आप उनके हाथ-पैर भी दबाना चाहते हो तो उनकी दृष्टि देख लो। उनकी इच्छा नहीं है तो बिल्कुल नहीं दबाना। छोड़ दो। अनुकूलता की वृद्धि हो रही है, उसको देखकर तुम प्रसन्न रहो, यह भी वैयावृत्ति है। इस रहस्य को समझो।

सल्लेखना के समय में यह शिक्षा पूरी समाज को देना चाहिये और साधुओं

को भी देना चाहिये। जब जीव के मरण का काल आता है तो हर व्यक्ति का मन करता है कि मैं भी कुछ सुना दूँ। तुम खा-पी-कर इतने मस्त हो, फिर भी तुम एक घण्टे सुनने में थक जाते हो, तो जिसके उपवास चल रहे हों, शरीर थक चुका है, उसको थोड़ा विश्राम भी तो दो। भगवान् का नाम इतना सुनाओ कि उसे भगवान् के नाम पर उदासता न आ पाये। आप से मेरा कहना है कि आप भगवान् का इतना नाम लो कि इतने संस्कार पड़ जायें कि अन्त में किसी को सुनाने की आवश्यकता न पड़े। यह अभ्यास आज से करो। मैं ही क्षपक बनूँ, मैं ही निर्यापकाचार्य बनूँ। यह स्वयं की साधना होना चाहिये। आयुकर्म के निषेकों को नष्ट होने में समय नहीं लगता। प्रतिक्षण निषेक नष्ट हो रहे हैं। आवीचिमरण चल रहा है। इसलिये यूँ मान कर चलना चाहिये कि मेरी तो समाधि चल रही है। अधिक शब्द सुनना भी पाप है। तू पर की बातें सुनेगा, अपना समय देगा, कहीं बातें सुनते-सुनते परिणाम काषायिक हो गये, तो?

यस्मात्त्सकषायः सन् हन्त्यात्मा प्रथममात्मनात्मानम्
पश्चाज्जायेत नवा हिंसा प्राण्यन्तराणां तु ॥पु०सि०उ०47॥

जो जीव कषाय से युक्त होता है, वह अपनी आत्मा का अपनी आत्मा से घात करता है। स्वयं की आत्मा से स्वयं की आत्मा की हिंसा चल रही है। करुणा ऐसी की, ऐसी करुणा दिखाई, कि वह अकरुणाभूत होगई। 'राजा न स्वयं आहार देता है, न दूसरे को देने देता है।' मुनिराज के कर्णरन्ध्रों में इन शब्दों के प्रवेश करते ही उनके भाव बिगड़ गये—'राजा मुझे आहार नहीं देने देता है। मेरी तपस्या का कोई फल होगा, तो फिर मैं राजा को देखूँगा।' स्वामी! क्या कर डाला? एक समय का भोजन का त्याग करने के लिये श्रावकों को सोचना पड़ता है, और जिस जीव ने तीन मास का उपवास किया हो, तीन मास की तपस्या क्षणमात्र में नष्ट कर दी।

सामायिक करने जाओ और कोई आपसे कहे कि मुझे बात करना है, तो उसको कह देना कि मैं अभी नहीं कर पाऊँगा, क्षमा करना, मैं बाद में बात करूँगा। जब तुम्हारे जाप करने के परिणाम हों, सामायिक करने के भाव हों, उसी समय कोई कहे कि बहुत आवश्यक बात करना है, तो उससे कहना भैया! मैं अभी

बात नहीं करूँगा। क्यों? मैं एक घण्टे शान्ति में बैठनेवाला हूँ। एकान्त में जानेवाले जीव को तुमने कोई कड़वे शब्द बोल दिये, तो फिर उसका एकान्त का समय उसी-उसी में जायेगा। जब-जब जीव बँधता है तो एकान्त में बँधता है और जब भी बिगड़ता है तो एकान्त में बिगड़ता है, आप सबको पता है।

निज को एकान्त देना चाहिये, एकान्त नहीं देना चाहिये। इसे स्याद्वाद से समझना। एक अन्त देना चाहिये, एक अन्त मात्र एक। **ज्ञानी! आत्मा के धर्म के लिये एकान्त देना, एकान्त पक्ष के लिये एकान्त बिल्कुल मत देना। अशुभ करने के लिये एकान्त मत देना। जब खोटे परिणाम आयें, तो भीड़ में आकर बैठ जाना, तो तुम अशुभ करने से बच जाओगे। जब कभी खोटे काम करने के भाव आयें, तो एकान्त में मत जाना, भीड़ में आकर बैठ जाना। जब धर्म करने के परिणाम आयें, तो तुम भीड़ को छोड़कर एकांत में चले जाना।**

कान में शब्द पड़ गये और धरती के देवता वीतरागी तपोधन यतिहत्या कर बैठे। श्रावको! मैं क्या कह रहा हूँ कि तीन मास के उपवास करने वाले जीव ने यतिहत्या कर दी। हे श्रावको! जब मैं यति से यतिहत्या की बात कर रहा हूँ, यदि आपने दिगम्बर मुनि को दिगम्बरत्व के विपरीत कोई भी द्रव्य दिया, तो तुमको भी यतिहत्या का दोष लगेगा। श्रावको! इन निर्ग्रन्थों को निर्ग्रन्थ बन कर जीने दो।

पण्डित जी! आप लोगों की भी गल्ती है, समाज की भी गल्ती है। आपने कहा 'हे स्वामी! आप पधारो मेरे क्षेत्र में, आप पधारो मेरे गाँव में, आपके उपदेश से ये भवन बन जायेगा।' हे ज्ञानी! निज भवन में लीन योगी को तूने दीवालों में नष्ट करा दिया, एक निर्ग्रन्थ को आपने सग्रन्थ बना कर रख दिया है। अपने राग में आप उनके मुख से दान मँगवा रहे हो। एक अकिञ्चनधर्मी जीव को तुमने भिखारी बनवा दिया! ज्ञानी! दया करो, इन योगियों को योग में विचरण करने दो, भौतिकता के द्रव्यों से इनको दूर रखो। अब मत कहना 'महाराज! बहुत कष्ट है।' क्षण मात्र में गुणस्थान गिरा, वही वशिष्ट मुनि का जीव अगले भव में आकर के कंस हुआ, उसी कंस ने आकरके अपने पिता को छींके पर टाँग दिया। क्यों?

तूने तीन मास तक मुझे आहार नहीं देने दिया था।

यह व्याख्या मुनि मात्र की मत समझना, अपने घर की व्याख्या समझना। आपके घर में सास यदि बहू से काम करा रही हो, बहू कहे माँ! भोजन कर लूँ, सास कहे कि इतना काम और कर लो, फिर भोजन करना, तो विश्वास रखना, तूने अन्तराय कर्म का बन्ध कर लिया है। कहीं वह जीव कलुषित भाव करके मर गया, तो फिर देखना क्या होगा? आदिनाथ स्वामी से पूछो, छः महीने विधि नहीं मिली, क्योंकि बैल को मूसिका लगवाया था।

जितनी समयसार की व्याख्या की आवश्यकता है, उससे कई गुनी आवश्यकता श्रावकाचार की है। श्रवकों को, ग्रहस्थों को, सबको। अहिंसा व्रत के अतिचार पर आपका ध्यान नहीं जा रहा है। यदि आपके कारखाने में कई मजदूर काम कर रहे हैं और आप कह रहे हो कि जब इतना पूरा काम कर लोगे तब खाना मिलेगा। हे जीव! तूने दूसरे के भोजन का निरोध कर दिया है। मात्र पशुओं के निरोध की बात नहीं है, जो-जो तेरे अधीनस्थ हैं, उन सबके निरोध की बात है। आस्रव, बन्ध होगा। ज्ञानी! तपस्या तुमसे नहीं बनी, तो कर्म उदय में आयेगा कि नहीं? पाप बन्ध करते समय पुण्य का आस्रव उदयगत होता है, समझ में नहीं आता है अहं की दृष्टि में। पाप का विपाक उदय में आता है तो गंगा-यमुना-जैसी धारा आँखों से निकलती है। देखते-ही-देखते भूपति रोड़पति बन जाता है। महलों में रहनेवाला देखते-देखते रोड़ पर आ जाता है और रोड़ पर घूमनेवाला देखते-ही-देखते महलों में पहुँच जाता है। सबके दिन एक-से नहीं होते।

पुण्य और पाप के द्रव्य पर न अहं करना, न हीनभावना लाना, वेदन करना। भोगना सरल है, पर वेदकभाव से देखना कठिन है। भोगना और करना दोनों सरल है। अनादि से यही तो किया है। कर्म और कर्मफलचेतना को ही तो अनुभव किया है, ज्ञानचेतना को कहाँ पाया? जरा-सी बात पचती नहीं है, तो ज्ञानचेतना को कहाँ पाया? जरा-सी बात पचती नहीं है। सहन नहीं कर पाता, लाल-पीला हो जाता है। मिर्चें तो मुख में जाने पर आँखों में आँसू गिराती हैं, नाक में श्लेष्मा बहाती हैं, उनको तो खाना पड़ता है, लेकिन शब्द एक ऐसा जादू है कि उसको सुनने मात्र से जीव लाल-पीला हो जाये अथवा रोने लग जाये, अथवा मुस्कराने

लग जाये, कहो-तो वैरागी हो जाये।

जिनसेन स्वामी के बारे में उल्लेख आता है कि लोगों ने प्रश्न कर दिया 'जिनसेन स्वामी बालब्रह्मचारी कैसे?' लोग तो लोग हैं। हड़िया पर पारा रखा जा सकता है, लेकिन जगत् के मुख पर पारा नहीं रखा जा सकता। लोगों ने राम को नहीं छोड़ा, तुम कौन होते हो? अतः कोई क्या कहता है, तुम यह मत देखना। तुम क्या हो, यह देखा करो। जिनसेन स्वामी के बारे में लोगों ने अपवाद उठाया कि महापुराण लिखते समय नारी के नख से शिख तक का वर्णन कर दिया तो ये बालब्रह्मचारी कैसे हो सकते हैं? आचार्य जिनसेन स्वामी ने जब तत्त्व का उपदेश दिया तो बैठी-बैठी सभा और महाराज चल दिये। सभा इतनी सुध भूल गई कि उठके साथ-साथ चल दी। ठहर गये और कहते हैं, आज तुमको दिखाते हैं कि जिनसेन स्वामी क्या हैं? मुनि बैठकर उपदेश करते हैं, लेकिन वे खड़े हो गये और उपदेश देना प्रारम्भ किया। उपदेश देते-देते उनने शृंगाररस का प्रयोग करना प्रारम्भ किया तो बड़े-बड़े धुरन्धर शीलधारी के अङ्गों में विकार छा गये और कहने लगे 'स्वामी-स्वामी! अब बन्द करो।' परन्तु वे स्वयं खड़े क्यों थे? ये दिगम्बर मुद्रा विश्वास की मुद्रा है। यह तो आपका डाकुओं का भेष है, इसमें सबकुछ छुपा लिया जाता है। जो वस्त्रों में हैं, वे सब छुपाये बैठे हुये हैं। पर दिगम्बर मुद्रा में खड़े होकर उपदेश दिया और शृंगार रस में उपदेश किया। सब विचलित होने लगे, 'स्वामी! बन्द करो।' बोले-देख लो, मैं तो खड़ा हूँ। यह वस्तुस्वरूप है।

यह शब्दों की महिमा है कि कब आदमी को रुला दे, कब हँसा दे। अभी तेरे गाँव से फोन आ जाये कि तेरे पिता जी को एक करोड़ का मुनाफा हुआ है तो मुस्करायेगा और कहीं फोन आ जाये कि दुकान में आग लग गई तो कहाँ दुकान कहाँ आप? अभी आँखों से आँसू टपकने लग जायेंगे। वहाँ यह चिन्तन करो कि अत्यन्ताभाव है। तुम घर को अच्छे से व्यवस्थित करके आये हो, इसलिये शान्ति से सुन रहे हो। जब घर में कुछ हो जाये, तब भी घण्टी बजती रहे, तू घण्टी पर दृष्टि न डाले, तब समझ में आता है कि हाँ, तत्त्वज्ञानी है। आप अभी

धर्म में नहीं जी रहे हो, राग की व्यवस्था के व्यवस्थितपने में जी रहे हो। जिसदिन धर्म में जिओगे तब बात कुछ और ही होगी।

धनंजय कवि के बेटे को कालिया नाग ने डस लिया, तब भी भगवान् की भक्ति में लगे हैं। पत्नि से नहीं रहा गया, बेटे को मन्दिर में लाकर पटक दिया। तब भी क्या कहता है? स्वामी! कामपुरुषार्थ का फल नष्ट हो ही गया, धर्मपुरुषार्थ को क्यों छोड़ूँ? जब पूजा पूरी हो गई, कहता है-हे नाथ! मुझे बेटे के जाने का विकल्प नहीं है, लेकिन भविष्य में लोग यह न कहें कि अरहन्त का भक्त क्या कर सका? जैसे-ही ये कहा और बेटे के मस्तक पर गंधोदक का छींटा मारा, बेटा उठ कर बैठ गया, बोला, 'माँ! मुझे यहाँ लेकर क्यों आयी हो?' जो माँ पति को गाली सुना रही थी, वह पति के पैरों में लिपट गई—हे स्वामी! क्षमा करो। मुझे मालूम नहीं था कि अरहन्त की भक्ति की यह महिमा होती है।

विघ्नौघा प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगाः।
विषां निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥ स. भ.॥

ताली बजाने से काम नहीं चलेगा। बात मान लो, ये दुनियाँ के चबूतरों पर भटकना बन्द करो, मात्र अरहन्त के चरणों में आया करो। पण्डित जी! लोग छुप करके पता नहीं कितने चादर चढ़ाते हैं और कितने नरियल फोड़ने जाते हैं और यहाँ कहते हैंकि मैं सम्यग्दृष्टि हूँ, इसलिए अपने भगवान् से कुछ नहीं माँगता क्योंकि मिथ्यात्व हो जायेगा। ज्ञानी! दुनियाँ में भीख माँगने से सम्यक्त्व हो जायेगा क्या? धन्य हो सम्यग्दृष्टियो। यहाँ एक सज्जन बोल रहे थे महाराज! 'तुमसे लागी लगन' भजन नहीं पढ़ना चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्व है। मैंने पूछा कि क्यों मिथ्यात्व है? उसमें यह लिखा है 'मेटो-मेटो जी संकट हमारे'। इतनी-सी बात पर तुझे मिथ्यात्व दिख रहा है और वहाँ दुनियाँ में माँगने जाता है तो कुछ नहीं। कुन्दकुन्द स्वामी ने भी लिखा है आरोग्य बोहि लाहे दिंतु समाहिं च।

हे जिनेन्द्र! मुझे आरोग्य की प्राप्ति हो, समाधि की प्राप्ति हो, मेरे संघ की श्रेष्ठ समाधि हो। यद्यपि भगवान् कुछ नहीं देते हैं, यह भक्ति की भाषा मात्र है। कण-कण स्वतन्त्र है, यह भूल मत जाना। अब समझ में आ गया कि

सर्वार्थसिद्धि के देव तैंतीस सागर तक कैसे तत्त्वचर्चा में समय निकालते होंगे। एक घण्टा हो गया, पता नहीं चला। श्रुत में आनन्द है। श्लोक पढ़ लो, जाना तो है ही, मुझे पता है, लेकिन बहुत अच्छा है कि न जाओ। जितनी देर यहाँ रहोगे, हाय-हाय से तो बचोगे। सत्य मानो, जबतक यहाँ रहते हो, तब तक जीव सारे जगत् के विकल्पों से शून्य हो जाता है।

आचार्यभगवन् कह रहे हैं, यदि तूने पुण्य-आस्रव किया है, तो स्वर्ग में देव हो जायेगा। देवगति के सुख तुझे मिल जायेंगे, परन्तु ध्यान रखना, संसारातीत नहीं है। फिर कुन्दकुन्द स्वामी 'समयसार' जी में कहेंगे कि एक बेटा ब्राह्मण कुल में पला, दूसरा शूद्र कुल में पला, पर बेटे एक ही शूद्र माँ के थे। दूसरा बालक मदिरा को स्पर्श करने में पाप समझता है और पहला बालक मदिरा के स्नान में पुण्य समझता है। अन्तर देखो दोनों का। ऐसे-ही ज्ञानियो! कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि पुण्य को और पाप को दो भागों में विभक्त किया है। एक शूद्र का पुत्र है, दूसरा ब्राह्मण पुत्र है; पर वास्तव में पुत्र तो एक ही माँ के थे। आप यूँ समझ रहे हो कि मदिरा की दृष्टि से भेद है, पर माँ की दृष्टि से अभेद है। ऐसे ही संसार के सुख-दुःख के फल की अपेक्षा से भेद है, पर संसार के बन्ध की अपेक्षा से अभेद है। ज्ञानियो! न पुण्य में मुस्कुराओ, न पाप में रोओ। दोनों पुद्गल की पर्याय हैं। लेकिन अभी पुण्य को छोड़ मत देना, जब तक पाप न छोड़ पाओ। नहीं-तो कल से कहो कि मैं मन्दिर नहीं जाऊँगा। नहीं, ज्ञानी! पहले मन्दिर मत छोड़ना, पहले अपना घर छोड़ना। मन्दिर की आरती छोड़ देता है, लेकिन घर के चूल्हे जलाना नहीं छोड़ता, इतना ज्ञानीजीव है। तत्त्व को विवेक से सुनना, एकान्त से नहीं सुनना। जब तक तुम ध्यान से नहीं सुनोगे, तब तक यही भ्रम रहेगा कि पता नहीं किस विषय की व्याख्या है। दोनों नय को सापेक्ष करके कथन करना चाहिये।

आपने अच्छा पुण्य किया। **शुभः पुण्यस्याशुभाःपापस्य।** शुभ से पुण्य-आस्रव किया, अशुभ से पापास्रव किया और शुभ के योग से आपने स्वर्ग को प्राप्त किया, पर वहाँ पर भी अनेक प्रकार की भोगसम्पदा को प्राप्त किया, अनेकानेक

देवाङ्गनाओं के साथ निवास किया; लेकिन जब तू स्वर्ग के भोगों से तृप्त नहीं हो सका तो इस तुच्छ मनुष्यपर्याय के सड़े-गले शरीर में जो अल्प सुख मिला है, उससे तू कहाँ तृप्त हो सकेगा? वहाँ ऊँच-नीच का भेद है, सर्वाधिक लोभकषाय की तीव्रता है और यदि अशुभ परिणामों से मरण किया तो भवनत्रिक वालों को एकेन्द्रिय तक में जन्म लेना पड़ता है। देव बनो तो नन्दीश्वर की वन्दना के भाव बनाना, तीर्थंकरों के कल्याणक मनाने जाना, परन्तु यह सौभाग्य सभी को नहीं मिलता। हीन देवों के भी कम-से-कम बत्तीस देवियाँ होती हैं। कहीं देवियों में लीन हो गया, तो फिर तेरी दुर्गति होनी है, फिर नीचे टपकना है। भोगसम्पदा में कहीं शान्ति नहीं है। सुख की भावना मत भाना, मात्र मोक्ष की भावना भाना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"नरक में नाना दुःख"

पुनश्च नरके रौद्रे रौरवेऽत्यन्तभीतिदे।
नानाप्रकारदुःखोघैः संस्थितोऽसि विधेर्वशात्॥ 142 सा. स.॥

अन्वयार्थ-पुनः च = तथा ऐसे ही **अत्यन्त भीतिदे** = अतिशय भयानक **रौरवे रौद्रे नरके** = रौरव नाम के कष्टप्रद नरक में, **विधेः वशात्** = तू कर्मों के वश **नाना प्रकार दुःखोघैः** = नाना प्रकार के दुःखसमूहों से घिरा हुआ **संस्थितः असि** = रह रहा है।

भावार्थ-हे आत्मन्! तू अत्यन्त भयानक रौरव नामक कष्टप्रद नरक में कर्मों के वशीभूत होकर नाना प्रकार के दुःख समूह से घिरा हुआ भी रहा है।

"नरकों के दुःख"

तप्ततैलिक भल्लीषु पच्यमानेन यत्त्वया।
संप्राप्तं परमं दुःखं तद्वक्तुं नैव पार्यते॥ 143 सा. स.॥
नानायंत्रेषु रौद्रेषु, पीड्यमानेन वह्निना।
दुःसहा वेदना प्राप्ता पूर्वकर्मनियोगतः॥ 144 सा. स.॥

अन्वयार्थ-तप्ततैलिक भल्लीषु = गरम-गरम तेल के कढ़ाहों में, **पच्यमानेन** = पकाये जाने से **यत् परमं दुःखं** = जो महान दुःख **त्वया संप्राप्तं** = तूने प्राप्त किया है **तत् वक्तुं नैव पार्यते** = उन दुःखों को कहा नहीं जा सकता है। **पूर्वकर्मनियोगतः** = पूर्व में बाँधे हुए कर्मों के उदय से **रौद्रेषु नाना-यंत्रेषु** = भयानक नाना प्रकार के यन्त्रों में **वह्निना पीड्यमानेन** = अग्नि के भयानक आताप से कष्ट पाकर **दुःसहा वेदना प्राप्ता** = दुःसह वेदना तुझे प्राप्त हुई है।

भावार्थ- हे आत्मन्! गर्म-गर्म तेल के कढ़ाहों में पकाए जाने से जो महान् दुःख तूने प्राप्त किया है, उन दुःखों का कथन करना शक्य नहीं है। पूर्व में बाँधे हुए कर्मों के उदय से, भयानक नाना प्रकार के यन्त्रों में अग्नि के भयानक आतप से तुझे दुःसह वेदना प्राप्त हुई है।

॥सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन। जयवन्त हो श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' ग्रन्थ में जीवद्रव्य के अन्तस् में जो अविकारी भगवान्-आत्मा है, उसी अविकारी आत्मा को विकारों के गर्त से कैसे दूर किया जाये, इस विधा की व्याख्या कर रहे हैं। अनादि की अविद्या के वश हुआ, मोह से मोहित हुआ है प्राणी। जो भूताविष्ट है, जिस पुरुष को भूत लग गये हों, उसके भूत उतारने के बहुत से साधन हैं। भूताविष्ट को ठीक करना बहुत कठिन नहीं है, लेकिन मोहाविष्ट को ठीक करना बहुत कठिन है। ब्रह्माण्ड में भूताविष्टों की संख्या अधिक नहीं है, मोहाविष्टों की संख्या अधिक है। जीव मोह के वशवर्ती होकरके अकरणीय को करणीय समझ रहा है और करणीय को समझ ही नहीं रहा है। क्या कर्तव्य है, क्या कर्तव्य नहीं है, इस विषय में विवेकशून्य हो रहा है। जिसके मस्तिष्क में यह प्रवेश कर चुका है, उसे ही सत्य स्वीकार रहा है, पर व्यक्ति के मस्तिष्क-पटल पर जो अंकित हो चुका है, वह ही सत्य नहीं है। जो सत्य है, वह सत्य ही है। जिसे आप समझ रहे हो, वह सत्य नहीं है। जो सत्य है, वह छद्मस्थों के ज्ञान का विषय नहीं। इसलिये हमने किसी छद्मस्थ की बात को स्वीकारा ही नहीं है। जो सर्वज्ञ ने केवलज्ञान से साक्षात् जाना है, वही वस्तुव्यवस्था सत्य है। उस सत्य का निरूपण आगम में किया गया है। आगम की दृष्टि से जो कथन है, वह सत्य है। लोक की आँखोंदेखा सत्य नहीं है। हर व्यक्ति की आँखें लोक में भिन्न-भिन्न हैं और ज्योति भी भिन्न-भिन्न है। उसका प्रमाणपत्र है कि आपके नेत्रों पर चश्मा लगा हुआ है। हर एक व्यक्ति के चश्मे का नम्बर एक-सा नहीं है, इसका तात्पर्य क्या हुआ? आप जो भी देखोगे, अपनी आँख से देखोगे। आपकी आँखों में अन्तर है तो अब मैं आप दोनों में से किसकी बात का सत्य मानूँ? जब से आपने आँखों से देखे विषय को स्वीकार कर लिया है, तब से आपकी परिणति पापों में लिप्त

हो गई। जो आँखों से देखे विषय को प्रमाण नहीं मानता, आत्मा से देखे विषय को प्रमाण मानता है, उसका नाम 'ज्ञानी' है। आँखों का विषय बहुत विकार उत्पन्न कर रहा है। हर पुरुष के नेत्र सदृश्य नहीं हैं। नेत्रों की आकृति सदृश्य हो सकती है, पर ज्योति में अन्तर है। नेत्रों की ज्योति समान स्यात् हो भी जाये, लेकिन चिन्तन की धारा असमान है। लोक में जब-जब सम्प्रदायों का जन्म होता है, तब कैवल्य की ज्योति से देखनेवाला कभी सम्प्रदाय नहीं बना पायेगा। जो आँखों से देखेगा, वही सम्प्रदाय बनायेगा। जो कैवल्य की ज्योति से देखेगा, उसको सारा विश्व एकत्वभूत दिखेगा और जो द्रव्य जैसा होगा वैसा दिखेगा। जिसके पास कैवल्य की ज्योति नहीं है, वह अपने मस्तिष्क से सोचता है। आपका मस्तिष्क कैवल्य की बराबरी नहीं कर सकता है। छद्मस्थ नानत्वभूत है और कैवल्य एकत्वभूत है।

सर्वज्ञ का ज्ञान ही सम्यक् भूतार्थ है, असर्वज्ञ का ज्ञान पूर्ण भूतार्थ नहीं होता है। आपके ज्ञान में सम्बन्ध आयेंगे, अरहन्त के ज्ञान में स्वभाव आयेगा। आप देखोगे तो सम्बन्ध खोजोगे कि कौन मेरा है? इसमें लक्ष्य जायेगा। सर्वज्ञ वस्तुस्वभाव को बतायेंगे। जो सम्बन्ध को स्थापित करके बात करेगा, वह सत्य की व्याख्या नहीं कर सकेगा। जो सम्बन्ध को छोड़कर देखेगा, वही सत्य की व्याख्या कर सकेगा। सम्बन्ध हो और राग न आये, यह होता नहीं है। रागी सत्य कह पाये, ऐसा हो नहीं सकता। माँ! तू कितना ही कहे कि मेरी दृष्टि एकत्वभूत है, विश्वास मानना, तेरे भाई का बेटा तेरे घर में आये और तेरे पति के भाई का बेटा तेरे घर में आये और स्वयं का बेटा सामने बैठा हो, तू सभी को मिठाइयाँ खिला रही है, पर भले तू थाली भर-भर के भाई के बेटे को खिला दे, थाली भर-भरके अपने पति के भाई के बेटे को खिला दे, मिठाइयाँ थाली भरकर खिला सकती है, पर थाली भर कर दुलार उन दोनों को नहीं दे पायेगी जितना स्वयं के बेटे को देती है। ज्ञानियो! जो दिखाई देता है, वह भेष होता है और जो अदृश्य होता है, वह भाव होता है। आज भेष का धर्म दिखाई देता है, भावों का धर्म भगवान् के जानने में आता है और करनेवाले को मालूम होता है।

ज्ञानी! तू कितना धर्मात्मा है, यह तेरे भीतर का विषय है। बाहर तो यह दिखता है कि बालक रोज भगवान् का अभिषेक करता है तो यह धर्मात्मा जीव है। व्यवहार यही देखेगा, नेत्र अभिषेक करते देख पायेंगे, अरहन्त का अभिषेक देख पायेंगे; परन्तु निज का अभिषेक निज में चल रहा है यह नेत्रों का विषय नहीं है, यह निज के परिणामों का विषय है। **लोक में जो दिख रहा है, चाक्षुष है, वह पर्याय का धर्म है। जो अचाक्षुष है, वह परिणति का धर्म है। पर्याय के धर्म से लोकप्रसंशा मिल सकती है, लोग तुम्हें धर्मात्मा कह देंगे, लेकिन परिणामों का धर्म निज के परमात्मा की पहचान है। मोक्ष पर्याय के धर्म में निहित नहीं है, मोक्ष तो परिणामों के धर्म में निहित है। परिणामों में धर्म हो और परिणती में न झलके, ऐसा होता नहीं है।** नहीं-तो ऐसे भी जीव जगत् में मिल सकते हैं जो यूँ कहने लग जायें 'महाराज! आप पर्याय के धर्मात्मा हो, मैं परिणामों का धर्मात्मा हूँ।' होगा, वह नियम से पर्याय का धर्मात्मा होगा; परन्तु जो पर्याय का धर्मात्मा है, वह परिणामों का धर्मात्मा हो, यह नियत नहीं है। गम्भीरता में समझना, नहीं-तो ये पंचमकाल है, जितने धर्मात्मा दिख रहे होंगे, उन सबको कह देगा कि तू पर्याय का धर्मात्मा है। पापी धर्मात्मा बन कर बैठ जायेगा और कहेगा कि मैं भावों का धर्मात्मा। ऐसा नहीं होता। **पर्याय का धर्मात्मा परिणामों का धर्मात्मा हो, यह तो विकल्प में है; लेकिन जो परिणामों का धर्मात्मा होगा, वह पर्याय का धर्मात्मा नियम से होगा।**

कागजों के पुष्प पर सेंट छिड़का जा सकता है, परन्तु यथार्थ के पुष्प पर सेन्ट नहीं छिड़का जाता। कागज के सुमन तभी तक सुन्दर दिखते हैं जब तक ऊपर का छिड़काव है। सेंट उड़ा, सुगन्ध गई। वृक्ष की डाली पर खिले गुलाब में सेंट नहीं छिड़का गया है, ऐसे ही जो भावों का धर्मात्मा है, वह डाली पर खिला पुष्प है और पर्याय का धर्मात्मा कागज का फूल है। कागज के फूल की गति क्या होती है? यह आपको मालूम है। कागजों के पुष्पों की क्या कीमत है? यथार्थ में सुमन तो वही है जो डाली पर खिल रहा है। पर हे ज्ञानियो! सुमन चढ़ाते-चढ़ाते बहुत दिन बीत गये, सु-मन चढ़ा देता तो सुमन क्यों चढ़ाना पड़ते? एक दिन सु-मन चढ़ा दे तो सुमन न चढ़ाना पड़े। थालियों की थाली सुमन फेंक

डाले। सु-मन बना लेता तो सुमन क्यों फेंकने पड़ते? सु-मन नहीं बना सका। मन को सुमन बना ले। एक दिन भी मन सुमन बन गया, तो विश्वास रखना, तेरा कल्याण हो जायेगा। भगवान् के चरणों में मोक्ष माँगने मत जाना, मोक्ष तेरी मुट्ठी में है। सु-मन में ही मोक्ष है, सुमन में मोक्ष नहीं। मोक्षफल की प्राप्ति के लिये, काम के विनाश के लिये अनेक प्रकार से तूने परमात्मा की आराधना की, पर मित्रो! विश्वास रखना, भगवान् बनने के लिये भगवान् के द्वारे नहीं आया जाता। भगवान् बने कैसे हैं? इस बात को जानने के लिये भगवान् के द्वार पर आया जाता है। भगवान् बनने के लिये भगवान् के द्वारे नहीं आया जाता, क्योंकि वे अकर्ता हैं, वे किसी को बनाते नहीं हैं। वे बने कैसे हैं? इस बात को जानने के लिये भगवान् के द्वार पर चले जाना। बनना कैसे हैं, उसके लिये भगवान् के पास मत जाना, उसके लिये आपको गुरु के पास जाना पड़ेगा। गुरु आपको बता देंगे। पर बनोगे कैसे? उसके लिये गुरु भी नहीं बना पायेंगे। वह तो आपको ही बनना पड़ेगा। नक्सा भवन नहीं है, आकार देखने के लिये परमात्मा की तस्वीर है; लेकिन जब शिल्पकार बनायेगा, तो उस तस्वीर से नहीं बनायेगा, दूसरे पाषाण को ही छाँटेगा। हम ईश्वर-अंश नहीं, हम ईश्वर से उत्पन्न नहीं हुये हैं। मेरा भगवान् 'भगवान्' नहीं बनायेगा।

उन बिन्दुओं पर विचार करो जिन बिन्दुओं पर चिन्तन नहीं जा रहा है। जो आराध्य भगवान् मेरा है, वह भगवान् नहीं बनायेगा। जो आकार में आयी थी, वह मात्र देखने के लिये थी। वह बनी नहीं थी, वह बनी थी। जो बन चुकी है, उसका आकार है, चित्र है और जो बनने जा रही है, वह चित्र नहीं है, वस्तु है। जो भगवान् की प्रतिमायें जिनालय में विराजमान हैं, वह बने हुये भगवान् का आकार है; परन्तु जो यहाँ बैठे हुये हैं, ये बननेवाले भगवान् हैं। जो जिनालय में विराजे हैं, उनकी तो आराधना करना, पूजा करना, लेकिन जो तुम्हारे घर में हैं इनका अनादर मत करना, इनका भी सम्मान रखना। नरक के नारकी के प्रति भी अशुभ भाव मत करना। मार्ग में जाते तिर्यञ्च के प्रति भी अशुभ परिणाम मत करना। चाहे नीच जाति का मनुष्य हो, चाहे ऊँच जाती का मनुष्य हो, उसकी जाति को देखकरके नाक मत सिकोड़ना।

इस भ्रम को निकाल दो कि मैं ही सबकुछ हूँ। तू कहाँ-कहाँ से गुजर कर आया है, तब जरा-सा पुण्य संचित किया, सो यहाँ तक आप पहुँच पाये हो। पुनः कहीं नाक सिकोड़ लिये, तो विश्वास रखना, छुईमुई लाजवन्ती का जो पौधा होता है, उसको जरा अंगुली कर दो तो संकुचित हो जाती है। बगीचे में माली पुष्पों को बतायेगा तो मुट्ठी बन्द कर लेगा, अंगुली करके कभी नहीं बताता। बात क्या है? अंगुली के स्पर्श मात्र से फल मुरझा जाते हैं। **कोई बाँझ, विधवा, कुशीला आम्र/नीबू के पुष्पित वृक्षों के सामने से गुजर जाये तो उसके फूल झड़ जाते हैं। जिनके चारित्र अशुभ हैं, उन लोगों के सामने से गुजरने मात्र से वृक्षों के पुष्प झर जाते हैं, एकेन्द्रिय जीव पर भी वर्गणाओं का गहरा प्रभाव पड़ता है। जहाँ संगीत चल रहा हो, कोई सौभाग्यवती महिला गुजर रही हो, जिनवाणी का वाचन चल रहा हो, ऐसे स्थल पर वनस्पति भी पुष्पित हो जाती है।** क्या ग्रन्थों में नहीं पढ़ा? सूखे वृक्ष हरे-भरे हो गये, सूखे सरोवर भर गये। एक वीतरागी दिगम्बर तपोधन के उद्यान में पहुँचते ही असमय में फूल खिल गये, यह प्रशस्त वर्गणाओं का प्रभाव है कि एकेन्द्रिय जीव भी प्रभावित हुआ है। मेरे मित्रो! बड़े विवेक से सुनना, जब अशुभ चेष्टा करने वाले के संक्लेश से पुष्प झर सकते हैं, अशुभ चेष्टा वाले की अँगुली करने पर वनस्पति अपनी प्रसन्नता खो देती है, तो आप विचार करो। अँगुली करने मात्र से लाजवन्ती मुरझा गयी, संकुचित हो गयी। यदि दूसरे के चेहरे को देख करके, दूसरे की आस्था को देख करके तुम्हारी नाक जरा भी सिकुड़ती है, भृकुटियाँ खिंचती हैं, तो उसी क्षण तेरे शुभ उपयोग के पुष्प मुरझा जाते हैं, झर जाते हैं, तुम्हारा धर्म उसी दिन नष्ट हो गया। विशुद्धि का ह्रास होते ही धर्म का नाश है। अब पूछो अपने हृदय से कि जीवन में कितनी बार किस-किस को देख करके तुमने कैसे-कैसे भाव किये हैं?

ये चेहरे तभी तक प्रसन्न हैं, **चेहरे पर तभी तक चमक है, जब तक भीतर विकारों की आग नहीं लगी है।** भीतर किसी भी प्रकार के विकार ने जन्म लिया है तो ज्ञानी! सबसे पहले चेहरा फीका पड़ता है। आपके अन्दर क्या चल रहा है, वह जिह्वा नहीं बोल पायेगी उसके पहले चेहरा बोल देता है। जिसने चेहरा

पढ़ना सीख लिया है, वह सबसे बड़ा ज्ञानीजीव हो चुका है। पर के चेहरे पढ़ सकते हो, परन्तु पर का चेहरा पढ़ने के लिये आँख खोलना पड़ेगी, इतना विलम्ब हो जायेगा, लेकिन निज के भीतर तो स्वयं पता चल जाता है कि मैंने क्या कर लिया है? भैया! मायाचारी छोड़ो। **भगवान् से मत पूछ कि मेरा अगला भव क्या होगा? यह पागलपन करने की क्या आवश्यकता है? यह तुझे ही पता है कि तूने जीवनभर भाव कैसे किये हैं? जैसे भाव किये, वैसा ही तो भव होगा, भगवान् से पूछने की क्या आवश्यकता है?** भगवान् को सताने मत जाना। भगवान् के पास मात्र दर्शन करने जाना, भक्ति करने जाना, ये पूछने मत जाना कि मेरा कौन-सा भव होगा?

भैया! व्यक्ति चार दिन से धर्म करने लग जाये तो इतना सम्मान चाहता है कि जैसे वह ही भगवान् बन चुका हो। हे जीव! चार दिन के पहले की करतूती पर तो चिन्तन कर कि तू किस लायक है? अभी तक हमने सुमनों में आनन्द लूटा। वनस्पति के फूल कितने बढ़िया थे कि इन फूलों को फूल देते हैं। एक हिन्दी में फूल समझ लो, एक अंग्रेजी में समझ लो। आगे आप समझो। सुमन वह है जो फुलाता नहीं है, समझाता है कि वस्तुस्वरूप यह है। फूल गया जीव, फूलते ही भूल जाता है कि मेरी औकात क्या है?

ज्ञानियो! दूसरे के द्वारा तुम्हारे गले में पुष्पमाला डाली जाये तो समझ लेना कि यह फाँसी का फंदा है। एक बार तू डलवाने गया तो देख तुझे क्या-क्या करना पड़ रहा है। ज्ञानी! यहीं हँस ले, वहाँ तो जो होना है सो होना ही है। बड़ा खुश होकर गया था, मुस्करा कर गया था, आ हा हा! आज तो वरमाला पड़ेगी। ऐसी पड़ गयी कि बेचारा पूरी स्वतन्त्रता खो बैठा। चाहे सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर चला जाये, चाहे गिरनार, चम्पापुर, पावापुर चला जाये, पर घूमकर यहीं घर में आना पड़ता है। पुष्पमाला लगती कोमल है, परन्तु सबसे कठोर होती है। जितने विधे हैं, जितने विधेंगे, जितने फँसे हैं, जितने फँसेंगे, सब फूलमाला में फँसेंगे। किसी से काम करवाना हो, लाखों-करोड़ों का दान लेना हो, तो फूल माला डाल दो और खिंचवा लो उससे। अद्‌भुत महिमा है फूलों की माला की। आदमी तुरन्त पिघल जाता है। अद्‌भुत ताकत है। एक बार पड़ी सो ये हो गया।

मान लो मेरी बात, ये फाँसी है। बिल्कुल सही बोल रहा हूँ, ये फाँसी है। फाँसी के तख्ते पर तो पर्याय का नाश होता है, पर माला पड़ते ही परिणामों का नाश होता है। जो भाव तुम्हारे भगवान् की भक्ति के लिये आये थे, यहाँ कहीं सम्मान हो जाये तो वे भाव बदल जाते हैं। इतनों के बीच में आज मेरा सम्मान हो गया, लेकिन जिसके लिये आया था, वह समाप्त हो गया। खोज करो, क्योंकि सम्मान करने वाले मिल जायेंगे, करवानेवाले मिल जायेंगे और आपको भ्रमित करने वाले मिल जायेंगे, परन्तु सत्यार्थ को समझाने और समझने वाले नहीं मिलेंगे। भाव तुरन्त बदलते हैं। यदि आपने किसी के गले में माला पहनायी है, तो मैं समझता हूँ कि तू उनका शत्रु है। कुछ-न-कुछ तेरे अन्दर इनसे प्राप्त करने के भाव हैं। जैसे ही माला पड़ेगी, वह बेचारा फूल जायेगा, भूल जायेगा एक क्षण को। चावल की डिब्बी हाथ में रहेगी और मान की डिब्बी भीतर काम करना प्रारम्भ कर देगी। फिर अन्तरंग कहेगा कि इन्होंने भरी सभा में माला पहनाई है। अब ये तो बताओ भाई! क्या काम करना है? इसका लक्ष्य घर की श्री पर चला गया। हाँ, मैं आपको इतना दान दे दूँगा। फिर वे कहेंगे कि तुम दान दे देना, मैं तुम्हारा नाम लिखवा दूँगा। और-ज्यादा फँसा डाला। देखो, भैया! मैं ये क्यों कह देता हूँ? कारण यह है कि जो फँसा नहीं होगा, वही कह पायेगा। यदि मैं भी कोई तीर्थ बनाता होता, तो मैं ऐसी बात नहीं कर पाता, क्योंकि मुझे स्वयं चाहिये पड़ता।

यह ध्रुव सत्य है कि जो नदी में डूब चुका है, उसको पानी मात्र का ही वेदन होता है, वह बाहर का कुछ नहीं समझ पाता है। तट पर खड़ा होकर देखेगा, उसको पानी भी दिखता है, क्या बहकर आ रहा है वह भी दिखता है, क्या बहकर जा चुका यह भी दिखता है, तट पर क्या-क्या है वह भी दिख रहा है। मित्रो! तटस्थ जीवन जीना सीखो। मैं यमुना के तट पर देखता हूँ कि क्या चला गया! नदी वही है, बह रहा पानी है। जो इसमें आया, वह भी बह जाता है। जीव वही है, बहते परिणाम हैं। इन परिणामों में जो बह गया, सो बह गया। तटस्थ हो गया, वह भगवान् बन गया। भावों में बहो मत, भावों को तटस्थ होकर देखो।

भैया! बदल जा, बदल जा, समय है, बदल जा। पूरी पर्याय घूमने में निकल

जायगी, बदल जा। नदी के तट पर क्या देखा? नदी पर जाकर नदी को देखना चाहिये। गीता में लिखा हुआ है 'आत्मा नदी, संयम तोयं।' नदी के तट पर खड़े होकर नदी को देखना। आत्मा नदी है, संयम नीर है, भावों की धारायें उसमें बह रही हैं। उस नदी को देख, इस नदी में डूब करके प्राण मत गँवा।

यमुना में देखा कि एक ओर से फूल का गुच्छा चला आ रहा था, वह खुशबू छोड़ रहा था और थोड़ी दूर पर मरा हुआ पशु चला आ रहा था, वह गन्ध छोड़ रहा था। दोनों अपने-अपने स्वभाव में थे। एक सुगन्ध छोड़ रहा था, दूसरा दुर्गन्ध छोड़ रहा था, तट पर खड़ा पुरुष देख रहा था। ऐसे ही आत्मा नदी है, इसमें भावों की धारायें चल रही हैं। एक समय पहले शुभ भावों का गुलदस्ता बह कर आया, दूसरे समय में तूने मन्दिर में ही किसी नारी पर लक्ष्य डाल दिया, तो तेरे अन्दर सड़े तिर्यञ्च जैसे अशुभ भाव आ गये। एक ही क्षण में क्या हुआ? दोनों द्रव्य नदी में थे, यानि अशुभ भाव भी तेरी आत्मा में है और शुभ भाव भी तेरी आत्मा में है, बाहर नहीं है। यदि तू चाहे तो फूलों को बिखेरे, इन सड़े तिर्यञ्चों को क्यों डाल रहा है? जिसके परिणाम सड़े पशु के समान हैं उसे बुरा तो नहीं लग रहा? बुरा लगे तो क्षमा कर देना। लेकिन जो है, सो है। जहाँ कोई मृतक पशु पड़ा हो तो नाक दबा कर भागता है। मेरे मित्रो! जैसे दुर्गन्ध में नाक बन्द करता है, ऐसे ही अपने अशुभ भावों को देख कर अपनी चिन्तन की धारा को बदल लेता तो पंचमकाल में न आना पड़ता और कम-से-कम आज ही अपने अशुभ भावों को बन्द करले, तो छटवें काल में नहीं जाना पड़ेगा।

छठवाँ काल बड़ा खोटा आयेगा, एक दूसरे को कच्चा खायेगा। सुन ज्ञानी! एक दूसरे को कच्चा खाने वाला समय आ रहा है। अग्नि का लोप हो जायेगा और छठवें काल के जीव नियम से दुर्गति को प्राप्त होयेंगे। जब तक भारत की भूमि पर आपको नमोऽस्तु कहने के लिये दिगम्बर मुनि दिखते रहें, तब तक आँख बन्द करके मानना कि इस भारत की भूमि पर वीतराग धर्म है। जिस दिन मुनियों का दिखना बन्द हो जायेगा, उस दिन आपको सिकी-सिकाई रोटी मिलना भी बन्द हो जायेंगी। आपको कोई कितना भी अशुभ भड़काये, कुछ भी करे, उस ज्ञानी से एक ही शब्द बोलना कि जब तक सिकी-सिकाई रोटी मिल रही

है, तब तक निर्ग्रन्थों के दर्शन में विकल्प मत करना। जिस दिन सिकी रोटी खाने को न मिले, उस दिन कहना कि मुनि भारत में बचे ही नहीं हैं। जब तक अग्नि का वास है, तब तक अरहन्त के शासन का वास भारत की भूमि पर है। जब तक अरहन्त के शासन का वास भारतभूमि पर है, तब तक ही अग्नि है। जिस दिन चतुर्विध संघ का अभाव हो जायेगा, उस दिन भारत की भूमि पर श्री जिन नमोऽस्तु शासन समाप्त हो जायेगा। इसलिये भी विकल्प मत करना। यहाँ से बहुत सारी ट्रेनें निकलती हैं। एकाध गाड़ी यदि पटरी से उतर जाये, तो क्या पूरी लाइन बन्द कर दोगे? नहीं।

कोई जीव के परिणाम ऊपर से नीचे उतर गये तो उसके परिणामों का इंजन खराब हो गया है, उसको तो कबाड़खाने की ओर कर दो, लेकिन शेष गाड़ियों को तो अपने समय पर लेकर चलो। श्री जिन नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। किसी एक के विकारी भावों को देखकर, किसी एक के मार्ग से विचलित होने पर पूरे शासन को विचलित नहीं किया जाता है। वस्तुस्वरूप समझो।

हर मन्दिर में चारों अनुयोग के ग्रन्थ विराजमान करना चाहिये। उनको माथा टेकते रहना, हे भगवती माँ जिनवाणी! यदि आप न होती तो हम जैनत्व की खोज कहाँ कर पाते? भैया! पर्याय तो हर व्यक्ति की नष्ट होती है, लेकिन पर्याय के जाने के पहले कुछ ऐसा करके जाना जिससे आनेवाली पीढ़ी कह सके कि हमारे बुजुर्गों ने मात्र भोगों में जीवन व्यतीत नहीं किया, साथ में जिनशासन की रक्षा के लिये कुछ करके गये हैं। इसलिये बस इतना ध्यान रखना कि आगे आने वाली पीढ़ी तुम्हें गाली न दे। आज हम क्यों मुस्करा रहे हैं? हमारे बुजुर्गों ने परिपूर्ण रूप से जैनत्व की रक्षा की है। मन्दिर बनवा करके, जिनवाणी लिखवा करके, तीर्थ बना करके, जैसे बना वैसे जिनशासन की रक्षा की है। ऐसे ही इस पर्याय से धुँआ निकलने के पहले, कितने ही मन्दिर कितनी ही मूर्तियाँ हों, परन्तु तू अपने जीवन में लक्ष्य बनाकर जाना। सन्तान तेरा नाम नहीं बचा पायेगी, क्योंकि वह ही नहीं बचेगी। यदि नाम की भूख हो, तो अरहन्त की प्रतिमा स्थापित करवा कर जाना। सेठ पाहिल का नाम, चामुण्डराय का नाम चल रहा है, तो तेरा भी नाम चलेगा। लेकिन तुम जितना कमा रहे हो, जीवन में एक अरहन्त की प्रतिमा

नियम से विराजमान करना। धन्य हो वह चामुण्डराय की माँ। उसने नियम लिया था, 'बेटे! जब तक मैं बाहुबली भगवान् के दर्शन नहीं कर लूँगी, तब तक दूध का पान नहीं करूँगी।' यदि किसी के मन में विकल्प आये कि इतने मन्दिरों की रक्षा कौन करेगा? अरे! जगत् की रक्षा जिनके हाथों में रहती है, तू उनकी क्या रक्षा करेगा? गर्भ में आते ही देव जिनकी सेवा में लग जाते हैं, उनके पुण्य का ही इतना प्रभाव होता है। जमीन से प्रतिमा निकलते समय पूरी समाज पहुँच गई थी कि हम अपने भगवान् को मन्दिर लेकर जायेंगे। ऐसे ही तुम भी विराजमान करके जाओ।

जो भगवान् आज जमीन से निकले, वो किसी श्रावक ने ही स्थापित किये होंगे। राजस्थान में जितने क्षेत्र हैं, सारे जमीन से निकले भगवान् के हैं। चाहे पद्मपुरा हो, चाहे तिजारा हो, चाहे महावीर जी हो, सब जमीन से निकले हैं। धन्य हैं वे श्रावक जिनने अपने धन का उपयोग जिनशासन के लिये किया हो। और क्या श्रावक नहीं हुये? चामुण्डराय के काल में एक मात्र चामुण्डराय ही था क्या? सेठ पाहिल के काल में एकमात्र सेठ पाहिल ही हुआ था क्या? नहीं, बहुत सारे लोग हो गये और अच्छे धनपति लोग हो गये। पर कुछ वे लोग थे जो कमा कर खाकर चले गये, कुछ वे लोग थे जो मात्र कमा कर खाकर ही नहीं गये वरन् जिनशासन को देकर गये हैं, उनका आज जयनाद हो रहा है।

आचार्यमहाराज यहाँ कह रहे हैं कि द्रव्य तो बहुत लोगों के पास है, पर जिसका पुण्य क्षीण है और पापानुबन्धी पुण्य का उदय चल रहा है, वह अपना द्रव्य या तो हास्पिटल में लगा देगा, बीमार हो जायेगा सो वहाँ चला जायेगा। या किसी केस में फँस जायेगा, सो पुलिस में चला जायेगा। जो धर्मात्मा जीव होगा, वह इन सबसे बच करके अरहन्त के मन्दिर बनाकरके, जो द्रव्य-कमाया था वह द्रव्य दृष्टि से लगा करके उच्चता को प्राप्त कर लेता है। एक द्रव्य वह है जो नीचे ले जा रहा है। एक सीढ़ी बाबड़ी में लगती है, एक सीढ़ी ऊपर ले जाती है। पत्थर दोनों हैं, एक पर पैर रखेगा तो नीचे जायेगा, एक पर पैर रखेगा तो ऊपर जायेगा। एक सीढ़ी बाबड़ी पर उतार रही है, एक मन्दिर के शिखर पर ले जा रही है। पैसे में न पुण्य है न पाप है, परन्तु पैसे के निमित्त से जो परिणति बन

रही है, वह पुण्य-पाप है। बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह संचय के जिसके परिणाम चल रहे हैं, कोई विकल्प नहीं करना, कोई कभी तुम्हारे लिये पट बन्द नहीं करेगा, कोई अर्गला नहीं बनेगा, सहजता में जीव नरक की ओर चला जायेगा। **जिन-जिनको नरक की यात्रा करना हो, वहाँ का हालचाल देखना हो, तो आप अच्छा परिग्रह का संचय करो, गरीबों को खूब सताओ, उनकी पूरी सम्पत्ति अपने घर में रख लो और खूब भोग भोगो तो बड़ी सहजता से, बिना रोक-टोक के आप नरक की यात्रा कर सकते हैं। खूब गुटका खाना, खूब सिगरेट पीना, तम्बाकू खाना, फिर चिन्ता मत करना, इतनी तैयारी करके जाना, फिर तुम्हारे मुख फाड़-फाड़ करके नारकी एक दूसरे को ताँबा पिलायेंगे, अग्नि के अंगारे देंगे,** फिर कहेंगे कि देख-देख, सिगरेट में क्या आनन्द आ रहा था? फिर तुझे समझ में आएगा।

माँ! यहाँ जो इसकी बातें उसको कह रही हो, क्या इसी में जीवन निकल जायेगा? नरकों में असुर जाति के देव जाकर एक दूसरे का बैर बता-बता करके एक दूसरे को लड़ाते हैं और यहाँ जो तुमने चोखे में खोटा मिलाया, खूब मिलावट का व्यापार किया, करलो, करलो, नरकों में बड़े-बड़े कढ़ाओ रखे हुये हैं। जैसे तुम यहाँ भजिये-पकौड़े बनाते हो, नारकी ऐसे-ही कढ़ाही में एक दूसरे को पटक देते हैं। खूब कमाओ दो नम्बर का पैसा। पैसे के राग में न दिन देखा न रात्रि देखी और बेचारा जीव पशुओं-जैसे चरता रहा, खूब रात्रिभोजन किये, नरकों में उसी के शरीर को फाड़-फाड़ करके उसी के मुख में ठूँसते हैं, और खाओ, रात्रि में भोजन किया था। बिल्कुल नहीं छोड़ना। छोड़ दोगे तो तुम्हारा जैनत्व सिद्ध हो जायेगा। क्यों लजा रहे हो अपने कुल को वंश को?

सत्यार्थ यह है कि कुछ भी हो जाये, आन-बान और कुल की शान को कभी नहीं छोड़ना चाहिये। धन्य हो आपके पुण्य को। तुमने पुण्य किये होंगे, इसलिये जिस शासन में चींटी की भी रक्षा की जाती है, उस शासन में आपने जन्म लिया। आपके पुण्य को धन्य है। ये सब पुण्यात्मा जीव बैठे हुये हैं। पता नहीं कौन-सी पर्याय में ऐसा पुण्य संग्रहीत किया था। बरसात में गिजाई के ढेर-के-ढेर मिल जायेंगे और एक वाहन का टायर निकल गया तो बेचारे एकसाथ हजारों लाखों

नष्ट हो गये, वे कौन-से जीव थे? जिन्होंने सामूहिक पाप किये थे, सामूहिक अशुभ किया था और करनेवाले की अनुमोदना की थी। सारे-के-सारे पापी इकट्ठे होकर मर गये। एक ने पाप किया, चार ने ताली बजाई। योगियों की आलोचना की होगी, धर्म का उपहास किया होगा, धर्म का विपरीत व्याख्यान किया होगा, वे सारे-के-सारे जीव तिर्यञ्चपर्याय को प्राप्त हुये। किञ्चित् भी यदि आपको अपने प्रति करुणा हो, तो आज से इतना काम कर लेना कि जितना भगवान् के मन्दिर में समय देते हो, हो सकता है कि आपके पास समय कम हो, लेकिन रास्ते में चलते-चलते समय मिलता है आपको, उसी समय अच्छा सोच लिया करो। धर्म करने के लिये आपके पास पर्याप्त समय है। रास्ते में चलते-चलते क्या करते हो? जो दृष्टि दूसरे की ओर फेंक रहे हो, उस दृष्टि को निज की ओर कर दो। विंध्यगिरि को सिर पर रखकरके हिमगिरि पर रख सकते हो, वह ताकत तेरे अन्दर है, लेकिन अशुभ परिणामों को रोकने की ताकत तेरे अन्दर क्यों नहीं है? **विंध्यगिरि को हिमगिरि पर रखना कठिन नहीं है, लेकिन पड़ौसी की उन्नति देखकरके अपने परिणामों को सम्हाल पाना बहुत कठिन है। यह नरक जाने का सीधा उपाय है।** बहुत आरम्भ करो, परिग्रह का संचय करो, फिर वहाँ जाकर क्या करोगे? 'महाराज! करेंगे क्या। जो सब नारकियों के साथ होता है, वही मेरे साथ होगा।'

तिल-तिल करें देह के खण्ड। एक नारकी दूसरे नारकी के तिल-तिल बराबर टुकड़े कर देते हैं, फिर भी इनकी मृत्यु नहीं होती है, क्योंकि स्वर्ग और नरक में अकाल मरण नहीं होता। ऐसे जीवन जीने की आकांक्षा रखते हो क्या? नहीं। यदि नहीं है, तो मेरे मित्र! इतनीसी बात मान लो, यह मिलावट के काम बन्द करो। इल्लीमार, किल्लीमार, जुऐं मार, ये सब व्यापार बन्द करो। यदि तू किञ्चित् भी जैनसमाज पर करुणा करता हो, तो जिन मित्रों के यहाँ ऐसे व्यापार चल रहे हों, आज साक्षात् न जा पाओ तो फोन पर बात कर लेना, कहना, भैया! **मेरी समझ में कटोरा लेकर भीख माँग लेना अच्छा है, लेकिन जीवों का घात करके द्रव्य कमाना किञ्चित भी श्रेष्ठ नहीं है।** खाद का व्यापार कर रहा है, उसमें छिड़काव वाली दवाई भी बेंच रहा है और समझा भी रहा है कि इतने

पानी में घोल कर इतने खेत में छिड़क देना। तू विधिपूर्वक जीवों को मारने की शिक्षा दे रहा है। ऐसे कुल में जन्मा जहाँ पानी छान कर पिया जाता है, उस कुल में तू जीवों को मारने की शिक्षा देरहा है। ज्ञानी! मेरा विश्वास है कि तुम व्यापार जो भी कर लो, भूखे नहीं मरोगे। हम लोग तो कुछ भी नहीं करते, तब भी भूखे नहीं मरते। तुम तो कुछ करते भी हो। पूछो दादा से, बेचारा वृद्ध हो गया, तब भी कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ता है। देखो इन युवाओं को, (मुनि महाराज की ओर इशारा करते हुये), कुछ भी नहीं करते, तब भी थोड़ी देर बाद देखना, भो स्वामी! नमोऽस्तु नमोऽस्तु। भीड़ लगी मिलेगी। ये देखो, करनेवालों को कोई नहीं पूछता है और नहीं करने वालों को बार-बार मनाते हैं। आपको बुरा नहीं लगता? एक दिन तो चलो मेरे साथ, पर चलना ऐसे-ही पड़ेगा। एक दिन चले गये, फिर दूसरे दिन कपड़े पहने, तो कोई पूछेगा नहीं। अभी तुमको श्रावक कहा जाता है, फिर तुमको भ्रष्ट कहा जायेगा। या तो उतारो मत, उतारे हैं तो उतर ही जाओ, फिर पीछे मत देखो। ये वस्तुस्वरूप ऐसा है।

यदि नरक में नहीं जाना है तो इतनी-सी बात मान लो कि परिणाम साम्य रखो, हाय-हाय करना छोड़ो। जितना भाग्य में होगा, विश्वास रखना, कहीं नहीं जायेगा। **मित्र! तू कमाने के राग में अपने आप को ही भूल रहा है। पहले ये जीव पैसे के राग में शरीर को तोड़ लेता है, फिर बीमार हो जाता है तो शरीर के राग में पैसे को बरबाद करता है। तुम दोनों तरफ से गये। पहले पैसे के राग में न दिन देखा, न रात देखी। चौबीस घण्टे काम किया सो अल्प समय में रोगी हो गया, सो शरीर टूट गया, अब शरीर कैसे बचे, सो वैद्यों के यहाँ जा रहा है, डाक्टर साब! जितना पैसा लेना हो सो ले लो, लेकिन प्राण बचना चाहिये।** अरे! पहले तूने पैसे के लिये शरीर नाश किया, अब शरीर को रोकने के लिये पैसों का नाश कर रहा है। पहले से ही प्रभु के चरणों में बैठता, शान्ति से एकाध घण्टे व्यापार कर लेता, शेष समय भगवान् की भक्ति करता, तो वहाँ न जाना पड़ता। आनन्द के साथ जब नजदीक समय आ जाता, तो किसी यतिसंघ में जाकरके पिच्छी-कमण्डलु लेकरके संन्यास धारण कर लेता, तो मरना ही नहीं पड़ता, समाधिमरण हो जाता। जितने वृद्ध बैठे

हैं, ऐसा ही करना। जल्दी तिलक करो दूसरों को। बेटों को तिलक करो और सन्यास ले लो। कुछ नहीं करने का। विश्वास रखो, शिवगति जब भी मिलेगी, इसी द्वार से निकलना पड़ेगा। इस द्वार से निकले बिना शिवगति मिलती नहीं। आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि नरकगति से बचना है तो उस नरक की व्यथा को समझ। युवाओ! ध्यान से सुनना, मत गुटका खाना, मत बीड़ी सिगरेट पीना, मत मदिरा का पान करना यदि नरकों से डर लग रहा हो तो। देखो, आप लोग करते नहीं हो। यदि करते होते, तो यहाँ कैसे आते? देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में नियम लेने से बहुत फल होता है। आप फिर से नियम ले लो कि जीवन में कभी अशुभ काम नहीं करेंगे। न मदिरापान, न गुटका-तम्बाकू-सिगरेट। बेटे की माँ यहीं बैठी होगी तो वह भी मुस्करा रही होगी। महाराज! आपने बहुत बड़ा काम कर दिया। बेटे का टेंसन भी दूर हो गया कि कहीं कुछ हो न जाये, कैंसर वगैरह। अब मानना पड़ेगा कि पानी गिरे और मिट्टी गीली न हो, ऐसा होता ही नहीं है। ऐसे ही जिनवाणी बरसे और हृदय न पिघले, ऐसा होता ही नहीं है।

यहाँ आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि नरकगति में ये नारकी जीव सबसे पहले तो बेचारे नीचे गिरते ही ऐसे उछलते हैं जैसे भाड़ में चना उचटता है। नरक की भूमि स्पर्श करने मात्र से ये नारकी ऊपर उछलते हैं। एकसाथ हजारों बिच्छू डंक मारे तो जो पीड़ा होती है, वैसी पीड़ा नरकभूमि के स्पर्श मात्र से होती है। फिर नरकों में काटो-मारो के अलावा कोई सुन्दर शब्द सुनाई नहीं पड़ता। मित्रो! जिन घरों में रोज किलकिल होती हो, वे यथार्थ में नरक-भवन हैं। न रति, इति नारकी। जो प्रीति को प्राप्त न हो, वे सब नारकी हैं। ज्ञानियो! यदि अपने घर को स्वर्ग बनाकर रखना है तो विसंवाद की भाषा छोड़ो। तुम मनुष्यपर्याय में आकरके मनुष्यत्व का वेदन नहीं कर पाये तो तुमने क्या किया? साधु बन कर भी साधुता की अनुभूति नहीं ले सका, तो क्या किया? एक दिन तो कम-से-कम श्रावक बन कर वेदन कर, साधु बन कर वेदन कर कि आनन्द क्या है। घर के सुख को भी आप तभी वेदन कर पाओगे जब बाहर के दु:ख नहीं देखोगे। बाहर के दु:ख देखते रहोगे तो घर के सुख का वेदन नहीं कर पाओगे आप।

नरकों में एक नारकी दूसरे नारकी को प्रतिक्षण कष्ट देता है। उसे एक क्षण की भी शान्ति नहीं मिलती है। जब तीर्थंकर प्रभु का जन्म होता है, तब एक क्षण को शान्ति की आनन्द की अनुभूति होती है। यह पुण्यपुरुषों की पुण्यवर्गणाओं का प्रभाव है। साधुओं के आने पर नगर का वातावरण बदल जाता है। आप महसूस करना, एक चातुर्मास यानि आपकी एक पीढ़ी सुरक्षित हो गई। यदि संघ अच्छा मिल गया तो। जीवन में साधुओं का सानिध्य तो पाते ही रहना।

रौरव नाम के नरकों में नाना प्रकार के दु:खों के समूह से कर्म के वश हुआ यह जीव घिरा रहता है। और क्या होता है? गर्म तेल के कढ़ाव होते हैं, उनमें नारकी को पटक दिया जाता है। एक बूँद गर्म तेल शरीर पर गिर जाय तो कैसी पीड़ा होती है? जिसका पूरा शरीर उठा कर पटका दिया, उसमें तू पकाया गया। वो तो अपन लोग भुलक्कड़ हैं, सो जल्दी भूल गये। अपन वहाँ से होकर आ गये हैं। कम-से-कम इतना कर लो कि पुन: न जाना पड़े। देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धा करते रहोगे तो मेरा विश्वास है कि नरक में नहीं जाओगे। अपन को नहीं जाना है। ऐसा महादु:ख प्राप्त किया, उन दु:खों को कहने में मैं समर्थ नहीं हूँ। यह तो सामान्य संक्षेप कथन है, उस पीड़ा को कहा नहीं जा सकता है। इतनी शीत, इतनी उष्णता कि सुमेरू के बराबर लोह का पिण्ड यदि प्रथम से ढाला जाये, तो पंचम नरक तक पिघल करके पानी-पानी हो जाये, इतनी गर्मी है। यहाँ की गर्मी कौन-सी बड़ी गर्मी है? उस गर्मी का वेदन करो। इतनी ठण्डी कि जो लोह का पिण्ड पिघल गया था, वह छटवें नरक में चला जाये, तो जम करके मोम हो जाये। ऐसी शीत वेदना है। वहाँ अनेक प्रकार के क्रूर यन्त्र रखे हुये हैं। इन यन्त्रों में पेला जाता है। आहा! तूने परस्त्री सेवन किया था, लोहे की पुतलिकाओं से स्पर्श कराया जाता है। तूने मधुमक्खियों के छत्ते तोड़े, अनेक प्रकार के दुष्ट कर्म किये, उन यन्त्रों में डाल कर पेल दिया जाता है। अब ये चक्की का काम कर रहे, होटल का काम कर रहे। अब जो है, सो है। **होटल वाले की करुणा तो पता नहीं कहाँ चली जाती है? दूध में चूहा गिर गया, अब तू उस दूध को फेंकेगा क्या? चूहे को निकाल कर भट्टी में फेंक देता है।**

ओ हो! अभागे! तेरी संवेदना नष्ट हो गई है।

आटाचक्की का व्यापार नहीं करना। कौन-कैसा धान्य लेकर आया, उसमें कीड़े बिलख रहे हैं, सब पीस दिये। माताओ! वे दिन अच्छे थे जब हाथ की चक्की से माँ प्रातः जाग करके सूर्य के प्रकाश में पाट उठाकर साफ करती थी, तब णमोकार पढ़ते-पढ़ते पीसती थी। आज तुमने बटन चटका दिया। ये चक्कियाँ रोज साफ हो रही हैं क्या? ध्यान रखना, तीन दिन की मर्यादा है। इनमें इल्लियाँ, सूड़े पड़ रहे हैं। सब पीस-पीस के, माँस के त्यागी आटे में माँस मिलाकर खा रहे हो। महाराज को मत खिलाना, नहीं-तो तुम्हें घोर पाप का बन्ध होगा। प्रतिदिन उसकी सफाई होना चाहिये। एक भैया इसी बात पर भिलाई से प्रायश्चित्त लेने आया था। उसने चक्की का बटन चटकाया, उसके अन्दर चूहा था, पिस गया, रक्त की धार लग गई। माताओ! तुम्हारी करुणा कहाँ गई? इसलिये यदि तुम मेहनत नहीं कर पा रह तो ऐसी मशीन मँगाओ जिसका पाट रोज साफ किया जा सके। आपको समझ में नहीं आ रहा, मुझे कोई विकल्प नहीं। जिस दिन तुम नरक में पिसोगे, उस दिन समझ लेना कि गुरु जी ने कुछ कहा था, लेकिन हमने माना नहीं था। मेरे मित्रो! मत जाओ, मुझे बहुत बुरा लगेगा कि मैं देखता रहा और तुम चले गये। ऐसा काम मत करना जिससे नरक की भूमि का स्पर्श करना पड़े और अग्नि में पटक दिया जावे। झुलसा दिया जावे। तुम बिना देखे, बिना शोधे कुछ भी पकाने बैठ गये थे। आलू, शकला खूब पका कर खिलाये घर में।

अब भोगो। आप लोग खाते नहीं होंगे, होटल के तो दर्शन ही नहीं करते होंगे। उसी पर ये भी बन रहा है, उसी पर वो भी बन रहा है। उन दिनों की याद करो, **'कनक, कलेवा, छन्ना, ये जैनी के चिह्ना।'** आटा, कलेवा, छन्ना लेकर चलते थे। किसी के यहाँ का पानी नहीं पीते थे। कम-से-कम अब तो बड़े-बड़े साधन हो गये, टिफिन लगा कर ले जाया करो। कुछ न मिले तो चने सिकवाकर ले जाया करो। लेकिन दूसरे की जूठी प्लेटें मत चाटा करो। ओ हो! बुरा तो नहीं लग रहा? नहीं। मैं सोच रहा हूँ कि बुरा लग जाये तो मेरा काम बन जाये।

तुम सब छोड़ दो। एक काम करना, सुबह पाँच बजे और रात्रि के 11-12 बजे जितने होटल हैं उनके चक्कर लगा कर आया करो। जब कढ़ाही जमीन पर पड़ी रहती है, कुत्ते चाटते रहते हैं, जब उनकी जीभ में सब साफ हो जाता है, तब उसमें फिर से बनाया जाता है, उसको तुम स्वाद से खाते हो, आ हा हा।

भैया! जलेबी खाते हो होटल की गोलगोल, नरकों के बिल भी गोल-गोल होते हैं। चिन्ता मत करना, होटल की बनी चाहे इमरती खाओ चाहे जलेबी खाओ। इतना शौक है तो इन देवियों से कह दो कि घर में शुद्ध बनाओ। घर जाकर भोजन बाद में करना, पहले बातें करना, पूछना माँ से, माँ! इसमें समुद्र का नमक तो नहीं पड़ा जिसमें कोटि-कोटि जीव नष्ट हुये हैं? यदि पड़ा हो, तो आज हड़ताल कर देना, आज भोजन नहीं करना। बोलना, मुझे नरक नहीं जाना। पूर्वकर्म के नियोग से जीव अनेक प्रकार के दु:खों को प्राप्त होता है। भैया! कोई नरक मत जाना। अच्छे काम करना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"मनुष्य गति में गर्भ के दुःख"

विण्मूत्र-पूरिते भीमे पूतिश्लेष्मवसाकुले।
भूयो गर्भगृहे मातुर्दैवाद्यातोऽसि संस्थितिम्॥ 145 सा. स.॥

अन्वयार्थ-दैवात् = कर्मों के उदय से **भूयः** = फिर इस जीव को, **विण्मूत्रपूरिते** = विष्टा और मूत्र से भरे हुए **भीमे** = भयानक **पूतिश्लेष्मवसाकुले** = पीव, कफ, चरबी से पूर्ण **मातुः** = माता के **गर्भगृहे** = गर्भ में **संस्थितिम् यातः असि** = ठहरकर समय बिताना पड़ता है।

भावार्थ- हे आत्मन्! कर्मयोग से नारकीय वेदना का अनुभव करता तू विष्टा और मूत्र से परिपूर्ण भयानक पीप, कफ, चर्बी से भरे हुए माता के गर्भगृह (उदर) में आकर पड़ा अर्थात् तुझे गर्भयोनि में ठहरकर समय बिताना पड़ा।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन। जयवन्त हो श्री जिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में चार गतियों का वर्णन करते हुये समझा रहे हैं। अहो जीव! संसार में गति का कोई ऐसा चक्र नहीं है जो आत्मशान्ति को प्रदान करता हो। जिस क्षेत्र में प्रवेश कर जाओ, उस क्षेत्र में मालूम चलेगा। जब तक आप एक दूसरे से अपरिचित होते हो तो आपको लगता है कि शायद वे बहुत आनंदमय होंगे, सुखमय जीवन जी रहे होंगे, पर नजदीक पहुँचने पर मालूम चलता है। सम्पत्तिशाली पुरुष को आप आनन्दित समझते हो, क्योंकि आपको गरीबी का दुःख अनुभव में आ रहा है; पर विश्वास रखना, जितने जीवन के संकट अमीर को दिखाई देते हैं, उतने गरीब को दिखाई नहीं देते। उसे लोक की कितनी विषमताओं से निकलना पड़ रहा है, कितने नवीन-नवीन शत्रुओं का जन्म हो रहा है। सूखे और सीधे वृक्ष पर दुनियाँ की नजर होती है। फलवान वृक्ष को पत्थर भोगने पड़ते हैं और सूखे सीधे वृक्ष को

कुल्हाड़ी का प्रहार झेलना ही पड़ता है। वृक्ष साल भरतक खड़ा रहे, कोई एक पत्थर नहीं फेंकता, कोई नहीं देख रहा था। पत्थर फेंकने के लिये बच्चे इकट्ठे होने लगते हैं, तो समझ लेना चाहिये कि इसमें फल-फूल आ चुके हैं। **जब-जब तुम्हारे जीवन में कोई संकट की घड़ियाँ आयें, आपके ऊपर कोई पत्थर फेंकने तैयार हो जाये, तब आपको समझ लेना चाहिये कि आपका विकास का समय चल रहा है।** ह्रास के दिनों में कोई पत्थर नहीं फेंकेगा। वह स्वयं समझता है कि इसे मैं क्या फेंकूँ, यह तो स्वयं गिरा हुआ है। बालक भी पत्थर उसी वृक्ष पर फेंकता है जिस पर फल लगे होते हैं। फल को गिराने के लिये फेंकता है। ऐसे-ही जीवन की बहुत बड़ी नीति है, जब-जब व्यक्ति के विकास का समय आता है, तो दूसरा उस पर पत्थर फेंकना प्रारम्भ कर देता है। बहुत अच्छा है कि फलवान वृक्ष पर पत्थर पड़ते ही वह सामने वाले को फल देता है और वह सन्तुष्ट होकर चला जाता है। **ज्ञानीजीव अपने ऊपर उपसर्ग आने पर भी उपसर्गकर्ता के लिये अशुभ नहीं सोचता है। वह तो यही सोचता है कि यदि ये मेरे लिये संकट में डाल करके प्रसन्न होता है, अपने आपको सुखी महसूस करता है, तो बहुत अच्छी बात है, कम-से-कम मैं उसकी प्रसन्नता का साधन तो बना।** पत्थर खाने के बाद भी किसी को पत्थर नहीं देता वृक्ष, अपितु फल ही देता है। ऐसे-ही, ज्ञानी उपसर्ग करने वाले पर भी उपसर्ग नहीं करते हैं, सम्यग्दर्शन ही प्राप्त कराते हैं। पारसनाथ स्वामी से पूछो, कमठ ने आप पर उपसर्ग किया, आपने उसको सम्यक् प्रकट करा दिया। जीवन में साधुता का जीवन जीना है तो तुम्हारा निर्णय यही होना चाहिये है। वृक्ष को भी देखो और चन्दन की ओर भी निहारो। जिसको करोंत से छीला जाता है, चन्दन के मूठे को कैसे घिसते हैं? पत्थर पर घिसते हो, तब भी चन्दन आपको तिलक दे रहा है, सुगन्ध दे रहा है। आप भले ही उसे घिसो, लेकिन चन्दन ने अपनी खुशबू नहीं छोड़ी है। ऐसे-ही तत्त्वज्ञानीजीव विपत्ति के काल में भी अपनी समता की खुशबू को नहीं छोड़ता है। कभी मत छोड़ देना। रोष आत्मा का धर्म नहीं है। आत्मा का धर्म तो ज्ञान-दर्शन है। रोष भी विभाव दशा है और तोष भी विभाव दशा है। तोष यानि सन्तुष्टि। रोष यानि कषाय की विपरीत दशा। चार कषायों

पर दृष्टिपात करो। रोष किया, तोष किया, उसके फल से मैं ऊपर-नीचे हुआ। और-कोई हेतु नहीं है। पानी भर दिया, चावल डाल दिया, चावल शान्ति से रखा रहेगा और पानी शीतल रहेगा। जैसे-ही अग्नि का जलना प्रारम्भ होता है, चावल का ऊपर-नीचे होना प्रारम्भ हो जाता है। विषय को ध्यान से गहराई में जाकर समझो। मुमुक्षु! जब तक शान्त परिणाम है, चावल पानी में ठण्डा पड़ा था। जैसे-ही पानी में उष्णता का प्रभाव पड़ा, चावल उबलना प्रारम्भ हो गया, ऊपर-नीचे होने लग गया। ऐसे-ही, हे ज्ञानियो! **जब तक तुम्हारे साम्य परिणाम हैं, काषायिक भाव का मन्द उदय चल रहा है, तब तक सारा धर्म दिखाई देता है, सारे सम्बन्ध दिखाई देते हैं, देव-शास्त्र-गुरु दिखते हैं, विवेक दृष्टिगोचर होता है, लेकिन जैसे-ही काषायिक भाव आता है, चाहे क्रोध हो, चाहे मान हो, चाहे माया हो, चाहे लोभ हो, कोई भी कषाय भड़की, तुरन्त ही परिणाम ऊपर-नीचे प्रारम्भ हो जाते हैं, दिखना बन्द हो जाता है, ज्ञान शून्य हो जाता है, चारित्र की तो बात ही नहीं है।** कार्तिकेय स्वामी ने कार्तिकेय अनुप्रेक्षा और योगेन्दुदेव स्वामी ने परमात्म प्रकाश ग्रन्थ में लिखा 'उपशम भाव संजदो होदि।' उपशम भाव ही संयम है। और 'कषाय विसंगदो असंजदो होदि।' जैसे-ही जीव कषाय के वश होता है, उसी क्षण से असंयमी हो जाता है। परवस्तु को ग्रहण करनेवाला असंयम तो बहुत बाद में होता है, पर परिणामों को उद्वेलित करनेवाला असंयम तत्क्षण हो जाता है। जहाँ कषाय होगी, वहाँ प्रतिक्षण असंयम होगा। द्रव्यसंयम से च्युत जब होगा तब होगा, पर भावों के द्वारा संयम से च्युत उसी क्षण हो गया था। जब तेरी भावना विकृत हो चुकी थी, बन्ध भाव तो प्रारम्भ ही था, जैसे कि नाली में पाइप पड़ा हुआ है, उसका काम कुछ भी नहीं है, चाहे गन्दा पानी आये तो उसमें धारावाहिक बहेगा और स्वच्छ पानी आये तो बहेगा। ऐसे-ही योग की नाली में कर्म का पानी प्रतिक्षण बहता है करणानुयोग से।

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य। शुभ उपयोग होगा तो पुण्यभूत पानी बहेगा, अशुभ होगा तो पापभूत पानी बहेगा; लेकिन अन्तर इतना होगा कि नाली को न दुर्गन्ध आ रही है न सुगन्ध आ रही है। नाली के सामने जो रहेगा, वह ऐसी अनुभूति को प्राप्त करेगा। भोगों को न सुगन्ध आ रही है, न दुर्गन्ध आ रही है।

सुगन्ध-दुर्गन्ध तो आत्मा को ही आ रही है, क्योंकि योग के साथ तू ही निवास कर रही है। नालियों का दुर्गन्ध युक्त पानी जब यमुना के गहरे पानी में पहुँचता है, तो वह भी अपनी दुर्गन्ध को शून्य कर लेता है। जो उस नाले के सामने निवास कर रहा है, धन्य हो उसकी सहन-शीलता, तू कैसे निवास कर रहा है? ऐसे भी मकान हैं जो नाले के ऊपर ही बने हुये हैं। उन लोगों से पूछो, उनको तो अभ्यास हो गया है। आप वहाँ से निकलते तो नाक बन्द करके निकलते हो, वे वहाँ बैठ करके भोजन करते हैं। आपको कैसा लगता है? कैसा आदमी है, नाली पर बैठ करके भोजन कर रहा है? कितने मच्छर काटते होंगे, कैसे रहता होगा? तू यूँ ही सोच पायेगा, लेकिन जो निवास कर रहा उससे पूछो, वह तो नाले के ऊपर भी मकान में प्रसन्न रह रहा है। ऐसे-ही बात गहरी यह है कि जिस जीव ने संयम के मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर दिया है, जिसने अशुभ आस्रव को रोक लिया है, उसे यूँ लगता है कि बेचारे श्रावक कैसे नाले पर बैठे हैं? विषयों की नाली को कैसे सूँघ रहे हैं? जिन स्थानों का नाम लेने से शर्म आती है, पापी उन स्थानों में रमण कर रहा है। स्वयं भी चिन्तन करे तो ग्लानि से भर जाये; लेकिन जब विकार सताते हैं तो अमृत टपकता है। विषयों की नाली में तुम कैसे निवास कर रहे हो? तुमको अभ्यास हो गया है। जैसे नाले में रहने वाले को अभ्यास हो जाता है, ऐसे-ही अज्ञानी को विषयों की नाली में रहने का अभ्यास हो गया है। आपको मालूम होना चाहिये कि जब इस नाली पर निवास करते-करते वहाँ की दुर्गन्ध का प्रभाव शरीर पर पड़ेगा, मच्छर आदि आपको डसेंगे, जब मलेरिया आदि रोग होंगे, तब मालूम चलेगा कि हाय! मैंने कहाँ निवास किया है और किसके साथ रहा हूँ? जब तुझे अशुभ कर्म डसेंगे और जब दुर्गति का मलेरिया ऊपर आक्रमण करेगा, तब तुझे मालूम चलेगा कि मैंने निवास कहाँ किया था। अभी चिन्ता मत करो, रह लो, रह लो। चार गतियों में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहाँ परम आनन्द हो। परम आनन्द तो सिद्धभूमि में ही है।

कल नरक के नारकी की वेदना की चर्चा की थी। 'तिलोय पण्णत्ति' ग्रन्थ में जब नरकों का वर्णन किया है, स्वयं के शरीर के अंगों को काट-काट करके नारकी उसी के मुख में भर रहे हैं। खाओ अभक्ष्य। कोई मर्यादा नहीं की थी,

गुरु का उपदेश सुना था, लेकिन स्वीकार नहीं किया था। आज का उपदेश नरकों में जब देशनालब्धि का काम करेगा, तब तुमको समझ में आयेगा कि ओ हो, सुनाया तो था।

भैया! बाजार के मसाले कूट-कूट करके पैकटों में भरे हुये हैं, वे ही तुम्हारे घर में सुन्दर गरम मसाले बन कर आते हैं। आपको मालूम है, सामान्य बारिस में तो कोटि-कोटि जीव दिखाई देते हैं और वो जो पैकेट में बन्द है, कितने दिन की मर्यादा थी? सारे-के-सारे तुमने साग दाल में छोड़ दिये, आ हा हा! गरम मसाला है। चिन्ता मत करो, उन जीवों के पिण्डों को स्वीकार कर रहे हो। प्रथम नरक से पंचम नरक तक अच्छे गरम मसाले की अनुभूति होगी। सब गरम-ही-गरम हैं। मर्यादा का भोजन किया क्या? माँ! **चाहे माँस बनाये, चाहे माँस खाये, दोनों को बराबर पाप का बन्ध होगा। चाहे तुम अभक्ष्य बनाओ, चाहे अभक्ष्य खाओ। परिवार के राग में तुम अभक्ष्य सामग्री बनाकर खिला रही हो, विश्वास रखना, खानेवाला दुर्गति को प्राप्त होगा तो पकानेवाला भी दुर्गति को प्राप्त होगा।** क्या आपको इस नारीपर्याय से और-नीचे उतरना है? यदि नहीं उतरना है, तो आपके हाथ में है, अशुद्ध बनाना बन्द करो। पानी तो छानते होंगे? क्या पानी छानते होंगे? थेली को वहीं निचोड़ लिया, बिलछानी कहाँ की? छान तो लिया, थैली में भर गये, वे जीव बिलख रहे हैं। हे ज्ञानी! यदि गहरे में सोचा जाये तो आपको स्वीकारना पड़ेगा कि कार्तिकेय स्वामी ने क्या लिखा है 'कार्तिकेय अनुप्रेक्षा' में। अंगुलियों में गिनने लायक सम्यग्दृष्टि जीव हैं। इसका तात्पर्य है कि अत्यन्त अल्प हैं। आपके घर में रात्रि में भोजन पक रहा है, आप दिन में खा रहे हो। प्राणियों की सारी हड्डी-पसलियाँ उसमें घुल चुकी हैं, अब तू सेवन कर रहा है।

नैवं वासरभुक्तेर्भवति हि रागोऽधिको रजनिभुक्तौ।
अन्नकवलस्य भुक्ते र्भुक्ताविव मांसकवलस्य ।।132पु.सि.उ.।।

जितना राग रात्रिभोजन में होता है, उतना राग दिन के भोजन में नहीं होता है। जो रात्रि में अन्न का ग्रास खाता है, वह माँस के ग्रास को खाता है। जो माँ परोस रही है, वह अपने पति और पुत्र को माँस की थाली परोस रही है।

जो मैं कह रहा हूँ, वह अमृतचन्द्र स्वामी ने कहा है। उनसे जाकर कहना, स्वामी! आपने ऐसा कैसे कह दिया? वे कहेंगे कि मेरे से शिकायत मत कर, शिकायत करना है तो जिनदेव से करो, उन्होंने ही अपने ज्ञान में देखा है और उन्होंने ही मुझे बताया है कि जीव की राग की दशा से ही इतना बन्ध होता है। कैसा अभागा जीव था। उस विद्वान् से मिलना जो राजकाज के वश रात्रि में बारह बजे घर पहुँचता हो। पण्डितानी जी ने बैंगन बनाये और हींग लेने अन्दर चली गई। बरसा का मौसम था। एक मेढ़क उछल कर हण्डी में चला गया। बेचारा तड़फते-तड़फते दिवंगत हो गया-उसके प्राण निकल गये। साग में साग जैसा हो गया। विप्र रात्रि के बारह बजे आया। रसोई रखी हुई थी। उसने उठाकर खाना शुरू किया। सबसे पहले मेढ़क की हड्डी ही मुख में पहुँच गई। कठोर समझ करके मुख से निकाल कर रख दिया। उस अभागे को ग्लानि भी नहीं आयी। पुत्र खा गया। उसका परिणाम क्या हुआ? हजारों बार दुर्गति को प्राप्त हुआ। अब कल्पना करो, चाहे तुम घर की मिठाइयाँ खाओ, चाहे बाजार की खाओ, यदि रात्रि में भख रहा है, तो सारा-का-सारा अभक्ष्य है।

नरक का द्वार है रात्रिभोजन। जितने रोगी हो रहे हैं, पाचनशक्ति तुम्हारी मन्द पड़ गयी, क्योंकि सीधा खाया और सीधा लेट गया, अब पचेगा कब? इसलिये बीमार हो रहा है। आगम का वचन है कि सूर्योदय के 48 मिनिट बाद से सूर्य अस्त के अड़तालीस मिनिट पूर्व तक भोजन से निपट जाना चाहिये। ऐसा नहीं है कि सन्धि बेला हो रही है, अभी रेखायें दिख रही हैं। ज्ञानी! रेखायें नहीं देखना। सूर्यास्त के अड़तालीस मिनिट पूर्व ही भोजन-पानी से निवृत्त हो जाना चाहिये। सन्धि बेला में सर्वाधिक जीव उत्पन्न होते हैं। यह कोई आगमिक व्यवस्था नहीं है कि किसी ने सात बजे तक का नियम लेकर रखा है, किसी ने दस बजे का नियम लेकर रखा है। ठीक है, तुमने मर्यादायें की हैं, बहुत अच्छी बात है; परन्तु ध्यान रखना, ये रात्रिभोजन त्याग नहीं है। पाप का बन्ध तो होगा-ही-होगा। गुणमाला ने लक्ष्मण से कहा कि मुझे साथ ले चलो। लक्ष्मण कहते हैं, हे देवी! अभी निश्चित स्थान नहीं है। आपको लेकर मैं कहाँ जंगल में चलूँगा? जब मैं स्थाई हो जाऊँगा, अवधपुरी में पहुँचूँगा, तब

आपको अवश्य बुला लूँगा। जब गुणमाला ने अधिक कहा कि कैसे मानूँ आप मुझे लेने आयेंगे? उस समय लक्ष्मण ने कहा, हे देवी! आप विश्वास करें, मैं वचन देता हूँ, यदि में आपको लेने नहीं आया, तो मुझे वह दोष/पाप लगना चाहिये जो रात्रिभोजन करनेवाले को लगता है। कल्पना करो, कितना बड़ा दोष लगता होगा? नरकों में तेल की कढ़ाही में पटका जाता है, किनको? जो रात्रि में बनवाते हैं, रात्रि में खाते हैं और रात्रि में खिलाते हैं। अब आप जानो, आपका काम जाने। मेरा काम है बता देना, करना आपको है। आप सबको नरक जाना स्वीकार नहीं है तो पाँच बजे रसोईघर में ताला डाल देना चाहिये। पूर्व से सूचना कर देना कि मैं जैन की पुत्री हूँ, जिनकुल में जन्मी हूँ, इसलिये मैं दुर्गति को प्राप्त होना नहीं चाहती हूँ। आप मेरे शत्रु बन कर घर में मत आओ, मेरे हितैषी बन कर आओ। समय पर भोजन कर जाओ, समय पर मैंने बना कर रख दिया है। ऐसा कर लोगे आज से? ताला डलने के पहले पहुँच जाना, अपनी दुर्गति मत करना।

चरणानुयोग भी समझो। जबतक चरणानुयोग को नहीं समझोगे तो द्रव्यानुयोग की प्राप्ति कैसे करोगे? ऊपर से मल पड़ता रहेगा तो क्या मल के नीचे छुपा सोना दिखाई देगा? ऐसे-ही विषय-कषायों और अभक्ष्यों की पर्तों पर ढकी भगवान्-आत्मा तभी प्रकट होगी जब इन पर्तों को हटाओगे। जबतक ये पर्तें नहीं हटेंगी, तब तक शुद्धात्मा प्रकट नहीं होगी। सभी पक्षों को जानने की आवश्यकता है। **वे लोग दरिद्री होते हैं जो जिन पूजा व निर्ग्रन्थ मुनियों को दान देते समय फटे वस्त्र टूटे-फूटे बर्तन और टूटी द्रव्य का प्रयोग करते हैं। वे लोग दरिद्री होते हैं जो रात्रिभोजन करते हैं।** अगली पर्याय का विचार कर लेना। वर्तमान में जो दिख रहा है, वह पूर्व का है। जो सुख तुम भोग रहे हो, वह भूत का द्रव्य काम में आ रहा है। लेकिन आगम कह रहा है कि वे जीव दरिद्री और रोगी होते हैं जिनके रात्रिभोजन होते हैं। भविष्य निहारना। ज्ञानी! कितने जीवों की टाँगें खा गया? 'महाराज! मैं रोटी नहीं खाता हूँ, फरारी खाता हूँ।' बड़ा भोला है। रबड़ी में कितने जीव घुटवाये थे? सबको पी गया, कहता है कि मैं रोटी नहीं खाता हूँ। यह आगम की आज्ञा नहीं है। जैसे वर्तमान के विद्वानों ने

विपर्यास किया है, मध्य के विद्वानों ने भी विपर्यास किया है। 'नैवं वासरभुक्ते' इसकी व्याख्या करते समय पण्डित टोडरमल जी तक भूल कर गये। आप उनके ग्रन्थ को उठा कर देख लेना। उसी भूल को आज तक के विद्वान् दोहराते चले आ रहे हैं। भूल क्या की? हमारे दिगम्बराचार्य अमृतचन्द्र स्वामी को रात्रि का पानी भी स्वीकार नहीं है। चतुर्विध आहार का त्याग ही रात्रिभोजन का त्याग है। वैदिक ग्रन्थों में भी लिखा हुआ है–

अस्तं गते दिवानाथे तोयं रुधिरमुच्चयते।
अन्नं माँस समं प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा॥

मार्कण्डेय नाम के एक महर्षि हुये हैं। उन्होंने 'मार्कण्डेय पुराण' में यह श्लोक लिखा है। दिन का नाथ सूर्य के अस्त होते ही अन्न माँस के समान हो जाता है और पानी रक्त के समान हो जाता है। ऐसा हिन्दु ग्रन्थों में लिखा हुआ है।

जिनागम में अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं- टोडरमल जी ने जब इसकी हिन्दी टीका की, तब उन्होंने नीचे लिख दिया है-हाँ, औषधि, फल आदि का उपयोग रात्रि में कर सकते हैं। ये हमारे आचार्य की वाणी नहीं है, यह पण्डित जी का निजी चिन्तन है। आज तक के विद्वान् उसी बात को दोहराते रहे कि रात्रि में फल, फूल, लौंग, इलायची आदि-आदि चल सकते हैं।

चार प्रकार का भोजन है और चारों प्रकार के भोजन का त्याग ही रात्रिभोजन का त्याग है। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय इन चारों प्रकार के भोजन का त्याग करेगा तभी रात्रिभोजन त्याग है। नहीं-तो ऐसा उपवास हो जाता है कि कुछ लोग उपवास करते हैं और सुबह-शाम दूध, मलाई, पानी आदि पी लेते हैं और कहते हैं कि मेरा आज उपवास है। यदि पानी भी पिया है, तो उपवास नहीं है, अनुपवास है। यह पानी वाला उपवास जैनदर्शन में नहीं चलता कि दुनियाँ के शकला खाये, आलू खाये, मिठाइयाँ खाये और कह रहा है कि मेरा उपवास है। पेट में श्वास नहीं आ रही है इतना तो खा गया और कह रहा है कि मेरा उपवास है। मात्र अनाज न खाने से उपवास हो गया क्या? शादी नहीं कराने वाला ब्रह्मचारी हो जायेगा क्या? नहीं, वह तो ढोंगी है।

बालब्रह्मचारी का अर्थ समझो। **जिसने स्वप्न में भी स्त्रीसुख सम्बन्धी भावना न भायी हो और किसी भी प्रकार से इन्द्रियसुख की अनुभूति न ली हो, विषय-कषाय से दूर रहा हो, उसका नाम बालब्रह्मचारी है।** शादी नहीं हुई तो बालब्रह्मचारी नहीं हो गये। उसी प्रकार अनाज नहीं खाया, सो तुम उपवास वाले नहीं हो गये। उपवास तब कहलायेगा जब चारों प्रकार के आहार का त्याग होगा। चरणानुयोग की भी व्याख्या सुनो, तब पता चलेगा कि कितना कठिन है। आज तो मैं चरणानुयोग बोल रहा हूँ, तब भी तुम इतने ठण्डे क्यों हो? तुमने उपवास किया है, किसी पुष्प को सूँघ लिया, तब भी तुम्हारे उपवास में दोष लग चुका है। उबटन चल रहा है, तेल-फुलेल लग रहा है, सुगन्धित वस्तु सूँघ रहे हो, आपको मालूम होना चाहिये कि वे कण अन्दर प्रवेश किये हैं। शृंगार का त्याग क्यों नहीं किया? उपवास किया है तो मात्र लंघन मत करना, विषयों का भी त्याग करना।

पर्युषण आने वाला है, खूब तपस्या करना, परन्तु मायाचारी छोड़ कर करना। आप दिन भर भूखे रहे हो, लेकिन दुकान मस्त चलाई है। भोजन से भूखा रहा है, लेकिन परिग्रह से भूखा नहीं रह पाया। भैया! तुझे भोजन छोड़ना सरल है, पर दुकान नहीं छोड़ सकता है। हे ज्ञानी! यदि ज्ञानी के यहाँ यमराज आयेगा तो कहेगा, यमराज! तुम रविवार को आना, कम-से-कम एक दिन दुकान का नुकसान तो नहीं होगा। धन्य हो। शासन बन्द कराये तो कर देगा, लेकिन जिनशासन की आज्ञा नहीं मानता है। कम-से-कम अष्टमी-चतुर्दशी को दुकान नहीं चलाना चाहिये। ये पर्व के दिन हैं। इन पर्व के दिनों में श्रावक को साधना करना चाहिये, सब विकल्प छोड़ देना चाहिये। चारों पर्वों में आरम्भ-सारम्भ का त्याग। माँ! यदि आपने उपवास किया है, तो घर-गृहस्थी के सारे काम बन्द करो। कहीं वस्त्र धोने बैठ गई तो कोटि-कोटि जीवों की हिंसा कर दी। पर्व के दिन सामायिक बढ़ाना चाहिये। उपवास का उद्देश्य क्या है? भोजन में जो हमारा समय जाता था, वह समय बचा करके आराधना में जाना चाहिये। आपने आराधना का समय काट करके अन्य कार्यों में लगा दिया तो आपने क्या किया?

कारण-कार्य विपर्यास, स्वरूप विपर्यास। आपने उपवास का स्वरूप ही बदल दिया। मात्र भोजन का त्याग किया है, आरम्भ-सारम्भ का त्याग नहीं किया है। आपने साधना का स्वरूप बदल दिया। यदि श्रमणदीक्षा लेकरके आप सामाजिक कार्य में व्यस्त हो, तो आपने स्वरूप विपर्यास किया है। आपने अरहन्त की मुद्रा के स्वरूप का विपर्यास किया है। जिसका जो स्वरूप था, उसी स्वरूप में रहना चाहिये था। मध्यकाल में भट्टारक लोग हुये, उन्होंने धर्म की रक्षा की, सबकुछ किया, लेकिन हमने उनको दिगम्बर मुनि नहीं स्वीकारा। आज जो समझदार भट्टारक हैं, वे अपने आपको दिगम्बर मुनि नहीं मानते हैं, अपितु वे दिगम्बर मुनि की ही वन्दना करते हैं। यदि वे अपने आप को दिगम्बर मुनि कहलवायें, तो स्वरूप विपर्यास। यह दिगम्बरत्व का स्वरूप नहीं है। अरहन्त की पूजा और निर्ग्रन्थ को दान धोती-दुपट्टा पहन कर देना, सलवार-सूट या कुर्ता-पाजामा पहन कर आहार नहीं देना। यह मर्यादा बचा कर रखना, स्वरूप विपर्यास मत कर देना। **जब तक अरहन्त की पूजा और निर्ग्रन्थ को दान होते रहेंगे, तब तक भारतीय संस्कृति की रक्षा रहेगी।** हर दर्शन में पश्चात्य सभ्यता प्रारम्भ हो चुकी है। मात्र पूजन और दान के समय धोती-दुपट्टा खुल कर आता है। लगता भी है कि हाँ, कुछ हो रहा है।

कारण-कार्य विपर्यास, भेदाभेद विपर्यास, स्वरूप विपर्यास। इन विपर्यासों पर भी चिन्तन करना चाहिये। ये सारा-का-सारा वर्णन पूज्यपाद स्वामी ने 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रन्थ में किया है। वस्तु के स्वरूप को बदलने की चेष्टा मत करना। जो जैसी व्यवस्था है, उसे व्यवस्थित रहने देना। आप व्यवस्था भंग नहीं कर पाओगे, आप अपनी श्रद्धा को भंग करके अपनी गति को विपरीत अवश्य कर सकते हो। अभी तो प्रारम्भ हुआ है। माँ! घर की व्यवस्था सुचारु करो। इन जीवों को अभक्ष्य खिलाओगे तो इन बेचारों की दुर्गति हो जायेगी और खिलानेवाले की भी निश्चित दुर्गति होगी। इसलिये बड़े विवेक के साथ सुनना और बड़े विवेक के साथ कार्य करना प्रारम्भ कर देना।

रौद्र आदि परिणामों से जीव नरकों में गया। अब सोचता है कि मनुष्यगति

में सुख होगा, तो मनुष्य में भी सुख कहाँ है? सबसे बड़ा दु:ख कोई है तो मान-अपमान का दु:ख है। मेरा सम्मान रह गया, मेरा अपमान हो गया। बेटा भी पिता से सम्मान चाहता है। **देश में, समाज में आज जितने क्लेश हैं, आप चाहो तो गणना कर सकते हो, उनमें से अधिकांश मान-सम्मान के हैं।** धर्म भी करता है तो पहले देखता है कि मेरे लिये तिलक कहाँ है, माला कहाँ होगी? यदि माला भी फेर रहा है, तो ऐसे स्थान पर बैठ कर फेर रहा है कि लोग मुझे देखें। वहाँ पर भी सम्मान छा गया। माला भी माला के लिये फेर रहा है। यदि पूजा भी कर रहा है, कोई न-देखे, उस समय पूजा की शैली देखना। भीड़ आ जाये, फिर तुम पूजा की शैली देखना। यह भगवान् की पूजा चल रही है कि भीड़ की पूजा चल रही है? आप किसी पर लक्ष्य मत बनाना, सहज समझो। दान की शैली बदल जाती है। बाहर की भीड़ आ जाये, फिर दाता के भाव देखो। कोई न हो, फिर दाता के भाव देखो। ऐसा कभी मत सोचना कि मुझे ही देना पड़ता है। यह तेरा अहोभाग्य है कि तुझे देने को मिल रहा है। जगत् में ऐसे कितने जीव हैं जो बिलखते हैं कि मुझे साधु के हाथ में ग्रास रखने को मिल जाये। **जिनके कुल अशुद्ध हो चुके हैं, जिनके शरीर अशुद्ध हैं, मन अशुद्ध हैं, वे दान देने के पात्र नहीं बचे।** उन बेचारों से पूछना, कैसे उनके हृदय तड़पते हैं? हाय! मैं भी साधु के हाथ में एक ग्रास रख लेता। आप क्या करोगे?

युवाओ! आवेग में विवेक मत खो देना। जैसे आज तुम भरी सभा में बैठे हो, बस, बेटा! इस सभा में बैठने की योग्यता बना कर रखना, और-कुछ नहीं चाहिये। जिसने अपने चारित्र में, कुल में कलंक लगा लिया है, उसको पीछे करना नहीं पड़ता है, वह शर्म से स्वयमेव पीछे चला जाता है। अन्दर-अन्दर समझते चलो। ऐसा कार्य मत करना जिससे पीछे की पंक्ति में बैठना पड़ जाये। ऐसा कार्य करना जिससे सहज आगे की पंक्ति में बैठने को मिले। जब यहाँ पीछे बैठना पड़ता है तो परिणाम अशुभ होते हैं, अशुभ परिणामों से गति भी अशुभ होती है। एक दूसरे से सम्बन्ध है। मनुष्यगति में कैसे-कैसे कष्ट हैं? यह किसी दूसरे से मत पूछना, अपने हृदय से पूछ लेना। व्रत लेते समय जीव गद्गद् भाव

से युक्त रहता है। अजैन होने पर भी सारे अभक्ष्य का त्याग कर दिया। अब इस जीव के भाव देखो। जब तक कमी होती है, तब तक साधु से डर लगता है। जब कमी निकल जाती है, तो वही जीव कहता है, महाराज! इनको भी छुड़ाओ। इनको आस्था, श्रद्धा और त्याग यहाँ तक लेकर आया है। बेटा जिस दिन दीक्षा ले रहा होता है, उस दिन पिता रोता है, लेकिन आज मुस्करा रहा है कि मेरा बेटा मुनि है। ऐसे बहुत से पिता मिल जायेंगे जिनका बेटा कलेक्टर हो, इंजीनियर हो; लेकिन ऐसे पिता कितने हैं जो यूँ कह पायें कि मेरा बेटा भगवान् महावीर है। पंचम काल में इतना कहने की ताकत तो नहीं है, लेकिन इतनी तो ताकत है कि कह सको मेरा बेटा मुनिराज है। जिसका बेटा मदिरालय में जा रहा हो, उस माता-पिता से पूछना, उनका चेहरा कैसा रहता है? उस पिता से पूछना जिसका बेटा मुनिराज बन कर बैठा हो। धन्य हो उन माता-पिता के परिणामों को। किन भावों से काम पुरुषार्थ किया होगा जिससे इनने निर्ग्रन्थ बनने वाले जीव को जन्म दिया हो। ऐसे परिणाम सभी के नहीं होते। मनुष्यभव पाकर भी कोई नीचकुल में जन्मा, उससे पूछो, दूर खड़ा मिलेगा आपको। दूर से हाथ जोड़ लेगा और तुम उच्च कुल में भी जन्मे तो वहाँ पर भी कोई अशुभ कर्म हो गये तो दूर खड़े मिलोगे।

मनुष्यगति की दशा देखो। गर्भ की व्यवस्था की व्याख्या कर रहे हैं आचार्य महाराज। गर्भ से लेकर मरण तक जीव ने कितने कष्ट सहन किये? भूलने की शक्ति न होती तो शायद तुम जी न पाते। वह तो तुम्हारे साथ भूलने की शक्ति चल रही है कि तुम कष्ट को जल्दी भूल जाते हो, इसलिये जी रहे हो। कहीं कष्ट याद रहता तो आदमी जी ही नहीं पाता। इस बात को 145वें श्लोक में कह रहे हैं।

विण्मूत्रपूरिते भीमे, पूतिश्लेष्मवसाकुले।
भूयो गर्भगृहे मातुर्दैवाद्यातोऽसि संस्थितिम्॥ सा. स.॥

नरक की वेदना को सहन करते हुये जीव कदाचित् मनुष्य हुआ, तो माँ के गर्भ में मल भरा हुआ है। माँ जो भोजन चबा रही है, वह सारा-का-सारा उसके ऊपर पड़ रहा है। आमाशय, पित्ताशय और मलाशय इनके बीच में गर्भाशय है।

उस गर्भाशय में तुझे रहना पड़ रहा है। देव जब अपने अवधिज्ञान से देखता है, तो गर्भ की हालत देखकर तड़प जाता है—हे भगवान्! मैं गर्भ में न जाऊँ। रत्नों की भूमि में रहने वाला मैं, वहाँ कैसे निवास करूँगा? एक क्षण को माँ के गर्भ की दशा को निहारो। यह जीव गर्भाशय में उल्टा लटका हुआ है, इस पीड़ा के ज्ञान को कौन जानता है? सर्वज्ञ के ज्ञान में देखो। यह जीव गर्भाध ाान से दस दिन तक तो कल-कल की अवस्था में रहता है। क्रम से दस-दस दिन बढ़ते-बढ़ते वह एक पिण्ड बन कर क्रम से पाँच महीने बाद अंकुरण प्रारम्भ होता है और पेट में हिलना-डुलना प्रारम्भ कर देता है। अभी भी भोजन क्या चल रहा है उसका? माँ का खाया हुआ द्रव्य ही उसके मुख में जा रहा है। अभी नाल तैयार नहीं हुआ। जब तक नाल तैयार नहीं होता, तब तक माँ का वमन ही सन्तान के मुख में जाता है। तीर्थंकर एकमात्र विशिष्ट पुण्यात्मा जीव हैं, जिनके गर्भ में जाने के पहले देवाङ्गनायें गर्भ का शोधन करती हैं कि माँ का जूठन बच्चे पर न गिर पाये। जगत् के शेष प्राणी क्या खा रहे हैं? नहीं, यदि नहीं खा पाओगे तो, मेरे मित्रो! इतनी बात मेरी मान लो कि ऐसा कुछ काम करो जिससे माँ के गर्भ में न आना पड़े। हे जिनदेव! मुझे और-कुछ नहीं चाहिये। बस, माँ के गर्भ में आना बन्द हो जाये। माँ के गर्भ में आना कब बन्द होगा? जब जन्म-मरण से छूट जायेगा। माँ यदि तीखा खाये, तो बेटे को कष्ट होता है, तीव्र वेदना होती है। ऐसी वेदना को झेलते-झेलते बालक का जन्म होता है।

जिनका सोच यह है कि एक दिन, दो दिन का गर्भपात कराने पर कोई पाप नहीं पड़ता, उन अभागों से कहना कि प्रथम दिन का ही गर्भपात क्यों न हो, वह पंचेन्द्रिय जीव का हिंसक है। गर्भाधान होते ही अन्तर्मुहूर्त में जीव पर्याप्ति को पूर्ण कर लेता है। विद्वानों को चाहिये कि इन युवाओं की कक्षा लगाओ। इनको बोध होना चाहिये कि ये भौतिकता में इतने बह चुके हैं। चाहे एक मास का हो, चाहे एक दिन का हो, चाहे एक मुहूर्त का हो, यदि गर्भधारण किया है और संयोग हुआ है, तो नवकोटि जीवों की हिंसा तो उसी क्षण हुई है। रज-वीर्य

में जो जीव हैं, उनका घात हुआ है। फिर जो जीव वहाँ आया है, वह भिन्न ही है। रज-वीर्य में जो जीव हैं, उनकी हिंसा को कौन टाल पा रहा है? उधर एक चींटी मरे तो कहता है कि प्रायश्चित्त दे दो इधर स्वयं के बेटे-बेटियों का ही घात कर रहा है। विश्वास रखना, जिसके यहाँ किसी का **सहज मरण हो जाये, तो बारह दिन का सूतक और तेरहवें दिन शुद्धि होती है। किसी ने आत्मघात कर लिया तो छह महीने का सूतक लग जाता है। जिसके घर में भ्रूणहत्या हो रही है, उनके घर में जीवनपर्यन्त का सूतक होता है।** ऐसे अभागों से क्या भोजन लेना, क्या पानी पीना? नियम ले लो कि मैं तो ऐसे घर में भोजन करूँगा जिस घर में ऐसे खोटे काम न हुये हों। ऐसे लोग मेरी अंजुली में ग्रास मत रख देना। वह व्यक्ति क्या दया का पालन करेगा जिसने सन्तान को जन्म ही नहीं लेने दिया? क्या देश की संख्या तुम ही कम करोगे? भाग्य पर विचार क्यों नहीं करते हो? आप जन्म लिये, खाने को मिल रहा है, तो वो भी जन्म लेगा, उसे भी खाने को मिलेगा। तुम किसी के कर्ता नहीं हो। माँ! यदि दुर्गति से बचना है तो ऐसे दुष्कर्म से अपनी रक्षा करना। पिताओ! ध्यान दो, दुर्गति से बचना है, तो ऐसी अनुमोदना मत करना। आज कायोत्सर्ग करके प्रतिज्ञा कर लेना और कभी ऐसा हो गया है तो प्रायश्चित्त ले लेना, परन्तु ऐसा काम करने का विचार नहीं करना। अच्छे लोग होंगे तो देश में धर्म चलेगा। अज्ञानी पापी जीव तो बढ़ रहे हैं, आप देश की संख्या कम करने के राग में जीवों को जन्म नहीं दे रहे हो। पण्डित जी! ये आपको बोलना चाहिये **'न धर्मो धार्मिकैः बिना'। यदि हमारे धर्मात्मा नहीं बचेंगे, तो धर्म कहाँ से बचेगा?** क्या पर्वतों में उगेगा, क्या जंगलों में उगेगा, क्या नदियों में आयेगा? धर्म तो धर्मात्मा के अन्दर होगा। आज नगर में मुनिराज आते हैं तो हलचल हो जाती है। फिर कैसे कह पायेगा 'बेटा हो तो ऐसा हो।' जब तुम्हारे बेटे-बेटियाँ ही नहीं होंगे, तो ब्रह्मी-सुन्दरी की बात कहाँ से करेगा और कहाँ से वर्द्धमान महावीर की बात करेगा? आज की पूरी चर्चा आपको अपने घरों में करना है और अपने रिश्तेदारों को समाचार दे देना कि हे ज्ञानी! भावी भगवन्तों की रक्षा करो। नारकी

तो कम-से-कम एक दूसरे के टुकड़े-टुकड़े कर रहे हैं, वैसे नारकी तुम अपने घर में ही मत बनो, अपनी सन्तान के टुकड़े कराने मत जाओ।

तुम्हारे घर में खिलाने को नहीं था तो किसी जिनालय की देहरी पर रख देता। जब श्मसान घाट पर जन्मे जीवन्धर कुमार को कोई बन्जारा उठा ले जा सकता है, तो यहाँ तो जैनी लोग हैं। तुमसे न पले तो मन्दिर की देहरी पर रख देना, तुम सब उसकी सुरक्षा करना, लेकिन आप उसके टुकड़े मत कराना। वही जीवन्धर कुमार महाव्रती बना। ऐसे भी बेटे हैं जो मुनिराज बन गये। माँ ने गोलियाँ खा ली कि गर्भपात हो जाये। ऐसे भी जगत् में जीव हैं जो गर्भपात कराने जा रहे थे, पता नहीं कौन से पुण्य के उदय से उसके भाव गदल गये तो आज वे जीव मुनिराज बन गये। वही बेटा जब महाराज को आहार देते मिलता है और मन्दिर में भक्ति-पूजन करते मिलता है, तो हृदय में आनन्द आता है। ज्ञानियो! आज से पक्का नियम लेकर चलना। न अनुमोदना करना, न किसी को सलाह देना, न स्वयं करना। कृत, कारित, अनुमोदना से प्रत्याख्यान/त्याग।

मनुष्य बने हो तो कम-से-कम इतना तो सोचना चाहिये। आगम कह रहा है कि अंतर्मुहूर्त में ही पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं, जीव आ चुका है। अब तो मात्र वृद्धि को प्राप्त होगा। चाहे एक दिन का हो, चाहे दस महीने का हो, बराबर। आपको पंचेन्द्रिय जीव के घात का ही पाप पड़ेगा। **जन्मे हुये को कोई घात कर दे तो शासन दण्ड देता है। जिनशासन कहता है कि चाहे जन्मा हो या न जन्मा हो, गर्भ में ही आया है, तुमने मन में ही मारने का चिन्तन किया है, तब भी तुम्हारे लिये पाप का बन्ध हो गया।** समाज के अन्दर ऐसी भी समिति होनी चाहिये जो सुख-दु:ख को देखे, साथ में समाज की रक्षा भी करे। अनाचार से भी समाज की रक्षा करे।

अनेक संस्थायें होती है, लेकिन गरीबों की परेशानियों को देखने वाली संस्थायें कहाँ हैं? यदि आप गरीबों को देख लोगे, तो उनको भी लगेगा कि कोई मेरा है। कई तो इसलिये भी हिंसा करते हैं कि ये जन्म लेगी तो मैं खिलाऊँगा क्या? परन्तु इनको इतना विवेक नहीं है कि जैसे आप अपने भाग्य से खा रहे हो, ऐसे

ये भी अपने भाग्य से खा लेगी। सिद्धक्षेत्र नेमावर के पास हरदा तहसील में खातेगाँव में एक परिवार आज भी ऐसा है जिसमें एक साथ सौ सदस्य भोजन करते हैं। चार पाँच भाई हैं, आज तक अलग नहीं हुये। सभी सन्तानें एकसाथ बैठती हैं तो बाहर के लोग भी देखने आते हैं कि ऐसा भी परिवार आज है। इतनी सुमत है कि एक चूल्हे पर प्रतिदिन सौ लोगों का भोजन बनता है। आप कल्पना करो, ऐसे भी लोग हो सकते हैं। यदि ऐसे नहीं हैं, तो तुमसे अच्छी चीटियाँ हैं, वे सब इकट्ठी रहती हैं।

गर्भ में जीव मल-मूत्र से लिप्त भयानक स्थान में रहता हुआ, वहाँ श्लेष्मा दुर्गंध से भरा हुआ है ऐसे गर्भगृह में माता के उदर में योनिस्थान में रहता हुआ समय व्यतीत करता है। नौ दस महीने उल्टा लटका रहता है। जन्म होता है, उसकी पीड़ा वह संतान ही जानती है और माँ की पीड़ा माँ जानती है। कभी माँ की, कभी सन्तान और माँ दोनों की मृत्यु हो जाती है, ऐसा भी होता है। ऐसे भयानक दु:खों को प्राप्त करके हम सब आज यहाँ बैठे हुये हैं। कम-से-कम ऐसा पुरुषार्थ करो कि हे भगवान्! ऐसी अवस्था पुनः प्राप्त न हो, जन्म-मरण का अभाव हो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"तिर्यंच गति के दु:ख"

तिर्यग्गतौ च यद् दु:खं प्राप्तं छेदनभेदनै:।
न शक्तस्तत् पुमान् वक्तुं जिह्वाकोटि शतैरपि॥ 146 सा. स.॥

अन्वयार्थ-च तिर्यग्गतौ = और तिर्यञ्च गति में **छेदनभेदनै:** = छेदन-भेदन के द्वारा **यत् दुखं प्राप्तं** = जो दु:ख उठाये हैं, **तत्** = उनको **पुमान्** = कोई मनुष्य **जिह्वाकोटिशतै: अपि** = करोड़ों जिह्वाओं के द्वारा भी **वक्तुं न शक्त:** = कहने को समर्थ नहीं है।

भावार्थ—हे आत्मन्! तिर्यञ्च गति में छेदन-भेदन के द्वारा तूने जो दु:ख प्राप्त किये हैं, उन दु:खों को कोई मानव करोड़ों जिह्वाओं के द्वारा कहने में भी समर्थ नहीं है।

"संसार में कहीं भी सुख नहीं"

संसृतौ नास्ति तत्सौख्यं यन्न प्राप्तमनेकधा।
देवमानव-तिर्यक्षु भ्रमता जन्तुनाऽनिशं॥ 147 सा. स.॥

अन्वयार्थ-तत् सौख्यं = ऐसा कोई सुख **संसृतौ** = इस संसार में **नास्ति** = नहीं है **यत् अनेकधा** = जो अनेक तरह से **जन्तुना** = इस जीव ने **अनिशं** = रात-दिन **देवमानवतिर्यक्षु भ्रमता** = देव, मनुष्य और तिर्यञ्च गतियों में भ्रमते हुए **न प्राप्तं** = न पाया हो।

भावार्थ—तिर्यञ्च, देव, मनुष्य और नरक गति रूप संसार में निरन्तर भ्रमण करते हुए इस प्राणी ने ऐसा कोई सुख भी नहीं पाया है जो अनेक बार प्राप्त नहीं किया हो।

॥सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन। जयवन्त हो श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमण संस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय में जीव की असमान जाति पर्याय

में गमन करने के हेतुओं की चर्चा कर रहे हैं। चार गतिओं में किस प्रकार के दु:खों को प्राप्त किया है इस जीव ने? देह को प्राप्त करके भी किञ्चित भी शान्ति को प्राप्त नहीं किया। लोक में व्यवहार में आकरके सारे लोगों के बीच में कितनी माया के साथ रहना पड़ रहा है? भीतर क्लेश से भरा है, बाहर में चेहरा मुस्करा रहा है। ये जीव मनुष्यपर्याय में कितना संक्लेशित हो रहा है? बेचारा अपने दु:ख को प्रकट भी नहीं कर पा रहा है, क्योंकि दु:ख को प्रकट करने के लिये उसे मायाचारी करनी पड़ रही है, प्रसन्न चेहरा दिखाना पड़ रहा है, क्योंकि लोग क्या कहेंगे? भीतर की वेदना भी प्रकट नहीं कर पा रहा है, लोक क्या कहेगा? तिर्यञ्च फिर भी कष्ट होने पर चिल्ला लेता है, पर आप पीड़ा के होने पर रो भी नहीं पा रहे हो। पराये के द्वारा दु:खित किया जाये तो फिर भी अपनों के बीच में कह कर हल्का हो लेता है; पर जब अपनों के बीच में ही दु:खी होता है तो घर की इज्जत के मान में अपनी व्यथा को भी रो नहीं पा रहा है। उनके नेत्र साफ होते हैं जो अपने भीतर बात को नहीं रखते हैं। उनके नेत्र मलिनता को प्रकट कर रहे हैं जो बाहर से तो मुस्करा रहे हैं और भीतर से रो रहे हैं। कितने लोग माँ से दु:खी हैं, कितने लोग पिता से दु:खी हैं। कोई माँ से दु:खी सन्तान हैं, कोई सन्तान से दु:खी माता-पिता हैं। बेटे ने कोई ऐसा कृत्य कर दिया कि पिता अब समाज में आँख उठाकर देखने की सामर्थ्य नहीं रख पा रहा है। इस पीड़ा को कौन देखने जा रहा है? **गरीबी की पीड़ा दिख सकती है, अमीरी का सुख दिख सकता है, पर भीतर के सन्ताप किसी को दिखाई नहीं देते।** कितना झुलस रहा है हीन भावना में, जीव कितना दु:खित है? उस छात्र से पूछना जिसके नम्बर कम आये हों बेचारे को दिन में दिन नहीं दिख रहा, रात्रि में रात्रि नहीं दिख रही। नरदेह को प्राप्त किया है, मनुष्यपर्याय को प्राप्त किया है, पर मनुष्यत्व का आनन्द नहीं ले पा रहा है। आपने स्वर्गों की बातें कर ली हैं, नरकों की बातें कर ली हैं, पर जहाँ हो उसकी बात करो। अपमान का दु:ख आपने झेला है, सम्मान का दु:ख भी आपने झेला है। अपमान के दु:ख को पचा लेना बहुत सरल है, सम्मान के दु:ख को पचा पाना बहुत

कठिन है। अपमान के दु:ख में अन्दर कमरे में बैठ कर रो लेगा। सम्मान का दु:ख यह है कि जब तक हजारों को नहीं बता पाता, तब तक शान्ति नहीं मिलती है। यह दु:ख ही है। उस दु:ख को सुख के बाद प्रकट किया जाता है मुस्करा करके। जो-जो बन्ध के कारण हैं, वे सब दु:ख हैं, तेरे मन में कुछ हर्ष की बात आ रही हो तो तू तब तक अन्दर में घुटता है जब तक कि किसी को बता नहीं देता है। बता, सुख था कि दु:ख था?

न व्यक्ति पागल होते हैं, न व्यक्ति रोगी होते हैं। इनका कारण अन्दर की घुटन है। अन्दर की घुटन का कारण यह है कि जीव वस्तुस्वतन्त्रता को नहीं जानते, वस्तु-स्वभाव को नहीं समझ पा रहे हैं। आप यथार्थ मानिये, जो तत्त्वज्ञान से शून्य होगा, वह जल्दी विक्षिप्त होगा। मन्दबुद्धि पुरुष जो कषाय को पचाना नहीं जानते, जो जीवन का निर्णय लेना नहीं जानते हैं, वे सर्वाधिक दु:खी मिलेंगे। सुख-दु:ख के काल में अपने जीवन के निर्णय लेना सीखना एक बहुत बड़ी कला है। पानी को देख कर चींटी अपना मार्ग मोड़ लेती है। जब चींटी अपने प्राणों की रक्षा के लिये अपने मार्ग से मुड़ जाती है, तो अपने धर्म की रक्षा के लिये तुम अशुभ भावों को क्यों नहीं मोड़ लेते हो? जिस मार्ग में आग लगी है, उस मार्ग से अपना मार्ग मोड़ दो, रक्षा हो जायेगी। मन मोड़ दो, रक्षा हो जायेगी। जो पापों में मन जा रहा था, जो हीनभावना में मन जा रहा था, जो अशुभ में मन जा रहा था, उस मन को मोड़ दो, रक्षा हो जायेगी। चींटी मुड़ना जानती है, हाथी मुड़ना जानता है, अपना मार्ग मोड़ लेता है। देह के कष्ट को देखकर हाथी अपना शरीर संकुचित कर लेता है। बड़ी-बड़ी खाइयों को लाँघ जाता है, पुलियों को कूद जाता है। मार्ग मोड़ दो, कोई कष्ट नहीं है।

भैया! पचास बार हथेली पर अँगुली को घिस दो तो हाथ में फोला हो जायेगा, अग्नि का अंगारा नहीं रखना पड़ेगा। माथे पर घिस करके लोगों ने स्थाई तिलक लगा लिये। एक स्थान पर संघटन करोगे तो वहाँ उष्मा प्रकट हो जाती है।

वैद्य डाक्टर आजकल रोगियों को यथार्थता का बोध नहीं होने दे रहे हैं। यथार्थता का बोध हो जायेगा तो इनकी भीड़ कम हो जायेगी। हर विषय में आपको तात्विक

चिन्तन करना चाहिये। हाथ में हाथ का घर्षण करने से उष्णता प्रकट होती है, ऐसे-ही जो पुरुष एक विषय को लेकर बार-बार चिन्तन करता है, उसका वह चिन्तन चिन्ता में बदल जाता है और फिर चिन्ता चिता में बदल जाती है। आपके मस्तिष्क के तंतु गर्म होते हैं, गर्म होकर विवेक को खो देते हैं, फिर आदमी पागल हो जाता है। ज्ञानियो! विषय को बदलिये, एक ही स्थान पर बार-बार चिन्तन मत करो। सूखे बाँसों के घर्षण से चिंगारी उत्पन्न हो जाती है, ऐसे-ही मस्तिष्क में बार-बार चिंतन चलेगा तो मस्तिष्क में आग लग जायेगी, तो फिर आगे के लिये चिन्तनविहीन हो जायेगा। चिन्ता करना छोड़ दो, अपने आपको थोड़ा मुक्त कर दो। समय देना तो सीखो।

प्रवचनकारों से मेरा कहना है कि मनोवैज्ञानिक चिन्तन का प्रवचन करना चाहिये, क्योंकि आजकल मानसिक रोगियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। उसमें कारण है। माताओ! तुम्हारा भी हाथ है। परिवार को दु:खी करना, इसमें तुम्हारा बहुत अच्छा हाथ है। आपको यदि किञ्चित् भी समझ में आ रहा हो और अपने भविष्य व परिवार पर किञ्चित् भी करुणा हो, तो आज के प्रवचन को घर में दोहरा लेना। आप कहेंगी महाराज जी! सब मेरे ऊपर क्यों छोड़ दिया? उसका हेतु है। अपने बेटे के पिता को प्रसन्न रखोगी, वह प्रसन्न हो गया तो विश्वास रखना, आप भी सुखी रहोगी। आप खुश रहेंगे तो आपकी वंश-परम्परा, आपकी सन्तान भी खुश रहेगी। जब सब प्रसन्न रहेंगे, तो घर का वातावरण धर्मिक होगा, णमोकार के पाठ गूँजेंगे। जिनवाणी गूँजे, उस घर में कभी मानसिक रोगियों का जन्म हो नहीं सकता है। जरा-सी बात पर सफाई देना बन्द कर दो। आदमी भीतर बात रख लेता है, फिर सफाई देने के लिये खड़ा हो जाता है। भूमि को भी साफ करता है तो पानी बरबाद होता है। जितना तूने भूमि को साफ करने में पानी बरबाद किया है, उतना पानी लेकरके श्री जी के मस्तक पर डाल देता तो गंधोदक बन जाता। जो तू अपनी बात की सफाई देने के लिये आयुकर्म को नष्ट कर रहा है, क्षयोपशम को नष्ट कर रहा है, उस समय को तू आत्मचिन्तन में लगा देता, तो तेरा निज का अभिषेक निज में हो जाता, तू स्वयं भगवान् बन जाता।

ये सोचना बन्द करो कि मैं इसको विश्वास दिला कर रहूँगा। ये विश्वास रखना कि जिस व्यक्ति के भीतर विश्वास मानने वाला नहीं है, वह तुम्हारी कोटि-कोटि बात में भी विश्वास मानने वाला नहीं है। मैं क्या आपको विश्वास दिला पाऊँगा? तुम तीर्थंकर ऋषभदेव की नहीं माने हो, तुम महावीर स्वामी की नहीं माने हो। अनन्तानन्त चौबीसियाँ इस भारत की भूमि पर हो चुकी हैं। आप बात मानते होते तो शीघ्र ही मान लेते। जब भगवन्तों की नहीं मानी है, तो मेरी क्या मानोगे? जब उपादान प्रशस्त होगा, भाव विशुद्धि होगी, तो शीघ्र मान लेगा। जिसका उपादान प्रशस्त नहीं है, वह दुनियाँ के हेतु खोजेगा, तर्क खोजेगा, शर्तें रखेगा। **मोक्षमार्ग शर्तों का मार्ग नहीं है, मोक्षमार्ग श्रद्धा का मार्ग है।**

एक ज्ञानी आया, कहता है, महाराज जी! मैं आपसे दीक्षा लेना चाहता हूँ, लेकिन एक शर्त है, आपको मेरी ये व्यवस्था करनी पड़ेगी।' ज्ञानी! तू घर में रह। जो साधु मिल जाये, उनको नमोऽस्तु करके कर्मों की निर्जरा कर लेना, परन्तु संघों में संख्या बढ़ा करके, इन शर्तों को रख करके, नरक की गति का बन्ध मत कर। महाराज जी! मैं आपसे दीक्षा लेना चाहता हूँ, लेकिन शर्त है। क्या? गर्मियों में दो बार पानी की छूट दे देना। ज्ञानी! यह भीड़ का मार्ग नहीं है, यह प्रचार का मार्ग नहीं है, यह आचार का मार्ग है। अपने पुद्गल के प्रचार के लिये मैं तुझे दीक्षा देकरके जिनशासन को बदनाम करना पसन्द नहीं करता। मोक्षमार्ग आस्था का मार्ग है, विश्वास का मार्ग है और मात्र निर्वाण प्राप्ति का मार्ग है, अन्य कोई कार्य का मार्ग नहीं है। आपको कठिन लगता है, लेकिन सत्यार्थ मार्ग यही है।

किसी ने हाथ में धनुष-बाण लेकरके किसी पर चला दिया। उसने एक क्षण में उसके द्रव्यप्राण का घात कर दिया। जितनी वेदना उसको होनी थी, हो चुकी। उसने हिंसा करके पाप का बन्ध किया ही है, पर इस महापापी से वह व्यक्ति कम पापी नहीं है जो घर में सदस्य बन कर रहता हो, परिवार का हो, लेकिन हर बात पर क्षण-क्षण में काटने दौड़ता हो, तनाव देता हो, बार-बार सुई चुभो रहा हो। उस व्यक्ति को हत्यारे से कम मत समझना, जो किसी को तनाव में रख रहा हो। अन्तर इतना है कि एक औषधि छत पर डाल कर सुखाई जाती

है, कुछ औषधियाँ कमरे के भीतर सुखाई जाती हैं। परिवार के लोग इसी प्रकार के हैं कि छत पर लोग देख लेंगे, इसलिये ये कमरे में रख कर सुखाते हैं। माँ! यदि आपने घर के वातावरण को दूषित किया, तो मान कर चलना कि आप कमरे में रख कर सुखा रहे हो।

मनुष्यगति का सबसे बड़ा दु:ख है परिवार के बीच रह कर परिवार की बात सहन करना। सन्तान की प्रवृत्ति को देख करके जनक-जननी कैसे बिलख रहे हैं अन्दर में? कोई विजातीय विवाह करके आ गया, अब उससे पूछना। जिसका पिता समाज में पूज्यता को प्राप्त हो रहा हो, अब उससे पूछना कि तुम आँख कितनी ऊपर करके देख पाओगे। जब अपनी सन्तान को नहीं सम्हाल पाये, तो समाज को क्या सम्हाल पाओगे? मानसिक पीड़ा को कौन दे रहा है? यदि किसी ने आपके ऊपर हाथ का वार भी कर दिया, तो दूसरा पकड़ लेगा। कि आप मत मारिये। **शरीर पर पीड़ा देनेवाले के लिये रक्षा करनेवाले मिल जायेंगे, पर मन में पीड़ा देने वाले के लिये कोई रक्षा करने वाला भी नहीं मिलेगा,** क्योंकि दिखाई नहीं दे रहा है। आपसे ज्यादा सुखी बच्चे हैं। क्यों? उनको कोई वेदना होती है तो वे रो लेते हैं। लेकिन तुम ऐसे हो कि तुम्हें रोने को भी नहीं मिलता। जो रो नहीं पाता है, वह अन्दर-ही-अन्दर घुटता है।

जब भी जीवन में कोई पीड़ा हो, कष्ट हो, अशुभ भाव आयें, तो गुरु के पास जाकर बैठ जाना, 'हे स्वामी! जगत् में कोई सहयोगी नहीं होता है, चत्तारि सरणं पव्वज्जामि।' सुना भर देना। विश्वास रखना, आप हल्के हो जाओगे। आपके घर में तो फिर भी दूसरे सदस्य हैं, आप उनको सुना दोगे, लेकिन ये मुनिजन क्या करेंगे? तो हमारे यहाँ प्रतिक्रमण की व्यवस्था है, आलोचना की व्यवस्था है, निन्दा-गर्हा की व्यवस्था है। प्रभु के पादमूल में पहुँच करके दिगम्बर वीतरागी तपोधन भी अपने भीतर की वेदना को प्रकट करते हैं, 'हे स्वामी! पापिष्ठेन दुरात्मना। हे प्रभो! मैं पापी हूँ, दुष्ट हूँ, रागी हूँ, द्वेषी हूँ, पापों से मलिन हूँ। हे नाथ! अशुभ भावों से मेरी रक्षा कैसे हो? मैं आपके चरणों में आ चुका हूँ। मेरे से जो दुष्कृत निर्मित हुआ हो, वह सारा-का-सारा पाप आपके चरणों में मिथ्या हो। परमात्मा के पादमूल में आलोचना की व्यवस्था है।

लोचन यानि आँख। अक्ष यानि आँख, अक्ष यानि इन्द्रियाँ। यदि आँख में कीचड़ आ जाये या तृण चला जाये तो, अरे भैया! दिखता नहीं है। एक वस्तु की दो वस्तु दिखना प्रारम्भ हो जाती है। अच्छे से साफ दिखाई नहीं देता है तो तुरन्त आँख को साफ करता है। क्यों? अच्छे से दिखाई नहीं देता है। जब आत्मा में विकारों का कीचड़ आता है, आत्मा में विषयों का कीचड़ आता है, आत्मा में संकल्प-विकल्पों का कीचड़ आता है, तो तुझे आत्मा का सम्यक् बोध नहीं होता है। इसलिये कीचड़ को साफ करो, आलोचना करो। आँख को साफ करने के लिये आप त्रिफला का छींटा डाल लोगे, शीतल पानी का छींटा मार लोगे, आँख तो पानी से साफ हो जायेगी; लेकिन आत्म-आँख साफ करना है तो जिनवाणी का छींटा लगाना पड़ेगा, दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिये आँख साफ करो। जिस दिन तुम्हारे भीतर की बातें निकल जायेंगी, उस दिन सुख-ही-सुख है।

बहुत सारे वैद्य मानसिक तनाव की गोली दे देते हैं, फिर वे उपचार भले ही किसी भी नाम से करते रहें। गोली ने मानसिक तनाव हल्का कर दिया, अब वे किसी भी रोग के नाम से आपसे पैसे ले सकते हैं। विश्व में सबसे बड़ी औषधि है गुरु के चरणों में चले जाना, अरहन्त की आराधना में बैठ जाना और महान्-से-महान् कोई उपाय है तो वह है सद्शास्त्र को लेकर बैठ जाना। यदि देश को, राष्ट्र को, परिवार को आनन्दमय रखना चाहते हो तो आप स्वाध्याय की परम्परा को बढ़ाइये। यहाँ से उठने के बाद आप बाहर जाते हो तो कुछ महसूस करते हो कि नहीं? प्रवचन भवन में आने पर कुछ-और महसूस करते हो, जब प्रवचन सुन कर जाते हो तो सोच कुछ भिन्न हो जाता है, चेहरा भिन्न हो जाता है। आवश्यकता है घर-घर में स्वाध्याय की। तुम नरकगति के दु:खों से तो डर रहे हो, तिर्यञ्च गति के दु:खों से तो डर रहे हो; परन्तु जो मनुष्यगति के दु:ख तुम भोग रहे हो, उसे समझ नहीं रहे हो। कितने प्रकार के क्लेश हैं? इतना ही नहीं, जिस घर में तुम जी रहे हो, उससे ज्यादा क्लेश तुम्हें रिश्तेदार दे रहा है। कहीं बेटी का सम्बन्ध हो गया, अब ऐसा पति मिला जो उसको कष्ट देता है तो माता-पिता को तीव्र वेदना हो गई। मनुष्यपर्याय कैसी विचित्र है कि दूसरे के घर में मरण हो तो तुझको रोना पड़ता है। क्या तेरी पर्याय रोने के लिये मिली

है? चाहे मातृपक्ष में मृत्यु हो तो रोना पड़ता है, ससुर पक्ष में मृत्यु हो तो रोना पड़ता है, क्या रोना ही तेरा जीवन है? यह पराधीन पर्याय है।

बिना दो के तुम रह ही नहीं पा रहे हो, हर व्यक्ति को सहयोग की आवश्यकता दिखती है। सबसे बड़ा दुःख यही है। कितने सारे युवा इसलिये पागल हो गये कि बेचारों की शादी नहीं हो पा रही है। अकेलेपन को महसूस कर रहे हैं। कितने ऐसे प्रौढ़ लोग हैं जो उन्मत्त हो गये, क्योंकि उनकी देवी का देहावसान हो गया, अपने को अकेला महसूस कर रहे हैं। आपने जन्म से ही 'अहमिक्को' सूत्र को समझ लिया होता तो ये पागलपन न आता।

'एक्को करेदि कम्मं' जो भी कर्म किया है, तूने ही किया है, इसलिये उसके फल को भी अकेला ही भोगेगा। जब शरीर में वेदना हो, बुखार बढ़ा हो और तू बिल्कुल झुलस रहा हो, तो उस समय बेटा रोये, पत्नि रोये कि आपको क्या हो गया? यदि उसके चेहरे को देखकरके तू भी चेहरा बिगाड़ लेगा, तो और-दुःख प्रारम्भ हो जायेगा। उस समय एक ही बात कहना 'एक्को करेदि कम्मं' मैंने कर्म अकेला किया है, आप लोग क्या कर सकते हो? भोगना मुझे ही तो पड़ेगा। सताने वाले हजारों मिल सकते हैं, पर भोगनेवाला तू अकेला होगा।

इस भ्रम को आज से निकाल देना कि लोक में कोई मेरी रक्षा करने वाला होगा, मेरा भी कोई सहयोगी होगा। विश्वास रखना, तेरा पुण्य निर्मल है तो सर्वत्र सहयोगी मिलेंगे और पुण्य निर्मल नहीं है तो तेरे घर के लोग भी तेरा सहयोग नहीं करेंगे। ज्ञानियो! 'एक्को करेदि कम्मं', 'अहमिक्को' इन दो सूत्रों को भूल मत जाना। चाहे विपत्ति का काल हो, चाहे सम्पत्ति का काल हो, हर समय आपको इन सूत्रों का ध्यान रखना है। कोई किसी का होता नहीं है, विश्वास रखना। बिल्कुल अनुभव के साथ बोल रहा हूँ, आगम के साथ बोल रहा हूँ, जिनेन्द्र के उपदेश से बोल रहा हूँ। कोई किसी का होता नहीं है। तू कितना ही सबके बीच मुस्करा ले, पर ध्रुव सत्य है कि तू ही तेरा हो सकता है, और-कोई तेरा नहीं है।

वीतरागी दिगम्बर तपोधन जब आत्मस्थ होकर बैठते हैं, तो यथार्थ अनुभव की बात बताऊँ, भगवान् में और स्वयं में भी दूरियाँ दिखाई देती हैं। आप आश्चर्य करोगे, भगवान् में और मैं में भी दूरियाँ दिखाई देती हैं। कई बार ऐसा चिन्तवन

आता है, हे प्रभो! निर्वाणश्री का वरण तो मेरे एकत्व-विभक्त से होगा, इसलिये मैं आपसे भी स्वतन्त्र हूँ, आप भी मेरे लिये परद्रव्य हो। मेरे लिये आप श्रद्धा के परमात्मा हो। जब मैं व्यवहार में होता हूँ तो मात्र श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध है, परन्तु तादात्य सम्बन्ध नहीं है, संश्लेश सम्बन्ध भी नहीं है। मेरा सम्बन्ध तो मात्र मेरे ज्ञान-दर्शन गुण में है। इस सत्य को लोक नहीं समझा पा रहा है। अब सोचो कि कितना गहरा रहस्य है? मस्तिष्क को स्वस्थ रखने के लिये आपको 'अहमिक्को ' सूत्र में जाना पड़ेगा, 'एक्को करेदि कम्मं' में जाना पड़ेगा, जिसको यह बोध ही नहीं है, आप कल्पना कर सकते हो कि संसार में जीव कितने दु:खी होंगे जो सुख को दु:ख नहीं समझ रहे हैं और दु:ख को दु:ख नहीं समझ रहे हैं। हाँ, नाती-पोतों में ही मस्त हैं। कुटने-पिटने में ही मस्त हैं। कुछ खाने-खिलाने में ही मस्त हैं। कुछ रोने-रुलाने में ही मस्त हैं। ये सब आपके घर की ही बातें हैं। माँ कुछ बोल देती थी तो तू पिता से बोल देता था, पिता बोलता था तो तू माँ से बोल सकता था, पर अपनी इच्छा से शादी कराके आ गया तो अब यदि वह तेरे गाल पर चाँटा मारने खड़ी हो जाये, तो न तू पिता से रो पायेगा, न माँ से रो पायेगा, क्योंकि वे दोनों कह देंगे कि तूने मेरे अनुसार कुछ नहीं किया, अपनी मर्जी से सब किया है, अब भोग। रिश्तेदार के पास भी जायेगा तो वह भी कहेगा कि मैं तेरे पक्ष में नहीं हूँ, तूने मेरे धर्म के विपरीत काम किया है।

युवाओ! ध्यान देना, वासना की उम्र अल्प है, धर्म की उम्र शाश्वत् है। जो वासनाओं के राग में परधर्म की कन्याओं को घर में लेकर आ गये अथवा तुम्हारी कन्यायें परधर्म में चली गयीं, तो वासनाओं की उम्र ढलने पर तुम्हारा जीवन रोने मात्र का बचता है। वासनाओं से शून्य होकरके, सनातन धर्म की रक्षा के लिये, जिन्होंने शादी की होती है, वे अन्तिम श्वासों तक मुस्करा कर जाते हैं। क्यों? जब युवा थे, तब साधुओं की सेवा में जीवन लगाया था और वृद्ध होने पर पति-पत्नि नियम ले लेना, यदि पति का वियोग होना तुम्हें पूर्व में दिखाई दे, तो आँख में आँसू मत डालना, उनकी समाधि कराना, बाद में रो लेना यदि नहीं मानते हो तो। वैसे रोने की कोई जरूरत नहीं है। यदि पत्नि जाती दिख जाय,

तब ध्यान रखना, उसकी समाधि कराना, आँखों में आँसू मत डालना, क्योंकि तुम्हारे सात फेरे पड़े थे उसमें तुम्हारी प्रतिज्ञा हुई थी।

एक बार हम लोग विहार कर रहे थे। नगर से थोड़ी दूर पहले रात्रि हो गई। संघ का मुकाम खेत पर हुआ। वहीं एक मन्दिर था, उसमें सामूहिक विवाह चल रहा था, पण्डित जी माइक से नियम दिला रहे थे, सो हम लोगों ने सुने। आप लोगों ने सात-सात नियम लिये। उसमें एक नियम था यदि आप धर्म से विचलित होयेंगे तो मैं सम्हालूँगा और मैं हूँगा तो आप मुझे सम्हालेंगी। धर्म में कोई किसी को बाधा नहीं डालेगा। चाहे कोई उपवास करे, चाहे नीरस करे, धर्म में विघ्न नहीं डालना। कोई अधर्म में जाने लगे तो उसे निकालने का प्रयास करना। संसार में व्यवहारदृष्टि से देखा जाये तो या तो अपने माता-पिता पर विश्वास होता है और जब माता-पिता चले जाते हैं तो व्यक्ति को आपस में पति-पत्नि पर विश्वास होता है। उससे बड़ा मित्र और-कौन मिलेगा? जिसको हमने जीवन सौंप दिया है, उससे जाकर आज कह देना कि मरण तो नियत है, यदि आप किञ्चित् भी मुझे अपना मानते हो, तो अन्तिम समय मुझे णमोकार सुना देना, आँखों में आँसू डाल कर मुझे राग में मत डालना। बहुत अच्छा है कि कम-से-कम घर में तुम्हारी व्यवस्था बन गई, घर में निर्यपाकाचार्य मिल गया। पहले तो यह कहना कि मुझे अन्तिम समय निर्ग्रन्थ गुरु के चरणों में लेकर चले जाना और यदि साधन नहीं बन पाये तो मेरे कानों में णमोकार सुना देना। अन्तिम श्वास में इतना सहयोग अवश्य करना। जिनके मित्र हों, वे मित्रों से कह देना-मित्रो! हमने आपके साथ रह कर संसार की बहुत अनुभूतियाँ ली हैं, लेकिन साथ में इतना ध्यान रखना कि अन्तिम श्वास के समय महामन्त्र सुना देना।

पद्म की पर्याय में श्री राम के जीव ने मरते हुये बैल को णमोकार सुनाया था तो वही बैल सुग्रीव बन करके आया और राम का सहयोग किया। जीवन्धर स्वामी ने मरते हुये कुत्ते को णमोकार सुनाया, वही कुत्ता मर कर यक्ष बना, उसने उनका सहयोग किया। तिर्यञ्चों को णमोकार सुना सकते हो। कभी-कभी लोक की शर्म बहुत अकल्याण करा देती है। पत्नि चाहे भी कि स्वामी जा रहा

है, मैं सुना दूँ, पर जो भीड़ खड़ी होती है, वो कहती है कि कैसी है देवी? ये मारना चाहती है क्या? अरे भाई! मारना नहीं चाह रही है, अब हाय हाय से क्या फायदा? णमोकार सुना रही है। किसी के मारने से नहीं मरता, आयुकर्म के क्षय से मरता है। आप शरम मत करना, आप तो अपने पति की अच्छी समाधि करवाना। ये मत सोचना कि मेरी माँग मिट जायेगी। माँग नहीं मिटेगी, ये मार्ग बन जायेगा कि ऐसी भी वीरांगना हुई हैं जिन्होंने अपने पति की अन्तिम श्वास के समय भी साथ न छोड़ा हो, णमोकार सुनाकर समाधि कराई हो, इससे बड़ी वीराङ्गना कौन होगी?

राजस्थान में आचार्यश्री का एक स्थान पर चातुर्मास हुआ। वहाँ एक धर्मात्मा श्रावक थे। बहुत दिन से बीमार थे। उनकी पत्नि अत्यन्त सुशील धर्मात्मा थी। उन दोनों ने आपस में चर्चा की 'देखो, मन्दिर जी में महाराज जी हैं, कुछ भी होता है तो आप शीघ्र महाराज को सूचना देना। उस व्यक्ति ने पिच्छी-कमण्डलु घर पर मँगवा कर रख लिया था। धन्य हो उस नारी की वीरता को, रात्रि के बारह बजे उसे लगा कि कुछ गड़बड़-सा दिख रहा है। वह सोचती है कि रात्रि के बारह बजे महाराज को कैसे परेशान करूँ? फिर भी सोचती है कि इन्होंने जो कहा था, उनकी बात भी पूरी करना है। जबतक बच्चों को भेजा धर्मशाला में, तब तक सोचती है कि पता नहीं कितना बिलम्ब हो जाये। उसने स्वयं उनके कपड़े खोल दिये और कहा 'लो पकड़ो ये पिच्छी-कमण्डलु। मेरे से मोह करना छोड़ दो। मार्ग ये है। आप ऐसे-ही आये थे। दुनियाँ तो जाने के बाद सामान उतार कर फेंकती है, आपके जीते जी उतर गये हैं। बस, अब उतर तो गये हैं, अब उतारना तुमको है।' पत्नि बोल रही है 'जो उतारने लायक थे, वो मैंने उतार दिये हैं, पर उतरना आपको है, सो उतर जाओ। तिर जाओ। मेरा भी राग छोड़ दो। आप दिगम्बर मुनि बन चुके हो।' जब तक महाराज पहुँचे, उनकी समाधि उनकी पत्नी करा चुकी थी।

समाधि के काल में महाराज रात्रि में भी बोल सकते हैं और असमय में जाना पड़े तो जा भी सकते हैं, क्योंकि एक जीव का समाधि मरण होना चाहिये। बाद में वे प्रायश्चित्त करेंगे। लेकिन रात्रि में भी महाराज बोल सकते हैं। उसका तात्पर्य

यह नहीं है कि व्यर्थ में बोलते रहें। मात्र उसको सम्बोधन देने के लिये। नहीं-तो आप उसको मार्ग बना लो कि बोल सकते हैं। मात्र सल्लेखना के काल में, विपत्ति के काल में। कोई अन्यथा कार्य करने जा रहा हो तो ऐसे काल में महाराज को बोध हो जाये, तो उनको बोल सकते हैं कि ऐसा मत कर।

आगम में एक कथा मिलती है। एक पुरुष प्रेमिका से मिलने जा रहा था। पर वस्तुस्वरूप ये था कि उसके पिता की मृत्यु युवा-अवस्था में हो गई। उसकी माँ भी युवती थी। उसकी दृष्टि किसी दूसरे पुरुष पर थी। बेटे की दृष्टि किसी दूसरी नारी पर थी। मिलन का जो निश्चित स्थान था, वहाँ माँ पहुँच चुकी थी। बेटे को पता नहीं था कि वहाँ मेरी माँ ही है। वह परस्त्री मान करके उसके साथ व्यभिचार करने जा रहा था। मार्ग में मुनिराज बैठे हुये थे। उन्होंने अपने ज्ञान से जान लिया तो उसको वहीं रोक दिया रात्रि में। भाई! तू जहाँ जा रहा है, वह कोई परस्त्री नहीं है, वह तेरी माँ है। ऐसे खोटे पाप के लिये तू कहाँ जा रहा है? रात्रि में मौन खोल करके मुनिराज ने उसकी रक्षा की। वहाँ मुनिराज ने उसको पिच्छी-कमण्डल दिया और देखो नियोग उस जीव का, एक दिन साधना कर ली, दूसरे दिन उसकी श्वास निकल गई। धन्य हो ऐसा धैर्य। दूसरी दृष्टि आपको बताऊँ राग की महिमा सुनो।

एक विद्वान् थे। उस नगर में मैं भी विराजा था। बेचारे को डाक्टर ने बोल दिया कि आप एक-दो घण्टे मात्र के मेहमान हैं। परिवार के सदस्यों को मालूम हो गया, फिर भी वह जीव यह नहीं कह रहा कि मुझे महाराज के पास ले चलो। मालूम क्या बोल रहा है? मुझे चमेली का तेल लगा दो। उसके भैया और पत्नि उसे जिला चिकित्सालय में लेकर पहुँच गये, जबकि भाई को पता था, पत्नि को मालुम था कि इनके पास मात्र दो घण्टे हैं। कर्म की विचित्रता और पाप का उदय सुनो। मात्र द्रव्य पाठ करने से कल्याण नहीं होता है। मात्र पाठ गुणकारी नहीं होता है। श्रद्धा रहित तुमने शास्त्र भी पढ़े, वे तुम्हारी समाधि नहीं करा पायेंगे। यदि तुमने जरा भी तत्त्व का विपर्यास किया, इसका निर्णय आज नहीं होगा, अन्तिम समय होगा जब मृत्यु का काल आयेगा, तब तू हास्पिटल की बात करेगा

कि समाधिमरण की बात करेगा? इससे निर्णय होगा कि तूने जिनवाणी का विपर्यास किया है। जो जिनवाणी के विपरीत बोलेगा, वो समाधिमरण नहीं कर पायेगा।

ऐसे-ऐसे विद्वान् हुये जिन्होंने बड़े-बड़े ग्रन्थों का लेखन किया, लेकिन जरा-से विपर्याय के कारण अन्तिम समय में उन्मत्त हो गये, अपने शरीर का मल अपने हाथ से अपने मुख में रख लिया। ऐसे भी विद्वान् हुये। सम्हलकर सुनना और सम्भल कर जीना। बड़े-बड़े सिद्धान्तग्रन्थों की टीका लिखने वाले लोग उन्मत्त हो गये। इसलिये सिद्धान्त में एक शब्द का भी विपर्यास मत करना। आचार्य शान्तिसागर जी के समय में एक 'संयत' शब्द पर विकल्प चले थे। परन्तु इतनी अच्छी समाधि क्यों हो गई? आचार्य महाराज के मन में विकल्प था, परन्तु समाधिकाल के आते-आते उन्होंने आगम की बातों को स्वीकार किया, विद्वानों की नहीं। जैसा पूर्वग्रन्थों में लिखा है, वही सही है।

भैया! एक बार मुख से कहीं गलत निकल गया, उसको बाँध कर मत बैठो, अन्यथा भव-भव में भटक जाओगे। गल्ती को सुधार लो। आगम में जो शब्द नहीं है, लेकिन मुख से निकल गया है, उस भूल को सुधार लो। घर की बात है, कोई बाहर की बात नहीं है। नहीं-तो सल्लेखना के समय पता चल जायेगा, हाय-हाय करके जाना पड़ेगा।

जब उनका सबकुछ हो गया, शुद्धि वगैरह हो गई, तो उनकी पत्नि और बड़ा भैया मेरे पास आये और आँखों में अश्रुपात करके प्रतिमाधारी जीव कहता है 'महाराज जी! मेरी बुद्धि देखो और भैया के कर्म का उदय देखो। मैंने चिन्तन किया कि डाक्टर ने दो घण्टे का बोला था, एक घण्टा हो चुका है, एक घण्टा शेष बचा है, यदि ये चला गया तो मैं पानी नहीं पी पाऊँगा, भोजन नहीं कर पाऊँगा, इसलिये मैंने कुये पर जाकरके शुद्ध पानी खींचा और अपना भोजन करना शुरू कर दिया और उनकी पत्नि से बोल कर गया था कि आप इनको णमोकार सुनाना।' भैया का भाव देखो। जो व्यक्ति प्रतिमाधारी हो, प्रोषध करने वाला हो, उसके उस समय के परिणाम देखो, भोजन करने गया। पत्नि ने भी णमोकर नहीं

सुनाया, मात्र बैठी-बैठी रोती रही। जब वापस पहुँचा तो हंस जा चुका था। पूछता है बहू से कि बेटी! णमोकार सुनाया था कि नहीं? वह कहती है 'भैया! मैंने णमोकार नहीं सुनाया।' क्यों? 'मेरे मन में भाव ही नहीं आ रहे थे कि इनको णमोकार सुनाऊँ।'

जबकि पत्नि भी एक विद्वान् की बेटी थी और विदुषी नारी थी। जब अशुभ कर्म का उदय आता है तो सारे-के-सारे लोगों की मति बदल जाती है और पुण्यात्मा जीव होता है तो मार्ग में पड़े गाय, बछड़ा, चूहे जैसे जीवों को भी णमोकार सुनानेवाला मिल जाता है। मार्ग में एक बछिया पड़ी हुई थी, पूरा मुनिसंघ वहाँ खड़ा हो गया। हमने कहा कि देखो, साधु को साधु न मिलें, लेकिन एक इस जीव को देखो कि पन्द्रह साधु एक साथ उसको णमोकार सुना रही हैं। अहो इस जीव का पुण्य।

भैया! अन्तिम समय में ऐसे भाव बना कर जाना। नरदेह में कोई सुख का साधन है तो सल्लेखना मरण है। मनुष्यदेह में ही उत्कृष्ट समाधि होती है। पण्डित मरण और पण्डित-पण्डित मरण मनुष्य पर्याय मात्र में होता है, और-किसी पर्याय में नहीं होता। देह को ऐसे मान कर चलना कि घूरा। जहाँ गोबर, कचड़ा, कूड़ा सब इकट्ठा कर दिया जाये, उसका नाम घूरा है। घूरे की क्या कीमत? घूरा तो घूरा। घूरा 'घूरा' भले हो, सड़कर खाद में बदल करके जब खेत में चला जाता है, तो मोतियों जैसे गेहूँ देता है। ऐसे ही देह तो घूरा है। इसको रत्नत्रय खेत में डाल दिया तो वही घूरा तुझे मोक्ष का फल देगा। ज्ञानियो! इस देह का अन्य कोई उपयोग मत करो। अन्तिम समय सल्लेखना की भावना भाओ। मनुष्यपर्याय में सुख कहीं नहीं है।

जीव ने मायाचारी करके तिर्यंच आयु का बन्ध किया। तिर्यञ्चों की दशा तो आप प्रतिदिन देखते हो। फुदकते-फुदकते मेढ़े-बकरे सामने खड़े दिख रहे थे, वापस लौट कर आने पर उल्टे लटके मिलते हैं। बेचारों को कोई बचाने वाला भी नहीं पहुँचता। क्या कर सकते हो? विपाकविचय धर्म्य ध्यान ही कर सकते हो।

होरा जानते हो? चना के बूट। उनमें आग लगा दी, क्या बन गये? होरा।

ऐसा काम मत करना। स्वादिष्ट तो लगते हैं, लेकिन उनके बीच में कितने हरे-लाल कीड़े रहते हैं, वे सब चटपट जल जाते हैं। ये गलित कुष्ट किसका फल है? खाये थे तुमने होरे, सेंके थे बूट, उसमें जलाये थे कोटि-कोटि जीव। वे आज तुम्हारे शरीर में उभरकर आ गये हैं। तुम्हारा पुण्य प्रसंशनीय है जो तुम ऐसे कुल में जन्मे हो जहाँ जिनवाणी सुन रहे हो। उस कुल में होते जहाँ होरे-जैसे जीवित मछलियों को सेंका जाता हो तो? ये तिर्यञ्च गति के दु:ख देखो। हाथियों को वश करने के लिये कितने सूजे चुभाते हैं पैर में? बैलों को देखो, नकेल लगाये हैं। दक्षिण भारत में गायों को हल में जोत रहे हैं। बेचारी गिर रही हैं, पूँछ में काट करके उठा रहे हैं। इतना ही नहीं, माँ! पिताओ! ध्यान दो, तुम फिर भी अभी सुख में हो। मैंने महाराष्ट्र में ऐसा दृश्य देखा है कि जहाँ हल में गाय-बैल जुतते थे, वहाँ माता-पिता जुते हुये थे और बेटा उसको चला रहा था। एक खेत में बूढ़े दादा-दादी लगे हुये थे, जवान पोता मुठिया पकड़े हुये था। हे भगवान्! ये पंचम काल, माता-पिता बूढ़े हो गये तो बैल का काम कर रहे हैं। क्या करोगे?

संवेदनायें गीली रहें तो बहुत अच्छा रहेगा। आज लोगों की संवेदनायें ही तो सूख गई हैं। उसके साधन बड़े अच्छे हैं तुम्हारे पास। टी. वी. में काट-मार चल रही है, वहीं लोग रोटी खा रहे हैं, तो संवेदना बचें कैसे? कम-से-कम इतना नियम ले लो कि जहाँ अशुभ चित्र आ रहे हों, टी. वी. देखते-देखते भोजन नहीं करेंगे।

महाभारत का युद्ध भाई-भाई का युद्ध था। ऐसा युद्ध कहाँ हुआ? भूमि की खोज की जाये कि जहाँ पर इतनी क्रूरता हो सके, भाई भाई पर बाण छोड़ सके। कुरु वह क्षेत्र था। वहाँ पर एक माँ अपने नौजवान बेटे की लाश रखे हुए थी और रोटी खा रही थी। निर्णय किया कि इससे क्रूर क्षेत्र और-कौन होगा? उस क्षेत्र का प्रभाव देखो, वहाँ महाभारत का युद्ध हुआ। वह कुरुक्षेत्र है।

मन्दिर आते ही भाव बदलते हैं। श्मशान में भाव बदलते हैं। प्रवचन भवन में प्रवेश करते ही भाव बदलते हैं। साधुओं के पास भाव बदलते हैं। क्षेत्र का, द्रव्य का, काल का प्रभाव पड़ता है व्यक्ति के परिणामों पर। यही कारण है कि मन में कभी टेंसन हो तो सिद्धभूमि की वन्दना करने निकल जाना। घर के कोने

में दुर्गन्ध भरी हुई है, वहाँ ज्यादा रहोगे तो और-पागल हो जाओगे। भैया! तुरन्त बाहर निकल जाओ। शरीर का मस्तिष्क स्वस्थ है तो सब स्वस्थ है। मस्तिष्क ही विकृत हो गया तो क्या है? कुछ नहीं है। तिर्यञ्च गति की अनुभूतियाँ देखो।

तिर्यञ्च गति के दु:ख देखो। ट्रक-के-ट्रक निकल रहे हैं चारपाए तिर्यञ्चों के गाड़ी-की-गाड़ी भरी जा रही है। मुर्गा-मुर्गियों को कभी तो देखा कर। आज गली-गली में उन पक्षियों के अण्डे दिखाई दे रहे हैं। हे पंचमकाल! अभी तेरी बाल्यावस्था में ही इतना उपद्रव खड़ा हो गया है, तो जब तू युवा होगा, तब क्या होगा? दिन में एक बार इतना सोच लिया करो 'अहो मेरा भाग्य।' मैं तो अपने जीवन में बड़ा अहोभाग्य मानता हूँ, भले ही पंचमकाल में आया हूँ। और भूत के परिणामों को धन्यवाद देता हूँ, अहो भूत की पर्याय, अहो भूत के परिणाम! तुम्हें धन्य हो। इतना अच्छा किया होगा, भले ही इस काल में आये हो, लेकिन दुनियाँ जिन हाथों से गोबर ढो रही होगी, दुनियाँ अपने बच्चों के पिण्ड ढो रही होगी, मेरे हाथ में भगवती माँ जिनवाणी रहती है।

वे अभागे लोग हैं जो जिनवाणी को जंघाओं पर रखते हों, जमीन पर रखते हों। अरे पापियो! सन्तान को गाल पर चिपका रहे हो और जिनवाणी को जमीन पर रख रहे हो। ये भाग्य कब मिलेंगे? बेटा! जिनवाणी लेकर चलना। यदि तू किसी कुँजड़े के घर जन्मा होता तो दिन भर तू सागमण्डी में बैठा-बैठा चिल्लाता '100 रू.के 10 किलो'। किसी बस पर नौकर होता तो चिल्लाता 'आगरा, जयपुर'। पूरा जीवन इसी में निकाल देता। हे अभागे! कहीं किसी पशुशाला का सेवक बनता तो 'चल-चल, हट-हट' में जीवन निकाल देता। ध न्य हो मेरी पर्याय को, मुख भी उपयोग हो रहा है तो जिनवाणी के व्याख्यान में हो रहा है। जिह्वा हिल रही है तो समयसार और तत्त्वदेशना में हिल रही है। इससे बड़ा पुण्य क्या होगा? बैठता हूँ तो मुनियों के बीच में। अब आप को कहाँ तक बताऊँ कि घर में एक साधु के दर्शन होते थे तो हर्ष होता था, आज अहो-भाग्य है कि मुनियों के बीच में बैठा हूँ। यही पुण्य है पंचमकाल का। ये भले ही शिष्य हों, तब भी भावी भगवान् हैं, पंचपरमेष्ठी में साधु परमेष्ठी हैं। आचार्य भी 'णमो लोए सव्व साहूणं' बोलते हैं। मैं तो समझता हूँ कि पंचमकाल

का इससे बड़ा पुण्य यही है।

मित्रो! आप भी आनन्द लूटो। यह क्षण सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा कि लोग रोड पर बैठकर जीवों को छील रहे होंगे, लेकिन आप जिनवाणी सुन रहे हैं। घर में कितने कषायी कषाय में लिप्त हो रहे होंगे। कोई चाय पी रहा होगा, कोई बेचारा भोजन कर रहा होगा; धन्य हो आप, ज्ञानामृत भोजन कर रहे हो। आत्मा का भोजन 'ज्ञानामृत भोजनम्'। ये पुद्गल के पिण्ड अनन्त बार खाये हैं। ज्ञानामृत भोजन कर लिया तो ये बार-बार पुद्गल के टुकड़े खाना बन्द हो जायेगा।

छेदा जाता है, भेदा जाता है। कहीं कान छेद दिये, नाक छेद दिये। कितने अङ्गों को छेदा जा रहा है। उन दु:खों का वर्णन करने के लिये मानव असमर्थ है। करोड़ों जिह्वाओं के द्वारा भी तिर्यञ्च गति के दुखों का वर्णन नहीं किया जा सकता है। कम-से-कम इतना ही कर लो कि अब मायाचारी नहीं करना।

संसार-भ्रमण में सुख नहीं है। संसार में ऐसा कोई दु:ख नहीं है जिसे तूने प्राप्त न किया हो। चाहे देवपर्याय हो, चाहे मनुष्यपर्याय हो, तिर्यञ्चपर्याय हो, सारी पर्यायों में तूने दु:ख-ही-दु:ख प्राप्त किया है। हे जीव! तूने अहर्निश कोटि-कोटि दु:ख प्राप्त करके अनेक बार भ्रमण किया है। उस भ्रमण से बचना है तो कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं, हे जीव! जिनेन्द्र के मुख से विनिर्गत जिनवाणी सुन करके अपनी आत्मा का कल्याण करो।

'**ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।**' किससे कह रहे हैं? हे भव्य! इस भगवती माँ जिनवाणी को स्थिर मन होकर सुनो। यदि अपना कल्याण चाहते हो तो तत्त्व को सुनो, तत्त्व को समझो, तत्त्व को बोलो और तत्त्व के अनुसार चलो। यही तुम्हारे आत्मकल्याण के साधन हैं, अन्य नहीं, अन्यथा नहीं।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"कर्मोदय से सुख-दुःखों की प्राप्ति"

चतुर्गतिनिबन्धेऽस्मिन् संसारेऽत्यन्तभीतिदे।
सुखदुःखान्यवाप्तानि भ्रमता विधियोगतः॥ 148 सा.स.॥

अन्वयार्थ-अस्मिन् = इस **अत्यन्त भीतिदे** = महान भयदायी **चतुर्गतिनिबन्धे संसारे** = चारगतिमयी संसार में **विधियोगतः** = कर्मों के उदय से **भ्रमता** = भ्रमण करते हुए **सुखदुःखानि** = इस जीव ने अनेक सुखदुःख **अवाप्तानि** = पाये हैं।

भावार्थ—अत्यन्त भयदायक चतुर्गतिमय इस संसार में कर्म-नियोग से भ्रमण करते हुए इस प्राणी ने अनेक सुख-दुःख प्राप्त किए हैं।

"वैराग्य की आवश्यकता"

एवं विधमिदं कष्टं ज्ञात्वात्यन्तविनश्वरम्।
कथं न यासि वैराग्यं धिगस्तु तव जीवितम्॥ 149 सा. स.॥

अन्वयार्थ-एवं विधं = इस तरह चारों गतियों में **इदं कष्टं** = इस भ्रमण के कष्ट को **अत्यन्त विनश्वरम्** = अत्यन्त विनाशीक **ज्ञात्वा** = जानकर **कथं वैराग्यं न यासि** = क्यों वैराग्य को नहीं प्राप्त होते हो? **तव जीवितम् धिक् अस्तु** = तेरे इस जीवन को धिक्कार हो।

भावार्थ—हे आत्मन्! इस प्रकार चारों गतियों में इस भ्रमण के कष्ट को अत्यन्त विनाशीक जान कर क्यों वैराग्य को नहीं प्राप्त होते हो? हे आत्मन्! तेरे ऐसे जीवन को धिक्कार है।

॥ सद्-देशना॥

मनीषियो! जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन। हम सभी तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में प्रबल वैराग्य भावना की अलौकिक व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं।

तीर्थंकर भगवन्तों ने एक सूत्र प्रदान किया है 'स्वतन्त्रतः कर्ता:' सारे विश्व में जब स्वतन्त्रता दिवस की बात प्रारम्भ होती है, यथार्थ मान कर चलना, यदि

उस स्वतन्त्रता की प्राप्ति का लक्ष्य है तो पहले परतन्त्रता को समझने की आवश्कता है।

भारत का प्रसिद्ध व्याकरण 'जैनेन्द्र व्याकरण' है। यह पाणिनी के अधूरे व्याकरण को पूर्ण करनेवाला है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी भारत की भूमि पर ऐसे महान् योगी हुये जिन्होंने त्रियोग की शुद्धि के लिये तीन ग्रन्थों का सृजन किया। जब तक त्रियोग की शुद्धि नहीं है, तब तक स्वतन्त्रता पर दृष्टि ही नहीं जा सकती है। मन की शुद्धि वचन की शुद्धि, काय की शुद्धि। जिसकी त्रियोग शुद्धि है, ऐसे त्रियोग को जिसने समझ लिया है, यथार्थ में जो योग को सम्हाल लेता है, जो योग को सुधार लेता है, उसको जगत् में किसी को सुधारने की आवश्यकता नहीं है।

आपने स्वतन्त्रता की व्याख्या तो बहुत सुनी है, बहुत चर्चायें की हैं, लेकिन आज तटस्थ होकर उस स्वतन्त्रता पर लक्ष्यपात करना है जिस स्वतन्त्रता के पास आपकी आँख अभी तक नहीं पहुँची है और श्वास भी नहीं पहुँची है। भैया! हम पर से स्वतन्त्र होने की बात कर रहे हैं, भूमि को ग्रहण करने की बात कर रहे हैं, पर से भूमि छुड़ाने की बात कर रहे हैं, लेकिन कर्मों की सेना से आपने आत्मा की भूमि को कब स्वतन्त्र किया है? जो भावों की अशुद्धि चल रही है, परिणामों में विकार चल रहे हैं, उनसे अपनी आत्मा को कब स्वतन्त्र किया? लोभकषाय न आती तो भारत परतन्त्र न होता और **लोभकषाय न होती तो आदमी परतन्त्र न होते। कौन किसकी सेवा कर रहा है, कौन किसकी नौकरी कर रहा है? मनुष्य-जैसा अहंकारी प्राणी, मनुष्य-जैसा तीव्र कषायी जीव किसी की सेवा करने बैठ जाये, यह सम्भव नहीं है। जो भी सेवा हो रही है, जो भी नौकरी हो रही है, सारी-की-सारी लोभकषाय आपको पकड़े हुये है। भावों के विकारों से स्वतन्त्र कहाँ हुये हो?** स्वतन्त्रता दिवस पर भी यदि बारूदें फूट रही हों, विद्यालयों में स्वतन्त्रता दिवस पर भी जीवों के घात किये जा रहे हों, तो तुम स्वतन्त्र नहीं हुये हो, तुम स्वच्छन्द हुये हो। महावीर के सिद्धान्त सूत्र '**दया दम त्याग समाधिनिष्ठं**' पर जिसने दृष्टिपात किया है, वह जगत् में

कभी परतन्त्र नहीं हो सकता। हिंसा के नाम पर आप स्वतन्त्र नहीं हो सके। यथार्थ मानना, प्रेम के साथ व्यक्ति को पुचकार कर रखा जा सकता है। दुलार से श्रद्धायें आती हैं। आक्रोश से सिर पकड़कर झुकाया जा सकता है, लेकिन यह वह देश है जिसमें किसी का मस्तक पकड़ कर नहीं झुकाया गया। यह वह देश है जिसमें जीव के अन्दर श्रद्धाओं को जन्म दिया गया है। जो श्रद्धा से झुक जाता है, वह कभी उठनेवाला नहीं होता। जिसे झुकाया जाता है, उसका सिर तो झुकाया जाता है, लेकिन आस्था को नहीं झुकाया जा सकता। अहंकार के बल पर व्यक्ति के शिर को पकड़ करके नीचे कर सकते हो, लेकिन श्रद्धा के बल पर कभी पास नहीं जाया जाता, दूर से ही सिर झुक जाता है। इन बच्चों के अन्दर यदि देश और धर्म के प्रति विश्वास दिलाना है तो पालकों और शिक्षकों से कहना। बुराइयों को आज तक अच्छाइयों के प्रति झुकना ही पड़ा है।

यह प्रचार संस्कृति वाला देश नहीं है, यह आचार संस्कृति वाला देश है। आचारण का निर्यात हुआ है तो भारत देश ने किया है, अनाचार का निर्यात पाश्चात्य देशों ने किया है। अध्यात्म का गुरु यदि कोई है तो यह भारत की भूमि है। अन्य किसी भूमि में तीर्थंकरों ने जन्म नहीं लिया। चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र, राम आदि की जन्मभूमि भारत भूमि है। कालिन्दी के काले पानी को मत देखो। देखना हो तो उसके तट को देखो, जिस तट पर योगियों ने ध्यान करके आत्मा को स्वतन्त्र किया था और परमात्मा हुये थे इसी भारत भूमि से। **जहाँ पर कृष्ण ने अपनी बाँसुरी की आवाज से गायों को संग्रहीत किया हो, उस कालिन्दी में गायों का खून बहे, यह भारत की स्वतन्त्रता नहीं है। जिस यमुना के तट पर नारायण कृष्ण ने गायों को दुलार किया हो, उस यमुना के तट पर गायों के रक्त से नदी के पानी का रंग बदल जाये यह स्वतंत्रता नहीं है।** आज स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर कॉलेज के छात्रों के मन में ये भाव जगाना कि स्वतन्त्रत तब हो पाओगे जब स्वच्छन्दता का त्याग कर दोगे। अन्तस् में बैठ कर स्वयं चिन्तन करो कि क्या सुख-सुविधाओं के लिये स्वतन्त्र हुये हो?

रामायण में उल्लेख आता है कि जब म्लेच्छों ने ऋषियों पर आक्रमण किया तो श्री राम ने जाकर उनकी रक्षा की। आज आवश्यकता है कि आप भी राम बन कर आओ और म्लेच्छों को भगाओ। तुम्हारे मन में जो अशुभ भाव हैं, वे म्लेच्छ हैं और जो शुभ संस्कार हैं, वे राम हैं। यदि राम आ जाते हैं, तो म्लेच्छ अपने आप भाग जाते हैं। यदि आपके अन्दर के म्लेच्छ परिणाम नहीं निकलते हैं, तो विश्वास रखना, आप स्वतन्त्रता का भेष तो बना कर बैठ सकते हो, लेकिन कहलाओगे स्वच्छन्द। ज्ञानी! तेरे से भाई भी डरता है। एक माँ के उदर से दोनों उत्पन्न हुये हो और भाई तेरे से डर रहा है, बात क्या है? तीर्थंकरों की भूमि में तो आये हो, लेकिन जब राम थे, तब रावण भी था, पर हे राम! आपके पास इतनी सेना नहीं थी जितनी रावण के पास थी। अठारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी लंकेश और राम मात्र तीन गये थे। जो स्वयं को छोड़ कर चल देता है, लेकिन निज को लेकर चल देता है, वह दीन नहीं होता है, वह करोड़ों की संख्या में होते हैं। जिनके पास अशुभ भाव होते हैं, जिसके अन्दर राक्षसी वृत्ति भरी हुई है, वे कोटि-कोटि क्यों न हों, अपने आप में समाप्त हो जाते हैं।

दया, दम, त्याग और समाधि इन चार बातों पर चर्चा करना है। आप कल्पना करो, आपके गाँधी जी जब आधी धोती पहन कर विदेश जाने लगते हैं, तो एक सज्जन उनसे कहते हैं कि आप विदेश जा रहे हो, अच्छे कपड़े पहन कर जाओ, टाई लगा कर जाओ। उस समय गाँधी जी बोले, 'मुझे मालूम है कि मैं कितनी ही सुन्दर टाई लगाऊँगा, लेकिन मेरे से सुन्दर टाइयाँ वहाँ होंगी और कितने ही सुन्दर पेंट-शर्ट पहन कर जाऊँगा, वो भी मेरे से सुन्दर होंगे, पर मुझे विश्वास है कि धोती-दुपट्टा वहाँ किसी के पास नहीं होगा।

जो अनेक में से एक को छाँट दे, उसका नाम लक्षण है। टोपी वाले पुरुष को उठा कर लाओ तो आपको मात्र एक दिखेगा, पण्डित जी। पेंट-शर्ट वाला बोलेंगे तो किसको समझोगे? बहुत सारे हैं। **यदि आपको अपनी पहचान बनाना है तो कुछ हट कर काम करो। लेकिन हट कर वह काम नहीं करना जो**

भारत की संस्कृति के विरुद्ध हो। जिस पापाचार को दुनियाँ कर रही है, उसमें तुम्हारी क्या पहचान है? उस समय गाँधी जी बोले, 'मुझे जैनदर्शन के न्यायशास्त्र का सूत्र याद आ रहा है। 'न्यायदीपिका' न्याय का प्रथम ग्रन्थ है। उसमें लिखा है, जो अनेक में से एक को छाँट ले, उसका नाम लक्षण है। यदि मैं आपके कहे अनुसार जाता हूँ, तो करोड़ों की भीड़ में मुझे कौन समझ पायेगा? लेकिन मैं धोती-दुपट्टा लगा कर जाऊँगा तो लोग अपने आप मुझे देखेंगे कि कौन-सा व्यक्ति आ गया है। **व्यक्तित्व की पहचान भेष से नहीं होती, व्यक्तित्व की पहचान सत्य, अहिंसा और करुणा में होती है। आपके पास यदि व्यक्तित्व है, तो आपको भेष बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। कौए और कोयल की पहचान रंग से नहीं होती, आवाज से होती है।** हजारों कौओं के बीच में एक कोयल चली जाये तो बेचारी क्या कर पायेगी? लेकिन विश्वास रखना, करोड़ों कौओं के बीच में कोयल बोलेगी तो अपने आप पहचान हो जायेगी।

तीर्थंकर भगवान् ने कहा, हे योगीश्वरो! जगत् के वस्त्रधारियों के बीच में तुम्हारी क्या पहचान होगी? तुम भीख माँग कर कितने सुन्दर कपड़े पहन पाओगे? उससे कोई पहचान नहीं है। कपड़े उतार कर फेंक दो तो करोड़ों-करोड़ों में तुम्हारी पहचान अपने आप हो जायेगी। व्यक्ति विमान से उतरते हैं, तो लोग देखने खड़े हो जाते हैं, क्यों?

गाँधी जी कोई साधु नहीं थे। यथार्थ में नेता थे, बैरिस्टर थे। राजचन्द्र जी से प्रभावित थे। वहाँ विदेश पहुँचने पर किसी ने यह नहीं कहा कि नेता जी आये हैं। जो भी देख रहे थे, वे कह रहे थे कि भारत का साधु आया है। पर सत्यता कुछ-और है। संस्कृत में साधु शब्द का अर्थ है सज्जन। **यदि साधु बनना हो तो पहले सज्जन बनना चाहिये। जो साधु (सज्जन) बनने के पहले साधु बन जाते हैं, वे साधु बनकर नहीं रह पाते हैं और जो साधु बने बिना साधु (सज्जन) बन जाते हैं, वे साधु कहलाना प्रारम्भ हो जाते हैं।**

इस भूमि की पवित्र संस्कृति का सम्मान तो देखो। अभी मेनका गाँधी विदेश गई थी। लौटते ही वे आचार्य विद्यानन्द महाराज के पास कुन्दकुन्द भारती पहुँची।

बोलीं, महाराज! आप विदेश कब गये हो? महाराज जी बोले, 'मैं तो नहीं गया। हम लोगों का तो जाने का त्याग है। यह वो संस्कृति है जो सागर में पैर रखने को भी हिंसा मानती है।' मेनका गाँधी क्या रहस्य खोलती हैं, उसे सुनो। महाराज! मैंने विदेश में जाकरके शाम को साढ़े पाँच बजे कहा कि मुझे शीघ्र भोजन दो, समय हो रहा है। वास्तव में मेरा प्रयोजन यह था कि विमान का समय हो रहा है। होटल में जो बालक था, वह यूँ पूछता है कि आप जैन हो क्या? पुनः पूछा मेनका जी ने कि आप ऐसा क्यों पूछ रहे हो? तो वह कहता है कि आपके देश में एक ऐसा धर्म है जो सूर्य के अस्त होते ही भोजन को माँस के समान और पानी को खून के समान देखता है। वहाँ रात में भोजन नहीं करते हैं।उस समय मेनका जी का शरीर रोमाञ्चित हो गया। महाराज से कह रही थी, 'महाराज जी! लगा कि महावीर की अहिंसा सारे विश्व में फैल चुकी है।' विश्वास रखना, धूप या अगरबत्ती एक किनारे में रखी जा सकती है, लेकिन सुगन्ध पूरे कमरे में फैलती है। आपके पास चारित्र है, भले ही तुम भारत में बैठे रहो, लेकिन वह पूरे विश्व को महका देगा। मेनका गाँधी बोली, कि मेरे में चाह थी कि मैं कब आपको यह बात सुना दूँ। महावीर ने सागर पार नहीं किया, लेकिन महावीर की अहिंसा सागर पार कर गई।

जब गाँधी की आधी धोती देखकर लोग उनको साधु कहने लगे, तब गाँधी ने क्या कहा था? जब एक नेता के आने पर लोग इतने प्रभावित हो गये, मैं साधु नहीं हूँ, गृहस्थ होकर भी मैं साधु-अवस्था को प्राप्त हो रहा हूँ, यदि ये दिगम्बर साधु को देख लेंगे तो इन्हें साधु नहीं दिखेगा, इनको तो भगवान् दिखाई देगा। सत्यता यही है। साधु की पहचान करने कभी मत जाना। असाधु का मन जिस पुरुष को देख करके साधु बन जाये, यही साधु की पहचान है। जिसको देखकर साधु-मन भी विकृत होने लग जाये, वह साधुस्वरूप कैसा?

पहला सूत्र है दया। **जहाँ लोग अहिंसा पूर्ण मान लेते हैं वहाँ महावीर की अहिंसा प्रारम्भ होती है। आपने गिरते जीवों के उठाने को अहिंसा कहा है,**

आपने किसी जीव के मारने को हिंसा कहा है, लेकिन तीर्थंकर भगवन्तों ने कहा है कि यदि आपने मारने के भाव भी बना लिये हैं, तो आप हिंसा कर चुके हैं। आपने किसी को सताने के परिणाम कर लिये, तो आप हिंसा कर चुके हो। आपने किसी को बचाने के भाव कर लिये, तो अहिंसा हो गई। जगत् की दण्डसंहिता अपराधियों को दण्ड देती है। पापियों को दण्ड देने वाली संहिता किसी राष्ट्र में नहीं बनी। यदि वह संहिता कहीं है, तो वह धर्म के पास है। जिसने अपराध किया होता है, वह सामने आँखों से दिख गया, उसे आप अपराधी मान कर पकड़ सकते हो, लेकिन मन में सोचने वाले पापी को कहाँ पकड़ पाते हैं? लंकेश को हर व्यक्ति अशुभ कहता है, पर मेरे मित्रो! एक बात बताओ, आप रावण को अशुभ क्यों बोलते हो? वह तो महापण्डित विद्वान् पुरुष था। उसके पास संयम था, व्रत था, कि जो नारी मुझे नहीं चाहेगी उसके साथ मैं बलात् कार्य नहीं करूँगा। इस एक संयम के कारण सीता के शील की रक्षा हुई है। रावण के पास व्रत था। इस सभा में ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिनके पास रावण-जैसा भी व्रत न हो। रावण को अहंकार इस बात का था कि विश्व में मेरे से अधिक सुन्दर पुरुष कौन होगा? और ऐसी कौन-सी नारी होगी जो मुझे नहीं चाहेगी? उस अहंकार में उसने व्रत ले लिया था कि मैं किसी नारी के साथ बलात्कार नहीं करूँगा। पर कुछ भी कहो, वीर पुरुष वीर ही होते हैं। अशोक वाटिका में सीता को अवश्य रखा, लेकिन अपने व्रत की रक्षा की है। उसे मालूम था कि अबला के साथ बलात्कार करने से विद्याओं का नाश हो जाता है। चाहे जैनदर्शन हो चाहे वैदिक दर्शन हो, यह सूत्र दोनों दर्शनों में बराबर पढ़ा जाता है-

"ओंकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः"

इस भारत की भूमि का असाम्प्रदायिक मन्त्र ओंकार है। कोई भी दर्शन होगा, ओम् का नाम पहले लेगा। विवेकानन्द ने शून्य के ऊपर कई घण्टे व्याख्या की थी। सारे विश्व में शून्य का विकास करने वाला कोई है, इस बात को भारत

सरकार भी स्वीकारती है, वह जैनदर्शन है। जो शून्य है, दसमलव है, जीरो है, उस जीरो को कहने वाला जैनदर्शन है। आर्यभट्ट दिगम्बर जैन थे। एक व्यक्ति शून्य पर घण्टों-घण्टों व्याख्यान करता रहा। लोग सोच रहे थे कि ये क्या बोलेंगे, इनको शून्य दे दो। आपको मालूम नहीं है, ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण व्याख्यायें, सम्पूर्ण व्यवस्थायें शून्य पर हैं। महास्कन्ध, अणु, परमाणु के व्याख्यान करनेवाले दो दर्शन हैं, जैन दर्शन और वैशेषिक दर्शन। अणु, परमाणु की व्याख्या वैज्ञानिकों ने अनेक बार की है। वह अविभागी पिण्ड जिसके पुनः विभाग नहीं हो सकते हैं, उसका नाम अणु है। वह अणु शून्य हो जाता है। जब वही अणु संग्रहीत होता है, तो महास्कन्ध बनता है। ये सारे-के-सारे जो भवन दिख रहे हैं, ये व्यवस्थायें शून्य से प्रारम्भ हुई हैं। शून्य का विराट रूप स्कन्ध है, स्कन्ध का अल्प रूप शून्य है।

ओंकार का जो चन्द्राकार है और चन्द्राकार पर बिन्दु है, वह बिन्दु महान् है। शून्य का आदि नहीं होता, मध्य नहीं होता और अन्त नहीं होता है। अनादि-अनन्त होता है। जो आत्मा का त्रैकालिक स्वभाव है, वह शून्य-स्वभाव है। उसका आदि, अन्त, मध्य नहीं होता है। 'ओंकारं बिन्दु संयुक्तं।' ॐ के ऊपर जो बिन्दु है, 'कामदं मोक्षदं चैव' संसार की कामनाओं की पूर्ति करने वाला है, मोक्ष को देने वाला है। कौन है? 'ओंकाराय नमो नमः।' उस ॐकार को मेरा नमस्कार हो, नमस्कार हो। अभी आप न शून्य पर पहुँचे हो, न शून्य की प्राप्ति पर और स्वतन्त्रता की व्याख्या कर रहे हो।

युवाओ! यदि शून्य की रक्षा कर ली होती, तो ये चेहरे शून्य न होते। अपने वृद्ध माता-पिता से पूछना, तुम उसी भूमि पर जन्मे हो जिसमें महापुरुषों ने जन्म लिया था। वे 'ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं' में पहुँच गये, आप शून्य के ऊपर नहीं पहुँच सके, इसलिये शून्य हो गये हो। जो शून्य को नहीं समझ पाया, वह चारित्रशून्य हो गया। जो शून्य को नहीं समझ पाया, वह ब्रह्मचर्य से शून्य हो गया। अपरिग्रह परिमाण व्रत विश्व के सारे लोग धारण कर लेते तो आज यह स्वतन्त्रता दिवस

न मनाना पड़ता, तू स्वतन्त्र ही हो जाता। परतन्त्र किसके नाम पर हुआ था? पेट की भूख मिटाने के लिये बहुतकुछ नहीं चाहिये पड़ता। पूछो इन नेताओं से, सेठों से। जैसे दो रोटी गरीब खाता है, वैसी ये खाते हैं। पेट की भूख मिटाने को बहुतकुछ नहीं चाहिये पड़ता, पर पेटी की भूख मिटाने के लिये बहुतकुछ चाहिये पड़ता है। पेट की भूख मिटाने को मात्र चार रोटियाँ चाहिये, वह तो कहीं भी मिल जाती। व्यक्ति को पेट की भूख इतनी नहीं है जितनी अहंकार की भूख है, परिग्रह की भूख है। ये कपड़े छोड़ने का उद्देश्य यह मत समझ लेना कि महावीर ने अपनी पहचान बनाई थी। नहीं। अनावश्यक धारण क्यों करो। यदि मेरा वस्त्रों से रहित होकर भी काम चल सकता है, तो जिनका काम न चले वे धारण करें। मेरी वासनायें उतर गई हैं, तो मुझे वस्त्र पहनने की आवश्यकता नहीं है। वस्त्र वे पहनें जो वासनायें पहने बैठे हों। जो वासनायें उतार चुके हैं, उन्हें वस्त्र पहनने की कोई आवश्यकता नहीं है।

'ओंकारं बिन्दु संयुक्तं।' उस बिन्दु को समझ लिया होता तो आप सभी मेरे वाले मंच पर होते या फिर वहाँ होते जहाँ सिद्ध विराजे हैं। जो बिन्दु है, वह तेरे शरीर की सारभूत वस्तु है। उस बिन्दु की रक्षा कर लेता तो हे ज्ञानी! तू विराट सिन्धु बन जाता। जो बिन्दु की रक्षा नहीं कर पाते हैं, उनके गाल पिचक जाते हैं। उनके माथे काम नहीं कर रहे हैं जो बिंदु की रक्षा नहीं कर पा रहे हैं, वो पर की नौकरी कर रहे हैं। जो बिंदु की रक्षा कर लेते हैं वे सारे विश्व पर शासन करते हैं। 'ओंकारं बिन्दु संयुक्तं।' हे जीव! शरीर में जो वीर्य है, उस वीर्यबिन्दु की जो रक्षा कर लेता है, वह ओंकार पर बिन्दु बन कर बैठ लेता है। जो वीर्य की रक्षा नहीं करता है, वह ओंकार पर नहीं बैठ सकता है। उस शून्य की जो रक्षा कर लेता है, वह उस शून्य को प्राप्त कर लेता है जो ओंकार बिन्दु संयुक्त है। सबसे छोटा शून्य। ओम् का आकार तो बहुत बड़ा है, लेकिन फिर भी दूध का क्षेत्र अधिक है, घी का क्षेत्र कम है। जो विरलन है, वह बड़े क्षेत्र को घेरता है और जो संघात है, वह अल्प क्षेत्र घेरता है, परन्तु घृत में शक्ति

अधिक है। आप थाली भर भोजन पेट में रख लेते हो, परन्तु बिन्दु तो एक मास में एक तोला बनता है। एक महीने भोजन करे तो एक तोला वीर्य बनता है शरीर में। संघात में शक्ति है, विरलन में शक्ति नहीं है। जब गोरस का संघात होता है, तब घृत उत्पन्न होता है। जब तुम्हारी धातुओं का संघात होता है, तब वीर्य उत्पन्न होता है। जब भावों का संघात होता है, तब भगवान् उत्पन्न होता है। बिरलन में शक्ति नहीं है। नरियल हथेली में रखकर फेंकोगे तो दूर नहीं जायेगा और मुट्ठी बनाकर हाथ घुमाकर फेंकोगे तो दूर जायेगा। संघात में शक्ति है। यही कारण है कि जो साधना, भजन, पूजन, भक्ति की है, वह विरलनभूत है। उसमें शक्ति नहीं है। भक्ति में ताल, बाजे, हारमोनियम बजते हैं तो लगता ऐसा है कि मैं एकाग्र हो रहा हूँ, पर आपकी एकाग्रता भिन्न-भिन्न जगह बँटी हुई है, इसलिये भक्त कभी भगवान् नहीं बन सकता। द्वैत भक्ति करनेवाला कभी भगवान् नहीं बन सकता। जहाँ भगवान् और भक्त बैठे हुये हैं, वह द्वैत भक्ति है। जहाँ भगवान् भी समाप्त हो जाते हैं और भक्त भी निज भगवान् को पकड़ लेता है, वहाँ अद्वैत भक्ति प्रारम्भ हो जाती है। वह संघात है। जब भक्त भक्ति में लीन होता है, तो भक्ति करने के लिये भगवान् चाहिये पड़ते हैं, पूजनसामग्री चाहिये पड़ती है; परन्तु सत्य बताना, ध्यान करने के लिये क्या-क्या चाहिये है? भक्ति विरलन धारा है, ध्यान संघात धारा है। निज की शक्ति को संग्रहीत करने की जो क्षमता है, वह जेम्स वाट से पूछना। बटलोई का ढक्कन ढकने से रेल का इंजन बना लिया। बटलोई को ढक्कन से ढका, सो पानी की वाष्प बनी, सो ढक्कन फिक गया। बस, अपने विद्यालय में छात्रों को यही शिक्षा देना, बेटा! नीचे अग्नि थी, बीच में पानी था। वाष्प को ढक दिया था, तो ढक्कन फिक गया, तो वह समझ गया कि बन्द में अधिक शक्ति होती है। जब एक इंजन बना करके रेल खींच ली, तो आप कल्पना करो कि जो व्यक्ति वाष्पित करना जानता है उसमें कितनी अधिक शक्ति होगी।

पानी को मिट्टी में डाल दो तो कीचड़ जो जाये, संडास में ले जाओ तो मल

धुल जाये, उसी पानी को परमात्मा के मस्तक पर डाल दो तो गंधोदक बन जाये। ऐसे-ही तूने अपने बिन्दु को भोगों की नाली में डाला तो नरक ले जाये, उसी बिन्दु को तूने ध्यान में वाष्पित कर लिया तो वह तुमको भगवान् बना देगा। बटलोई का ढक्कन खोल कर दाल बनाओगे तो बिलम्ब होगा और कोई जरूरी नहीं है कि पक ही जाये। यदि ढक्कन बन्द कर दिया तो मिनिट भर में काम हो जायेगा।

भैया! अपने छात्रों पर करुणा करना। यदि आप छः घण्टे भी पढ़ाते हैं तो पाँच मिनिट मेरी तरफ से फ्री कर देना। किस बात के लिये? कि बेटा! ये भारतभूमि है, यहाँ के ग्रन्थों को ले जा करके लोगों ने विदेशों में खोज की है। एक जापानी अन्वेषण कर रहा है जैनविद्या पर। जर्मनी में अनेक जैन ग्रन्थ पहुँच चुके हैं। 'लघु तत्त्वस्फोट' नाम का एक ग्रन्थ है, इसको भारतीय नहीं समझ पाये। जैनाचार्य अमृतचन्द्र स्वामी का ग्रन्थ है। उस ग्रन्थ का जर्मन भाषा में अनुवाद होकर जब प्रचार होना प्रारम्भ हो गया, तब जैनसमाज को पता चला। पण्डित पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने उसकी हिन्दी की, तब वह प्रकाशित हुआ।

जैसे हल्दी चूने को मिश्र कर दो तो तीसरा वर्ण बन जाता है। अम्ल को मधुर तत्त्व (दूध) में डाल दो तो दूध फट जाता है। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में डालने से वस्तु नहीं बनती, वस्तु की शक्ति उद्घाटित होती है। इसी प्रकार से योगियों का विषय है।

आप लोग समझते हैं कि जैनसाधु यानि जैनसमाज के अन्दर रहने वाले साधु। इन लोगों के पास जो विज्ञान है, जैनसमाज चाहती है कि ये कहीं बाहर न चली जाये। जो उपदेश एक भवन में हो रहे हैं, वस्तु की व्याख्या चल रही है। समयसार ग्रन्थ को औरंगजेब बादशाह ने फारसी में लिखा करके पण्डित बनारसी दास से समझा था। ताजगंज मन्दिर में आज भी वह फारसी का समयसार रखा हुआ है। जब बटलोई को ढकने से दाल जल्दी पक जाती है, तो माताओ! ध्यान दो, जितनी तुम्हारी शक्ति है, वह बोलने से बाहर निकल जाती है, इसलिए इस बटलाई (मुँह) को ढक लो, तो अपने आप ऊर्ध्वगमन कर जाओगे। जो मुख को ढक लेते हैं,

वे ऊर्ध्वगमन कर लेते हैं। ज्ञानियो! महावीर स्वामी ने दीक्षा लेते ही अखण्ड मौन धारण कर लिया था। मौन की शक्ति संग्रहीत हुई और जब बोले तो सर्वाङ्ग से बोले। कैवल्य प्रकट हो गया।

तनावमुक्त होना है, बुद्धि को बढ़ाना है, तो शून्य की रक्षा करो, ब्रह्मचर्य की रक्षा करो, व्यर्थ का वार्तालाप बन्द करो, अपनी शक्ति को संग्रहीत करो। जो प्रभावी पुरुष होते हैं, वे सीमित बोलते हैं। 'प्रभवः मित-भाषणम्।' जैसे पैसे खर्च करने के लिये सोचना चाहिये, ऐसे ही कितना बोलूँ कितना न बोलूँ? जो बिन्दु को निहारता है, वह उस बिन्दु को प्राप्त कर लेता है, जो अशरीरी सिद्ध परमात्मा है।

उस ॐकार की व्याख्या है महाप्रणव। महाप्रणव वह बीजाक्षर है। जब भी कोई मन्त्र लिखा जायेगा, सबसे पहले ॐ। जिस ॐकार में पंचपरमेष्ठी विराजते हैं, जिस ॐकार में तीनलोक विराजते हैं। सबसे नीचे अधोलोक है, अधो लोक का 'अ'। ऊर्ध्व लोक है, ऊर्ध्व लोक का उ। इन दोनों वर्ण (अ+उ) को मिला दो तो ओ बनता है। और मध्य लोक का 'म' मिला दो तो बन गया ओम्। जिसमें तीनों लोक विराजते हैं, उस वर्ण का नाम है ओम्। ॐ, इसमें पाँच परमेष्ठी विराजते हैं। अरहन्त का 'अ', अशरीरी (सिद्ध) का 'अ'। अ + अ = आ। उपाध्याय का उ। आ + उ = ओ। मुनि का म्। ओ + म् = ओम्। इन सब को मिला दो सो ॐ। जिस ओम् में वैदिक दृष्टि से ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन देवता की कल्पना की है। ऊँ में पंचपरमेष्ठी, तीनों लोक आ चुके हैं। ॐ के अन्दर क्या नहीं है?

विद्या अध्ययन के साथ ध्यानविद्या पर जोर दिया जाये। आज कोई हँस रहा है, कोई गा रहा है, कोई पेट फुला रहा है, कोई पेट पिचका रहा है, कोई नृत्य कर रहे हैं और कह रहे हैं कि मैं ध्यान कर रहा हूँ। ज्ञानियो! यह कोई ध्यान नहीं है। **वास्तव में कोई ध्यानविद्या है तो अपने को अपने में संग्रहीत कर लेना। अपनी शक्ति को संग्रहीत कर लेना, इसका नाम ध्यानविद्या है।** ६

यान तब प्रारम्भ होगा, जब तुम्हारे पास दया होगी। जिसके पास दया नहीं है, उसका चित्त चंचल होगा। दया के बाद दम। इन्द्रियों का दमन। जिसकी इन्द्रियाँ वश नहीं हैं, वह क्या उन्नति करेगा?

तीसरा सूत्र है त्याग। जिसको राग है, वहाँ त्याग कहाँ? आज जो तुम्हारे घर में झगड़े हो रहे हैं, एक विलस्त भूमि के पीछे भाई भाई से झगड़ रहे हैं, त्याग कर दो तो आज झगड़ा बन्द हो जाये। ज्ञानी अपना मकान किराये से दे सकता है, लेकिन धर्मशाला की दुकान खाली नहीं कर सकता। क्यों? धर्म का है। मुफ्त का चन्दन घिस मेरे नन्दन। विसंवाद किस बात पर है? त्याग करो तो आप क्लेश से मुक्त हो जाओगे।

जिसके पास दया है, दम है, त्याग है, तब कहीं मिल पायेगी समाधि। इसका नाम मरण मत समझ लेना। समाधि से तात्पर्य है ध्यान। लोगों ने समाधि का अर्थ मरना लगा लिया। नदियों में डूब कर मर गये, कहा समाधि लगा रहे हैं। समाधि कब होगी? जब जगत् के प्राणिमात्र से समधी होगी। प्रयोग सब कर रहे हैं, उपयोग कुछ नहीं है। समधी। आपके बेटे की शादी हो गई, जिसकी बेटी आई है उसको क्या बोलते हो? समधी। पर क्या समधी बना, जो पैसे के पीछे दूसरे की बेटी को मारने खड़ा हो और आपस में बात न कर पाते हों? समधी का अर्थ था जैसे आप अपनी बेटी को बेटी मानते थे, आज से तेरी बेटी में मेरा बेटापना आ गया है, सम + धी = समधी बन गई है। इसका नाम समधी था। शत्रु-जैसे देख रहे हो और कह रहे हो समधी। जगत् में चाहे वो चींटी हो, गाय हो, हाथी हो, चाहे किसी भी जाति/वंश का पुरुष हो। मैंने देखा यमुना के पानी को, उसमें बन्दर भी पानी पी लेता है, श्वान भी पी लेता है, इंसान भी पी लेता है। यमुना ने कभी भेद नहीं किया कि मैं इसको पिलाऊँगी, इसको नहीं पिलाऊँगी। जैसे यमुना के पानी में एकत्व है, ऐसे ही धर्म में एकत्व हो जायेगा, तुम्हारे मन में एकत्व हो जायेगा, उस दिन तुम सब समधी हो जाओगे। युवाओ! परस्पर में अब करना है 'समधी! जयजिनेन्द्र' वो कहेगा कि तू कब-से

समधी हो गया है? संतोष आ गया तभी से समधी हो गया। 'समधी दादा! जयजिनेन्द्र' वो गुस्सा करे तो कह देना कि समधी बनाओ, सम-धी। आप वृद्ध हो, मैं युवा हूँ, लेकिन हम दोनों की आत्मा एकत्व ज्ञान-दर्शन स्वभावी है, इसलिये हम सब समधी हैं। प्राणिमात्र पर समधी बना लो, सम-धी बना कर कर्म की परतन्त्रता से मुक्त हो जाओ, यही स्वतन्त्रता दिवस है। अपने जीवन में राष्ट्र के लिये, विश्व के लिये यही संदेश है। **विश्व को आनन्दमय देखना चाहते हो तो दृष्टि में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद, वृत्ति में अहिंसा। यही विश्वशान्ति का उपाय है। वही विश्व की अखण्डता से युक्त है। ये नहीं है तो घर-घर में क्लेश है।** अपनी भावना बनाना 'संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्य तपोधनानां। देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः।।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"सांसारिक सुखों का स्वरूप"

जीवितं विद्युता तुल्यं संयोगाः स्वप्नसन्निभाः।
सन्ध्यारागसमः स्नेहः शरीरं तृणबिन्दुवत्॥ 150 सा. स.॥

अन्वयार्थ-जीवितं विद्युता तुल्यं = यह जीवन तो बिजली की चमकार के समान क्षणभंगुर है **संयोगाः** = और स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादि का संयोग **स्वप्न सन्निभाः** = स्वप्न के समान है **संध्यारागसमः स्नेहः** = जगत के प्राणियों के साथ स्नेह संध्या की लाली समान है **तृणबिन्दुवत् शरीरं** = और तिनके पर पड़ी हुई ओस की बिन्दु के समान शरीर पतनशील है।

भावार्थ—यह जीवन बिजली की चमक के समान क्षणभंगुर है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादि का संयोग स्वप्न के समान है। सांसारिक प्राणियों के साथ स्नेह संध्याकालीन लालिमा के समान विनाशीक है और शरीर तृण पर पड़ी हुई ओस की बूँद के समान पतनशील है।

"सबकुछ नश्वर है"

शक्रचापसमा भोगाः सम्पदो जलदोपमाः।
यौवनं जलरेखेव सर्वमेतदशाश्वतम्॥ 151 सा.स.॥

अन्वयार्थ-भोगाः शक्रचापसमाः = इन्द्रियों के भोगने योग्य पदार्थ इन्द्रधनुष के समान देखते-देखते नष्ट हो जाते हैं। **जलदोपमाः सम्पदः** = सम्पत्तियाँ मेघों के विघटन के समान नष्ट हो जाती हैं। **जलरेखा इव यौवनं** = पानी में खींची हुई रेखा जैसे तुरन्त मिट जाती है, वैसे-ही यौवन शीघ्र मिट जाता है **एतत् सर्वे अशाश्वतम्** = यह सब सदा रहने वाला नहीं है, संसार की माया नाशवन्त है।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन। जयवन्त हो श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमण संस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष देशना जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' में पर्याय की अनित्यता और द्रव्य की ध्रौव्यता पर विचार कर रहे हैं। चारों गतियों में भ्रमण करता हुआ जीव सारे लोक की व्यवस्था को बनाने में मस्त हो रहा है और आत्मलोक की व्यवस्था से च्युत हो रहा है। अहो! आश्चर्य। सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग को पढ़ने के बाद भी जीव के अन्तस् में वैराग्य की भूतार्थता दृष्टिगोचर नहीं होती। चारों अनुयोगों का अन्वेषण अक्षरों को गिनने के लिये नहीं है, अक्ष को समझने के लिये है। जिसकी दृष्टि अक्ष पर नहीं है, वह मात्र ग्रन्थ के अक्षरों को गिन रहा है। जिसका लक्ष्य अक्ष (आत्मा) पर है, वही तत्त्वज्ञानी है। जिसका आत्मा पर लक्ष्य नहीं है, वह मात्र वर्णों को देख रहा है, वर्णातीत को नहीं देख रहा है। जो ध्रुव ज्ञायक अखण्ड आत्मद्रव्य है, वह वर्णभूत नहीं है, वर्णातीत है, शब्दातीत है। ज्ञानियो! शब्दों में धर्म की खोज मत करना, सम्प्रदाय में धर्म की खोज मत करना। यदि धर्म की खोज करना है तो आत्मद्रव्य के भीतर निहारना। जब आपको एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीव तक के अन्दर भगवत्ता दृष्टिगोचर हो रही है, फिर भेद किसमें? विकल्प किसमें? साम्प्रदायिकता/पंथता ये उन्मार्ग हैं, जिनमार्ग नहीं है।

जिनेन्द्र के शासन में तो अभद्र भी समन्तभद्र बन जाता है। हे वर्द्धमान! आपके पादमूल में अभद्र भी खड़ा हो जाये वह भी समन्तभद्र हो जाता है। गौतम-जैसे महामानी जीव मुनिराज हो गये। हे वर्द्धमान! आपके चरणों की ऐसी अलौकिक महिमा है, आपकी पुण्यवर्गणाओं का ऐसा प्रभाव है कि अभद्र पुरुष भी समन्तभद्र हो जाते हैं। समन्त यानि चारों ओर। चारों ओर से जिसके भद्रता टपकती हो, उसका नाम है समन्तभद्र। एक सरलस्वभावी बैल, जिसका माथा चौड़ा हो, उस बैल को देखो, भद्रता टपकती है। आचार्य वीरसेन स्वामी ने 'धवला' जी में जब योगियों का वर्णन किया, तो उन्होंने कहा कि सिंह-जैसी वीरता हो और बैल-जैसी भद्रता हो, उसका नाम दिगम्बर मुनि है। चर्या में सिंह-जैसी प्रवृत्ति हो। सिंह से तात्पर्य किसी को खाने को दौड़े नहीं। सिंह यानि वीरता, सहजता, साहस। सिंह-जैसा साहस हो और बैल-जैसी भद्रता हो, उसका नाम जैनमुनि है। चारों ओर से भद्रता टपक रही हो।

श्रावको! प्रभुत्व/व्यक्तित्व भिन्न विषय होता है और भद्रता भिन्न विषय होता है। प्रभुत्व, व्यक्तित्व पर आप लोगों को संग्रहीत कर सकते हो, लेकिन श्रद्धा को झुकाना है तो भद्रता को ग्रहण करना पड़ेगा। हे भद्र! विकल्प मत करो। क्रूरता, शूरता भी अशाश्वत है, क्षणभंगुर है। देखते-देखते कितनों की पर्याय विलीन हो गई। जो पहलवान थे, वे भी नहीं बचे। जिनके सामने सिंह भी काँपता हो, जब अन्तिम दिन आता है तो उनकी नाक पर मक्खी बैठी मिलती है।

मित्रो! सम्हलकर सुनना, विषय परिवर्तित हुआ है। कल तक आचार्यमहाराज ने चार गतियों के दुःखों की व्याख्या की, आज पर्याय की अनित्यता की व्याख्या कर रहे हैं। जिनकी आँखों में इतना तेज था कि अग्नि भी बुझ जाये, इतनी क्रूरता थी कि सिंह भी घबरा जाता था, ऐसे भी लोग हुये हैं, उनके भी आँखों पर मक्खियाँ बैठी देखी हैं। वे दिन कहाँ गये जब बड़े-बड़े पहलवान अखाड़े में परास्त होते थे? आज इन भुजाओं में इतनी ताकत नहीं बची है कि नाक की मक्खी को भगा सकें। सबके दिन एकसे नहीं होते। ऐसे कवि को मैंने देखा। झाँसी के पास सकरार एक गाँव है। वहाँ के प्रसिद्ध जैन कवि काका जी हुये हैं। काका हजारीलाल जी। उस कवि विद्वान् को मंच पर हिलते मैंने देखा और मंच को हिलाते देखा। जहाँ हजारीलाल खड़े होते थे वहाँ दुनियाँ के हाथ ताली बजाने को खड़े हो जाते थे। नियोग ऐसा बना कि जब उनके अन्तिम श्वास के दिन नजदीक थे, झाँसी चातुर्मास करके उनके गाँव से विहार हो रहा था। गोरा लम्बा शरीर, जिसकी भुजायें लटक रही हों, ऐसा पुरुष छोटे दरवाजे वाले मकान से घसिटते-घसिटते निकलते दिखा। बगल में उनके बन्धुगण खड़े हुये हैं। जैसे ही मैंने दरवाजे के आगे कदम बढ़ाया, आवाज आती है, महाराज! ठहरो-ठहरो, मुझे पैर पखारना है। मैंने देखा, ये कौन पुकार रहा है? मैं रुक गया। जैसे ही सहारा लेकर काका हजारीलाल खड़े हुये। कवि तो कवि। बुंदेलखण्ड में कहते हैं कि बुढ़िया बूढ़ी हो गई लेकिन मुस्कान नहीं गई। ऐसे-ही उनकी मुस्कान नहीं गई। बोले, महाराज! बहुत दिन से अभिलाषा थी आपके दर्शन करने की। आज आप द्वार पर ही पधार गये। परन्तु मेरा मन कह रहा है, हे तात्! इस देह को देखने

के लिये लाखों आँखें तरसती थीं, आज एक आँख देखने नहीं आ रही। जिस कवि को सुनने के लिये तालियाँ बजती थीं, आज कोई देखने नहीं आ रहा है। महाराज! यह वही शरीर है जो मंच को हिलाता था, आज हिलने की ताकत नहीं बची। सबके दिन एक-से नहीं होते। जो सूर्य पूर्व दिशा में खिला था, अपनी अरुणाई को फैला रहा था, बारह बजे वही सबको झुलसाता है, संध्या की बेला में उसे भी अस्त होना पड़ता है। पूर्व में खिलता है और पश्चिम में ढलता है। जब माँ के उदर से जन्मा था, तब पूर्व दिशा थी। जब श्मशान में जाता है, तब पश्चिम दिशा हो जाती है। ऐसा क्या हम सब के साथ नहीं होगा? इसलिये हे माताओ! बूढ़ी सासू को देखकर ग्लानि मत करना। मित्रो! बूढ़े पिता को देखकर ग्लानि मत करना। तुम युवा साधु को देखकर भीड़ जोड़ कर बैठ जाते हो, वृद्ध साधु को भी देखने का मन करना। वृद्ध साधुओं को देखकर मन में ग्लानि मत करना। जो जीर्ण-शीर्ण हो रहा है, वह तन है, चेतन नहीं है। चैतन्य जीर्ण होता नहीं, चैतन्य शीर्ण होता नहीं। रत्नत्रय कभी बूढ़ा होता नहीं, शरीर बूढ़ा होता है। ज्ञानियो शरीर के बूढ़ेपन को देखकर धर्म को भूल मत जाना।

गोम्मटेश में ढाई सौ पिच्छियों के बीच में देखा, सभी प्रान्तों के युवा सेवा में लगे हुये थे। शाम को युवा मेरे कक्ष में आ जाते थे। वे आये और सेवा करने बैठ गये उनकी जिनको सेवा की कोई आवश्यकता नहीं थी। बालक रात्रि में बातें कर रहे थे, महाराज! दिनभर से मन कर रहा था कि कब शाम हो और मैं कमरे में आ जाऊँ वैयावृत्ति करने। मैं सोच रहा था कि जहाँ आवश्यकता है, वहाँ इनका मन क्यों नहीं करता? जबकि वहाँ ऐसे-ऐसे वृद्ध साधु थे जिनको सहारे की आवश्यकता थी। ज्ञानियो! ध्रुवसत्य है, लोक की ऐसी ही रीति है। चमक को दुनियाँ देखती है, परन्तु आवश्यकता को देखने वाले अँगुलियों पर गिनने लायक हैं। भैया! इन युवा मुनियों को देखकर तुम सेवा कर रहे हो, यह तो बहुत अच्छी बात है, कभी वृद्ध साधु भी आगरा की भूमि पर आ जाये तो उनको भी हाथ का सहारा देकर उनकी चर्या करवाना। उनकी देह को मत देखना रत्नत्रय धर्म को देखना। आज उल्टी शिक्षा चल रही है कि मात्र मैं ही एक साधु

हूँ और मेरा संघ ही साधु है। नहीं, ज्ञानी! धरती में जितने पिच्छीधारी हैं, उनकी सेवा करना। श्रमणसंस्कृति साधुविशेष नहीं है, श्रमणसंस्कृति साधु मात्र है। अन्यथा फिर तो सभी को साधुपने से हटा देना चाहिये? वृद्ध हुये, फिर साधु नहीं मानोगे क्या? नहीं, भैया! पर्याय को देखकर धर्म की पहचान मत करना, परिणामों को देखकर धर्म की पहचान करना।

पता नहीं क्यों वृद्धों को देखकरके मन बहुत गद्गद् होता है। देखो जितने दिगम्बर मुनि हैं, ब्रह्मचारी गण हैं, आर्यिकायें हैं, जो भी साधक हैं, इन सबको जीवन में शुभचन्द्र स्वामी के 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ का स्वाध्याय अनेक बार करना चाहिये। ज्ञानार्णव ग्रन्थ में गहनतम विषय का वर्णन किया है। नारी संगति का त्याग, वृद्धों की संगति का उपदेश। हे श्रमण! तू कितना ही पवित्र होगा, नारियों के बीच में बैठेगा तो नियम से कलंक का टीका लगेगा-ही-लगेगा। इसलिये योगियों को, श्रमणों को आर्यिकाओं से दूर रहना चाहिये। ब्रह्मचारणियों को मुनिसंघ में रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। निषेध किया है, निषेध। चाहे काली हो, अन्धी हो, लंगड़ी हो, गूँगी हो। अग्नि चाहे चन्दन की लकड़ी की हो या बेशरम की लकड़ी की हो, चाहे बबूल की हो, उसमें अँगुली डालोगे तो वह जलायेगी-ही-जलायेगी। नारी चाहे कैसी हो, आप उसके सहवास में जाओगे तो परिणाम विकृत होने के पूरे अवसर हैं। ज्ञानियो! नारी-संसर्ग के त्याग का जो कथन किया है, वह 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थ में गहनतम किया है। उसी ग्रन्थ में वृद्ध सेवा का वर्णन है।

युवाओ! ध्यान से सुनना। उम्र से ही वृद्ध, नहीं, ज्ञान से वृद्ध, सदाचार से वृद्ध, संयम से वृद्ध, चारित्र से वृद्ध, तप से वृद्ध। इन सब वृद्धों के साथ बैठना। युवाओं के पास शरीर में गर्मी है, तुम्हारे भावों में भी गर्मी चढ़ जायेगी। वृद्धों के शरीर ठण्डे हो चुके हैं, ये अनुभव से जिये हैं। जितना तुम सीखोगे तो बूढ़ा होना पड़ेगा। इन बूढ़ों के पास बैठोगे तो बिना बूढ़े ही सीखने को मिल जायेगा। मैं ऐसे ही करता हूँ। देश में जितने वृद्ध साधु हैं, चाहे आचार्य विद्यासागर जी हों, विरागसागर जी हों, कुन्थुसागर जी हों, सन्मतिसागर जी हों, जितने वृद्ध साधु

हैं, जिनके पास नहीं भी गया, खबर-खबर से सीख लेता हूँ। आज विद्यानन्द महाराज जी दिल्ली में विराजते हैं। उस जीव की धीमानता को देखो। अपने जीवनकाल में उन्होंने जैनधर्म की ऐसी प्रभावना की है कि जब भी विदेश में जैनसाधु का नाम आता था तो विद्यानन्द जी का आता था। उनके अन्दर जैन शासन की रक्षा का भाव अभी भी है। लगे रहते हैं। जहाँ जो गुण हो, उनका व्याख्यान तो करना। **गुण का व्याख्यान करने में जो भूल कर लेता है, उससे बड़ा जगत् में कोई दरिद्री नहीं होता।** इधर आर्यिकाओं को देखो। ज्ञानमती, विशुद्धमती, सुपार्श्वमती। इन आर्यिकाओं ने कितने बड़े-बड़े काम किये हैं। इस युग में जो साहित्यिक कार्य इन आर्यिकाओं ने किया है, उसे तो बड़े-बड़े आचार्य नहीं कर पाये।

वृद्ध बनना है तो वृद्धों के साथ रहना। जो यह मान कर चलता है कि जो कुछ हूँ मैं ही हूँ, वह असफल हो जाता है। जो गाड़ी हजार किलोमीटर चलने वाली थी, यदि उसे बहुत तेज चलाओगे, तो इंजन गर्म कर लोगे, तो रास्ते में फेल हो जाओगे। सहजता में लेकर चलोगे तो हजार कि. मी. चलने वाली गाड़ी तुमको 1500 कि.मी. भी ले जा सकती है। ऐसे ही जो साधना का मार्ग है, वह मध्यम मार्ग है। जो शीघ्र छलाँग मारते हैं, वे सुगत जैसे वापस आजाते हैं। जो अपने मार्ग को सन्तुलित बनाकर चलते हैं, वे महावीर-जैसे सिद्धालय में पहुँच जाते हैं। कभी किसी को हीन मत समझना, दीन मत समझना। जिसे तू दीन-हीन समझ रहा है, विश्वास रखना, समय आता है।

पन्चानवें साल के मुनिराज 'बारसाणुपेक्खा' ग्रन्थ में से कुछ उतार रहे थे। मैं देख रहा था कि महाराज जी कर क्या रहे हैं? मैं जाकर उनके बगल में बैठ गया, पूछा, महाराज जी! आप क्या कर रहे हो? वह बोले, महाराज! यह बहुत अच्छा ग्रन्थ है। विशुद्धसागर कोई महाराज हैं, उनने लिखा है।इसमें जो अच्छी-अच्छी बातें हैं, उनको लिख रहा हूँ। मैं सोच रहा था कि कोई युवा मुनि होते तो वे प्रवचन के लिये नोट कर रहे होते, लेकिन उन वृद्ध महाराज को तो प्रवचन से कोई प्रयोजन नहीं था, फिर भी नोट क्यों कर रहे थे? यह थी अरहन्त बनने

की श्रुतभक्ति, ये थी सिद्ध बनने की श्रुतभक्ति। महाराज नोट इसलिये कर रहे थे कि मेरा उपयोग लगा हुआ है और मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। सही बताऊँ, मैंने तो पैर पड़ लिये। धन्य हो, महाराज! मैं तो बोलकर दूर हो गया था, आप उसका उपयोग कितना बढ़िया कर रहे हो कि मेरे परिणाम विशुद्ध हो रहे हैं। उस योगी के तुरन्त पैर पड़ना, क्योंकि मैं मुनि के भावों की विशुद्धि को नमस्कार करता हूँ। चर्म तो खाल है, वह तो दुनियाँ में होती है। मुनि की चमड़ी की वन्दना नहीं है, मुनि के रत्नत्रय धर्म की वन्दना है। बिना चमड़ी के धर्म देखने जाओगे कहाँ? इसलिये उसका अवलम्बन है, लेकिन रत्नत्रय धर्म की वन्दना है। पन्चानवें साल के मुनिराज जब ग्रन्थ खोल कर पढ़ रहे थे, पूछा, 'महाराज! क्या करोगे?' महाराज! आपको पता नहीं है। श्रुतभक्ति करने से केवली भगवान् बनते हैं। यथार्थ मानो, जिसके अन्दर सहजता होती है, ऋजुता होती है, सारी दुनियाँ उसके चरणों में झुक जाती है। दुनियाँ को झुकाना चाहते हो तो पहले ऋजु बन जाओ।

एक विद्या मैं आपको सिखाये देता हूँ। अक्कड़-से-अक्कड़ कितना ही तना खड़ा हुआ हो, उसको भी झुकाने की ताकत ऋजु आदमी में होती है। लता कोमल होती है, लेकिन अक्कड़-से-अक्कड़ वृक्ष को झुकाने की सामर्थ्य लता में होती है। आप समझो, मैं क्या बोल रहा हूँ। द्वेत में जाओ। बेल कितनी कोमल होती है और नारी कितनी कोमल होती है? हे ज्ञानी! तू कितना ही अक्कड़ हो, जो नारी के चंगुल में फँस गया, उसको झुकना ही पड़ जाता है। लता कोमल होती है, परन्तु इतनी कोमल लता वृक्ष पर चढ़ जाये फिर जब फल लगते हैं, चाहे तरबूज की लता हो, चाहे लौकी की लता हो, कोई भी लता हो, जब वृक्ष पर चढ़ जाती है तो वृक्ष को झुकना ही पड़ता है। इसी तरह तुम सरल बन जाओ, तुम सहज बन जाओ, तुम ऋजु बन जाओ, तो अक्कड़-से-अक्कड़ आदमी झुक जाता है। समय आता है, झुक जाता है। बाँस से खड़े को झुकाने की ताकत मार्दव धर्म में है, आर्जव धर्म में है। ऋजु हो जाओ।

पर्याय को देखकर अहं मत करना। युवाओ! ध्यान रखना, जितने फोटो

खिंचवाना हो आज अच्छे से खिंचवा कर आ जाना, उनको अपने पास रख लेना, फिर अस्सी साल बाद देखना कि क्या तुम यही हो। इसलिये वृद्धों को देखकर ग्लानि मत करना, क्योंकि ऐसी हालत अपनी भी होगी। जो आज का बूढ़ा जीव होगा, वह तो परम पुण्यात्मा होगा, क्योंकि इनको वृद्धावस्था में जिनवाणी सुनने को मिल रही है, निर्ग्रन्थ गुरु दिखाई दे रहे हैं, अरहन्त की प्रतिष्ठायें हो रही हैं, भगवान् की प्रतिमाओं के दर्शन करने के भाव बन रहे हैं, इतने अच्छे लड़के प्राप्त हुये हैं कि उनका हाथ पकड़ कर मन्दिर ला रहे हैं। भैया! सम्हल कर जीना। क्यों? तुम्हारे पिताजी ने तो चार भाइयों को जन्म दिया, इसलिये कोई-न-कोई भाई सहारा दे देता है। तुमने तो मात्र एक को जन्म दिया है और ज्यादा होशियार करने के चक्कर में कहीं तुमने विदेश भेज दिया, तो वह वहीं का होकर रह गया। जब तुम बूढ़े होओगे, तो तुम्हारा हाथ कौन पकड़ेगा? तुमको धर्म पर करुणा नहीं आ रही थी तो वृद्धावस्था की तो कम-से-कम सोच लेता।

जितने पिता बनने वाले बैठे हैं, ध्यान से सुनना। एक सत्य घटना सुनाऊँ। उधर पिता जी की मृत्यु हो गई, यहाँ पड़ौसी ने फोन किया कि तुम्हारे पिता जी जा चुके हैं। वह वहाँ से फोन करता है कि अब तो वे जा चुके, आने वाले हैं नहीं, मुझे छुट्टी नहीं मिल रही है, आप उनका सब काम कर देना, मैं बाद में खर्च दे दूँगा या मनीआर्डर कर दूँगा। अभी छुट्टी नहीं है, समय भी नहीं है और विमान का टिकिट भी नहीं है। पिताजी का विमान निकल गया और बेटे को विमान का टिकिट नहीं मिल रहा था। यह सत्य घटना है। क्या करोगे? ज्ञानियो! ज्यादा पढ़ाई के चक्कार में मत रहो, थोड़ा संस्कार भी डालो।

बालको! कितनी भी ऊँची पढ़ाई पढ़ लेना, परन्तु धर्म को छोड़कर मत जाना। कहीं भी रहना, कुछ भी करना, अन्त में होना वही है जो सबसे साथ होता है। मित्र! जीवन के क्षणों को जीते-जीते जीना और जीते-जीते भी मरण को देखते रहना, क्योंकि पर्याय क्षणभंगुर है। सात दिन के अन्दर-अन्दर सारे लोग चले जायेंगे। कोई रविवार को जायेगा, कोई सोमवार को जायेगा.....। मालूम है? तो फिर मानते क्यों नहीं हो? जाने के पहले कुछ ऐसा कर जाओ कि तुम चले

भी जाओ, देश छूट भी जाये, लेकिन लोगों के हृदय से न छूटो। ऐसे काम करके जाओ। आज कुन्दकुन्द स्वामी चले गये, महावीर स्वामी चले गये, सभी लोग चले गये, लेकिन कहाँ जा पाये? ऐसा कोई दिन नहीं होता है कि कोई महावीर का नाम न लेता हो, कुन्दकुन्द का नाम न लेता हो। ज्ञानी! ऐसा काम करके जाओ कि लोग कुन्दकुन्द-जैसा तुम्हारा नाम लें। मंगलाचरण में तीर्थंकर के और गणधर के बाद कोई आचार्य का नाम लिया जाता है, तो कुन्दकुन्द स्वामी का नाम लिया जाता है। जो कल्याण के लिये कल्याण करके जाते हैं, उनका नाम दुनियाँ लेती है। जो नाम के लिये करके जाते हैं, उनको दुनियाँ भुला देती है। विश्वास रखना, जो नाम के लिये काम करते हैं, उन्हें दुनियाँ भुला देती है कि अरे! ये नाम के लिये करता था। जिसने स्व-पर कल्याण के लिये किया है, उसको दुनियाँ याद करती है।

जयवन्त हों आचार्य समन्तभद्र स्वामी, जिन्होंने जिनशासन के लिये क्या-क्या नहीं किया है? काञ्चीपुरम से चल कर बनारस तक जा करके जिन्होंने स्याद्वाद का डंका पीटा हो, वे आचार्य समन्तभद्र स्वामी, भावी भगवन्त, जयवंत हों। कवियों में 'तीर्थकृत' लिखा है। सामान्य लोगों को प्रभावित कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है। मुनियों को प्रभावित कर लेना, आचार्यों को प्रभावित कर लेना, उसका नाम प्रभाव है। समन्तभद्र स्वामी के बाद जितने भी आचार्य हुये हैं, दिगम्बर श्वेताम्बर, स्थानकवासी, सभी ने समन्तभद्र स्वामी की प्रशंसा मुखर होकर की है। स्याद्वाद ध्वज को उत्तर से दक्षिण, दक्षिण से उत्तर तक फैलानेवाले आचार्य समन्तभद्राचार्य हैं। जिन्होंने यूँ कह दिया 'पटु सिंह नादै।' एक सिंह तो मात्र जंगल में दहाड़ता है, परन्तु समन्तभद्र सिंह जंगल, वन, उपवन, शहर, अटवी सारे जगह दहाड़ता था। जहाँ समन्तभद्र खड़े हो जाते थे, वहाँ से सारे गीदड़ भाग जाते थे, समन्तभद्र स्वामी ऐसे महायोगी हुये हैं जिसको एक बार समन्तभद्र स्वामी का 'समय' मिल गया, उसको डर तो कहीं सतायेगा ही नहीं। जिसने तीर्थंकर महावीर को चुनौती दी हो, ऐसे कोई योगी हुये हैं तो वो समन्तभद्र स्वामी हैं।

महावीर स्वामी ने प्रश्न किया था-'समन्तभद्र! मेरे चरणों में सारी दुनियाँ

झुकती है, आप क्यों नमस्कार नहीं करते हो?' मैं ऐसे नमस्कार नहीं करता हूँ। मेरे नमस्कार को झेलने के लिये शक्ति चाहिये। साँकलें कसवा दी, हाथी लगा दिये, लेकिन कहाँ झेल पाये? चन्द्रप्रभ स्वामी को प्रकट कर लिया। वे समन्तभद्र स्वामी थे।

'वन्देऽभिवंद्यं' शब्द जैसे-ही बोला, पिण्डी के दो फाड़ हो गये। वे समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि, मैं किसी के वैभव को देख करके, ऋद्धि को देख करके, प्रसिद्धि को देख करके नमस्कार नहीं करता हूँ।

ये दुनियाँ की भीड़, दुनियाँ के तमाशे सब व्यर्थ हैं। मेरा सब समाज से कहना है कि जादू-टोने के नाम पर कोई यूँ कह दे कि तुम नहीं आओगे तो भस्म हो जाओगे, तो ये सारी व्यर्थ की बातें सुन करके किसी से डर मत जाना। कौन भस्म करेगा? जबतक मेरा आयुकर्म है, तब तक किसी में कोई ताकत नहीं है। परघात नाम-कर्म का उदय होगा तो दूसरे से घात होगा। स्वघात नाम-कर्म का उदय होगा तो स्वयं के द्वारा घात हो जायेगा और दोनों कर्म का उदय नहीं है तो जगत् में किसी की कोई ताकत नहीं है। तोप का गोला भी ठण्डा हो जाता है, अमरचन्द दीवान से पूछो। अड़तालीस ताले टूट गये थे, मानतुङ्ग स्वामी से पूछो। कालिया नाग का जहर उतर गया था, धनञ्जय कवि से पूछो। सारे शरीर से कुष्ट निकल गया था, वादिराज सूरि से पूछो। जिसके अन्तस् में भगवान् तीर्थंकर विराजे हों, उसको जगत् में कौन सताने वाला है? मित्र! चार को मत छोड़ देना 'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि'। चार को छोड़ा, सो चार गति में भटके, अब इन चार को मत छोड़ देना। डरने की आवश्यकता नहीं है। भयभीत होना भी कषाय है और भयभीत करना भी कषाय है। किसी को डराया-धमकाया तो चारित्रमोहनीय कर्म का तीव्र बन्ध होगा। किसके बल पर? पुण्य के बल पर, पर्याय के बल पर न पुण्य शाश्वत् है, न पर्याय शाश्वत् है। तुम्हारे पास क्या पुण्य है, उन तीर्थंकर से पूछो जिनके चरणों में गर्भ से पूर्व ही, जन्म से पन्द्रह मास पूर्व ही इंद्र ने रत्न बरसाये। देखो, आज बड़े-बड़े नेताओं/सेठों के दरवाजों पर नौकर छड़ी लेकर

खड़े रहते हैं। ऐसे-ही सौधर्म इन्द्र जिनके चरणों पर खड़े हों, स्वयं सृष्टि के सृष्टा वे आदिनाथ स्वामी। क्या ऐसा पुण्य तेरे पास है?

ज्ञानी! ईंटें ढोने वाला भी तेरे द्वार पर नहीं है। जिनके द्वार पर अट्ठारह करोड़ घोड़े और चौरासी लाख हाथी खड़े रहते हों, ऐसे चक्रवर्ती भी हुये हैं। शान्ति, कुन्थु, अरह, इन तीन तीर्थंकरों से पूछो, जिनके चरणों में सौधर्म इन्द्र हाथ जोड़े खड़ा हो। स्वयं आदिब्रह्मा हों, जिनका एक बेटा चक्रवर्ती हो, दूसरा बेटा कामदेव हो, स्वयं तीर्थंकर और जिनके बेटे वृषभसेनादि गणधर पद को सुशोभित कर रहे हों, ऐसे पुत्रों के पिता, इस युग के आदि तीर्थंकर, ऐसा प्रबल पुण्यात्मा जीव। अहो! आश्चर्य। जब चर्या को निकले, वे भी घूमते रहे छः महीने। हे विधि! हे कर्म! जब तूने तीर्थंकर को नहीं छोड़ा, तो मुझे तू क्या छोड़ेगा? मत डूबो अहंकार में। तीर्थंकर भगवान् को भी विधि नहीं मिली। **भैया! अपने उत्कर्ष को देख कर, किसी का अपकर्ष देखने का भाव मत लाना। अपने अपकर्ष को देख करके दूसरे के उत्कर्ष पर ईर्ष्याभाव मत लाना। उत्कर्ष अपना भी देखो, उत्कर्ष दूसरे का भी देखो यदि तुम साधु पुरुष हो तो।** घड़ी का काँटा कभी बारह पर होता है तो कभी छह पर भी होता है। घड़ी का कांटा क्या करे? उसका स्वभाव चलना है। पुण्य-पाप का परिणमन घड़ी के काँटे के समान है। कुछ नहीं है। हर व्यक्ति के सामने ऐसे दिन आना चाहिये जिससे उसे समझ में आये कि न ज्ञान का मद करना चाहिये न चारित्र का मद करना चाहिये।

मुझे मालुम है कि एक-एक अक्षर को कैसे याद करना पड़ता है? ज्ञान की गरीबी को मैंने देखा है। जब निर्णयसागर जी (वसुनन्दी जी) आचार्य महाराज को पाँच श्लोक सुनाते थे तब विशुद्धसागर आधी लाइन सुना पाते थे। मैंने देखा है, मैं निवेदन किया करता था महाराज! दो-दो श्लोक पढ़ लिया करो ताकि मैं भी साथ-साथ चलूँ। नहीं, पाँच पढ़ना है। समझो, गरीब का भी ध्यान रखो। यथार्थ मानो, व्यवहार की बात करूँ? यदि श्रावक का जीवन मिले, तो उसे धन मिलना चाहिये, नहीं-तो लोग एक कुत्ते को तो गाड़ी में बिठाल लेंगे, परन्तु गरीब को धक्का मार कर नीचे उतार देंगे। साधु बने तो उसको क्षयोपशम मिले, ज्ञान

मिले, नहीं-तो साधु भी साधु को धक्का मार कर बिठाल देते हैं, मैंने देखा है। व्यवहारिक बात कर रहा हूँ, श्रावक के पास सम्पत्ति होना चाहिये और साधु के पास ज्ञान की सम्पत्ति होना चाहिये। परन्तु वह ज्ञान की सम्पत्ति तभी कार्यकारी होगी जब चारित्र की सम्पत्ति होगी। यदि चारित्र खण्डित है, तो ज्ञान कोई काम का नहीं। श्रद्धान और ज्ञान में कमी एक बार समाज झेल लेगी, परन्तु चारित्र की कमी को कोई भी नहीं झेल पायेगा।

आगरा का सात वर्ष का बालक विहार करा रहा था, मेरे तो रोंगटे खड़े हो रहे थे। हे वर्द्धमान! कौन कह रहा है कि तुम्हारा धर्म समाप्त हो रहा है? धर्म समाप्त होता तो झुलसती अग्नि जैसी गर्मी में वह सात वर्ष का बालक पैदल विहार कैसे कर रहा था? एक नहीं, हर गुट में एक दो बच्चे गये। आप कल्पना करो, कैसे कह दें कि धर्म नहीं है? कोई यूँ कहे कि वर्तमान में धर्म नहीं है, मैं इस बात को नहीं स्वीकारता। यदि वर्तमान में धर्म नहीं होता, तो हजारों कि. मी. दूर से लोग आकर क्यों बैठते ? धर्म है। यह भी पक्का है कि लोग धर्म को पहचानने लगे हैं। मैं दस-बारह वर्ष से देख रहा हूँ। स्वाध्याय में वृद्धि हुई है और रूढ़िवादिता का खण्डन हुआ है। पहले नाम पर दौड़ते थे, वे अब बन्द हो गये, काम पर दौड़ना शुरू कर दिया है। एक समय था जब लोग नाम पर दौड़ते थे। लोग ज्ञानी हो चुके हैं, अब वस्तुस्वरूप को पहचानने लगे हैं। इसलिये समझो। जगत् में कोई तुमसे कहे कि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं भस्म कर दूँगा, तो आप कहना मेरी तरफ से कि कब करोगे? आज कि कल?अभी कर दो। मुझे विश्वास है, कि अरहन्त के भक्त को कुछ भी होनेवाला नहीं है। जगत् में ऐसा कौन-सा देव होगा जो जिनेश्वर के चरणों में सिर न टेकता हो?

सौ-सौ इन्द्रों से वन्दनीय हैं, वहाँ भूत-प्रेत क्या लगते हैं? सौ-सौ इन्द्रों से वन्दनीय जिनेन्द्रदेव हैं और उन जिनेन्द्रदेव का मैं भक्त हूँ। जगत् में कोई शक्ति नहीं है जो अरहन्त के भक्त का बाल-बाँका कर सके। लेकिन होना चाहिये सच्चा भक्त। समय पर परीक्षा होती है। आज सबके साता का उदय चल रहा है। सम्यक्-दृष्ठि बैठे हैं यहाँ पर। घर में तनक-सी परेशानी हो जाये तो पता नहीं

कितनी चादरें, कितने बतासे, कितनी मिठाइयाँ, कितने श्रीफल यही सम्यग्दृष्टि लेकर दौड़-दौड़ा भागेगा। महाराज! आपके न कोई आगे, न पीछे। मुझे तो अपना घर दिख रहा है। धन्य हो, सम्यग्दृष्टियो। यह कैसा सम्यक्त्वपना है?

मालूम, एक जगह क्या हुआ? एक बालक था। वह बहुत होशियार था। उस पर गुरु जी बहुत खुश रहते थे। एक दिन वह स्कूल नहीं गया। गुरु जी ने पूछा, 'बेटा! क्यों नहीं आया?' वह हँसने लगा, बोला, 'गुरु जी! कल मेरी सगाई थी।' उनके मुख से निकल पड़ा, 'बेटा! अब तू मेरा नहीं रहा।' थोड़ा हैरान हुआ, फिर चला गया। कुछ दिन बाद उसने फिर अन्तराल डाल दिया। गुरु जी ने फिर पूछा, 'क्यों नहीं आया?' गुरु जी मेरी शादी हो गई। 'अब तू अपने माता-पिता का भी नहीं रहा।' नौ/दस महीने निकल गये। एक दिन वह फिर नहीं आया। पूछा 'भाई! क्यों नहीं आया?' बोला, 'गुरु जी! अब आप बार-बार क्या पूछते हो? मुझे कल पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है।' गुरु जी बोले, 'बेटा! अब तू अपनी पत्नि का भी नहीं रहा।'

अब उसको बात लग गई—'गुरुजी! आप ऐसे-ही कहते रहते हो कि मैं आपका नहीं बचा। मैं रोज तो आपके पास आता हूँ, क्या हुआ? गुरु बोले, 'बेटे! सुन। तू इसकी परीक्षा कर ले।' बोला, 'हाँ, हो जाने दो। क्या परीक्षा होना?' गुरु जी ने बेटे को प्राणायाम सिखा दिया। तू जा, जैसे-ही देहरी पर पहुँचे, जोर से चिल्लाना, 'पेट में दर्द है' और गिर पड़ना, बस। उसने वैसा ही किया। चारों ओर हल्ला हो गया। चारों ओर देखने बैठ गये। वैद्यों को कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था, क्योंकि वह तो श्वास को रोके हुये था। जब भीड़ हटे, तो धीरे-से श्वास लेले, फिर श्वास रोक ले। फिर गुरु जी वहीं से निकल रहे थे। जैसे-ही पिता जी को पता चला, वे दौड़े आये, 'गुरुजी, गुरुजी! आपके प्रिय शिष्य को पता नहीं क्या हो गया है।' गुरुजी तो अन्दर-ही-अन्दर मुस्कुरा रहे थे कि मुझे तो सब पता है कि क्या हो गया है। बोले, 'चलो देखें।' उन्होंने चेहरा गम्भीर बनाया और कहते हैं कि बहुत गम्भीर है, इसका बचना मुश्किल है। गुरुजी! कोई उपाय? हाँ, उपाय तो एक है। एक कटोरा लेकर आओ। इसमें शुद्ध पानी

लेकर आओ। गुरु जी ने उसमें थोड़ी-सी राख घोल दी।अब आ गई परीक्षा की घड़ियाँ। वह बालक बोलता था कि मेरे तो सभी कोई है, आप ऐसा क्यों बोलते हो?

गुरु जी बोलते हैं कि औषधि तो तैयार हो गई। मैंने मन्त्र भी पढ़ दिया है, लेकिन इस औषधि का प्रभाव विचित्र है। यह रोगी को नहीं पिलाई जाती है, यह परिवार के किसी सदस्य को पिलाई जाती है; परन्तु जो पियेगा, वह तो ऊपर चला जायेगा और बेटा बच जायेगा। अब देखो सभी के चेहरे। जैसे ही कटोरा पिता की ओर किया—'भाई! आपने तो बहुत जी लिया है। तुम्हारा बेटा बचेगा तो तुम्हारा नाम चलेगा। तुम इसे पी लो।' अरे गुरुजी! मरनेवाला कहाँ आता है, आप भी जानते हो। यदि मैं ही मर गया, तो उसकी बूढ़ी माँ को कौन देखेगा? इसलिये मैं तो नहीं पी सकता हूँ। माँ की ओर कटोरा बढ़ाया, माँ! तू पी ले। बोली, गुरुदेव! अब आप भी क्या-से-क्या कह रहे हो? बेटा चला ही गया है। उसका भी बेटा है, बहू है, पिता है। इन सबको तो देखना है, अतः मैं तो नहीं पी सकती। बेचारा पड़ा-पड़ा सोच रहा है कि किसको अपना मानूँ। अब कटोरा पत्नि की ओर किया गया, 'तू तो अर्धांगिनी है। सुख-दुःख में सहयोग करने वाली है। धर्मपत्नि कहलाती है। तू चली भी जायेगी तो तेरा पति अमर हो जायेगा। तुम पी लो। वह बोली, 'अभी तो हाथ पीले हुये हैं। अभी तो माँग भरी गयी थी। और मेरा छोटा-सा बच्चा है। इसको कौन पालेगा? मैं नहीं पी सकती।' कौन बचा? छोटा-सा शिशु। उससे कहा कि तू पियेगा क्या? वह बोला, 'जब मेरे दादा, दादी और मेरी मताई नहीं मानी, मेरे तो अभी दूध के दाँत भी नहीं गिरे, मैं तो नहीं पी सकता, मेरे तो खेलने-खाने के दिन हैं।' अब सुनो, गुरु जी क्या कहते हैं? तो क्या मैं पी लूँ? हाँ, गुरुजी! पीलो-पीलो। आपके न कोई आगे है न पीछे है। मैं आपका चबूतरा बनवा दूँगा। ज्ञानी! ये है संसार। उसमें जहर तो था नहीं। गुरुजी ने अँगुली घुमाई और पी गये और चुटकी बजाई, बेटा! उठ जा। देख ले, कौन तेरा बचा? भैया! विश्वास न हो तो करके देख लेना। लेकिन आज मत करना, थोड़े दिन बाद करना। सबको पता चल जायेगा कि

कौन कितने गहरे में है। भैया! तू कितना ही कमा कर घर ले जाना, पर होना यही है, जो मैं कह रहा हूँ। जब सबके साथ होना ही है, तो ऐसा करो कि न-होना पड़े, ऐसा काम करो।

कुलभद्र स्वामी इसी बात को कह रहे हैं कि ज्ञानी! तेरी पर्याय नष्ट होनेवाली है, उसे कोई बचानेवाला नहीं है-

मित्रो! यह जीवन बिजली की चमक के समान है। बिजली आकाश में चमकती है और विलीन हो जाती है, ऐसे ही कब शरीर से चमक चली जायेगी, कोई निश्चित नहीं है। चक्रवर्ती का बेटा चक्रवर्ती नहीं बनता। न पिता के अहंकार में डूबना, न गुरु के अहंकार में डूबना। जिनका पुण्य होता है, उनके लिये ही होता है। आगरा का किला देख लो, बड़े-बड़े बादशाह कहाँ गये? **जब बड़े-बड़े दुर्ग खण्डहर हो रहे हैं, तो तुम जिनको बना कर जा रहे हो, उनका भी वही होगा। बहुत अच्छा हो कि ईंट-चूने की जगह अपनी आत्मा की दीवाल को सुरक्षित रखो। उससे समाधि होगी, उससे कल्याण होगा। जीवन विद्युत तुल्य है। जो किसी ने बनाये थे, औरंगजेब भग्न करके चला गया। वो भी नहीं बचा और जो बनवा कर गये थे, वे भी नहीं बचे। ये जीवन विद्युत के समान है।**

बुंदेलखण्ड में कहते हैं 'जाके जैसे नदिया-नाले, बाके वैसे भरका, जाके जैसे बाप-मताई, बाके वैसे लड़का।

जिसके लड़के बिगड़े हुये हैं, समझ लो उसका पिता कैसा होगा? जिसके बेटे इतने सुशील हैं, अनुमान लगाओ पिता कितना शुशील होगा? ऐसा महान् पिता भी आज स्वप्न जैसा दिखाई दे रहा है, कहाँ गया? संयोग स्वप्न के समान् है। एक क्षण बाद ही 'थे' लग जाता है। सब भूत में चले गये। जगत् में दिखने वाला स्नेह संध्या की लालिमा है। फिर अंधेरी रात्रि होगी।

ज्ञानी! किसके राग में तुम धर्म छोड़ रहे हो? न बालाओं के राग शाश्वत् हैं, न अबलाओं के राग शाश्वत् हैं, न मित्रों के राग शाश्वत् हैं। एक ओस की

बूँद जब घास पर गिरती है, तो मोती-सी चमकती है, लेकिन क्षणमात्र में विलीन हो जाती है। ऐसे-ही जो शरीर चमकते दिख रहा है खजूर जैसा, सब छुहारा होने वाला है। तुम इठला रहे हो कि मेरे पास बहुत सामग्री है। बरसात में सप्तरंगी इन्द्रधनुष दिखाई देता है और देखते-देखते विलीन हो जाता है। ऐसे-ही भोगसामग्रियाँ इन्द्रधनुष के समान हैं, सम्पदा आकाश के महल के समान क्षणभंगुर है। बूढ़े पिता को मत देखो, तुम भी तो बूढ़े होओगे। यह यौवन जलरेखा के समान है। पानी में रेखा खींचो तुरन्त विलीन हो जायगी। जितने काले बाल दिख रहे हैं, सब सफेद होने वाले हैं। ज्ञानियो! सारा वैभव अशाश्वत् है, क्षणभंगुर है। इसमें तुम राग मत करो। शाश्वत् यदि कोई है, तो एकमात्र ध्रुव अखण्ड मेरा चैतन्य आत्मा है। इस पर लक्ष्यपात करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"आत्महित क्यों नहीं करते"

समानवयसा दृष्ट्वा मृत्युना स्ववशीकृताः।
कथंन चेतः समो नास्ति मनागपि हितात्मनः॥ 152 सा. स.॥

अन्वयार्थ-समानवयसा दृष्ट्वा = समान वयवाले देखकर **मृत्युना स्ववशीकृताः** = मृत्यु के द्वारा सभी को अपने वश कर लिया गया है अतः अब **आत्मनः हित समो** = आत्मा के हित समान **मनागपिनास्ति** = कुछ भी नहीं है ऐसा **कथं न चेत्** = क्यों नहीं समझता?

भावार्थ—हे भव्य! मरण ने सबको समान देखकर अपने वश कर लिया है अर्थात् मरण के समक्ष कोई छोटा-बड़ा नहीं है। मरने का कोई निश्चय नहीं है, अतः हे भव्य! अपना आत्महित करो।

"शरीर की अशुचिता"

सर्वाशुचिमये काये नश्वरे व्याधिपीडिते।
को हि विद्वान् रतिं गच्छेद्यस्यास्ति श्रुतसङ्गमः॥ 153 सा. स.॥

अन्वयार्थ-यस्यश्रुतसंगमः अस्ति = जिस किसी को शास्त्रज्ञान का समागम है **कः हि विद्वान्** = ऐसा कौन विद्वान् **व्याधिपीडिते** = रोग से पीड़ित **सर्व अशुचिमये** = सर्व तरह अपवित्र **नश्वरे** = एवं नाशवंत **काये** = शरीर में **रतिं गच्छेत्** = आसक्त होगा?

भावार्थ-जिसके शास्त्रज्ञान का समागम है अर्थात् जो शास्त्रों का ज्ञाता है ऐसा कौन विद्वान् व्याधि से पीड़ित सर्व प्रकार से अपवित्र एवं नाशवन्त शरीर में आसक्त होगा? अर्थात् ज्ञानीपुरुष शरीर में आसक्ति नहीं करते।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' में इस बात को समझा रहे हैं कि पर्याय की अविनश्वरता किञ्चित् भी नहीं है। अविनाशी द्रव्य मात्र है। जो ध्रौव्य द्रव्य है, उस पर दृष्टि नहीं है। पर्याय अध्रुव है, उसको सजाने में जीवन जा रहा है। ज्ञानियो! पर्याय को सम्हाल सकते हो, सजा सकते हो, परन्तु पर्याय को शाश्वत् बना कर नहीं रख सकते हो। बड़े-बड़े चक्री या बलभद्र के चमकते शरीर को देखकर बूढ़े भी भ्रमित हो जाया करते थे। अन्त में उनकी पर्याय का भी विनाश हुआ है। उनकी पर्याय भी शाश्वत् दृष्टिगोचर नहीं हुई। इस भूतल पर यदि सम्पूर्ण भवन शाश्वत् होते तो तुम्हें रहने के लिये स्थान न मिलता। सम्पूर्ण सम्राटों के किले अवस्थित होते, तो सामान्य लोगों को रहने का स्थान ही नहीं मिलता। जो गगन का चुम्बन करते थे, वे अवनी तल में विश्राम ले चुके हैं।

ज्ञानियो! मात्र आँखों की सन्तुष्टि के लिये ये सबकुछ दिखाई दे रहा है। यदि आत्मा को सन्तुष्ट करना है, तो आँखों की सन्तुष्टि को छोड़ना पड़ेगा। जब तक आँखों की सन्तुष्टि चल रही है, तब तक आत्मा शान्ति का वेदन करनेवाली नहीं है। जो-जो लोक में दिख रहा है, वह नेत्रों की सन्तुष्टि है। यदि बालक को तू देख रहा है, तो वह नेत्रों की सन्तुष्टि है। नारी नर को देख रही है, तो वह नेत्रों की सन्तुष्टि है। भवन, वाहन देख रहे, तो नेत्रों की सन्तुष्टि है। क्योंकि पर्याय का विनाश नियत है। चमकते शरीर को जितना देखना चाहो सो देख लो, पर वह भी विलीन होगा। देख लो, कितनों का संस्कार करके तू आ चुका है, छोड़ कर आ चुका है। मिट्टी कह रही है कि मिट्टी को ही तो मिट्टी में छोड़ा है, तूने किया क्या है? मिट्टी तो मिट्टी में मिल चुकी है। जो मिट्टी में वास कर रहा था, उसका तो इस पर्याय से पलायन हो चुका है। आप मिट्टी में मुस्करा सकते हो, खिलखिला सकते हो, परन्तु मिट्टी के परिवर्तन को रोक नहीं सकते हो।

यौवन जलरेखा के समान है। कभी अपनी देह को देखने के साथ वृद्धों की देह को भी देख लिया करो। ये भी आप-जैसे युवा थे, लेकिन युवावस्था जलरेखा

के समान विलीन हो चुकी है। पानी पर खींची गई रेखा खींचते-खींचते विलीन हो जाती है, ऐसे-ही आँखों के सामने दर्पण करके तू अपनी पर्याय को देखता ही रहा, परन्तु पर्याय को रोक कहाँ सका? चली गई शरीर की कोमलता। चेहरे को देखने के लिये जितने समय तूने आँखों को काँच के सामने लगाया था, यदि उतना समय अरहन्त की आँख में आँख लगा लेता, तो तू निर्ग्रंथ बन कर बैठ जाता। जितने अच्छे से तूने दर्पण में चेहरे को देखा है, उतने अच्छे से अरहन्त के मुखमण्डल को देख लेता तो संसार सागर से पार हो जाता। बेचारा भगवान् को देखने भी आया तो तुरन्त आँख बन्द करके खड़ा हो गया, जैसे शत्रु हो और जब अपना चेहरा दर्पण में देख रहा था तो घण्टों-घण्टों आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा था। विनाशीक पर्यायों को तूने आँखें खोल-खोल कर देखा है और अरहन्त के चरणों में आया तो आँखें बन्द कर ली। हे ज्ञानी! कम-से-कम उनको ही अच्छे से देख लेता।

कितने भवनों को खाली करके आया है, कितने भवन नवीन-नवीन बनाये हैं, तब भी मुस्करा रहा है। देह-भवन भी सूना हो जायेगा, हंस यहाँ से निकल जायेगा। कुछ सदस्य जायेंगे और संस्कार करके आ जायेंगे। कुछ क्षण के लिये चेहरा बनायेंगे और वहाँ से उठते ही काम में लग जायेंगे। आप प्रतिदिन तो देख रहे हो। आयु नियत नहीं है। जीवन जाने के पहले जीवन से असंयम को भगा दो। यह देह तेरा निरादर करे इसके पहले इस देह का निरादर कर देना। जितना राग जीव को भूमि पर है, उतना राग भाई पर नहीं है। इसे आपको स्वीकारना होगा। भूमि पर कितना तीव्र राग चल रहा है कि भाई से हिस्सा माँगने को खड़ा हो गया। दुर्योधन कह रहा पाण्डवों से, हे पाण्डुपुत्रो! सुई की नोंक के बराबर भी तुम्हें जमीन नहीं दूँगा। भाई को छोड़ना पसन्द आ गया, लाख के महल में जलाना स्वीकार कर लिया, लेकिन एक विलस्त भूमि देने का मन नहीं किया। हे भूधर! भूमि धरी रह गई, तू भूमि से चला गया।

भिखारियों की भी अनेक जातियाँ होती हैं। कुछ थैला डाल कर भीख माँगते हैं, कुछ तलवार लेकर भीख माँगते हैं, कुछ कट्टा लेकर भीख माँगते हैं। भीख

माँगने की अनेक भाषायें हैं। ज्ञानी! तू भी भीख माँगने गया था अपने बेटे की माँ के पिता के घर। जो ज्यादा पुण्यात्मा होते हैं, वे घोड़े पर बैठकर भीख माँगने जाते हैं। कुछ सामान्य होते हैं, वे ऐसे-ही चले जाते हैं। जो-जो पर को लक्ष्यपात करता है, वह भिखारी ही होता है। जहाँ परवस्तु को स्वीकारने के भाव होते हैं, उसका नाम भिखारी होता है। जो आत्मा मात्र को निहारता है,। वह एक अविकारी भिक्षु होता है। ये भीख के तरीके हैं।

कषाय को निकालने के कई रूप होते हैं। समर्थ होता है तो भुजा को फड़का कर दूसरे की भुजा को नष्ट करके कषाय निकालता है। जो असमर्थ होता है, वह कषाय को रो कर निकालता है। अपने शत्रु को देखकर जब परास्त होता दिखाई देता है, तो अपनी निर्बलता को रोकर निकालता है। आप घर में होते हो तो चिड़चिड़ा कर अपनी कषाय को निकालते हो। जब तुझे आहार संज्ञा सताती है, तब माँ से माँ कह कर अपनी क्षुधा की पूर्ति करता है। एक बुद्धिजीवी बैठा मात्र खोज कर रहा है। यह भाषा का परिवर्तन मात्र है। माँ से माँ कह रहा है, पत्नि से पत्नि कह रहा है, लेकिन माँग भीख ही रहा है। रोटी का टुकड़ा मिल जाता है तो मुस्करा कर बाहर निकल जाता है। न माँ से प्रयोजन है, न पत्नि से प्रयोजन है। जिसकी जिससे इच्छाओं की पूर्ति हो रही है, मात्र इच्छाओं का प्रयोजन है। न व्यक्ति से प्रयोजन है, न वस्तु से प्रयोजन है। इच्छा की पूर्ति होते ही एक क्षण को, जिससे तेरी इच्छा की पूर्ति होती है, उसके प्रति भी तू ग्लानि करता है।

विषय को समझिये। जहाँ किसी का सोच नहीं पहुँचता है, वहाँ दिगम्बराचार्यों का चिन्तन पहुँचता है। यह जैनाचार्यों की परम पैनी प्रज्ञा रही है। लोग परास्त हो चुके थे, उन्होंने तत्त्व की गवेषणा में इति कर ली थी, वहाँ दिगम्बराचार्यों ने प्रारम्भ किया है। यह कषाय का मापदण्ड है, मापो। मुस्कराना भी कषाय है। बिना इच्छा के कोई मुस्कुराता नहीं है। या तो व्यक्ति इच्छा को व्यक्त करने के लिये मुस्करा रहा है या इच्छापूर्ति हो चुकी है, उसकी अनुमोदना कर रहा है। युवाओ! सम्हलकर सुनना। मुस्कराहट भी एक जाल है। फन्दे में फँसने से एक

आदमी बच जाये, लेकिन चेहरे की मुस्कराहट का जो फन्दा है, उससे बड़े-बड़े महापुरुष भी नष्ट हो गये। मुस्कुराहट में बहुत बड़ी ताकत है। किसी को अपना बनाना है तो उसके सामने मुस्करा कर देख लिया, वह बेचारा फँस गया। अब तुम उसके पीछे-पीछे घूमो। एक दिन चेहरा देखा, सो तेरी यह हालत हो गई। मित्र! एक दिन चेहरा देखने न जाता, तो भौरे-जैसे न मँडराना पड़ता। एक दिन तू चेहरा देखने गया था अपने बेटे की माँ का, उस समय वह कुमारी कन्या थी। तूने उसका चेहरा क्या देखा, अपने शील को भी खो बैठा और उसके शील को भी गवाँ बैठा। एक दिन के चेहरे के दर्शन ने जीवन के ब्रह्मधर्म का नाश कर दिया। पर्याय को देखते-देखते परिणामों को भूल गया और इतना पिघला, इतना पिघला, कि अब कुछ शेष बचा ही नहीं, अब क्या करेगा? वस्तुस्वरूप समझो। आँख खोले अन्धे व्यक्तियों की संख्या बहुत है, आँख-बन्द अन्धों की संख्या बहुत कम है। जिनकी दोनों आँखें खुली हैं और विवेक की आँख बन्द हैं, पर्याय नशने वाली है, तब भी परिणाम नहीं सम्हाल पा रहा है। ऐसे अन्धों की संख्या बहुत अधिक है। बस, कब किसकी आँख बन्द होगी, यह किसी को मालूम नहीं है। जिसको मालूम है, वह आज भरतक्षेत्र में नहीं है। अवधिज्ञानी को मालूम है, केवली भगवन्त को मालूम है, वे भरतक्षेत्र में नजर आते नहीं। वर्तमान में भगवान् सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा है कि किस जीव का कहाँ पर क्या होने वाला है। यदि आज केवली भगवान् होते तो वे यह भी बता देते कि तुम इतने भव के सम्बन्धी थे, सो आज इस भवन में बैठकर उपदेश सुन रहे हो। यह भी बता देते कि इतने भव के बाद सिद्धालय में बैठनेवाले हो। अपन तो यही निर्णय करके चलो कि जो-जो इस भवन में विराजते हैं, वे भविष्य में सिद्धशिला पर भी एकसाथ विराजने वाले हों, क्योंकि **यह नियत है कि अरहन्त की देशना को भक्तिपूर्वक वही सुन सकता है, जो भविष्य का भगवान् होता है। जो भविष्य का भगवान् नहीं होगा, वह जिनवाणी सुनते हुये 'कै ऊँघे कै लड़ पड़े, कै उठ घर को जाये।' या तो नींद ले या लड़ पड़े या घर को भाग जाये। जिसकी भवितव्यता पवित्र नहीं है, वह जिनवाणी सुनने**

के भाव नहीं कर सकता। इसे ही अपना भाग्य मानना कि युवावस्था को प्राप्त करने के बाद भी परमात्मा, जिनवाणी और गुरु के प्रति आस्था है। इससे बड़ा कोई अहोभाग्य मत मानना। पुद्गल के टुकड़े तो एक वेश्या भी एकत्रित कर लेती है। सुन्दर चेहरे का होना, सुन्दर शरीर का होना, गोरे होना, यह कोई महत्वपूर्ण नहीं है। बगुला भी गोरा होता है। तालाब/नदी के तट पर बिल्कुल शान्त बैठा है।

पक्षियों में सबसे गोरा कौन है? बगुला। उसके पैर भी सुन्दर हैं। तालाब के किनारे वह बिल्कुल गरीब बन कर खड़ा होता है, परन्तु कर क्या रहा है? क्या भक्त लग रहा है? एक टाँग पर ध्यान कर रहा है। जैसे-ही मछली आयी, तुरन्त पकड़ लिया। निपट कपट की खान। ज्ञानियो! रंगों से, भेष से धर्मात्मा की पहचान मत करना। धर्मात्मा की खोज कर सको तो भावों से पकड़ना। भाव ही भगवान् बनायेंगे, ये पर्याय भगवान् बनानेवाली नहीं है, परिणाम भगवान् बनायेंगे। पर्याय से भगवान् बनते होते तो पता नहीं कितने भगवान् बन चुके होते। भैया! मनुष्य के गिरते शरीर को उठानेवाले सैकड़ों मिल जायेंगे, परन्तु गिरते भावों को उठाने वाले जीव बहुत कम हैं। साधुओं को लोकरंजन से मान-प्रतिष्ठा पद-प्रतिष्ठा से दूरी बना कर रखना चाहिये।

समाज जो दो पाटों के बीच में पिस जाती है कि विशुद्धसागर आये सो ऐसी बोलते हैं, मानूँ तो किसकी मानूँ? सभी मुनि एकसाथ बैठके मीटिंग करके चर्चा कर लें तो समाज को न पिसना पड़े। एक ऐसा कदम उठाओ कि एक दिन वह भी आये जैसे अर्हद्बली स्वामी ने यतिसम्मेलन किया था बेणु नदी के तट पर। वर्तमान में ऐसा यतिसम्मेलन हो कि पूरे चौदह सौ पिच्छीधारी एक नगर में दिखें तो कैसा आनन्द आये। पूरा नगर त्यागीमय हो जायेगा। फिर वो सोचेंगे कि वर्द्धमान का समवसरण कैसे चलता होगा? वर्द्धमान स्वामी के शासनकाल में चौबीस हजार मुनिराज भारत की भूमि में कैसे विचरण करते होंगे? वह दिन कैसे आये? गंगा, यमुना, सरस्वती इलाहाबाद (प्रयाग) में जाकर मिल गई। जहाँ तीर्थंकर ऋषभदेव ने साधना की थी, ऐसे प्रयाग में जो वटवृक्ष है, वह भगवान् आदिनाथ स्वामी

की साधनाभूमि है, तपोभूमि है। ऐसे जब तीन नदियाँ मिलती हैं, तो त्रिवेणी तीर्थ बन जाता है। लोक में उसे लोग तीर्थ बोलते हैं। जहाँ योगी से योगी मिलेंगे, वहाँ अद्भूत आनन्द आयेगा। त्रिवेणी कहाँ? महासागर बनेगा। इतना विवेक जग जाये कि पर्याय के राग छूट जायें और परिणाम विशुद्ध हो जायें। जब जड़ पानी मिल सकता है, तो निर्वाण को प्राप्त करनेवाले ये मुनि क्यों नहीं मिल सकते? परन्तु पर्याय का राग छोड़ना पड़ेगा और मानकषाय के जहर की थैली को निकाल कर फेंकना पड़ेगा। जब कोबरा साँप की थैली निकल जाती है तो तू गले में लटका सकता है। ऐसे ही यदि मान की थैली निकल जाये, तो सारे व्यक्ति गले से गले मिल सकते हैं। जिनकी मान रूपी जहर की थैली नहीं निकल रही है, भाई से भाई नहीं मिलता। भूमि का टुकड़ा भाई से भी बड़ा होता है क्या? बाहर मत जाओ, इस सभा में ही कई भाई बैठे होंगे जो एक बिलस्त भूमि के पीछे अपने सगे भाई से बात नहीं कर रहे होंगे।

वस्तुस्वरूप की प्ररूपणा करने में अपन को किसी से डरना नहीं चाहिये। चाहे पचास या लाख सिर का आदमी आ जाये, वह यूँ कहे, महाराज! ऐसा मत बोलो। तो भी जब अरहन्त देव ने कहा है, तो उसको बोलने में कभी भय मत करना। ज्ञानी! जो जिनवाणी में नहीं है, उसे बोलने का कभी भाव मत करना। भूमि के राग में भैया को भी नहीं छोड़ा, परन्तु भूमि कह रही है कि तुम अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर लो, चाहे भवन खड़ा कर लो, चाहे दीवाल खड़ी कर दो, चाहे मेरे में गड्डा कर दो, परन्तु मैं सबको समीकरण करना जानती हूँ। समीकरण यानि बराबर कर लो। गड्डा तुम खोदो, लेकिन भूमि कहती है कि मैं वारिस के पानी में मिट्टी बहा कर लाऊँगी और समीकरण कर लूँगी। भूमि के गड्ढों को वारिस भर देती है, परन्तु हे मुमुक्षु! तुम्हारे में जो कषाय और द्वेष के गड्ढे बन गये हैं, उनको समीकरण करने का उपाय साम्यभाव मात्र है। समीकरण नहीं करोगे तो पेपरों में छपता रहता है कि सड़कों पर गड्ढे हो गये हैं, दुर्घटनाएँ प्रतिदिन हो रही हैं, क्यों? उन गड्ढों के कारण। **जब मार्ग में गड्ढे हो जायें, तो दुर्घटनायें घटना प्रारम्भ हो जाती हैं। जिसके परिणामों में कषाय के गड्ढे हो जायें,**

तो दुर्गतियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं। इसलिये समीकरण करो। ये कहाँ से बोल रहा हूँ? 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' ग्रन्थ से बोल रहा हूँ। यह जैन दर्शन में बहुत बड़ा न्याय का ग्रन्थ है। जितने बालक डाक्टर इंजीनियरिंग आदि तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोग हैं, इन सबको न्यायशास्त्र पढ़ना चाहिये। दादा जी। पैसे कमाने की उम्र चली गई, पूरा कमा चुका तू। अब स्वाध्याय करो। राज समाज महाअघकारण, बैर बढ़ावनहारा।' अपने शत्रु बनाना हो तो राज और समाज में चले जाओ, अपने आप तुम्हें शत्रु मिल जायेंगे। ज्ञानियो! राजनीति से लो विराम और स्वाध्याय करो अविराम। यदि तुम जीवन में बिगड़ भी गये होगे, तो विश्वास रखना, अन्तिम श्वास का जब क्षण आयेगा तो वह स्वाध्याय तुझे वहाँ कहेगा कि जीवन भर तो उल्टे काम किये हैं, अब सम्हल जाओ। यदि **ये जीव जीवनभर अशुभ भी करता रहा और मरण के समय सुधर गया, तो उसकी नियम से सुगति होगी। यदि जीवनभर धर्म किया, लेकिन अन्तिम समय बिगड़ गया, तो नियम से दुर्गति होगी।** आप तो कोई नियम मत पालो, केवल स्वाध्याय करो। मेरा विश्वास है कि जो स्वाध्याय करेगा, वह नियम न पाले, ये हो नहीं सकता। जब कक्ष में एकान्त में बैठेगा, वहाँ तू होगा और शास्त्र होगा, और-कोई नहीं होगा, तो आँखों की बातें सीधे आत्मा में प्रवेश कर जायेंगी। पण्डित जी बनना सरल है, लेकिन ज्ञानी बनना कठिन है। यदि ज्ञानी बनना है तो एकान्त में जिनवाणी खोल कर बैठो, पढ़ो।

आचार्य कुन्दकुन्द जैसे महान् योगी हमें श्रुत परोसकर चले गये, लेकिन हम खा भी नहीं पा रहे। स्वाध्याय करो। यदि जिनशासन को, नमोऽस्तु शासन को आगे ले जाना चाहते हो तो स्वाध्याय करो। कुछ भी समझ में न आये तब भी पढ़ो। इतना समझ में आना चाहिये कि समझ में नहीं आ रहा। इतना समझ में आ जाय कि समझ में नहीं आ रहा है, तो कम से कम अहंकार तो चूर-चूर होगा। जो अहंकार में बैठा था कि मैं बहुत ज्ञानी हूँ, वह कहाँ गया तेरा ज्ञान? मित्र! जिनको ज्ञान का अहंकार हो, उनको न्याय-शास्त्र दिखा देना चाहिये। सबसे कठिन भाषा होती है न्यायशास्त्र की। जिनको केवली पर विश्वास न हो, उनको

'धवला' की 'षट्खण्डागम' टीका दिखा देना चाहिये कि देखो, तुम्हारी बुद्धि क्या है? 8-8 प्रकार से वर्गित, संवर्गित, गुणनफल, गुणराशि, लघुत्तम, महत्तम आदि सभी प्रकार के गणित षट्खण्डागम के अन्दर हैं। चाहे रेखागणित हो, चाहे अंकगणित हो, सारी विद्यायें हमारे आगम में हैं और सबसे पहले जीवों की व्याख्या करने वाला जैनदर्शन है। उसके पहले कोई जीवों को जानता नहीं था। गणितसार नाम का अपने पास एक ग्रन्थ है, आचार्य महावीराचार्य स्वामी का। 'सिरि भूवलय' नाम का एक ग्रन्थ इन्दौर में अनुपम जी के पास है। यह दिगम्बराचार्य का ऐसा महान् गंथ है जिसमें वेदों की ऋचायें, कुरान, महाभारत, गीता, जिनागम जो कुछ पढ़ना चाहो उसके अन्दर सबकुछ है। तीर्थंकर भगवान् जो बोलते थे, वह संसार के प्राणिमात्र को अपनी भाषा में समझ में आता था। इस बात को सिद्ध करने वाला कोई है तो 'भूवलय'। भारत सरकार के पास वह ग्रन्थ सुरक्षित रहा। देशभूषण महाराज ने उसको निकलवा कर उस पर काम किया है। मैं नाम इसलिये लेता रहता हूँ जिससे समाज को मालूम तो रहे कि हमारे पास क्या-क्या साहित्य सम्पत्ति है।

दर्शन की रक्षा दो से ही सम्भव है, साहित्य और पुरातत्त्व। जिस दर्शन में साहित्य और पुरातत्त्व सुरक्षित नहीं है, उस दर्शन की कोई पहचान नहीं होती। तू किले बाहर कितने ही मकान बना लेना, लेकिन जब भी तेरी पहचान होगी तो यही कहेगा कि घर जाना है। घर मतलब पुराना घर। आगरा में सबसे पुराना मन्दिर ताजगंज है। मित्रो! सभी मन्दिरों की वन्दना करना, पर ताजगंज पर विशेष ध्यान रखना। तुम्हारी पहचान है कि 300-400 वर्ष पुरानी जैनसमाज आगरा में है, तो आपको ताजगंज की ही प्रशस्ति देखनी पड़ेगी। ज्ञानियो! पुराने मन्दिरों को सुरक्षित रखना, एक भी दीवाल तोड़ना मत। नये कोटि-कोटि बना लेना, लेकिन प्राचीनता का नाश करके अपने इतिहास का नाश अपने हाथ से मत कर लेना। यह बहुत बड़ी भूल चल रही है। आज नहीं, तुम्हारा भविष्य रोयेगा कि हमारे बुजुर्ग कितनी मेहनत करके हमें देकर गये हैं और हम बड़े करने के चक्कर में अपना इतिहास अपने हाथ से नष्ट कर रहे हैं। भैया! नये में तो पूरा सहयोग

करना, लेकिन संस्कृति के नाश के लिये कभी अपनी आँख मत उठाना। जब भी विदिशा की बात आती है तो समन्तभद्र स्वामी गूँजते हैं। समन्तभद्र स्वामी काञ्चीपुरम् से चले थे तो पहला शास्त्रार्थ उन्होंने भेलसा में किया था। भेलसा यानि विदिशा। जिनसेन स्वामी ने 'पार्श्वाभ्युदय' ग्रन्थ में विदिशा का वर्णन किया है। समन्तभद्र स्वामी के समय में विदिशा का नाम भेलसा था। भेलसा में शास्त्रार्थ करके, वेतवा के तट से निकल करके, बनारस में जाकरके, शास्त्रार्थ किया। विदिशा में बड़ा मन्दिर है, जैसे किसी ने गजरथ बना कर खड़ा कर दिया हो। अब कहीं किसी के मन में आ जाये कि मुझे तो नया रूप देना है, तो तू लाख नये मन्दिर बना लेगा, लेकिन वैसा रूप देने की ताकत तेरे अन्दर नहीं है। संस्कृति का नाश अपने हाथ से करना यह धर्म के ऊपर बहुत बड़ा प्रहार है। किसी समय कोई था उसने प्रतिमा तोड़ी, आज हम ही ऐसे बन गये कि मन्दिर तोड़ देते हैं। समाज को सोचना पड़ेगा। इतनी जल्दी प्रभावित होकर बातों में आकर प्राचीनता का नाश करने मत बैठ जाना। भाषा की भावुकता में आकरके हम संस्कृति का नाश न करें, कि बड़ा हो जायेगा। बड़ा क्या हो जायेगा?

वे आनन्द तो गये जब झुक करके जाते थे। थूवोन जी में ऊपर से देखो तो छोटे-से मन्दिर दिखते हैं, लेकिन जैसे ही नीचे उतरो, विशाल प्रतिमायें हैं। मालूम, हमारे बुजुर्ग ऐसे क्यों बनाकर गये? अहंकारी लोग बड़े-बड़े भवनों में रहते थे। जब वे खड़े होकर देखें, तो उनकी टोपियाँ गिर जायें, कि हमसे बड़ा भी कोई है, झुक कर जाओ। तुम भगवान् के चरणों में ही नहीं झुक पा रहे हो तो अब झुकने कहाँ जाओगे? भैया! नये खूब बनाओ, लेकिन प्राचीन की रक्षा करो। अन्यथा भावुकता में आकरके प्राचीनता को नष्ट कर दिया, तो कल तुम्हारा इतिहास 2012 से गिना जायेगा, क्योंकि आज की ईंट की भी पहचान होती है, पुरातत्त्व ईंट को भी खोज लेता है, पत्थर को भी खोज लेता है कि यह कितने वर्ष पुराना है। अन्य दर्शन वाले दूसरे के प्राचीन भवनों पर अधिकार करके अपनी प्राचीनता सिद्ध कर रहे हैं, तुम ऐसे दिगम्बर हो कि भावुकता में आ करके, किसी ने बोल दिया और तुम अपने हाथ से नाश कर रहे हो। मत करो। पर्याय जाते

देर नहीं लगेगी। इतिहास को नाश करके मत जाओ। नया बना सकते हो। आज भले ही हम कैलाश पर नहीं जा पा रहे, पर इतना कहने की ताकत तो रखते हैं कि भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर बहत्तर जिनमन्दिर स्थापित किये हैं। यदि कोई ज्ञानी पहुँच जाता और कहता कि सोने के मन्दिरों से क्या लाभ? इनको तोड़ कर सोना बेच लो और नये मन्दिर बना लो तो? नया मन्दिर तो तू बना लेगा, लेकिन भरत का इतिहास नष्ट हो जायेगा। विदिशा में जब किले अन्दर के मन्दिर की बात आती है तो उनका मन मुस्कराता है कि मेरे बुजुर्ग कितने पुण्यात्मा जीव होंगे।

हर समाज का, हर घर का एक मन्दिर होना चाहिये। कदाचित् कोई धर्म से दूर भी हो जाये, तब भी मन्दिर का राग उसे मन्दिर ले जायेगा। पर्याय के जाने के पहले एक मन्दिर बनाकर जाना। अपनी पर्याय तो चली जायेगी, लेकिन आगे संस्कृति दिखाई दे जो 'जिनशासन' का गौरव बढ़ाये। नाम एक ऐसी वस्तु होती है जो कभी-कभी धर्म में भी लगा देता है। कभी प्रशस्ति पढ़ी 'अरे! ये हमारे वंश का मन्दिर है और मैं धर्म से दूर हो रहा हूँ। इसलिये सभी को मन्दिर बनाना चाहिये। तुम यह मत सोचना कि पूजा कौन करेगा? तू क्या पूजा करेगा? भगवान् का इतना पुण्य होता है कि नरक के नारकी को भी एक क्षण के लिये शान्ति मिलती है। ध्यान रखो, **पूज्य को पूजा की आवश्यकता नहीं है। किसी की पूजा से कोई पूज्य नहीं होता है। जो पूज्य होता है, उसकी पूजा हो ही जाती है।** भारत की भूमि पर इतनी पिच्छियाँ विचरण कर रही हैं, कहीं कोई जीव सोचे कि इनको आहार कौन देगा? विश्वास रखना, आहार की बेला में प्रत्येक साधु को आहार मिल ही जाता है। चाहे उत्कृष्ट साधना वाले हों, चाहे सामान्य साधना वाले हों, आहार सबको मिलता है। पुनः पुनः सुनो, दुनियाँ तुम्हें छोड़कर भाग जाये, पर तुम दो को मत छोड़ना। भाग्य और भगवान्, दो पर भरोसा करो। भाग्य है, तो सबकुछ मिलेगा और भगवान् पर श्रद्धा है, तो भाग्य अपने आप बनेगा।

आचार्यमहाराज कह रहे हैं कि समान वय वाले तेरे मित्रगण को भी मृत्यु ने वश कर लिया, वे मृत्यु के गाल में चले गये। मृत्यु तो सभी को समान वय में देख रही है, चाहे माँ बिलखे, चाहे बाप तड़पे, चाहे भैया रोये, पिता फबके, मृत्यु कहती है कि मुझे किसी पर करुणा आती नहीं है। एक बार कसाई को करुणा आ जाये, लेकिन मृत्यु को करुणा नहीं आती।

'यमस्य करुणा नास्ति'

उसने यह नहीं देखा कि इस आज ही माँग भरकर आयी बिटिया का क्या होगा? आज ही बच्चे ने जन्म लिया, उसकी माँ को ले जा रहा, उस बच्चे का क्या होगा? उसने यह नहीं देखा कि पिता को उठा लूँगा तो बच्चों का क्या होगा?

'यमस्य करुणा नास्ति' वह यह नहीं देखता कि किसके घर का क्या होगा। यमराज को कोई करुणा नहीं है। अपन लोग रो लेते हैं, सोच लेते हैं, कि बताओ अब इस घर का क्या होगा? पर यमराज को इतना सोच कहाँ आता है। यमराज को सोच नहीं आता तो तुम ही सोच लेते उसके आने के पहले। इतना काम कर लो कि वह आये उसके पहले ही तैयार रहें।

वे भगवन्त धन्य हैं, वे योगीश्वर धन्य हैं, जिन्होंने यमराज को भी चुनौती दे दी। अब मैं ऐसा काम करता हूँ कि तुम मेरे पास कभी आ ही नहीं पाओगे। जन्म-मरण का नाश ही कर दिया, सिद्ध परमात्मा हो गये। अब यमराज क्या कर पायेगा? अब वही हाथ जोड़े खड़ा है कि अब मैं आपका कुछ नहीं कर सकता हूँ, आपने तो मुझे ही नीचे पटक दिया।

हे जीव! ऐसा होने पर भी जब मृत्यु तेरे सामने सभी को उठा-उठा कर ले जा रही है, तू देख भी रहा है, फिर भी तू अपनी आत्मा का हित क्यों नहीं कर रहा है? श्मशान में तू देखकर आ रहा है और फिर उसी काम में लग जाता है। विवेक क्यों नहीं जग रहा है? क्या करें? हे आत्मन्! तू अपना हित क्यों नहीं कर रहा है? देखो जीव की अज्ञान दशा, श्मसान में संस्कार करके आया, घर में स्नान किया और सेन्ट की शीशी लेकर शरीर में डाल रहा है। जो राग कर रहा था, उसका तू राख करके आया है और तू उसी में राग कर रहा है।

यह शरीर सर्वथा अपवित्र है, नश्वर है, व्याधियों से पीड़ित होने पर भी ऐसा कौन-सा विद्वान् होगा जो इसमें राग करेगा?

जिसने शास्त्र का समागम प्राप्त कर लिया हो, जिनवाणी को समझ लिया हो, उसके बाद भी ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो शरीर में राग करेगा? इस शरीर के राग को छोड़ दो। जितने नष्ट हुये और होंगे, सब शरीर के राग में हो रहे हैं। स्वयं के शरीर का राग किया और पर के शरीर में राग करके ब्रह्मधर्म का नाश किया। वही सड़ा-गला माँस-मज्जा का लोथड़ा, उसके ऊपर की चमक को देख कर तूने संयम का नाश कर लिया। सजा लो। यह शरीर नहीं सजाते, जाल फैलाते हो दूसरे को पकड़ने के लिये। जितने लोग शृंगार करते हैं, क्रीम-पाउडर लगाते हैं, वे सब पापी लोग हैं। दूसरे की आँखों को फँसाने के लिये शरीर को सजा रहे हैं। तू किसको फँसायेगा? स्वयं ही फँस जायेगा। यह जाल फैलाना बन्द कर दो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"शरीर नश्वर है"

चिरं सुपोषितः कायो भोजनाच्छादनादिभिः।
विकृतिं याति सोऽप्यन्ते कास्था बाह्येषु वस्तुषु॥ 154 सा. स.॥

अन्वयार्थ—भोजनाच्छादनादिभिः = भोजन-वस्त्रादि से **चिरं सुपोषितः** = चिरकाल तक भले प्रकार पालन की हुई **कायः सः अपि** = ऐसी यह काय भी **अन्ते** = अन्त में या मरण के समय **विकृतिं याति** = विकार को प्राप्त हो जाती है, बिगड़ जाती है, अपने वश नहीं रहती है। **बाह्येषु वस्तुषु** = बाहरी पदार्थों में तब **का** = क्या **आस्था** = विश्वास किया जावे?

भावार्थ—भोजन वस्त्रादि के द्वारा चिरकाल से भली प्रकार पालन-पोषण की हुई यह काया (शरीर) भी मरण के समय विकार को प्राप्त हो जाती है, नष्ट हो जाती है। तो अन्य बाह्य पदार्थों में विश्वास कैसे किया जावे?

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी वर्तमान शासननायक अन्तिम तीर्थंकर भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणीजगत्-कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' में देह की अनित्यता और अपवित्रता का व्याख्यान करते हुये कहते हैं, अहो मुमुक्षु! अनित्यत्व में नित्यत्व के खोज करने की आकांक्षा बाँझ के बेटे को खरगोश के सींग से दुग्ध निकाल कर पिलाने की भावना है। जो वस्तु त्रैकालिक अनित्य ही है, उसे आप नित्य कैसे कर सकते हो? अनित्य पर अनित्यत्व दृष्टि नहीं जा रही, यही कारण है प्रपञ्च में लीन होने का। अनित्यत्व पर नित्यत्व की खोज चल रही है, यही जगत्-कार्यों में लीन होने की वृत्ति का मुख्य स्रोत है। जीव को अनित्य में अनित्य नहीं दिख रहा है, अनित्य में नित्य की खोज कर रहा है। जो मेरी आँखों के सामने है, वह विलीन होगा और जो शाश्वत है, वह आँखों के सामने होता

नहीं। जो अशाश्वत् है, वह नेत्रों के सामने है। पर्याय दिख रही है, पर्यायी अदृश्य है। जो अदृश्य है, वह शाश्वत् है और जो दृश्य है वह अशाश्वत् है। देखनेवाले अशाश्वत् को ही देख रहे हैं, शाश्वत् को लक्ष्य ही नहीं बना रहे हैं। किस पर राग, किस पर द्वेष? द्वेष भी पर्याय पर है, राग भी पर्याय पर है। जिस पर्याय में बैठ तू पर्यायी को नहीं निहार पा रहा है, वही पर्यायी परमात्मा बन कर आ जायेगा, तो तुझे नमोस्तु करना पड़ जायेगा। पर्याय को देखकर द्वेष कर सकता है, पर्यायी तो भगवान्-आत्मा है। पर्याय को देख कर संक्लेशता में जी रहा है एक जीव। पर की पर्याय का क्या दोष है? तेरी परिणति का दोष है। उसकी पर्याय तो आपके लिये भी थी और उसके लिये भी थी। एक माँ कह कर पुकार रहा है, दूसरा पत्नि कह कर पुकार रहा है। दोनों के लिये पर्याय एक थी, लेकिन दोनों की परिणति भिन्न थी। एक माँ पुकार करके पवित्र भाव को उत्पन्न कर रहा है, दूसरा पत्नि कह करके अपवित्र भाव को प्राप्त हो रहा है। इसमें पर की पर्याय का क्या दोष है? तेरी परिणति में दोष है। देखने की दृष्टि पवित्र है तो निगोदिया में भी भगवान् दिखाई देता है। देखने की दृष्टि पवित्र है तो हर जीव में ज्ञानशक्ति दिखाई देती है।

यदि ज्ञान-वैराग्य शक्ति नहीं है, तो सम्यग्दृष्टि ही नहीं है, ऐसा अमृतचन्द्र स्वामी बोल रहे हैं। सम्यग्दृष्टि जीव के नियम से ज्ञान और वैराग्य शक्ति होती है। जो ज्ञान-वैराग्य शक्ति से देखता है, उस जीव की परिणति पवित्र होती है। जैसे रसवन्ती (जलेबी) में से रस टपक रहा है, उसके अन्दर से सीरा झर रहा है, क्योंकि उसको चासनी में डुबो दिया गया था। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव के चेहरे पर ज्ञान-वैराग्य शक्ति टपकती है। मिठाइयाँ चींटी को कभी श्रीफल भेंट करने नहीं जाती हैं कि आओ, आप पधारो, स्वाद चखो। मिठाई में मीठापन होता है तो चीटियाँ स्वयमेव चली आती हैं। ऐसे-ही ज्ञानियो! जिसके अन्तस् में ज्ञान-वैराग्य शक्ति भरी होती है, उस शक्ति को निहारने के लिये सारा जगत् निहारता है। हे वर्द्धमान! आप वर्तमान में दिखाई नहीं दे रहे हो, फिर भी आप मेरे से अदृश्यमान नहीं हुये हो, क्योंकि अदृश्य वे हो पाते हैं जो ज्ञान-वैराग्य

से शून्य होते हैं, वे दृश्यमान ही होते हैं जो ज्ञान-वैराग्य के फल को प्राप्त कर चुके होते हैं। **सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञान-वैराग्य शक्ति से युक्त होता है। परमात्मा ज्ञान-वैराग्य के फल को प्राप्त हो चुका होता है। भगवान् को ज्ञान-वैराग्य नहीं होता। ज्ञान-वैराग्य का फल क्षायिक ज्ञान में बदल चुका है और निर्वाण में परिवर्तित हो चुका है।** मित्र! जिसके अन्तस् में ज्ञान-वैराग्य शक्ति हिलोरें ले रही होगी, उसको चींटी में भी परमात्मा दिखाई दे रहा होगा। बताऊँ कैसे? जब तू परीक्षाकाल में होता है और एक कक्षा में पचास परीक्षार्थी बैठे हुये हैं परीक्षा देने के लिये, भैया! सत्य बताना, विभिन्न जातियों के बच्चे होंगे, विभिन्न धर्मों को मानने वाले बच्चे होंगे, विभिन्न नगरों के बच्चे होंगे, लेकिन जब परीक्षा हाल में होते हैं तब परीक्षार्थी मात्र होते हैं। एक कक्षा में जगत् की विद्या देने वाला कोई लौकिक गुरु हो, उसके विद्यालय में जो छात्र प्रवेश कर लेते हैं, तो फिर बच्चों की जाति समाप्त हो जाती है, बच्चों के कुल समाप्त हो जाते हैं, चाहे वह किसी भी कुल का हो। जब छात्र अच्छे नम्बर लेकर आता है, तो शिक्षक को भी आनन्द आता है। उसको उच्च कुल और नीच कुल का भाव नहीं आता है। यही भाव आता है कि मेरा विद्यार्थी अच्छे नम्बरों से पास हुआ है। संसार के विद्यार्थियों को निहार करके एकत्वदृष्टि जाती है, जब कक्षा में प्रवेश कर जाता है। ऐसे-ही जब कोई वीतराग धर्म में प्रवेश कर जाये और फिर भी विकल्प आयें, तो अभी आपमें गुरुता आयी नहीं है। जिस दिन गुरुता आ जायेगी, जगत् के सारे भेद समाप्त हो जायेंगे। अभेददृष्टि नहीं होगी तो मुनिसंघ नहीं चलता है। जब विद्यार्थी परीक्षा हाल में होता है, उस काल में उस छात्र को अपना वंश नहीं दिख रहा, आप सभी ने परीक्षा दी होगी। परीक्षा के समय आप क्या यह देख रहे थे कि मैं कौन हूँ? या क्या यह देख रहे थे कि इस प्रश्न का उत्तर क्या है? परीक्षा हाल में प्रश्न का उत्तर खोजा जाता है। ऐसे ही यह जीव इस भवन में प्रवेश करता है, धर्म के स्थान में पहुँचता है, उस समयकाल में यह खोज नहीं होती है कि मेरा वंश कौन है, मेरी जाति कौन है, मेरा पंथ कौन है? जैसे विद्यार्थी को प्रश्न का उत्तर दिखाई दे रहा है। आँखों से देखने वाले को

विद्यार्थी के हाथ में कलम और कॉपी दिखती है, पर विद्यार्थी के लिये न कलम दिख रही है, न कॉपी दिख रही है। उसको पाठ्यपुस्तक, जिसमें उत्तर लिखा है, वह दिखाई दे रही है। जैसे विद्यार्थी को पाठ्यपुस्तक दिखती है, वैसे ही सम्यग्दृष्टि जीव को कोई पंथ/आम्नाय नहीं दिखती है, उसको तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ज्ञान-वैराग्य का फल निर्वाण मात्र दिखाई देता है।

तुम्हारी आँख कहाँ होना चाहिये? अपने लक्ष्य पर होना चाहिये। लक्ष्य से अक्ष हट गई तो बेलक्ष्य हो जायेगा। अक्ष पर लक्ष्य होना चाहिये। लक्ष्य पर अक्ष होनी चाहिये। जब लक्ष्य पर अक्ष हो, तब अक्ष का अर्थ 'आँख' करना। जब अक्ष पर लक्ष्य हो तब अक्ष का अर्थ 'आत्मा' करना। जगत् के सारे विषयों से विराम ले लेना। जिसे अनन्त काल से सुना है, उसे नहीं सुनना। जिसे नहीं सुन सका सुननेवाला, उसे सुनना। वही विकार, वही कषाय, उसे क्या सुनना? नहीं सुनना। सुनना वह है, जो एकत्व-विभक्त चिद्रूप आत्मा का स्वभाव है। किसी की मत सुनो। जो सुन रहा है, उसी की सुनो। सुना कुछ? सबकी सुनना बन्द कर दो। जो सुन रहा था, उस पर भी तो करुणा करो। एक बार उसी की सुन लो। जिनदीक्षा, दैगम्बरी दीक्षा का लक्ष्य यही होता है। जिसने जगत् को सुना है, उसकी सुनने के लिये ये दीक्षा धारण की थी। मुनि दीक्षा का उद्देश्य मात्र इतना है कि जिसने अनादिकाल से जगत् को सुना है, उस सुननेवाले की सुनने के लिये मुनि बनना पड़ता है। जीव ने अनादिकाल से पर को सुना है। किसने सुना? आत्मा ने। उस आत्मा को ही सुन लो। जिसने सुना है, उसकी तुम कभी नहीं सुन रहे हो। व्यभिचारी दृष्टि का त्याग कर दो। घर में तेरी सुन्दरी नारी बैठी है, सोलह शृंगार से युक्त है, हे अभागे! उसे छोड़ करके तू परनारी को देख रहा है, तुझ पापी की क्या दुर्दशा होगी? अपनी प्राणवल्लभा को क्यों बिलखा रहा है? हे मुमुक्षु! तू 'पर' पर आँख डाल रहा है, तेरे भीतर जो आत्मरमणी बैठी है, उसे क्यों तड़पा रहा है? जिनकी प्रीति अनित्य है, जिनकी पर्याय अनित्य है, उन रमणियों को देख रहा है और जो शाश्वत् त्रैकालिक है, जो तुझे कभी छोड़नेवाली नहीं है, उस आत्म-रमणी को तू क्यों बिलखा रहा है?

नरक में भी साथ देनेवाली आत्मरमणी है, निगोद में भी साथ देगी आत्मरमणी।

जगत् की नाशवन्त नारियों के लिये तू तिलक चूड़ियाँ खरीदने गया था। आत्मरमणी के लिये चारित्र का तिलक ले लेता, भेदविज्ञान की चूड़ियाँ ले लेता, दस धर्म की चेन ले लेता, तो तुझे कितना आनन्द आता। जिसने तुझे पर्याय-पर्याय में साथ दिया है, जो तुझे कभी नहीं छोड़ेगी, उसके लिये कुछ भी नहीं और जो तुझे धक्का देकर भगा देगी, उसके लिये सबकुछ करने को तैयार है। धिक्कार हो तेरी परिणति को। बुरा तो नहीं लग रहा? इस जीव को बुरा भी नहीं लगता।

भैया! अशाश्वत् में शाश्वत् को क्यों खोज रहे हो? पूरा ज्ञान परज्ञेयों में लीन कर रहे हो। जिस समय तेरी आँख जैसी होगी, उस समय वैसा-ही ज्ञेय तेरे सामने झलकेगा। ज्ञान का कोई दोष नहीं है। जैसा चेहरा होगा, दर्पण में वैसा ही झलकेगा। तू चाहता है कि दर्पण तोड़ दूँ। तू रोता सा चेहरा बनाये है और कहता है कि अच्छा मुस्कराता चेहरा आना चाहिये। अब कैमरा वाला क्या करे बेचारा? ऐसे-ही ज्ञान का दोष नहीं है, ज्ञान तो स्वच्छ दर्पण के समान है। हे ज्ञानी! परिणति जैसी होगी, जगत् के ज्ञेय तेरे ज्ञान में वैसे-ही झलकेंगे। एक जीव को अरहन्त प्रतिमा में भगवान् दिखते हैं, दूसरा जीव कहता है कि नंगे की प्रतिमा है। एक जीव को प्रतिमा में अरहन्त देव दिखते हैं, दूसरे अभागे को पत्थर दिखता है। उसमें प्रतिमा का दोष है कि देखनेवाले का दोष है? मित्रो! प्रतिमा को मत घिसो आँख को साफ कर लो। यदि वो साफ नहीं है तो मोक्षमार्ग साफ नहीं है। तीर्थंकर वर्द्धमान भी आ जायें, वे हाथ पकड़ कर भी तुझे ले जाना चाहें, वो ले नहीं जा पायेंगे और वर्द्धमान कभी आयेंगे नहीं और तुम कभी जा पाओगे नहीं।

भगवान् ऋषभदेव का जन्म हुआ, सौधर्म सुमेरु पर्वत पर जिनेन्द्र का अभिषेक करने को ले गया और जिनदेव का अभिषेक होने के उपरान्त शची इन्द्राणी प्रभु के शरीर का मार्जन करने लगी। पूरे शरीर का पानी सुखा दिया, लेकिन गाल पर एक बूँद लगी दिख रही थी। उसको बार-बार पोंछ रही थी। वह खड़ा निहार रहा था। बोला, हे देवी! क्या कर रही हो? प्रभु पर तीव्र घर्षण क्यों? स्वामी!

समझ में नहीं आता, पूरे शरीर के पानी के बिन्दुओं को मैंने पोंछ लिया है, पर प्रभु के गाल की पानी की बूँद नहीं छूट रही है। हे देवी! सत्य है, नारी की बुद्धि है कहाँ? स्वामी! क्या कह रहे हो? अब जो है, सो है। अब पर्याय की प्रत्यासत्ति तो काम करेगी। तुझे पानी की बूँद दिख रही है, लेकिन तू भूल गई है कि ब्रह्माण्ड में किसी का सुहावना रूप होता है, जो दर्पण के समान चमकता है, वह तीर्थंकर जिनबालक का होता है। तेरे आभूषणों में जो मणि लगा हुआ है, उस मणि का प्रकाश प्रभु के गाल पर पड़ रहा है। यह पानी दिख रहा था, लेकिन बूँद नहीं है। पर इन्द्राणी को तो पानी दिख रहा था। ऐसे-ही जिस जीव की दृष्टि दोष ग्रहण की है, उसे पानी की बूँद दिखेगी और जिसकी तत्त्व को ग्रहण करने की दृष्टि है, उसको मणि दिखाई देगा। बस, प्रभु के गाल को मत घिसो, अपनी आँख को ठीक करो।

जिसकी आँख पवित्र है, उसे सारा विश्व पवित्र दिखता है। जिसकी आँख मलिन है, उसे सारा विश्व मलिन दिखाई देता है। पर सारा विश्व मलिन होता नहीं है। पुरुष में ठूँठ देखेगा तो क्या पुरुष ठूँठ हो जायेगा? ठूँठ तो ठूँठ होगा, पुरुष तो पुरुष होगा। दोष आँख का है। पर किसी व्यक्ति को भ्रम हो जाता है तो वह ठूँठ में पुरुष को देखता है और पुरुष में ठूँठ को देखता है। नहीं, भैया! आप नजदीक जाओ। जब तक दूरी होगी, तब तक तुम सत्य को जान नहीं पाओगे। भैया! कभी भ्रम खड़ा हो जाये तो थोड़ा नजदीक चले जाना और पास में जाओगे तो हो सकता है कि आँख साफ हो जाये। **जितने घर उजड़े हुये हैं, जितने विकल्प खड़े हुये हैं, ये अधिकांशतः भ्रम के कारण हुये हैं।** वकील साब! आपने तो बहुत सारी फाइलें पलटी होंगी, सत्य क्या निकला? भ्रम हो गया था। भ्रम का परिणाम क्या निकला? अंधों के अन्धे ही होते हैं। हे द्रोपती! आपने कुछ भी तो नहीं किया। ये तलवारें नहीं हिली, मुख में जिह्वा हिल गई 'अंधों के अंधे ही होते हैं।' जीभ हिलाने के पहले आँखों को साफ कर लेना। ज्ञानी! जीभ हिल गई तो सारे काम बिगड़ जायेंगे। आँखें साफ कर ली, फिर जीभ हिलेगी तो काम बन जायेगा। देखती आँखें हैं, सूचना देती आँखें हैं, काम

शेष इन्द्रियाँ करती हैं। दृष्टिपटल पर क्या आ रहा है? सबसे पहले दर्शन होता है, फिर उपयोग जाता है। उपयोग गया तो योग गया, योग गया तो सब काम गया। कोई भी व्यक्ति सीधे पाप नहीं करता है। पहले बुद्धि को भ्रमित करता है। यदि व्यक्ति की बुद्धि भ्रमित न हो पाये, तो पाप करने की क्षमता किसी में नहीं है। आप लोगों को आश्चर्य हो रहा है, स्व पत्नि को भी निहारने में लज्जा आती है यदि विकारों से अपनी बुद्धि भ्रष्ट नहीं करता है तो। जब विकारी भावों के चिन्तन से उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, फिर पाप करने जाता है। जीव पहले भ्रमित होता है। आगम क्या कहता है? आप लोगों से कहना है कि देखनेयोग्य वस्तु को ही ध्यान से देखो, शेष वस्तु को देखकर चले जाना। वस्तु का दर्शन मत करना। वस्तु को सामान्य देख लेना। दर्शन तो वीतरागी का ही करना पड़ता है, वित्तरागी का नहीं करना पड़ता।

देखो, जानो, जाने दो।' हर वस्तु का तुम दर्शन करने लग जाओगे तो फिर जगत् में जितने द्रव्य हैं उनका दर्शन हो जायेगा। दर्शन श्रद्धा से युक्त होता है और देखना आँख का विषय होता है। दर्शन श्रद्धा है, दृष्टि की निर्मलता है। जो आस्था से भरकर देखा जाता है, उसका नाम दर्शन होता है। जो देखा जाता है, उसका नाम प्रदर्शनी होता है। भगवान् के दर्शन कर लिये, अब किला देखने जाओगे। ये बालक कह रहे हैं, 'महाराज जी! दर्शन हो गये, अब थोड़ा देखने जाना है।' आप गहरी बात समझो। लोकभाषा सिद्धान्त का नाश नहीं करती है। सिद्धान्त का नाश तो बुद्धिपूर्वक करे, तभी होगा। मुख से जो भाषा निकलेगी, वह सैद्धान्तिक ही निकलेगी।

एक अज्ञानी जीव सुअर के शरीर से बाल निकाल रहा था। वह क्या कर रहा था? सुअर के बालों को खींचा जाता है हाथों से। एक साधु हाथों से बाल खींच रहे थे, पर तू कह रहा है कि केशलुंचन कर रहे हैं, जबकि उसके बाल खिंच रहे हैं। जो काम पराधीनता से हो रहे हैं, वे बाल खिंच रहे हैं और जो स्वाधीन होकर खींच रहे हैं, उनके केशलुंचन हो रहे हैं। अन्तर देखो। एक दिन भर भूखा रहा, दूसरे ने उपवास किया है। रागी दिनभर भूखा बैठा रहा और वैरागी

ने आज उपवास किया है। जो त्याग करके बैठा है, उसने उपवास किया है। जिसको खाने को नहीं मिला, खाना चाहता है, वह भूखा रहा है। अब बताओ, आप लोग क्या कर रहे हो? पेट दोनों का खाली है, पर एक भूखा है, दूसरा उपवास कर रहा है। एक ज्ञानी गये आहार करने को। पहली अंजुली में ही बाल आ गया, अन्तराय हो गया। अब कहते हैं कि वह नीरस गिना जायेगा कि नहीं गिना जायेगा? नहीं। क्यों? आप नीरस का नियम लेकर नहीं गये थे। लेने तो छः रस गये थे, लेकिन मिला नहीं, तो भाग्य की बात है। बेचारे का नीरस भी गया, उपवास भी गया, अन्तराय हो गया, सोच लो क्या करते हो? भोजन तो छोड़ दिया, परन्तु भावना कहाँ छोड़ी थी? उपवास तब होता, जब एक दिन पहले से बोल देता।

जगत् को देखा जाता है, दृष्टा के दर्शन किये जाते हैं। जो ज्ञाता-दृष्टा बन कर रहता है, उसके दर्शन किये जाते हैं। भगवान् के दर्शन करने जा रहे हैं, किले को देखने जा रहे हैं। भैया! एक बात बताओ, तुझे कोई देखने आया था कि नहीं? बेटा! सम्हलकर रहना, एक दिन दिख जायेगा। जो दिख जाते हैं, वे दिखते ही रह जाते हैं। मेले में बैल आदि को भी किसान सजा कर ले जाते हैं। इस ज्ञानी को भी एक दिन नहला-धुला करके सजा-धजा करके दिखाने को खड़ा कर दिया था, सो ऐसा दिखा, ऐसा दिखा कि आज तक तमासा देख रहा है। अज्ञानियों के दिखऊआ आते हैं। **चारित्रहीनों को लोग देखने आते हैं और संयमियों के दर्शन करने आते हैं।** इतना अन्तर होता है। पिता कहता है, महाराज! आज मेहमान आये हैं बेटे को देखने। बेटा दिख गये, अब तुम्हें दुनियाँ देखनेवाली नहीं है और जिस दिन दिखऊआ आये थे, उस समय दिखते ना, देखने बैठ जाते, तो दुनियाँ तुम्हारे दर्शन करती। वर्द्धमान से पूछो और जम्बू कुमार से पूछो। वर्द्धमान ने कहा, माँ! आज वन्दनवार क्यों लगे हैं? बेटा! पिता से पूछो। पिता से पूछा, तो कहते हैं कि माँ से पूछो। दोनों इकट्ठे हुये, फिर पूछा, बताओ, बात क्या है, रहस्य क्या है? बोले, बेटा! आज तुम्हारे दिखऊआ आ रहे हैं। बोले, चलो माँ! मैं देखने बैठता हूँ। यदि दिखऊआ ने मुझे देख लिया, तो मैं सारे विश्व

का चराचर का दृष्टा नहीं बन सकूँगा। जो दिखऊओं से नहीं दिख पाता है, वह सारे विश्व का चराचर दृष्टा हो जाता है। वही सर्वज्ञ बनता है। जो न जगत् को देखता है, न जगत् में दिखता है, वह एक दिन जगत् को देखने वाला हो ही जाता है। जितने युवा बैठे हों, विचार कर लेना। अन्दर की बात समझ में आ रही है क्या? दिखोगे क्या? अब बेचारों के चेहरे देखनेलायक हैं। यदि तुझे जगत् में अपने पिता जैसे भटकना हो तो दिखने बैठ जाना। जो निज को देखने बैठ जायेगा, दुनियाँ उसके दर्शन करना प्रारम्भ कर देगी।

"सम्यग्दृष्टिः नियतं भवति ज्ञान-वैराग्य शक्तिः।"

सम्यग्दृष्टि जीव के नियम से ज्ञान-वैराग्य शक्ति होती है। अपनी ज्ञान-वैराग्य शक्ति से निहार रहा है। **अनित्य में अनित्य को, नित्य में नित्य को जो देखता है, वही ज्ञानी है। जो अनित्य में नित्य को देखे, उसका नाम अज्ञानी है। पर्याय अनित्य है, द्रव्य नित्य है।** जिसका नाश निश्चित है, उसे क्या देखने का? आचार्य महाराज कह रहे हैं, हे जीव! अहो आश्चर्य! टिकिट खरीद करके श्मशान को देखने जाते हैं, जबकि सत्य यह है कि एक दिन पूरा देख लेना, जिस दिन तू भी वहीं होगा। सुन्दरता देखने जा रहा है, सुन्दर है कौन? असुन्दर की सुन्दरता कहाँ? यदि विश्व में कोई सुन्दर है, तो एकत्व-विभक्त भगवान्-आत्मा है। वह ही सुन्दर है, जगत् में बाकी सब असुन्दर है। जो सुन्दर था, जो सुन्दर है, जो सुन्दर रहेगा, उसके बारे में कुछ भी सुनना पसन्द नहीं कर रहा है आज का जीव। 'आत्मा' कह दो तो कहता है कि आ गये कोई सोनगढ़ी, निश्चय वाले। यदि आत्मा को ही भूल गये, तो व्यवहार किसके लिये कर रहे हो?

माँ! तूने पाँच किलो आटे की रोटी बनाकर रख दीं और डण्डा लेकर बैठ गई कि कोई खा न जाये। न स्वयं खा रही है, न किसी को खाने दे रही है, तो सत्य बताओ, तुमने आँखें झुलसाई क्यों? और हाथ जलाये क्यों? ऐसे-ही हे जीवो! **तुमने रत्नत्रय धर्म धारण किया, जिनदीक्षा को धारण किया और चारित्र की सारी थाली सजा ली, पर तू स्वानुभूति का स्वाद नहीं ले पा रहा है, तो तू मुनि बना क्यों है?** दृष्टि तो परमार्थ की होना चाहिये, न कि

चील की होनी चाहिये। चील आकाश में उड़ता है और दृष्टि जमीन के माँस के टुकड़े पर है। धिक्कार हो। उड़ रहा है आकाश में, लेकिन दृष्टि जमीन पर पड़े माँस के टुकड़े पर है, धिक्कार हो। उड़ रहा है आकाश में, देख रहा है जमीन में। ऐसे ही कोई व्यक्ति धर्मात्मा के भेष में भी आ जाये, रोज पूजा-पाठ करे, दिगम्बर मुनि भी बन जाये और दूसरे के माँस के टुकड़े को देखे, तो उसे धिक्कार है। 'मूलाचार' जी में लिखा है, **जो व्यक्ति दूसरे के पीठ-पीछे किसी की बुराई करे, वह पृष्ठ-माँस-भोजी है, वह पीठ के माँस को खानेवाले चील के समान है। जो चकोर पक्षी होता है, वह जमीन पर बैठा होता है, पर जब भी देखता है, तो आकाश में चाँद को देखता है। नीचे हो करके ऊँचे देखना तो श्रेष्ठ है, लेकिन ऊँचे हो करके नीचे देखना श्रेष्ठ नहीं है।** ज्ञानियो! चकोरदृष्टि बनाना, चीलदृष्टि नहीं बनाना। ज्ञानी! धर्म क्षेत्र में आये हो तो व्यवहार-ही-व्यवहार में मत उलझे रहना, दृष्टि को परमार्थ में लगाना।

लोकव्यवहार में मैंने देखा, आपने भी देखा होगा, कोई के यहाँ कोई आमन्त्रण/निमन्त्रण होता है तो जो सज्जन लोग वहाँ भोजन करने जाते हैं, कुछ लोग ऐसे जाते हैं कि किया भोजन, पिया पानी, फेंका ग्लास, चलते बने। इनकी संख्या ज्यादा है। कुछ सज्जन लोग जाते हैं, वे कायदे से समय के पूर्व जायेंगे, उसके यहाँ कुछ काम करके सहयोग करते हैं और फिर धीरे-से कहते हैं, भाई! आप भी तो बैठो। जिसके यहाँ भोजन चल रहा है, उसका भाव रहता है कि कोई भूखा न रह जाये और सब काम अच्छे से निपट जाये, इसलिये वह भोजन नहीं कर रहा है; पर जो ज्ञानी/साधुपुरुष जाते हैं, वे अपने साथ थाली लगवा करके उसको बिठालते हैं कि भाई, तूने सबको तो बिठा दिया, स्वयं भी तो भोजन कर। हे मुमुक्षु! ये साधुपुरुष परघर में भोजन करने को जाते हैं तो वे भी कहते हैं कि तू भी तो भोजन कर। साधुमार्ग कह रहा है, हे साधु! तू दूसरों को ही परोसता रहेगा, कि स्वानुभूति की अनुभूति स्वयं भी लेगा? अपनी थाली का भोजन तू भी तो कर, कि तूने खिलाया किसको क्या है?

व्यवहार किञ्चित् भी होता नहीं, व्यवहार का उद्देश्य परमार्थ ही होता है। यदि

व्यवहार में परमार्थदृष्टि नहीं है, तो उसका नाम है व्यवहाराभास और परमार्थ की सिद्धि तू व्यवहारशून्य होकर करना चाहता है, तो निश्चयाभास। एक ओर निश्चयाभास, दूसरी ओर व्यवहाराभास। ज्ञानियो! दोनों से ऊपर तभी पहुँचोगे जब पर्याय की अनित्यता को समझ लोगे। पर्याय की अनित्यता नहीं समझी तो विश्वास रखना, आप साधु भी बन गये, तब भी पर्याय को ही सजाते मिलोगे, क्योंकि वैराग्य हुआ ही नहीं। या तो इस चमड़ी को सजाओगे या फिर ईंट चूने के भवन में जीवन बिताओगे। मित्रो! ध्रुवदृष्टि में जाओगे तो यों कहोगे, ज्ञानी! कोटि-कोटि भवन नष्ट हो चुके हैं। मैं जिसे बनावाऊँगा, वह भी नष्ट हो जायेगा। नष्ट होने वाले के राग में अविनश्वर को क्यों भूलो?

भैया! तेरा जन्म कहाँ हुआ था? ग्वालियर। अब कहाँ के हो? आगरा। देख लो, इस भव में ही एक गाँव का नहीं बचा बेचारा। ग्वालियर का था और कह रहा है कि आगरा का हूँ। ग्वालियर में मकान है कि नहीं? नहीं। कोई ने छीन लिया कि बेच दिया? किराये पर दे दिया। कम-से-कम तू किराये पर ही रहता तो और अच्छा रहता। पता तो रहता कि मैं किराये पर हूँ। पर सत्यता यह है कि पहले किराये पर रहता था तो भान था। अब भी तू किराये पर ही है, भूल मत कर लेना। घर में पैसा बढ़ जाये, बेटे के पास पैसा बढ़ जाये, तो सत्य बताना, सबसे पहले क्या करेगा? जिस घर में तू जन्मा होता है, पिता ने पसीना बहा-बहा करके वह बनाया होता है। सबसे पहले तू पिता का मकान मिटाता है कि मैं इसका नाम नहीं रहने दूँगा। मिटाओ सब। पर तू भूल चुका होता है कि जब तेरे पास पैसा बढ़ा, सो तूने पिता का मकान मिटाया, जब तेरा बेटा आयेगा, तो वह तेरा भी मकान मिटायेगा। किसका नाम शाश्वत बचा है? तुम भले ही पुराने मिटा लो, तुझे मिटानेवाले भी कोई खड़े हो जायेंगे। ज्ञानियो! मत मिटाओ किसी को, मिटा सको तो कषाय मिटाओ। हे साधको! भवन मत बनाओ, बना सको तो मोक्षमहल की तैयारियाँ करो। लोक में यही देखा गया है, बेटा यही कहेगा कि अब वो पुराना पड़ गया है। भीतर की बात नहीं कहेगा। मकान तो पुराना पड़ गया है, पर मेरा नाम नया होना चाहिये, यह नहीं कहता। मकान पुराना अवश्य

हो गया है, पर नाम पुराना नहीं हुआ है। नया नाम चलाने के लिये पुराना मकान मिटाना ही पड़ता है। अहंकारियों ने सब मिटाकर रख दिया। ज्ञानी! पुराना मकान नहीं मिटाना, नया बनाना। पैसा बढ़ जाये तो पुराना मन्दिर मत तोड़ना, नया और-अच्छा बनाना। इतना बढ़िया बनाना कि पूरे देश से लोग 'दर्शन' करने आयें। ऐसा मन्दिर कभी मत बनाना जिसे लोग 'देखने' आयें। तुमने ज्यादा सुन्दर बेल-बूटे बना दिये तो लोग पिकनिक मनाने व देखने आयेंगे, तो सारी पवित्रता नष्ट हो जायेगी। ज्ञानियो! देखने न आयें, दर्शन करने आयें, ऐसा मन्दिर बनाना। जैनियों को दर्शनीय स्थल बनाना चाहिये। 'देखने' के स्थान तो जगत् में बहुत मिल जायेंगे, पर 'दर्शन' का स्थान प्रभु के द्वार मात्र पर मिलेगा। विशाल बिम्ब स्थापित करो, ऐसे मन्त्रों से मन्त्रित कराओ, प्रतिष्ठा कराओ कि गोमटेश बाहुबली जैसे सारा विश्व आकर बैठ जाये। लोग सब भूल गये, जिनके नाम पर भारत देश है, उन भरत भगवान् की कोई विशाल प्रतिमा नहीं है। पिता जी मध्य भारत (बड़वानी म.प्र.) में, छोटा भैया दक्षिण भारत (गोमटेश्वर) में, और बड़े भैया कहाँ हैं? एक भरत भी होना चाहिये, जिनके नाम पर भारत देश है। **चाहे वेद हो, चाहे पुराण हो, चाहे जैनशास्त्र हो, सभी में जब भी भारत का नाम आता है तो भरत चक्रवर्ती के द्वारा इस भारत का नाम भारत है। इसका सैद्धान्तिक नाम 'भरत क्षेत्र' है। शाश्वत् नाम भरत क्षेत्र है। वर्तमान में राम के भैया भरत के द्वारा इस देश का नाम भारत देश नहीं है।** तीन भरत हुये हैं। राम के भैया भरत, एक जड़ भरत (सांतानुपुत्र) हुये हैं, सबसे पुराने भरत यानि ऋषभदेव के बेटा भरत चक्रवर्ती। ज्ञानियो! भरत का भी राज्य नहीं बचा, तो किसका राज्य बचेगा?

वस्तुस्वभाव स्वतन्त्र है। कण-कण स्वतन्त्र है। आप राग कर पाओगे, द्वेष कर पाओगे, पर वस्तुव्यवस्था को भंग नहीं कर पाओगे।

राग सत्य को देखने देता नहीं और द्वेष सत्य के पास पहुँचने देता नहीं। राग में सत्य दिखाई नहीं देता और द्वेष सत्य को देखने नहीं देता। दर्पण में

पूड़ी फेर दो, फिर चेहरा देखना। दर्पण में स्निग्धता लग जाये तो चेहरा नहीं दिखता। उस पर राख मल दो, चेहरा दिखने लगता है। स्निग्धता में कुछ दिखाई नहीं देता है। राग-द्वेष दोनों हट जायेंगे तो सत्य दिखने लगेगा।

आप जगत् के अन्य द्रव्यों के बारे में विकल्प करना तो छोड़ ही दो। तुमने स्वयं चिरकाल तक शरीर का पोषण किया है, स्वयं इसकी रक्षा की है। भोजन के द्वारा, वस्त्रों के द्वारा जिसका पालन-पोषण किया है, ऐसा शरीर भी जब नष्ट हो जाता है, विकृत हो जाता है, तो फिर जगत् के जो बाह्य द्रव्य हैं, उन पर क्या विश्वास करना? वे शाश्वत् कैसे बच सकते हैं? जब तेरा शरीर तेरे द्वारा बार-बार संस्कारित करके रखा गया, वह ही तुझे छोड़ देगा, तो जो जगत् के बाहरी द्रव्य हैं, वे शाश्वत् कैसे हो सकते हैं? इसलिये अनित्य को अनित्य ही समझो, नित्य को नित्य ही समझो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

"स्नेह करना व्यर्थ है"

नायातो बन्धुभिः सार्द्धं न गतो बन्धुभिः समं।
वृथैव स्वजने स्नेहो नराणां मूढचेतसाम्॥ 155 सा. स.॥

अन्वयार्थ-बन्धुभिः सार्द्धं न आयातः = यह जीव अपने भाईबन्धुओं के साथ-साथ नहीं जन्मता है **न बन्धुभिः समंगतः** = न बन्धुओं के साथ-साथ मरता है। **मूढचेतसाम् नराणां** = मूढ़बुद्धि मानवों का **स्वजने स्नेहो** = अपने बन्धु एवं रिश्तेदारों में स्नेह **वृथाएव** = वृथा ही है

भावार्थ-हे आत्मन्! यह जीव अपने भाई बन्धुओं के साथ जन्म नहीं लेता है और न यह भाई बन्धुओं के साथ मरता है। अतः मूढ़बुद्धि मानवों का अपने बन्धु आदि में स्नेह करना व्यर्थ ही है।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। ज्ञानियो! हम सभी अन्तिम तीर्थंकर, वर्तमान शासननायक, भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजे हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' में अनित्यता की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। द्रव्य की पर्यायें नियम से नाशवन्त हैं। अविनाशी जो है, वह अचल है, अनुपम है, पर-उपमा से शून्य है। उस अनुपम पर जब दृष्टि जाती है तो जगत् की सारी उपमायें गौण हो जाती हैं। अनुपम पर दृष्टि नहीं है, तब तक उपमाओं में आनन्द है। ऐसा नहीं है कि आनन्द न हो। जिसको जो उपमा दे दी जाये, अस्सी साल का वृद्ध भी अट्ठाइस वर्ष के युवा की भाँति नाच उठता है। उपमाओं की ताकत तो देखो, **यदि आपको अपना परिवार, वंश, राष्ट्र, स्वस्थ रखना हो तो उसको प्रतिदिन नई-नई उपमायें देते जाओ, आप भी बीमार नहीं होंगे, अस्वस्थ पुरुष भी स्वस्थता महसूस करेगा। अधिकांशतः जो बीमार हो रहे हैं, उनको मुख का भोजन तो मुख में मिल रहा है, पर**

कान का भोजन, सम्मान-सूचक जो शब्दावली है, वह सुनने को नहीं मिलती है, इसलिये अधिकांश लोग विकारी हो जाते हैं। दुर्भाग्य से कोई सुनाने वाला भी मिला तो बेचारे के लिये अपशब्द का ही प्रयोग किया, निन्दनीय शब्द का ही प्रयोग किया। मित्रो! ध्यान रखना, किसी को तुम अच्छा न सुना सको तो कम-से-कम उनको बुरा मत सुनाना। यह आपकी बहुत बड़ी करुणा होगी। ये मनुष्य मान का पिण्ड है। मनुष्य में सर्वाधिक मानकषाय है। व्यक्ति को सम्मान मिलता रहे तो हर समय प्रसन्न रहेगा और प्रसन्न रहेगा तो उसके हार्मोन्स अच्छे रहेंगे। हार्मोन्स अच्छे रहेंगे तो रोग होगा ही क्यों? पर इसके अन्दर सबसे बड़ा रोग है तो निज की प्रशंसा सुनने का रोग है। कुछ लोगों की आदत में आ जाता है कि जब तक उसको भोजन में पूड़ियाँ न खिलाई जाये, तब तक वह अस्वस्थ ही रहता है। स्वस्थ भी हो जाये, तब भी देखता है कि मुझे पूड़ियाँ दी गई कि नहीं। आज देश में वैद्यों को मालूम है कि रोग सामान्य होता है, रोगी विशेष होता है। रोगी की मानसिकता है कि जब तक इंजेक्शन न लगे, बाटल न चढ़े, तब तक उपचार ही नहीं हुआ। गोमय भस्म दे दी तो ठीक न हो, लेकिन गोमय भस्म को पुड़िया में बाँध कर दे दिया तो स्वस्थ। यदि कोई कह दे कि गोबर की भस्म है, तो कौन खायेगा? उसके लिये अच्छे शब्दों का प्रयोग करो, यह गोमय भस्म है। फिर अच्छी पैकिंग के साथ दिया है। वैद्य को पैसे अधिक ले लेना चाहिये तो वह ठीक हो जायेगा। जीव की मानसिकता देखो। यदि मन स्वस्थ है, तो तन स्वस्थ होने में कोई विकल्प नहीं है। **आपको सर्वाधिक मन को स्वस्थ रखने की आवश्यकता है। तू अस्वस्थ हुआ तो शरीर मात्र का नाश होगा, लेकिन यदि मन अस्वस्थ हो गया तो भव का विनाश होगा। यदि कालिया नाग ने डस लिया तो शरीर मात्र का नाश होगा। खोटे परिणामों ने डस लिया तो तेरे धर्म का नाश होगा।** पर्याय तो पुनः मिल सकती है, नवीन शरीर मिल जायेगा, परन्तु धर्म के परिणाम मिलें, कोई नियत नहीं है। ज्ञानियो! जब तक जीवन जी रहे हो, जिस प्रकार शरीर को सुरक्षित रखने के

लिये हर प्रकार से आप अनुकूलता चाहते हो, उससे अधिक परिणामों को स्वस्थ रखने का विचार करो। आज आदमी शरीर के अनुकूल चलना चाहता है कि मेरे शरीर में किसी प्रकार की बाधा न हो। शरीर के राग में चित्त प्रतिकूल हो रहा है। शरीर की अनुकूलता के राग में चारित्र प्रतिकूल हो रहा है। अशुद्ध स्थान पर भोजन नहीं मिले तो रह लेना, एक दिन भोजन न मिले तो रह जाना, परन्तु भूख की पीड़ा के राग में, अभक्ष्य का सेवन मत कर लेना। भूखे रह लिया, इस बात को तू सहन कर लेगा, लेकिन अभक्ष्य खाकर आ गया तो जीवन में यह नहीं कह पायेगा कि मैंने जीवन में कभी अभक्ष्य नहीं खाया।

प्राण श्रेष्ठ नहीं है, प्रण श्रेष्ठ है। किसी को औषधि भी देना तो इतना ध्यान रखना कि दूसरे के प्राणों मात्र की चिन्ता मत करना, साथ में अपने संयम की भी चिन्ता करना। कल उसकी अन्तिम श्वास निकलनी हो तो आज निकल जाये, पर इतना करना कि मेरी दवाई उसको फलित होती है जो दवाई खाने के पहले नौ बार णमोकार पढ़ता है और दवाई खाने के बाद नौबार णमोकार पढ़ता है। दवाई खाने के पहले नौबार णमोकार की आराधना कर लेगा, फिर दवाई खायेगा, तो उसको मेरी औषधि कार्यकारी होगी। कदाचित् अन्तिम बेला ही आ चुकी हो, तो औषधि कुछ कर नहीं सकती। णमोकार की औषधि पढ़ ली, तो उसका कुमरण बच जायेगा, सल्लेखना मरण हो जायेगा। आज से यह नियम ले लो, जिसको जो भी दवाई दो, कहना, खाने के पहले नौ बार णमोकार और खाने के बाद नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ना। मित्र! आयुर्वेद शास्त्र में लिखा हुआ है, कि औषधि वही कार्यकारी होती है। जिस औषधि ने वैद्य ने भावना दी है। भावना का तात्पर्य औषधि बनाते-बनाते महामन्त्र की जाप करना चाहिये। जाप करते-करते वैद्य औषधि बना रहा है, तो वह औषधि मन्त्रित हो चुकी है, वह औषधि आपका कार्य करती है।

माँ! वे दिन कहाँ चले गये जब बूढ़ी माँ सूर्य उदय होने पर चक्की के पाटों को खोल करके, साफ करके गेहूँ पीसा करती थी और साथ में भगवान् का भजन

गाया करती थी। उस समय मन्त्र-आराधना कर रही है। उस आटे से जो भोजन बनता था, उसको ग्रहण करके पूरे परिवार के परिणाम प्रशस्त रहते थे। आज तो बटन चटकायी, उधर दूसरे चित्र देख रहे हो, भोजन बनाते-बनाते काटो-मारो की आवाजें सुन रहे हो, बताओ जब तुम्हारे भाव अच्छे नहीं हैं, फिर भोजन कैसे औषधि का काम करेगा?

भोजनशाला, मन्त्रशाला, औषधिशाला, पाठशाला इन स्थानों पर शुद्ध भेष और शुद्ध भाव से प्रवेश करोगे तो कार्यकारी होगा। इनमें अशुद्धि बरतोगे तो नियम से विफल होगे। **विद्यालय एक साधनास्थली है। साधनास्थली में मुखशुद्धि होनी चाहिये, भावशुद्धि होनी चाहिये। अध्यापक स्वयं गुटका दबाये हो, हाथों में सिगरेट/बीड़ी दबाये हो और जूते-चप्पल पहनकर क्लास में घूम रहा है, वह अभागा क्या विद्या की सिद्धि करवायेगा? छात्र स्वयं गुटके खा रहे हों, बैठे हों वहीं पुस्तकें रखे हैं, वहीं पीक कर रहा है, यह कोई शुद्धि है क्या? क्षयोपशम के प्रभाव से शब्दों को तो रट सकते हो, परन्तु विद्या की सिद्धि नहीं कर सकते हो।** बात समझो, मैं क्या कह रहा हूँ। एक विद्या की सिद्धि, एक रटन्त ज्ञान। शब्दों के रटन्त ज्ञान से सुन और सुना लोगे, लेकिन विद्या की सिद्धि करके जब आप वक्ता बनकर बैठोगे, तो लोगों को आप मन्त्रित कर लोगे। विद्या की सिद्धि और शब्दों का ज्ञान, इन दोनों में अन्तर है। शब्दज्ञान तो ऐसा है कि मैं आपको अभी कोई मन्त्र लिख कर दे दूँ, तो तू भी पढ़ कर सुना देगा। मन्त्र पढ़ना भिन्न विषय है और मन्त्र की सिद्धि होना भिन्न विषय है। ऐसे ही छात्रो! शब्दों को जान लेना भिन्न विषय है और विद्या की सिद्धि भिन्न विषय है। जिसको विद्या सिद्ध हो जाती है, उसका चेहरा बदल जाता है। जिसको विद्या सिद्ध हो जाती है, उसकी भाषा बदल जाती है, उसका भोजन, मिलना, बैठना, सब बदल जाता है। चौबीस घण्टे वह विद्या उसके अन्तरङ्ग में अङ्ग-अङ्ग में गूँजती है।

पण्डित जी को अट्ठाइस मूलगुणों के शब्दों का ज्ञान है कि वे कैसे होते हैं?

लेकिन अट्ठाइस मूलगुणों की सिद्धि तो भावलिङ्गी दिगम्बर मुनि ने की है। द्रव्यलिङ्गी मुनि को भी अट्ठाइस मूलगुणों की सिद्धि नहीं होती। द्रव्यलिंगी मूलगुणों के व्रतों का पालन कर सकता है, लेकिन सिद्धि नहीं हो पाती। जिसको सिद्धि हो जाती है, वह प्रसिद्धि की सिद्धि से शून्य होकर के आत्मसिद्धि में डूबना प्रारम्भ कर देता है। विद्या की सिद्धि और विद्या की प्राप्ति में अन्तर है। एक व्यक्ति ने शासन से टिकिट माँगा। जय पराजय तो बहुत बाद की बात है, जिस दिन टिकिट ही मिल जाती है, उस दिन मिठाइयाँ बाँटता है, जबकि कोई नियत नहीं है कि जीत ही जाओगे। छोटे से पार्षद का ही टिकिट क्यों न मिल जाये, तब भी आदमी खुश होता है। अभी सिद्धि नहीं हुई है, साधना अभी शुरू नहीं हुई, अभी आपने मात्र मन बनाया है, निश्चितता हो गई है कि हाँ, आनन्द है। ऐसे-ही कोई जीव को विद्या-मन्त्र या शास्त्र भी मिल जाये तो प्रसन्न होता है कि चलो मुझे साधन तो मिल गया। लेकिन यह प्रसन्नता मात्र ग्रन्थों के मिलने की है। जब वह अन्तरंग विशुद्धि से मण्डित होगा, तब विद्या की सिद्धि होगी और जैसे-ही विद्या की सिद्धि हो जायेगी, फिर जितना पुरुषार्थ सामान्य ज्ञान वाले को करना पड़ता है, उतना उसे नहीं करना पड़ेगा। नया वकील तैयारी करके जाता है, परन्तु पुराने से पूछो, पुराने के लिए सामान्य है सब, यदि आपको अपने विषय की सिद्धि हो गई है तो। सिद्धि के लिये साधना चाहिये। आज पुरुष प्रसिद्धि चाहता है, यश चाहता है साधना से शून्य होकरके। **किसी भी क्षेत्र में विकास करना चाहते हो तो साधना की आवश्यकता है। साधना के अभाव में सिद्धि असम्भव है। किसी भी साध्य की सिद्धि चाहते हो तो साधना चाहिये।** आप अनुभव करो, व्यक्ति साधना से विमुख हो रहा है। जिसकी साधना में लीनता है, उसके यहाँ सिद्धि के लिये कोई स्थान नहीं है। प्रातः चार बजे से जाग करके रात्रि दस बजे तक अध्ययन कर रहा है, एक छात्र की साधना चल रही है, तभी तो सिद्धि कर पायेगा। तू दिन भर रात भर सो रहा है और सोचे कि मैं अच्छे नम्बरों से पास हो जाऊँ, तो ये कहाँ की कल्पना में जी रहा है? पैसे देकर तूने

प्रमाणपत्र ले भी लिया, प्रमाणपत्र तो मिल सकता है, परन्तु पैसे से प्रज्ञा नहीं मिल सकती है। छल करके सर्विस भी प्राप्त कर सकता है, लेकिन हुनर प्राप्त नहीं कर सकता। उसकी सिद्धि तो करना ही पड़ेगी।

इसी प्रकार से तुम वचनों से प्रभावित कर लो, तो गुरु पिच्छी दे सकता है, कमण्डल दे सकता है, लेकिन विश्वास रखना, साधना की सिद्धि तुझे ही करनी पड़ेगी। पाठशाला में शुद्धि चाहिये, औषधिशाला में शुद्धि चाहिये, भोजनशाला में शुद्धि चाहिये, मन्त्रस्थल में शुद्धि चाहिये। याद करो उस माता को, जो आपको रसोईघर में प्रवेश नहीं देती थी। धिक्कार हो उन माता-पिताओं को कि पेंट-शर्ट तो ठीक है, अब स्तर इतना नीचे गिर गया कि पैरों में चरणपादुका पहन करके भोजनशाला में भोजन हो रहा है। अब बताओ तुम्हारी शुद्धि कहाँ से होगी? **तत्त्वज्ञानी जीव सिद्धि के लिये भोजन करता है, अज्ञानी पेट भरने के लिये भोजन करता है।** आपकी मानसिकता क्या है? पेट ही तो भरना है, चाहे जूते पहन कर खालो, चाहे-जैसे खा लो। अब तुमको मालूम क्या है?

वर्तमान के विद्वानों को, आचार्य/मुनियों को, अध्यापकों को पढ़ने के पहले साधना करना चाहिये। प्रवचन देने के पहले साधना करना चाहिये। आपको पता होना चाहिये कि सुबह से शाम तक कुयें से पानी खींचता है तो कुयें का जलस्तर (वाटर लेवल) कम हो जाता है, इसलिये रात्रि में कुयें से कोई पानी नहीं खींचता है, तो सुबह जलस्तर बराबर मिलता है। झिर छोटी है, खींचने वाले खींच ले गये, कुए की साधना अनवरत चल रही है। हे साधको! हे श्रावको! कुये की झिर बन्द हो जाये तो पानी कहाँ से दे पायेगा? हे साधको! जिससे प्रज्ञा विकसित होती है, वह साधना की झिर है। तुमने साधना की झिर बन्द कर दी है। मात्र दूसरे को देने में लगे हो, तुम्हारे देने-देने का रूप बदल जायेगा, पानी नहीं झिरेगा, तो पानी में कचड़ा आना प्रारम्भ हो जायेगा। ऐसे-ही जो मौनसाधना नहीं करेगा, अन्तरङ्ग की साधना नहीं करेगा और प्रवचन मात्र देता रहेगा, उसके प्रवचनों में दुर्गन्ध आना प्रारम्भ हो जायेगी।

कितने ही ज्ञानी हो जाओ, पर मेरे मित्र! स्वाध्याय करना मत छोड़ देना। जो ग्रन्थ तुम पढ़ कर आओगे, वही तुम्हारे मुख पर आयेगा। अच्छी भाषा पढ़ोगे तो अच्छी भाषा मुख पर आयेगी। किसी अनाड़ी के ग्रन्थ तुमने पढ़ लिये तो भाषा में अनार्यता प्रारम्भ हो जायेगी। आप विश्वास रखो, अपथ्य का भोजन पचाने की सामर्थ्य फिर भी आ सकती है, लेकिन जो पढ़ कर आये हो, उसे अन्दर पचा पाना बहुत कठिन है। प्रवचनकार के मुख से निकल ही पड़ता है। पाचनशक्ति आना चाहिये। लोक में जो सुना, जो देखा, जो जाना, इसे जिनवाणी की गद्दी से नहीं बोलना। जिनदेव ने जो कहा है, उसे अरहन्त की गद्दी से बोलना। इसके लिये पाचनशक्ति चाहिये। गाय बनना पड़ता है। गाय कुछ भी खाये, यहाँ तक कि मल भी खा लेती है, तब भी दूध बना कर देती है। इसलिये जिनवाणी को 'गौ' कहा है।

सरस्वती की आराधना तो अनन्त बार करो तब भी कम है। सोलह नाम हैं। जिनभारती सरस्वती वाग्वादिनी अरहन्त की वाणी के चित्त की प्रसन्नतापूर्वक इस वाग्देवी की आराधना करो। लोक में कोई देवी मत समझ लेना कि वह सन्तुष्ट हो रही है। जब तेरा चित्त विशुद्ध होता है तो वही हमारे लिये विद्यादेवी बनकर आती है। इसमें सोलहवाँ नाम 'गौ' है। **गाय अपने शरीर में ऐसी शक्ति से युक्त है कि वह घास चरने के बाद भी दुग्ध बना कर दे रही है। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि तत्त्वज्ञानी जीव भी नाना भाषाओं को सुनकर भी गाय की भाँति दूध बनाकरके तत्त्वदेशना देता है। गाय घास को मल भी बनाती है, पर मल को भिन्न कर देती है, मूत्र को भिन्न कर देती है और जो वास्तविक अंश है, वह दुग्ध के रूप में देती है। ऐसे हो तत्त्वज्ञानी जीव जगत् की बातों के मलों को किनारे कर देता है, मात्र जिनेन्द्रदेशना का दुग्ध बना कर देता है, उसका नाम तत्त्व-उपदेष्टा होता है।**

वाणी में कंकड़-पत्थर नहीं फेंकना। वचनसिद्धि चाहिये तो मौन साधना करना पड़ेगी। विद्यार्थियो! जब तक तुम अध्ययन कर रहे हो, तब तक ही मेरी बात मान लो, विद्या सिद्धि चाहिये तो एकान्त और मौन। एकान्त और मौन विद्यासिद्धि

के परम स्थान हैं। अपने आप को खाली रखो। खाली बर्तन में ही सामग्री रख पाओगे। पूर्व से ही भर कर रखे हो तो उसमें और क्या भरोगे? जिस ग्लास में लबालब पानी भरा हो, उसमें तू दूध भर पायेगा क्या? पहले पानी को हटाइये, फिर दूध भर पाओगे। जिन छात्रों को विद्यासिद्धि चाहिये, ज्ञानी बनना चाहते हैं, वे छात्र चाहे श्रमण हों या श्रावक हों, अपने मन के ग्लास को खाली करो, फिर आप तत्त्व को भर पाओगे। खाली करने की आवश्यकता है। सारा शरीर अस्वस्थ हो जाये तब टेंसन मत लेना, पर मस्तिष्क अस्वस्थ मत होने देना। सारा शरीर अस्वस्थ होने पर समाधि भंग नहीं होगी, यदि मस्तिष्क अस्वस्थ हो गया तो समाधि भङ्ग हो जायेगी। चित्त और चारित्र, इन दो को स्वस्थ रखो, फिर जगत् में भ्रमण करो तो कोई तनाव नहीं होगा। जगत् में कहीं भी भय नहीं लग सकता। डर दो को ही लगता है या चित्त अस्वस्थ हो। या चारित्र अस्वस्थ हो, इन दो लोगों को डर लगता है। **जिसका चित्त शुद्ध है, चारित्र भी शुद्ध है, उस व्यक्ति को जगत् में कहीं डर लगता ही नहीं है।**

पेट भरने के लिये भोजनशाला में प्रवेश मत करना, सिद्धि के लिये भोजनशाला में प्रवेश करना। सिद्धि तभी मिलेगी, जब शुद्धि होगी। आप आज ही प्रयोग करके देख लेना। अच्छे पवित्र वस्त्रों से, पवित्र चौका लगाओ। रसोईघर नहीं, किचिन नहीं, भोजनशाला नहीं; पवित्र चौका लगाओ। **जहाँ पर द्रव्यशुद्धि हो, क्षेत्रशुद्धि हो, कालशुद्धि हो, भावशुद्धि हो, ऐसे स्थान का नाम 'चौका' है।** उस चौका में भोजन करने जाना वस्त्र शुद्ध करके, फिर तुम देखना कि चित्त में कुछ हो रहा है कि नहीं? यह एक रासायनिक क्रिया है। भाषा वही है, शब्द/वर्ण वही हैं, अक्षर वही हैं, परन्तु जैसा तेरा चित्त होगा, वैसी भाषा दौड़ती है। भावों के पीछे-पीछे भाषा दौड़ती है। क्या आप यहाँ गाली दे सकते हो? नहीं। आप इस क्षेत्र में गाली देने की ताकत क्यों नहीं रखते हो? क्या आपके मुख में शक्ति नहीं है? है। इस सभा में पुण्यवर्गणायें फैली हुई हैं, इस सभा में अरहन्त की देशना गूँज रही है, इस सभा में निर्ग्रन्थ बैठे हुये हैं, इस सभा में अरहन्त की दृष्टि पड़ रही है। इस सभा में गृहस्थ नहीं, श्रावक बैठे हैं। साधु व श्रावक की

सभा में असाधु शब्दों के निकलने की ताकत नहीं होती है। जिन घरों से क्लेश होते दिखाई दें, झगड़े होते दिखाई दें, जिन घरों में अशुभ शब्द सुनाई दें, उन घर के लोगों के भाव सुन्दर नहीं हैं और चारित्र सुन्दर नहीं हैं। उनमें अप्रशस्त वर्गणायें भरी हैं, इसलिये अप्रशस्त भाषा निकल रही है। जिसके घर में शुद्ध भोजन बनता है और शुद्ध भाव रहते हैं, उस घर में कोई गाली देने की ताकत नहीं रखता है। आप विश्वास रखना, आपका बिगड़े से बिगड़ा बालक होगा, आप चौका लगायेंगे, तो वह प्याज भी ले जाने की ताकत नहीं रखेगा।

उपदेशों की संख्या तो बढ़ी है, लेकिन प्रवचनों की संख्या घट गई है। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहीं ते नर न घनेरे।' तुलसीदास जी को भी लिखना पड़ा। जिस बात को हमारे आचार्य हजारों वर्ष पहले कह चुके थे, इसी बात को तुलसी दास जी ने दोहरा दिया।

विरला जाणहिं तत्तु बुह, विरला णिसुणहि तत्तु।
विरला झायहिं तत्तु जिय, विरला धारहिं तत्तु।। 66 यो.सा।।

तत्त्वों को सुनने वाले विरले हैं, तत्त्वों को जाननेवाले उससे भी विरले हैं, सुनने व जानने वाले मिल भी जायें तो तत्त्वों पर चलनेवाले अंगुलियों पर गिनने लायक हैं। उपदेशों की संख्या बढ़ गई है, हर सम्प्रदाय में प्रवक्ता हैं। फिर टी. वी. में जिनवाणी, पारस आदि अनेक चैनल हो गये हैं। प्रवचन में प्रवेश हुआ नहीं, मुखशुद्धि हुई नहीं, पुस्तकें लेकर बैठ गये प्रवचन करने को। इसका नाम प्रवचन नहीं है। 'लघीयस्त्रयी' नामक ग्रन्थ में 'प्रवचन प्रमेय' स्वतन्त्र अधिकार है। प्रवचन करने की भी एक विधा है, उसे सीखना चाहिये। पहले वक्ता प्रवक्ता नहीं होना चाहिये, पहले ज्ञाता होना चहिये। जो ज्ञाता हो जायेगा, वह वक्ता अपने आप हो जायेगा। जो ज्ञाता हुआ नहीं और वक्ता बनकर बैठ गया, वह बक ही पायेगा, वक्ता नहीं बन पायेगा। जिस विषय को तुम जानते हो, उसे हकला कर नहीं बोला जाता, उसको पढ़कर नहीं सुनाओगे, उसे भीतर से बोलोगे। शब्दज्ञान को, शब्दश्रुत को, द्रव्यश्रुत को भावश्रुत बनाइये। गाय चरती है घास, देती है दूध। ऐसे-ही तुम ग्रन्थों में शब्दों को चरो, लेकिन जब मुख से निकले तो जिनवाणी

के भाव निकलना चाहिये। जब तक भाव नहीं ला पाओगे, तब तक किसी को प्रभावित नहीं कर पाओगे। जिस चीज में आप अभ्यस्त होगे, वह दृष्टान्त जल्दी समझ में आयेगा। आगरा में प्रसिद्ध वस्तु पेठा है। पेठा तो कई शहरों में बनता है, लेकिन वही पेठा का फल यदि इटावा वालों को दे दिया जाये तो उनके पेठे में वह स्वाद नहीं होगा। सामग्री वही है, फिर भी प्रसिद्धि क्यों नहीं? शास्त्र वही होते हैं, ग्रन्थ वही होते हैं, पर एक प्रवक्ता किसी नाम से प्रसिद्ध हो रहा है, दूसरा किसी नाम से प्रसिद्ध हो रहा है। एक को सुनने के लिये लोग तरस रहे हैं, दूसरे को चुप होने के लिये तरस रहे हैं कि इसको शान्त कर दो, अब बहुत हो गया। विषय वही है, शास्त्र वही है। यहाँ के पेठे में स्वाद ज्यादा क्यों है? क्योंकि यहाँ के क्षेत्र की वर्गणायें और बनानेवाले के भाव अलग हैं। साँचे तो बराबर बनाये जा सकते हैं, पर साँचे भाव नहीं बनाये जा सकते हैं।

मनुष्य है, लेकिन मनुष्यत्व नहीं दिखता। किसी के घर में शिशु जन्म ले और एक दो वर्ष का हो जाये, फिर भी ऐसे पड़ा रहे जैसे मुर्दा पड़ा हुआ है, तो बालक में बालकत्व शोभा देता है, वृद्धत्व शोभा नहीं देता है और श्रमण में श्रमणत्व शोभा देता है। आप समझो मैं क्या कह रहा हूँ। भाव ही सबकुछ है। मनुष्य है, लेकिन मनुष्यत्व नहीं दिख रहा है। पण्डित तो हैं, पर पाण्डित्व नहीं है। पण्डित में भाव नहीं है, पाण्डित्व में भाव है। **जिसका ज्ञान झलक रहा हो, जिसका शील टपक रहा हो, जिसके चेहरे पर सुशीलता झलक रही हो, चारित्र बरस रहा हो, इसका नाम पाण्डित्व है। जब बैठे तो शान्त, लोगों में रहे तो शान्त।** जैसे गणधर की गद्दी पर आये तो सिंह-जैसा दहाड़े, पाण्डित्व बरस रहा है। बाकी समय में शान्त। भोजन में रासायनिकत्व, भाषा में रासायनिकत्व, चर्या में रासायनिकत्व। यही कारण है, कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को प्रभावित करता है। हमारे युवाओं की प्रज्ञा बड़ी प्रशस्त है। आज विदेश में लोग जैन युवाओं की बुद्धि का दोहन कर रहे हैं। इंजीनियर बन गये तो कोई कम्पनी इन्हें बुला लेगी। इनको वेतन तो मिलेगा, पर तन पूरा उनके लिये जायेगा। डाक्टर हैं, वकील हैं, इनकी प्रज्ञाओं का प्रयोग यदि पाण्डित्व में कर देते, तो भारतभूमि में चारों

ओर नमोस्तु शासन जयवन्त दिखाई देता। अध्यात्म-ही-अध्यात्म टपकता। लेकिन जो विद्या आपको देना चाहिये थी वह नहीं दी जा रही है।

जिसके पाक शक्ति है, उसको पकाने की क्षमता भी आना चाहिये। यदि आपने दूध भी पकाया है, अग्नि तेज हो गई, तो दूध का धर्म नष्ट हो जायेगा। माँ ने सुबह रोटी बनाई है, शाम को खिला रही है तो ठण्डी खा लेना, लेकिन पुनः गर्म करके मत खाना। ये सब पागल लोग हैं जो पुनः गर्म करके खा रहे हैं। उनको विवेक नहीं है, मात्र गर्म दिखता है। एक बार जो धर्म थे, वे आ चुके थे, अब पुनः गरम करोगे तो उसके धर्म नष्ट हो जायेंगे, रोटी जहर बन जायेगी। जो भोजन एक बार अग्नि में पक चुका है, उसे पुनः अग्नि पर मत रखना, 'यशस्तिलक चम्पू' महाकाव्य हमारे पास है, 'कल्याण कारकम्' आयुर्वेद शास्त्र हमारे पास है, जिनागम में हमारे यहाँ कोई कमी नहीं है। किस मौसम में क्या भोजन करना चाहिये, ये सब हमारे आगम में लिखा हुआ है। एक बार पकाने के बाद दुबारा तपायेगा तो विष हो जायेगा। तेरे मन में एक बात आयी, आकरके तूने निकाल दी, बेटा! स्वस्थ रहेगा। उसी बात को पुनः मन में लायेगा तो तेरा मस्तिष्क गर्म हो जायेगा, अब तू आगे नहीं बढ़ पायेगा, वहीं झुलस जायेगा। ये बुद्धियाँ नष्ट क्यों हो रही हैं? एक बात मन में आ गई, उसके बाद दुबारा तुम टेंसन में आ रहे हो। पुनः पुनः सोचोगे तो मशीन भी गर्म होकरके उसके तार टूट जाते हैं। इसलिये ज्यादा सोचने का नहीं। तत्त्वचिन्तन करो, तत्त्वनिर्णय करो। यदि तुमसे शुभ हो गया हो तो उसे भी छोड़ो और अशुभ हो गया हो तो उसे भी छोड़ो। पुनः अशुभ मत करना, लेकिन उसके बारे में भी बार-बार मत सोचना, नहीं-तो अस्वस्थ हो जाओगे। दोष किये हैं, तो प्रायश्चित्त कर लो और मुक्त हो जाओ। आगे का काम करो। जमीन में गड्ढे होते हैं, पानी बरसता है, पानी बह कर निकलता है, वह पहले गड्ढे को भर देता है, फिर आगे निकल जाता है। ऐसे ही तुम्हारे चित्त में कोई गड्ढे हों तो उन्हें प्रायश्चित्त से भरो, फिर आगे चलो। सागर बनना है तो आगे चलना पड़ेगा और कहीं बाँध बनकर ठहर गये, तो खेत की क्यारियों में तुम नष्ट हो जाओगे।

ज्ञानी! समय हो गया तब भी मुमुक्षु समझ नहीं रहे हैं। अनित्यता पर भी ध्यान दो और नित्यता पर भी ध्यान दो। देह को ही सर्वस्व मत मानो। तुम पर्याय के लिये कुछ करोगे तो आगे कुछ कर नहीं पाओगे। मैं मुनि क्यों बना? पर्याय के लिये? कुछ पर्याय के लिये मुनि बनेंगे तो कुछ कर नहीं पायेंगे, क्योंकि मुझे मालूम है, आपको भी मालूम है, ये दस, पचास, सौ, अधिक-से-अधिक एक सौ बीस तक इस शरीर को तो नष्ट होना ही है। यदि हम वर्तमान का लक्ष्य लेकर कोई भी काम करेंगे तो यही सोचेंगे कि इसके बाद तो कुछ है ही नहीं। कोई भी धर्मस्थान अपनी पर्याय के लक्ष्य को लेकर नहीं बनता, भविष्य की समाज का लक्ष्य लेकर बनता है, कि समाज इसके दर्शन करेगी। ऐसे-ही तुम जो धर्म कर रहे हो, इस पर्याय को लक्ष्य लेकर मत करना, जीवद्रव्य को लक्ष्य लेकर करना। पर्याय नष्ट होगी, जीव नष्ट नहीं होगा। इसका फल मुझे आगे और मिलेगा। द्रव्य का लक्ष्य लेकर काम करना, पर्याय का लक्ष्य लेकर कोई काम मत करना। पर्याय का लक्ष्य लेकर करोगे तो स्वार्थी हो जाओगे। किले तो ध्वस्त हो गये, लेकिन किले में जो मन्दिर बने थे, वे आज भी हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि किले में रागी का राग होता है और मन्दिर में प्राणिमात्र का अनुराग होता है। हर व्यक्ति मन्दिर को देखता है, भगवान् को देखता है। जो किले को देखेगा, वह तो ध्वस्त हो जायेगा। जो किले में बैठे भगवान्-आत्मा को देखेगा, तो एकदम शान्त होकर देखेगा। ज्ञानियो! देवालय को मत देखो, देव को देखो। देवालय तो मिट जाते हैं, देव फिर-भी होते हैं, इसलिये देव पर दृष्टि रखो। पर्याय नष्ट होगी, पर्यायी शाश्वत् है। आज से धर्म पर्यायी पर लक्ष्य लेकर करना। पर्यायी यानि आत्मा।

घर न जाओ, चले जाओ। जहाँ आज तक नहीं गये, वहाँ चले जाओ।

तू किसी को साथ लेकर नहीं आया, किसको साथ लेकर जाओगे? घर जाकर देवी से पूछ लेना, मैंने तेरे लिये सबकुछ किया है। जब मैं जाऊँगा, तो तू साथ चलेगी क्या? आचार्य महाराज कह रहे हैं कि न तू किसी बन्धु के साथ आया है, न किसी बन्धु के साथ जायेगा। हे मूढ़ नरो! फिर तुम व्यर्थ में इन सबके

साथ स्नेह क्यों कर रहे हो? जब इनके साथ आये नहीं, जाओगे नहीं, तो व्यर्थ में स्नेह करके अपनी आत्मा की वञ्चना मत करो। आपको मालूम न हो तो तिल से पूछो। उसको कोल्हू में क्यों पिरना (पिलना) पड़ता है? उसमें स्नेह (तेल) न होता, तो कोल्हू में न पिरना पड़ता। **जिनमें स्नेह होता है, जिनमें राग होता है, वे नियम से संसार के कोल्हू में पिरते हैं।** अब तुमको जैसा लगे वैसा करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"शोक करना वृथा है"

जातेनावश्यमर्तव्यं, प्राणिना प्राणधारिणा।

अतः कुरुत मा शोकं, मृते बन्धुजने बुधाः॥ 156 सा. स.॥

अन्वयार्थ-प्राणधारिणा प्राणिना = प्राणों को धरने वाला प्राणी **जातेन** = जो जन्मा है **अवश्य मर्तव्यं** = उसे अवश्य मरना पड़ेगा **अतः** = इसलिए **बुधाः** = बुद्धिमान मानव **बन्धुजने** = बन्धुजनों के **मृते** = मरने पर **शोकं मा कुरुत** = शोक नहीं करते हैं।

भावार्थ-जन्म लेने वाले प्राणधारी, प्राणियों को अवश्य मरना पड़ेगा, इसलिये बुद्धिमान मानव बन्धुजनों के मरने पर शोक नहीं करते हैं।

॥ सद्-देशना॥

मनीषियो! जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमण संस्कृति। ज्ञानियो! हम सभी तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष मंगलवाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' में पर्याय की अनित्यता और द्रव्य की नित्यता का व्याख्यान कर रहे हैं। सारे विश्व का बोध होने के उपरान्त भी **जहाँ मृत्यु का बोध नहीं है, वहाँ आत्मा का शोध सम्भव नहीं है। जिसको मृत्युबोध है, वही निज आत्मा का शोधन कर सकता है। मृत्युबोध उसे ही हो सकता है जिसके उपशम भाव है।** कषाय के उद्रेग में विवेक कार्यकारी नहीं होता। जैसे ही काषायिक भाव मन्द होते हैं, विवेक ज्ञान जाग्रत होता है। जब तत्त्व का निर्णय लेना हो और जीवन का निर्णय लेना हो तो पहले अपने आप को ठण्डा कर लेना। जगत् में किसी भी निर्णय के पूर्व यदि आपका मस्तिष्क शीतल नहीं है तो आपका निर्णय विपरीत होगा। जीवन के निर्णय के पूर्व स्वयं को समय दे देना। ऐसा निर्णय लेना जिसके बाद निर्णय बदलना न पड़े। जो निर्णय बदलना पड़े वह निर्णय नहीं, निर्णयाभास था। जिसके बाद पश्चात्ताप हो, वह सन्तापकारी निर्णय है। जीवन के किसी भी पहलू पर गमन करो, किसी भी

क्षेत्र में प्रवेश करो, पर पश्चात्ताप को स्थान नहीं होना चाहिये। अल्प आयु अल्प वय है, क्षण अल्प हैं, यदि निर्णयाभास में जीवन निकल गया तो उपलब्धि क्या? एक-एक समय का आनन्द आना चाहिये। एक-एक पल का हमारा आनन्द शून्य हो गया, तो हमारे जीवन का बहुमूल्य समय निकल गया। क्षण-क्षण में आनन्द आना चाहिये। आनन्द ही सुख है। वह साधना नहीं, साधनाभास है, जिस साधना में आनन्द न हो। वह मोक्षमार्ग नहीं, मोक्षमार्गाभास है, जिसमें आनन्द न हो। रागी जब संगीत में लीन होता है, वह भी पैर थिरकाना प्रारम्भ कर देता है। उसी में आनन्द आ रहा है। संगीतकार को संगीत में आनन्द आ रहा है। नाट्यशाला में नट को आनंद आ रहा है। आनन्द तब आयेगा, जब सन्तुष्टि होगी और सन्तुष्टि तब होगी, जब निर्णय सम्यक् होगा। वे बदल नहीं पायेंगे संसार को जो अपने जीवन में क्षण-क्षण में अस्थिर है। स्थिर चित्त में तत्त्व का निर्णय होता है। यदि आप संसारमार्ग में भी चल रहे हो तो संसार में वे ही सफल हो पाते हैं जो अपने व्यापार पर दृढ़ होते हैं। भाई! यदि आपको अपनी वकालत में सन्तुष्टि नहीं होती, तो शायद इतनी ऊँचाइयों का स्पर्श नहीं कर पाते। ज्ञानी! तुझे अपनी साइकिल की दुकान ही अच्छी लगती है। यदि उसमें सन्तुष्टि न होती, तो तू आजीविका शून्य हो जाता। हाथी मंथरगति से चलता है, लेकिन आगे के पैर को रखने के पूर्व पीछे के पैर पर वजन रखता है। पीछे के पैर में वजन इसलिये रखता है कि कहीं आगे की भूमि कमजोर हुई तो में पीछे सुरक्षित हूँ। आगे वजन शीघ्र नहीं रखता है, पहले देखता है कि आगे की जमीन कैसी है। **मोक्षमार्गी जब मोक्षमहल पर चढ़ता है तब प्रथम सीढ़ी को मजबूत निहारता है, फिर अगली सीढ़ी पर पैर रखता है। जो भावुकता में कदम बढ़ाते हैं, उनको फिसलकर गिरना पड़ता है, क्योंकि यह मुड़नेवाला मार्ग नहीं है, यह आगे जाने वाला मार्ग है। आगे वही पहुँच सकेगा, जो अपने आप में हाथी की चाल चलेगा।** गजगमन है श्रेष्ठ गमन। जैसे गज की मंथर चाल है भूमि को परखते हुये, वैसे ही मोक्षमार्गी की मंथर चाल होती है निज के परिणामों की भूमि का प्रेक्षण करते हुये। त्याग के मार्ग पर चढ़ने के लिये लोगों की आँख

को मत देखना, अपने आत्मा के परिणामों को देखना। जो लोक की आँख को देखकर चलेगा, वह गिरेगा। पर की आँखें तो घूमने-फिरने वाली हैं, पता नहीं कब फिरें। तुम्हारी आँखें ही स्थिर नहीं हैं। जीवन में तुम कितनों को देख चुके हो, फिर भी देखकर नहीं रखा, बदल गये। मित्रो! पर के नेत्रों से अपना परीक्षण मत करना, क्योंकि हर व्यक्ति के चश्में के नम्बर अलग-अलग हैं। जिसका जितना नम्बर होगा, वह अपने पावर से देखेगा, परन्तु वस्तु नम्बरभूत नहीं है, वस्तु तो जो है सो है।

कुछ लोग यूँ कहते हैं महाराज! बताओ मैं कैसा हूँ? हे ज्ञानी! मैं जो भी बताऊँगा, अपनी आँखों से तेरी पर्याय को ही बता पाऊँगा, परन्तु आत्मा के परिणामों को बतानेवाला कोई है, तो वह तू है, या फिर परमात्मा है। मैं धर्मात्मा हूँ या नहीं हूँ, यह दूसरे से पूछने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप पूछ रहे हो यानि कि अपनी झूठी प्रसंशा चाहते हो। भोजन से पेट तो भर गया, परन्तु कान की भूख नहीं मिटी है, इसलिये महाराज से पूछ रहा है 'स्वामी! मैं कैसा हूँ?' यहाँ जो चेहरे दिख रहे हैं, मैं बता सकता हूँ कि वैसा मन नहीं है। जगत् के शृंगार मात्र चेहरे को ही चमकाने की क्रीमें हैं। चित्त को चमकाना है, तो परिणामों के घर में जाना पड़ेगा। शृंगारदानी में चर्म को चमकाने के साधन हैं, पर चैतन्य को चमकाना है तो शृंगारदानी को नहीं देखना पड़ेगा। गाल की कारोंच मिटाने के लिये दर्पण को देखा जा सकता है, परन्तु परिणामो की करोंच को मिटाने के लिये दर्पण को नहीं देखना पड़ेगा, निज के परिणामों को ही देखना पड़ेगा। दर्पण के सामने चार-चार घण्टे और स्वयं के लिये एक मिनिट भी नहीं। चमड़ी की पहचान कौन करता है, चमड़े की परख कौन करता है? घबराओ नहीं, चोर-चोर मौसेरे भाई। जल्दी बताओ? एवंभूत नय से निहारोगे तो एवंभूतनय कहेगा कि विश्व में जिस समय जो जीव जिस क्रिया को करता है उस समय वह वही होता है। यदि वह पूजा कर रहा है तो पुजारी, कपड़े धो रहा है तो धोबी, चमड़ी को देख रहा है तो चर्मकार। चर्म को परखनेवाला चमार है। उज्जवल कुल में आपने जन्म लिया है। जिस कुल में अरहन्त की वाणी सुनने को मिलती

है, अरहन्त का अभिषेक करने को मिलता है, निर्ग्रन्थों को दान देने को मिलता है, उस कुल में तुम चर्मकार क्यों बनते हो? इसलिये दर्पण के पास खड़े होने का त्याग कर दो। ये दर्पण का त्याग नहीं करा रहा हूँ। मैं आपके चेहरे देख रहा हूँ कि भीतर कितना राग है। तुम त्याग करो या न करो, भले ही आप पचास नहीं हजार बार देखो, लेकिन मात्र इतना सोच लिया करो कि एवंभूत नय से मैं क्या हूँ। और देखते-ही-देखते आयुबन्ध का काल आ गया और वहीं आयु का बन्ध हो गया और मरण हो गया, तो हो सकता है कि उसी शरीर में आकर तुम कीड़े बन जाओ जिस पर्याय के राग में तुम लिप्त हो रहे हो और परिणामों को भूल रहे हो। जीवन के क्षणों का आप आकलन करो कि मैंने कितना समय कहाँ दिया है? जिन स्थानों का नाम लेने में शर्म आती है, उन स्थानों में तूने अपना समय दिया है। जिस स्थान को तू निहार नहीं सकता, उस स्थान को तूने समय दिया है। बन्ध-स्थान कह रहे हैं कि तुम अपने अशुभ भाव बन्द नहीं कर सके, तो मैं बन्ध कैसे बन्द करूँ?

कठिन तो नहीं हो रहा? नहीं, महाराज! सुनने में कठिन तो नहीं है, लेकिन समझने में कठिन अवश्य है। ज्ञानी! जब समझने में कठिन है, तो स्वीकारने में तो महाकठिन है। पर विश्वास रखना, यदि स्वीकार कर लिया, तो उसका फल बड़ा मधुर है। न किसी के साथ कोई आया है, न किसी के साथ कोई जानेवाला है। लेकिन मध्य में आकर के पता नहीं कितने साथी बना कर बैठ गया है और द्रव्य की द्रव्यत्वता की स्वतन्त्रता को भूल चुका है। राग की तीव्रता देखो 'मैं उसके बिना जी नहीं सकता हूँ, मैं प्राणों को छोड़ सकता हूँ'। न कुल का बोध, न जाति का बोध, न वंश का बोध, न धर्म का बोध है। जहाँ तुम्हारा राग लग गया है, उन युवक-युवतियों को कुल में कलंक लगाने में भी कोई विकल्प नहीं आता है कि मैं प्राण दे सकता हूँ, परन्तु छोड़ नहीं सकता हूँ। अरे! तुम क्या प्राण दोगे और क्या लेकर जाओगे? सत्य यह है कि चार दिन की सुन्दरता में रूप में तुम रो रहे हो, जबकि रूप के विगलित होने में समय नहीं लगेगा। तू रूप की जगह स्वरूप को देख लेता, तो भविष्य का भगवान् बन जाता। किसको

देखा? चर्म को देख करके धर्म खो बैठा। कर्म के पिण्ड में लिप्त हो करके अकर्मस्वभावी आत्मा पर दृष्टि ही नहीं ले जा पाया। हाय! माँ को माँ नहीं देख सका, पिता को पिता नहीं देख सका और विकारों के वेग में आकरके, अपने अविकारी स्वरूप को खोकरके, पर की चमड़ी में लिप्त हो करके अपने कुल को कलंक लगा बैठा। रावण से पूछो, मैं इसके बिना रह ही नहीं सकता हूँ। ज्ञानी! भूल सुधारो। जितना किसी पर राग तीव्र करोगे, उतना तीव्र रोना पड़ेगा उसके वियोग होने पर। सामान्य जीवन जियो। रोज आते रोज जाते लोगों को जानो, देखो, जाने दो। किस-किस को रोओगे? प्रतिदिन लोग आ रहे हैं। इस पर्याय और परिणामों की अनुभूति का आनन्द नहीं ले पाओगे। एक सिनेमा हाल में भी सारी खिड़कियाँ बन्द करके, बाहर के सारे वातावरण को भूल करके जब बैठता है, तब चित्रों का आनन्द ले पाता है। बाहर के प्रकाश को भी स्थान नहीं देता। जैसे चारित्र को भ्रष्ट करने वाले चित्रों के लिये तू बाहर का प्रकाश भी नहीं आने देता है, ऐसे-ही तत्त्वज्ञानी मुमुक्षु जीव अपने अन्तरङ्ग की इन नौ खिड़कियों को बन्द करके भीतर के ज्योतिर्मय प्रकाशपुंज में चैतन्य भगवान्-आत्मा के चित्र को देखते-देखते निमग्न हो जाता है। जगत् की सारी हवायें, सारी ज्योतियाँ उसको स्पर्श नहीं करती हैं। मात्र 'अप्पा अप्पम्मि रओ'। जो आत्मा को आत्मा में लीन करके निहारता है, उसी योगी को कैवल्य की प्राप्ति होती है। ब्रह्मानन्द स्वरूपोऽहं।

जगत् को मत देखो, जगत् को मत निहारो। निहारनहारे को निहारो, देखनहारे को देखो। **परम विद्या तो आत्मविद्या है, जिस विद्या में अविद्या का लेशमात्र भी नहीं है।** श्रोता बन कर मत सुनना, आप दिगम्बर मुनि बन कर सुनना। चिन्तन की धारा में जाओ। जो वस्त्र है, वह मैं नहीं हूँ और जो मैं हूँ, वह वस्त्र नहीं है। वस्त्रों को भिन्न करके देखो। मेरी देह पर वस्त्र नहीं हैं। मैं दिगम्बर रूप हूँ। वस्त्र हटते ही निर्मल दशा, निर्मल परिणति। वस्त्र मैं नहीं हूँ। मैं वस्त्रों में नहीं हूँ, वस्त्रातीत हूँ। वसन नहीं हैं, वासनायें नहीं हैं। वसन रहित तो अनन्त बार जी लिया है, एक बार वासना रहित जी लेता तो संसार में वास न करना

पड़ता। तिर्यञ्चों की कितनी पर्यायों को प्राप्त किया? वे वस्त्ररहित पर्यायें ही तो थी। प्रकृति, पर्वत, पशु-पक्षी, वृक्ष, वनस्पतियाँ ये वसन रहित ही तो हैं। ज्ञानियो! वस्त्रों मात्र से रहित हो जाना मोक्षमार्ग नहीं है। **वस्त्रों के रहित होने के साथ जो वासनाओं से रहित हो लेता है, उसका नाम मोक्षमार्गी है। ज्ञानी! कामवासनायें ही वासना नहीं हैं, मान की वासना कामवासना से बड़ी वासना है। कामवासना की उम्र है, वह अपनी सीमा तक जाकर शान्त हो जाती है। क्योंकि इन्द्रियाँ शिथिल हो गई; लेकिन मान की उम्र नहीं है।** अन्तिम श्वास तक कहता है कि मेरी छतरी कैसी बनेगी? इस भारत की भूमि पर ऐसे अभागे लोग भी हो गये जो मरने के पहले अपनी छतरी बना गये और मरने के पहले तेरहवीं कर गये। पता नहीं कि मैं मरा तो किसी ने की या न की? मैं मरा तो किसी ने छतरी बनवाई, या न बनवाई इसलिये मैं ही बनवाये जाता हूँ, टेंसन-फ्री होकर जा रहा हूँ।

यदि सबकी छतरियाँ बन गई, तो पूरी भूमि छतरियों से भर जायेगी, फिर लोगों को रहने कहाँ मिलेगा? भैया! विश्वास मानो, **भोजन छोड़ देना सरल है, पानी त्याग देना सरल है, लेकिन चर्म के नाम का राग छोड़ पाना बहुत कठिन है।** महीने-महीने के उपवास करके बैठ जाना बहुत कठिन नहीं है, परन्तु एक मुहूर्त प्रमाण भी अपने पंथ/आम्नाय के राग को छोड़ पाना, ये तपस्या कठिन है। यह पता कब चलता है? जैसे चकमक की बटैया को दायें हाथ में ले लेना। उस पर कितनी ही रुई रख देना। पर उसमें आग नहीं लगेगी। तू भ्रम में पड़ गया कि क्या शीतल बटैया है, इसमें कोई चिंगारी नहीं हो रही है, ये तो बिल्कुल ठण्डी है। ज्ञानी! अभी तुम धोके में जी रहे हो। एकान्त की साधना धोके की साधना है। तुम जंगल में जाकर बैठ गये और तुम्हारे सामने निमित्त नहीं आये, तो तुम समझ रहे हो कि मैं कामना और वासना से शून्य हो चुका हूँ। लेकिन अभी तुम धोके में जी रहे हो। चकमक की एक बटैया उसमें आग लग ही नहीं रही है। यह धोके की बात है। अकेले एकान्त में रहकर अपनी साधना की सफलता मत समझ लेना। अभी तुमको निमित्त नहीं मिल रहे हैं, सो तुम ठण्डे बैठे दिखाई

दे रहे हो। अभी चकमक की एक ही बटैया है। जब दो बटैया टकरायें, फिर चिनगारी न हो, तब कहना कि हाँ, बटैया ठण्डी है। देश में, प्रदेश में, राष्ट्र में तुम शान्तस्वभावी साधु के नाम से प्रसिद्ध हो चुके हो, लेकिन तुम्हारी शान्ति कब तक है? जबतक तुम्हारे सामने दूसरी स्पर्धा दिखाई नहीं दी, तब तक लोग यही समझ रहे हैं कि आप बहुत शान्त हैं। दूसरे के सामने आने के बाद भी तुम यह कहो कि कुछ नहीं, 'जो है सो है', फिर कहना कि यह साधुस्वभाव है।

भैया! पूरे कोर्ट में तू इकलौता वकील हो, चारों ओर तेरी प्रसिद्धि छा जाये कि शान्त है भगवान्-जैसा। ठहरो, इस शान्ति का परिचय मैं कराऊँगा। एक दूसरे वकील को सामने प्रेषित किया जाये। जब दूसरा वकील आ जाये, तब देखो इसके अन्दर कितनी शान्ति है। **साधुस्वभाव की परीक्षा करना हो तो साधु रूप को देख कर मत करना, दूसरे साधु को वहाँ विराजमान कर देना। दूसरे साधु को विराजमान करने के उपरान्त पूर्व विराजमान साधु फिर भी सामायिक में लीन रहे, तो यह पक्का साधु है। कहीं वह दूसरे के कान में कहे कि नहीं, मात्र में ही साधु हूँ। तो बस, तुम साधु न थे, न हो। आगे क्या होओगे, तुम जानो।** चकमक की बटैया। झूठी साधना में तुम अपने आप को साधु मत स्वीकार कर लेना।

भैया! तेरी पत्नी तुझे समय पर पानी पिलाती है, समय पर भोजन दे रही है, तब तू शान्त नहीं रहेगा तो कौन रहेगा? जिस दिन तुझे भूख लगी हो, देवी से कहा कि थाली लगाओ और देवी कहती है कि मैं एक माला फेर कर आती हूँ, उसने ऐसा बोल दिया, अब देखो तेरे मन की माला क्या बोलती है? धर्मात्मा होगा तो यूँ कहेगा कि धन्य हो, देवी! तूने भगवान् की याद दिला दी। मैं भी माला फेर कर भोजन करूँगा। ओहो! यदि तू कह रहा है 'तुझे माला दिख रही है, मेरे पेट में चूहे लोट रहे हैं।' आ हा! दिख गया धर्मात्मा। तू बहुत शान्त था। **विषमताओं के उपस्थित होने पर भी जिसके हृदय में समता अपना स्थान न छोड़े, उसका नाम 'साधु' है। विषमताओं के उपस्थित होने पर भी जिसके**

हृदय-आँगन में समता की माँ अपने आँचल को लिये बैठी हो, उसका नाम 'साधना' है। जगत् में कोई अच्छे से अच्छा पदार्थ क्यों न हो, पर माँ की गोदी में जो आनन्द है, वह जगत् में कहीं नहीं है। आपको विश्वास न हो तो अपने पिता से पूछ लेना, पिता जी! सत्य बताना, मेरी दादी आपको भोजन कराती थी तब कैसा लगता था? और मेरी माँ भोजन कराती है तब कैसा लगता है? ज्ञानी पिता होगा तो बता देगा। हो सकता है कि उसकी आँखों से आँसू ही गिर जाये।

'बेटे! माँ की रूखी रोटी अमृत होती थी, तेरे माँ की चिपरी रोटी चरपरी होती है।' पत्नी का भोजन चटपट्टा तो लग सकता है, पर माँ का माधुर्य नहीं दे सकता।

मित्रो! जगत् में प्रवचन की जितनी भाषायें हो चुकी हैं, वे पत्नि की चरपरी रोटियाँ तो हो सकती हैं, पर तत्त्व उपदेश नहीं है। **तत्त्व-उपदेश, माँ जिनवाणी के आँचल का माधुर्य है। तुम चुटकुलों में मुसकरा तो सकते हो, ताली बजा सकते हो, लेकिन आत्मा के गांभीर्य को प्राप्त नहीं कर सकते हो। यदि तत्त्व को समझना है और आत्मा की अनुभूति लेना है, तो माँ जिनवाणी के आँचल को छोड़कर कभी मत चले जाना। माँ की गोदी के सामने स्वर्ग के आनन्द भी फीके लगते हैं।** सौधर्म इन्द्र व चार प्रकार के देवों को माँ की गोदी के आनन्द का ज्ञान नहीं होता है। उनका गर्भजन्म नहीं होता है, वह कभी माँ की गोदी में खेलते ही नहीं हैं। सौधर्म इन्द्र और सर्वार्थसिद्धि के देवों को जिस माँ की गोदी का आनन्द है, वह तुम्हारे पास आज तक नहीं आया। 'क्या महाराज! दो प्रकार की बातें करते हो।' ज्ञानी! दो प्रकार की बातें नहीं करेंगे तो जैनदर्शन कैसा? स्याद्वाद। जब जन्म देने वाली राग की माँ की बात करोगे तो वह आनन्द देव नहीं लूट पायेगा। जब माँ जिनवाणी की गोद की बात करोगे तो सर्वार्थसिद्धि का देव जीवनपर्यन्त तत्त्वचर्चा करता है। तैंतीस सागर वर्ष तक माँ जिनवाणी के आँचल का पान करता है। जो चर्चा आज की है, वह जीवन में कभी दोहराता नहीं है। द्वादशाङ्ग का पाठी होता है। सौधर्म इन्द्र देवों के बीच में बैठकरके तत्त्व की गवेषणा करता है, धर्मसभा लगाता है। अन्तर इतना है कि जन्म देनेवाली

माँ जब भी गोदी में बिठालती है, थोड़ी देर बाद थपथपाना प्रारम्भ कर देती है और सुलाने की ही बात करती है। ममता की माँ सुला सकती है। समता की माँ जगाती है—'जागो, बेटे! तुम महावीर हो, अतिवीर हो, वर्द्धमान हो, तुम संसारातीत होने के लिये आये हो।' अब बताओ मेरे बेटो! तुम कौन-सी माँ की गोद में रहना चाहते हो? जिनवाणी माँ की। ज्ञानी! तू तो जिनवाणी की सेवा में लगा है, तूने पूर्व में कोई घोर-घोर पुण्य किया होगा। लोग तो बच्चे-बच्चियों को सम्हाल रहे हैं, तू तो जिनवाणी की सेवा में लगा हुआ है। वे जीव धन्य हैं जो जिनवाणी की सेवा में लगे हैं।

एक बार मैं देख रहा था, बैंडवाले बैंड बजा रहे थे। वह अपने जेब से हरे-हरे नोट निकालकर उनको भेंट दे रहा था। पर चिन्तन कहाँ रुकता है? मैं सोच रहा था कि बेचारे ने कैसे कमाये होंगे और खर्च भी कर रहा तो कहाँ? जो अशुभ पियेंगे, अशुभ खायेंगे, उनको दे रहा है। सोचो, आप लोग कितनी भावुकता में चले जाते हो। अशुभ खायेगा, अशुभ पियेगा, उसे तू ये दिखा रहा है; लेकिन सत्य है, वैसा आयेगा, वैसा ही जायेगा। एक जीव ऐसा है जो भले ही कैसे भी कमा कर लाया हो, वह अरहन्त की जिनवाणी में लगा रहा है, अरहन्त की प्रतिमा स्थापित कर रहा है, निर्ग्रन्थों को दान दे रहा है, पुण्य के द्रव्य का ये परिणमन होता है। पाप का द्रव्य यूँ घुमाता है। जो गणिकाओं के नृत्य में खर्च करे, जो बैडबाजे में बरबाद करे, उसका पैसा जरूर गड़बड़ का होना चाहिये। एक जिनवाणी की सेवा में लगा है, कितनों को तत्त्व-उपदेश सुनवा रहा है। पर क्या करोगे? मोह/राग सत्य को देखने नहीं देता और द्वेष सत्य के पास जाने नहीं देता। इन युवाओं से पूछो, जब किसी से तीव्र राग हो जाता है तो ये पिता-माता की बात नहीं मानते। माता-पिता रोते मिलते हैं कि बेटा! मेरी नाक का ध्यान रख, कुल का ध्यान रख, वंश का ध्यान रख। इन बेटियों ने तो पूरी समाज को बदनाम कर दिया। पढ़ाने के राग में माताओ! सम्हाल कर रखो, फिर से कह रहा हूँ। एक ये बेटियाँ देखो और एक वो बेटियाँ देखो। ज्ञानमती, सुपार्श्वमती, ब्राह्मी, सुन्दरी बेटी को देखो। जिसने पूछ लिया था, पिता जी! इस सभा में ये

राजा लोग क्यों आये हुये हैं? बेटियो! भेंट देने आये हैं। हे तात! लोक में ऐसा भी कोई होगा जिसे आप भेंट दोगे? पिता दृष्टि को नीचे करता है। पुत्रियो! जिसके हाथ में मैं आप को सोंपूँगा, उसे मुझे भेंट देना पड़ेगी। ओ हो, तात! नहीं, पिता श्री! ऐसा नहीं हो सकता कि मेरे निमित्त से मेरा स्वयंभू पिता तीर्थंकर झुके। यह कभी सम्भव नहीं है। मैं आज से अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती हूँ। धन्य हो उन बेटियों को जिन्होंने पिता की लाज के पीछे उसी क्षण इन्द्रियसुख को छोड़ दिया। उन बेटियों को धिक्कार हो जो माता-पिता की नाक काट कर दूसरे के घर भाग गई हो। सोचो, ये मोबाइल की डिबियाँ पकड़ा दीं, जाओ, बेटा! कॉलेज पढ़कर आओ। यानि बिगड़ कर आओ। ज्ञानी लोग डरते हैं। मुझे अपने ही घर की पता नहीं है तो किसकी क्या कहूँ। हे जीव! समाज का नेतृत्व ऐसे नहीं होगा। सम्भलकर रहना होगा और सम्हाल कर रखना होगा। समाज के नेताओं के ही घर में गड़बड़ हो जाये तो समाज का क्या होगा? भैया! थोड़ा समय निकालो। समाचार-पत्र और टी. वी. में समय क्यों नष्ट करते हो? थोड़ा समाज के घरों में भी जाना शुरू करो। वहाँ के वातावरण पर चर्चा करो और धर्मस्थान की रक्षा के भाव रखो। आप बेटे-बेटियों को भी धर्मस्थान स्वीकार करना आज से प्रारम्भ करो। ये प्रतिमायें, ये मन्दिर, ये जड़ धर्मस्थान हैं। इनकी रक्षा तभी है, जब चेतन धर्मस्थान सुरक्षित होंगे। अन्तरङ्ग में धर्मबुद्धि न होती, तो जगह-जगह के ये युवा न आते। आज भी युवा पीढ़ी बिगड़ी हुई नहीं है। आप उनको दिशा नहीं दे रहे हो। ये तो पानी की धार हैं। जिस ओर अँगुली कर दो, उसी ओर पानी जाता है। अँगुली नहीं करोगे तो जहाँ जाना होगा वहाँ चले जायेंगे। ऐसे-ही इन युवाओं को तुम मार्ग दिखा दो। आप धर्म का उपक्रम भी कर सकते हो। मार्ग नहीं दिखा रहे हो और कह रहे हो कि युवा बिगड़ रहे हैं। युवा नहीं बिगड़ रहे हैं, तुम्हारी बुद्धि बिगड़ रही है। तुम स्थान क्यों नहीं दे रहे हो? बुरा लगे तो लग जाने दो, जो है सो है। ज्ञानी को मरघट याद करता है, फिर भी उसने अभी चाबी नहीं दी। अन्तिम श्वास की अवस्था में भी हाय-हाय कर रहा है।

जिनसेन स्वामी के अनुसार आचार्य और श्रावक चलें, तो तुम्हारे जाने के बाद तुम्हें गाली नहीं मिलेगी। जिनसेन स्वामी ने लिखा है कि पिता को अपनी मृत्यु के पहले ही बेटों को पगड़ी बाँध देना चाहिये। आजकल उल्टी चर्चायें प्रारम्भ हो गई हैं, मरने के बाद पगड़ी बँधती है। यह आपकी समाज की निजी व्यवस्था है, आगम की व्यवस्था नहीं है। जिनसेन स्वामी कह रहे हैं कि बेटे की शादी होते ही उसे सम्पत्ति सौंप देना चाहिये, 'बेटा! ये तुम्हारी है और यह तुम्हारे लिये व्यवस्था दी जाती है।' उसको पगड़ी बाँध दो और स्वयं तनावमुक्त (टेंसन फ्री) होकर जिओ। वह बेटा तुमको समय-समय पर बुलायेगा। नहीं-तो मरने के बाद झगड़ा हो रहा है।

आपने सुना होगा, आचार्यमहाराज की समाधि के बाद तीन-तीन चार-चार आचार्य बनते हैं, फिर झगड़े होते हैं। अच्छा यह है कि आचार्यमहाराज अपने जीते-जी अपना पद देकर जायें, झगड़ा समाप्त हो जाये। मन में कोई विकल्प ही नहीं आयेंगे। यह आगम-व्यवस्था है। जिनवाणी में लिखा हुआ है। ज्ञानी गड़बड़ करके मत जाना, जीते-जी सौंप कर जाना। जिनसेन स्वामी का 'महापुराण' पढ़ लेना। निर्णय कर लेना, पहले ही व्यवस्था सौंपकर जाना। कहना, 'बेटा! तुझे अलग नहीं कर रहा हूँ, तुझे व्यवस्था सौंप रहा हूँ।' फिर देखो, तुम्हें बेटा होली दीपावली में बुलायेगा। यदि लड़-लड़ कर अलग हुआ, तो पड़ौसी को बुला लेगा, परन्तु तुम्हें देखना पसन्द नहीं करेगा।

अब मैं तुम्हें सब तो बता देता हूँ। समयसार भी सुना देता हूँ, श्रावकाचार भी सुना देता हूँ, फिर भी तुम्हारी प्रज्ञा पर न चढ़े तो जिनवाणी का दोष नहीं है, तुम्हारी प्रज्ञा का दोष है। आचार्य विरागसागर महाराज ने बड़ा उचित काम किया है। तनावमुक्त। विकल्पों से मुक्त रहो। गुरु को छोड़ करके, शिष्य दूसरे के घरों में भागे उसकी अपेक्षा शिष्य को स्वयं सम्हालो। यदि तुम्हारा बेटा कटोरा लिये दूसरे के घर में गया है, रोटी माँगने नहीं गया, लोग रोटी नहीं माँगते, राग माँगने गया था। कुछ लोग बाजार से बनी हुई साग खरीद कर लाते हैं, घर में आकर खाते हैं। इसका मतलब है कि इसकी माँ को अच्छी साग बनाते नहीं

बनती। अपने घर की साग स्वादिष्ट नहीं लग रही है, इसलिये बाजार से साग खरीदने गया है। जो शिष्य अपने संघ को छोड़ करके पर संघ में भाग रहा है, इसका मतलब है कि उसको घर की दाल पसन्द नहीं है। वास्तविकता समझो। **जो आचार्य दूसरे के शिष्य को रख ले, उसे परवस्तु हरण करने में अपहरण का दोष लगता है। जो बिना गुरु-आज्ञा के दूसरे के शिष्य को रखता है, वह अपहरण करता है।** अब जो है, सो है। जिनवाणी के सामने किसी की क्या क्यों नहीं चलती। तुम्हारी परिस्थितियाँ तुम जानो। 'गुरु करो जानके, पानी पिओ छानके।' जिसे किया है, फिर छोड़ने का नहीं। जो कुछ देखना, पहले देखो।

किसी कन्या ने वर चुन लिया, अब कहती है कि मैं छोड़ना चाहती हूँ, तो तू दुनियाँ में व्यभिचारिणी कहलायेगी। सच्चा पति होगा, जो बनने वाला होगा, वह कहेगा कि जब तू एक की नहीं हुई, तो मेरी क्या होगी? भाग यहाँ से। यह वस्तुस्वरूप है।

जिसको पर्याय की अनित्यता पर दृष्टि नहीं है, उसको मृत्यु का बोध नहीं है। जिसको मृत्यु का बोध नहीं है, उसे तत्त्व का बोध सम्भव ही नहीं है। मृत्यु-बोध ही वैराग्य को जीवित रख पायेगा। जिसको मृत्युबोध है, उसका ही चारित्र निर्मल पल पायेगा। जिसको मृत्यु का बोध नहीं है, उसका चारित्र निर्मल नहीं पल सकता; क्योंकि उसे पता ही नहीं है कि मैं मरूँगा। मैं तो जाऊँगा, आपकी आप जानो। मंच में जितने मुमुक्षु दिख रहे हैं, ये कोई भी मेरा साथ देने वाले नहीं हैं। मैं भी इनका साथ नहीं दूँगा, यह भी विश्वास रखना। ज्ञानी! अणु-अणु स्वतन्त्र है। सम्बन्ध तो सम्बन्ध है, सम्बन्ध स्वभाव नहीं है। ये आज से ही समझो। कोई समझाने आये तो क्या लाभ? मैं शिष्य की आत्मा नहीं हूँ और शिष्य मेरी आत्मा नहीं है। मात्र गुरु शिष्य हैं। जो यूँ कहते हैंकि शरीर दो हैं, आत्मा एक है। वे मिथ्यादृष्टि हैं। दो आत्मा कभी एक हो सकती हैं क्या? प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है। तुम सोच सकते हो, लेकिन होगा वही जो होना है। अभी तक यही सुना था कि पति कहता है मैं अपनी पत्नि के बिना नहीं रह सकता। महाराज! शरीर दो हैं, आत्मा एक है। हे अभागे रागी!

कण-कण स्वतन्त्र है, अणु-अणु स्वतन्त्र है। तू कहाँ दो को एक कर रहा है? ये भूल सुधार लेना, जीवन में कभी मत बोलना। नहीं-तो ईश्वर-अंश जैसे हो जाओगे। समय निकालो, समय मत निकालो। समय नहीं मिलेगा। समय निकालो समय के लिये, समय मत निकालो परसमय के लिये। यही 'समयसार' की देशना है।

सत्य है, माँ की गोदी में किसको आनन्द के आँसू नहीं गिरते? बालक बैठा हो, अचानक माँ निकल पड़े। बस, हे मेरे दु:खी बालको! आज माँ जिनवाणी सामने आयी है, आँखों में आँसू भी आ गये, तो वे भी शीतलता देंगे।

हे ज्ञानी! तू कहाँ भागता-फिरता है? कितना-सा जीवन बचा है? सुखमय जीवन जी। टेंसन में पता ही नहीं चलेगा कि मेरा जीवन था कि नहीं। जो जन्म लेता है, वह नियम से मरण को प्राप्त होता है। जगत् में जितने प्राणी हैं, वे नियम से ऊपर जायेंगे। इसलिये तू शोक मत कर। हे बुद्धिमान्! बन्धुओं के मरने पर रोना छोड़ो। यह कोई नई बात नहीं है, यह पुरानी बातें हैं। जन्म भी सत्य है, मरण भी सत्य है, तो असत्य के लिये क्यों रोते हो?

आप एक सूत्र याद रखो। कोई आया हो तो भी देखो, जानो, जाने दो। जा रहा हो तो देखो, जानो, जाने दो। किस-किस को रोओगे? आज से यही करना। माताओ! रोना बन्द। असातावेदनीय कर्म का आस्रव होता है, इसलिये आज से रोने का प्रत्याख्यान। कोई कहे कि कैसे मरे? ठीक तो है, कोई नयी बात है क्या? देखो, बचे हैं कि नहीं? जानो, नहीं बचे तो जाने दो। अपना काम करो। आप लोग बैठने तो जाओगे ही, परम्परा का निर्वाह तो करोगे।

'देखो, जानो, जाने दो।' यही तो भेदविज्ञान की दशा है।

जब पिता जी होते हैं, तब पानी नहीं पिलाते हैं, एक बार भी णमोकार सुनाने नहीं जाते हैं। जब चला गया, तब बोलता है 'अरहन्त नाम सत्य है, सिद्ध नाम सत्य है।' चला गया 'सत्य है।' सुना रहा असत्य को सत्य है। जब सत्य चला गया, तब असत्य को सत्य सुना रहे हो। अरे! इतने ही तुम पिता के भक्त थे तो जब वे जीवित थे, तब उनको णमोकार सुना देता तो कितना अच्छा होता?

आज से पिता जी से कहना कि मैं णमोकार सुनाता हूँ। यदि अभागा पिता होगा तो कहेगा 'मुझे ऊपर भेज रहा है क्या?'

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



स्वहित का नाशक कौन?

आत्मकार्यं परित्यज्य परकार्येषु यो रतः।
ममत्वरतचेतस्कः स्वहितं भ्रंशमेष्यति॥ 157 सा. स.॥

अन्वयार्थ- **यः** = जो कोई **आत्मकार्यं** = अपने आत्मा के हित का काम **परित्यज्य** = छोड़कर **ममत्वरतचेतस्कः** = चित्त में ममताभाव में लीन होकर **परकार्येषुरतः** = दूसरों के कार्यों में ही रत हो जाता है वह, **स्वहितं** = अपने आत्महित को **भ्रंशं एष्यति** = नाश कर देता है।

भावार्थ—जो कोई स्वकीय हितकार्य को छोड़कर, चित्त में ममत्व भाव में लीन होकर, दूसरों के कार्यों में ही रत हो जाता है, वह अपने हित को नष्ट कर देता है।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा की ध्रुव सत्ता की व्याख्या करके समझा रहे हैं, अहो मुमुक्षु! पर्याय की अनित्यता में अपने नित्यधर्मी को मत भूल जाओ। शरीर सुनिश्चित नष्ट होने वाला है। तत्त्वज्ञानीजीव आयु के निषेकों की सत्ता के काल में ही अपने आत्मा के हित का विचार कर लेता है। वह हित विचार-आचार में परिलक्षित होना प्रारम्भ हो जाता है। हित-विचार आचार में परिलक्षित न हो, यह सम्भव नहीं है। आत्महित उसी का निहित है, जिसका चारित्र दृष्टिगोचर हो रहा है। भिन्नता का ज्ञान ही विवेक ज्ञान है। विवेक से तात्पर्य है पृथक् कर देना, भिन्न कर लेना। अपने आपको अपने आप से भिन्न करके देखो। पर से भिन्न करना सरल है। पहले अपने आप को अपने शरीर से भिन्न करो। जितना विकल्प शरीर का है, उतना अन्य किसी का नहीं है। एक शरीर के राग में अनेक का नाश कर चुका है, अनेक शरीरधारी तेरे

शरीर के माध्यम से नष्ट हो चुके हैं।

जो थालियों में सज कर आ रहा है, कभी-कभी उनके बारे में भी सोच लिया करो। चाहे फल हो, चाहे मेवा हो, आखिर में वनस्पति का ही तो परिणमन है। जैनदर्शन की दृष्टि में वनस्पति भी एकेन्द्रिय जीव है। तुम्हारा जीवन नहीं चल सकता है, इसलिये आप सेवन कर रहे हो, लेकिन इतना विवेक तो रख सकते हो कि क्या भक्ष्य है क्या अभक्ष्य है? भक्ष्य का ही सेवन करना, अभक्ष्य का सेवन नहीं करना। जितना बन सके अल्प-से-अल्प का सेवन करना, अधिक का सेवन नहीं करना। उन जीवों के बहकावे में कभी मत आ जाना जो यूँ कह रहे हों कि मैं जीवन जीने के लिये खा रहा हूँ, आप जैनी भी जीवन जीने के लिये खा रहे हो। आप वनस्पति का सेवन कर रहे हो तो आपके भोजन में अनेक वनस्पतियों का चुनाव होता है। मैं एक विशाल प्राणी का बध करके अनेक का बध नहीं कर रहा हूँ। एक का घात करके अनेक का पेट भर रहा हूँ। आपको हिंसा अधिक हुई, कि मुझे हिंसा अधिक हुई? ऐसा कुतर्क किसी की बुद्धि में जन्म ले सकता है। मैंने तो एक की हिंसा की है, आप तो अनेक की कर रहे हो, इसलिये एक पंचेन्द्रिय का घात करना अच्छा है अनेक वनस्पति के घात करने की अपेक्षा। ऐसे अज्ञानी मूढ़मति जीव, जिनकी विवेकबुद्धि को हरण कर लिया गया है, वे ऐसा कथन कर रहे हैं कि एक पंचेन्द्रिय का घात करके अनेकों की रक्षा करना अच्छा है, अनेकों का घात करके एक की रक्षा करना अच्छा नहीं है। जो पंचेन्द्रिय जीव के घात का विचार कर रहा है, उस जीव का कथन परिपूर्ण असत्य है। एकेन्द्रिय जीव की माँस संज्ञा नहीं है, जबकि दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीव की माँस संज्ञा है। वनस्पति के दो भेद किये हैं अप्रतिष्ठित सप्रतिष्ठित। अप्रतिष्ठित, वनस्पति भक्ष्य है, क्योंकि उसमें अनन्तकाय जीव नहीं हो रहे हैं; परन्तु जिसमें पंचेन्द्रिय जीव का घात किया है, उसके दस प्राण थे, दस प्राण से प्राणी का घात किया है, उसको कितनी वेदना दी गई है। जिस पंचेन्द्रिय का घात किया था, उस जीव का जो मृतक शरीर बचा हुआ है, उसमें प्रतिक्षण पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न हो रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं। पंचेन्द्रिय जीव का घात करने वाला प्रतिक्षण

अनन्त जीवों का घात कर रहा है, इसलिये किसी भी अपेक्षा से यह कथन सम्यक् नहीं होता है कि में एक का घात करके अनेकों की रक्षा करूँगा। वह एक का घातक अनेकों का ही घातक है चाहे रक्त हो, चाहे पीव, माँस आदि संज्ञायें हों, ये सारे-के-सारे अनन्त-जीवों के पिण्ड हैं। जीवन जीने के लिये जो जीवनशैली है, उस शैली को समझने के पूर्व, मुख में रखने के पहले, मुख से पूछ लेना कि यह क्या है?

मित्रो! धर्म की रक्षा करना है, आत्मा की रक्षा करना है, तो मुख में रखने के पहले मुख से पूछ लेना कि क्या है? आज बाजार में पता नहीं क्या-क्या सामग्रियाँ आ रही हैं और जिनका अहिंसा का व्रत है ऐसे जीवों के व्रत भंग कराने में हम चूकते नहीं हैं। तुम्हारा वह कुल है जिसमें सुबह की रोटी शाम को नहीं खायी जाती है। इसलिये नहीं कि वह बासी हो गई है, इसलिये कि उसमें जीवाणु उत्पन्न हो चुके हैं। जिस द्रव्य में फफूँद आ चुकी है, जिस द्रव्य में लालिमा कालिमा हरित वर्ण आ चुका है, वह अनन्तकाय हो चुका है। जीवन जीने के राग में अनन्त जीवों का जीवन मत ग्रहण कर लेना। जिस जीव को अपना वर्तमान मात्र का जीवन दिख रहा है कि मुझे तो जीना है, दार्शनिक दृष्टि से देखा जाये तो वह जैनत्व से शून्य हो चुका है, क्षत्रियत्व से शून्य हो चुका है, ब्राह्मणत्व से शून्य हो चुका है। उससे कहो कि ये छोड़ दो, तो वह कहता है कि मैं जिऊँगा कैसे? ओ हो! यदि ज्ञानी के मन में यह भाव आ जाये कि मैं नहीं छोड़ सकता हूँ, यदि छोड़ दूँगा तो मर जाऊँगा, हे जीव! जिसे तू मरण कह रहा है, वह तो परिणमन है। पर तेरा मरण उस दिन हो जायेगा, जिस दिन तू अहिंसा का व्रत छोड़ देगा। जिसे तू मरण कह रहा है, वह तो एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन है, जीर्ण शरीर से नवीन शरीर की प्राप्ति है। मरण से डरते क्यों हो? मरने से कभी नहीं डरना चाहिये। मरण परिणमन है। वस्त्र के जीर्ण होने पर नवीन वस्त्र धारण करते हो। यदि वस्त्र जीर्ण हो जाये तो तू कहता है कि मुझे नये वस्त्र चाहिये। तो जब तू नवीन वस्त्र पहनता है, तो रोकर पहनता है कि मुस्करा कर पहनता है? मुस्करा कर पहनता है। ऐसे ही इन वृद्धों से कह देना कि आपने

ही सिखाया है कि बेटा! नये कपड़े आये हैं, मुस्करा कर पहनो, पुराने छोड़ो। ऐसे ही दादा से कहना कि आप जा रहे हैं तो रोना-बिलखना मत। पुराना वस्त्र छोड़ो, नया धारण करो। मरण कोई दु:ख नहीं है। मरना तो उपकारी है। सड़े-गले शरीर में रहते-रहते कष्ट होने लगा है, अब नवीन शरीर को धारण करो। ये परिणमन है। सत्यता यह है, ऐसे अज्ञानी जीव भी मिल जायेंगे कि नये कपड़े भी मिल जाये तो भी पुरानों को ही देखता है, क्योंकि पुराने से उसे राग हो चुका है, उनको छोड़ने का मन नहीं करता है, क्योंकि वह मेरी शादी के वस्त्र हैं। ऐसे भी अज्ञानी बैठे होंगे जो कहते हैं कि यह मेरी शादी की पोषाक है। यह नहीं कहता कि मेरी बरबादी का भेष है। उस बरबादी को याद करने के लिये तू उसे रखे हुये है, जबकि उसको हटा देना चाहिये था। नयी याद करने के लिये देख रहा है। जैसे वस्त्रों के बदलने पर बालक भी मुसकरा लेते हैं, ऐसे ही तत्त्वज्ञानी जीव जब मृत्यु का काल नजदीक आता है तो बिलखता नहीं है। बल्कि मैंने सुना है कि जो समझदार लोग होते हैं, दिन भी देखते हैं कि कौन-से दिन कपड़ा पहनना है। मुहूर्त भी देख लेता है। और तो क्या, जब नवीन वस्त्र ध ाारण करता है, तो कुछ लोग नौ बार णमोकार पढ़ लेते हैं, फिर वस्त्र पहनते हैं। कुछ रहस्य है। जब आप नवीन वस्त्र धारण करने को कायोत्सर्ग करते हो कि मेरा वस्त्र लम्बे समय तक चले, कोई परेशानी न आये, वे सारे विकल्प तेरे अन्दर सता रहे थे, इसलिये कायोत्सर्ग करके पहन रहा था। मेरे मित्रो! ऐसे ही इस पर्याय के पुराने होने पर हाय-हाय मत करना, णमोकार पढ़ने बैठ जाना, उसका नाम समाधिमरण होगा, फिर नया वस्त्र तुझे मिलेगा। वस्त्र बदला जा रहा है। इसका नाम सल्लेखना मरण होगा।

ये तेरहवीं में खाना छोड़ो। **'श्राद्धं न भुंजीत'** कातंत्र में लिखा है। ये कैसे पापी लोग हैं कि किसी के घर में मृत्यु हो गई, दु:खमय वातावरण चल रहा है और ऐसे अभागे हैं कि मरे का खाने जा रहे हैं। श्राद्धं न भुंजीत। किसी के घर में मृत्यु हो जाये, उसके यहाँ तेरहवीं खाने नहीं जाना। श्राद्ध का सेवन नहीं करना है, तो क्या करना चाहिये?

जब बालक का जन्म होता है, तो लोक में एक परम्परा है, उसकी अन्न-प्रासन विधि होती है। उस बच्चे को अच्छे दिन में उसके मुख में अनाज रखते हैं, तो जगह-जगह के लोगों को बुला लिया जाता है जिसके परिवार में जैसी शक्ति हो। बड़ा उत्साह करते हैं कि मेरा बेटा अन्न ग्रहण करेगा। मेरे बेटो! वह महोत्सव तो माता-पिता ने मनवा लिया, अब उन माता-पिता से मेरा कहना है कि जैसे तुमने अन्न-प्रासन के दिन भीड़ जोड़ी थी, वैसे-ही अन्नत्याग के दिन और जोड़िये। अब मेरे जाने का समय हो गया है, मैं अन्न का त्याग करता हूँ। तेरहवीं नहीं करना, त्याग करने के दिन भीड़ जोड़ना कि अब मेरा मृत्युमहोत्सव का दिन आ रहा है। धन्य हैं वे योगीश्वर। अन्न-प्रासन की भीड़ तो दुनियाँ जोड़ती है, पर अन्न त्याग के लिये जो घोषणा करते हैं, वे वीतरागी योगी होते हैं। मृत्यु महोत्सव, यह निर्णय आज से ही करना है। अपने परिवार में जाकर बोल देना। **अपने बेटे की माँ से कहना कि सुन, जब मैं खाना खाने के योग्य हुआ था, तब मेरे माता-पिता ने उत्साह मनाया था, मेरी अन्न-प्रासन क्रिया कराई थी। यदि तू मेरी सच्ची पत्नि है, धर्मपत्नि है, तो इतना ध्यान रखना कि वह विधि तो माता-पिता के हाथ में थी, अब ये विधि तेरे हाथ में है। जब मेरी अन्तिम श्वास निकले, तो मेरी अन्नत्याग की क्रिया करा देना। नवीन वस्त्र धारण के समय तुम उत्साह मना रहे थे, तो आज भी उत्साह के साथ यूँ कहना कि मैं नवीन शरीर धारण करने जा रहा हूँ।**

इस सड़े-गले औदारिक शरीर में पीड़ा-ही-पीड़ा है। कभी सिर दर्द करता है, कभी कमर दर्द करती है। कहीं साता नहीं है। इस शरीर में तो दर्द-ही-दर्द भरा हुआ है। एक-एक अंगुल में छियानवें-छियानवें रोग हैं। इस रोग-पिण्ड-भूत शरीर को निरोग करने का विचार छोड़ दो। यदि तेरा निरोगता का लक्ष्य है, तो जन्म-जरा-मृत्यु इन तीन रोगों से मुक्त हो जाओ। उसके लिये तो तीन ही गोलियाँ हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, और-कोई औषधि नहीं है। जन्म जरा मृत्यु के रोग से मुक्त होना है तो उसके लिये रत्नत्रय औषधि ही काम करेगी। जो जन्म लेता है, उसका मरना नियत है। लोक की ऐसी विषमता है कि सत्य को स्वीकार

करने में पसीना छूटता है। यदि आज नया वस्त्र सिल कर आये और आप आज पहनना प्रारम्भ कर दें और नगर-नगर के लोगों को बुला लें, तब कोई कह दे 'ज्ञानी! यह फट जायेंगे।' तो आप अपना चेहरा बिगाड़ोगे। आप कहोगे कि मैंने मांगलिक कार्य के लिये बुलाया था, आप यूँ कह रहे हो कि फट जायेंगे। आज ही तुम ऐसे शब्द क्यों बोल रहे हो? क्या मालूम लोगों को सत्य सुनने में क्यों परेशानी आती है? क्या उस जीव ने सत्य नहीं बोला था? मैं मानता हूँ कि आपकी दृष्टि में उसने समय पर शब्द नहीं बोला, लेकिन बोला तो सत्य ही है कि फट जायेंगे। यदि तूने धारण करते ही सोच लिया कि फट जायेंगे, तो विश्वास रखना, पहनते-पहनते तुझे इतना राग नहीं सतायेगा। तुझे प्रथम दिन ही मालूम था कि ये भी नष्ट हो जायेंगे। ऐसे-ही मेरे मित्रो! जिस दिन जन्म होता है, उस दिन ही निर्णय कर लिया करो कि मरण हो जायेगा। आपको पता होना चाहिये कि जन्म लेते-लेते मरण होता है। अज्ञानी जन्ममहोत्सव मनाता है, ज्ञानी वहाँ मरण को भी देख रहा है।

यदि किसी का बालक एक वर्ष का हो चुका है, आप उसको एक वर्ष का गिन रहे हो, जबकि आगम उसको एक वर्ष नौ माह का गिनेगा। गर्भ का समय भी मनुष्यपर्याय का है। करणानुयोग 'धवला' जी से बोलो। आपने जो कुण्डली बनवाई है, वह एक वर्ष के जन्म की बनवायी है, आप भूल कहाँ कर गये? इन नौ महीने की कुण्डली क्यों नहीं बनवाई? इसलिये तुम्हारी सारी-की-सारी कुण्डलियाँ झूठी हो जाती हैं। क्योंकि सही पता नहीं होता है। सत्य कुण्डली वह होती है जिस दिन गर्भाधान होता है। उस दिन की कुण्डली बनना चाहिये तो उसकी सही कुण्डली निकलेगी। ज्योतिषी ने बताया था कि साठ साल जियेगा, वह उनसठ साल में ही चला गया, तो आप ज्योतिषी को झूठा बता रहे थे। अरे! आपने वे नौ महीने क्यों नहीं जोड़े? आप जन्मदिन मना रहे थे, उसके उतने आयुकर्म के निषेक नष्ट हो चुके थे। जन्म लेते-लेते भी मृत्यु चल रही थी।

वस्त्र पहनते-पहनते जीर्ण हो रहे थे। आप यह बताओ कि नये वस्त्र पुराने किस दिन हुये? अर्थपर्याय का परिणमन अगुरुलघु का परिणमन प्रतिक्षण हो रहा

है। ऐसा कौन-सा क्षण था जिस समय वस्त्र पुराना नहीं हो रहा था? ऐसा कौन-सा क्षण था, जिस समय मृत्यु नहीं हो रही थी। आवीचिमरण प्रतिक्षण चल रहा था, आयु के निषेक घट रहे थे। तुम बूढ़ेपन को देख रहे हो, युवा में ही बुढ़ापा देख लेते तो बुढ़ापे में रोना न पड़ता। मरण तो हो रहा था, प्रतिक्षण हो रहा था, पर जीव समझ नहीं पा रहा था। यह राग की महिमा थी, मोह की महिमा थी कि राग और मोह के वश जीव अन्धा हो गया था। सत्य को न समझ जाऊँ, इसलिये जीव नाना प्रपञ्च करता है, अपने आपको व्यस्त रखता है। यदि जीव सत्य को समझ जाये, तो वह संसार के सुखों में लिप्त हो ही नहीं सकता है। सत्य को समझना नहीं चाहता है। नाश होने वाले को अविनाशी बनाने का विचार कर रहा है, जैनत्व से शून्य हो रहा है। जिस-जिसको पर्याय की रक्षा का विकल्प है, जो मात्र वर्तमान की पर्याय के सुख को ही सर्वस्व मानता है, वह चार्वाक दर्शन से युक्त है। क्यों? मैं तो वर्तमान की पर्याय के सुख का आनन्द लूटता हूँ। हे जीव! तू पर्याय को ही द्रव्य मान रहा है क्या? यदि पर्याय को द्रव्य मानेगा, तो मिथ्यादृष्टि। पर्याय नशने वाली है, द्रव्य नशनेवाला नहीं है। आप जो इस पर्याय में पुण्य-पाप कर रहे हो, उसका फल द्रव्य को अगली पर्याय में भोगना पड़ेगा।

जब भी उपदेश की भावना हृदय में जन्म ले, तो सबसे पहले उपदेश देना 'त्रैकाल्यं'। आज की युवा पीढ़ी को आप आस्था के साथ देव के पास ला सकते हो, गुरु के पास ला सकते हो, शास्त्र के पास ला सकते हो मात्र अर्घ्य चढ़वाने के लिये। आप हाथ पकड़के उससे अर्घ्य चढ़वा दोगे, लेकिन विश्वास रखना, उसको जैनत्व के पास कैसे लाओगे? वह कह रहा है कि मैं जिस कुल में जन्मा हूँ, आनन्द के साथ जिऊँगा। में स्वर्ग, नरक, मोक्ष नहीं जानता। ज्ञानी! मुझे मालूम नहीं था कि मेरे कुल में इस चार्वाकी ने जन्म कैसे ले लिया? जो समाज किसी नगर में स्थाई निवास करती है, उस समाज का धर्मस्थानों पर विशेष राग रहता है, इसकी एक ईंट खिसकने पर उसकी दृष्टि जाती है, लेकिन सर्विस वाला दर्शन करने तो जा सकता है, परन्तु दीवाल पर उसकी दृष्टि जाये, कोई निश्चित नहीं

है। उसका लक्ष्य क्या रहता है? भाई! मैं यहाँ का नहीं हूँ, मैं तो चला जाऊँगा। महानगरों में धर्मशून्यता क्यों नजर आती है? स्थाई लोग कम होने से, अस्थाई की भीड़ होने से। वो आते तो हैं, परन्तु इतना मात्र कि गाड़ी में बैठकर आये और चले गये। जैसे सर्विस में ड्यूटी देने गये थे, वैसे मन्दिर में ड्यूटी देकर चले गये। उनको मन्दिर से कोई विशेष प्रयोजन नहीं है। जो व्यक्ति यह समझ रहा है कि मैं तो यहीं का हूँ, यदि मैं ही नहीं देखूँगा तो जिनालय की रक्षा कैसे होगी? उस व्यक्ति के अन्दर अन्य समाज के प्रति भी राग रहेगा। धर्मस्थानों में धर्मात्मा को देखकर राग बढ़ेगा। त्यागी-व्रती आयेंगे तो उनकी भी सेवा करेगा। मैं नहीं करूँगा तो कौन करेगा, समाज में मेरी हँसी हो जायेगी। सर्विस वाला कहेगा कि मैं तो बाहर का आदमी हूँ। ऐसे-ही जिस व्यक्ति ने मान लिया है कि मैं पर्याय में आया हूँ, पर्याय तक ही हूँ, वह कभी धर्म का पालन नहीं करेगा, वह तो मात्र पर्याय का सुख भोगेगा। जिसको यह मालूम है कि मेरा द्रव्य स्थाई है, उसे धर्म से प्रयोजन होगा।

ज्ञानियो! मकान तो बदल सकते हैं, नगर बदल सकते हैं, भवन बदल सकता है, मोहल्ला बदल सकता है, पर द्रव्य नहीं बदलता। जिसको द्रव्य पर दृष्टि है, वह धर्म पर लक्ष्य जरूर ले जायेगा। क्योंकि उसे मालूम है कि यहाँ कर्म करूँगा तो अगली पर्याय में भोगना पड़ जायेगा। आज की युवा पीढ़ी को शरीर की ओर इंगित न करके उससे इतना पूछना चाहिये, बेटा! तू सत्य बताना कि तेरा शरीर है, कि तू शरीर है? आपका शरीर है, इसका मतलब आप शरीर तो नहीं हो? नहीं। आप ऐसा सोचकर बोल रहे हो, कि समझ कर बोल रहे हो? सोचा हुआ है। क्या ऐसा अनुभव में आता है? आज बड़े-बड़े अनुष्ठान हो रहे हैं, मन्दिर/तीर्थ बन रहे हैं, लेकिन निज के तीर्थ का ज्ञान ही नहीं दिया जा रहा है। कोई सत्य को कहे तो कहा जाता है कि यह समयसार क्यों?

भीड़ से सत्य का निर्णय नहीं होता है। सत्य एक होता है, भीड़ सत्य नहीं होती। कल्पना करो, जगत् कितना छला जा रहा है कि भीड़ से चुनाव करवा

लो, वोट डलवा लो। भीड़ सत्य का निर्णायक नहीं होती है। भीड़ से व्यक्ति चुनकर आ सकता है, पर भीड़ से सत्य चुनकर नहीं आता है। सत्य तो सत्य ही होता है।

भगवान् महावीर स्वामी के सामने पाँच लोग और थे, जो अपने आप को तीर्थंकर मानते थे। महावीर ने कभी अपनेआप को तीर्थंकर नहीं कहा। जिस दिन कैवल्य प्रकट हुआ, उस दिन उन चार तीर्थंकरों का पता नहीं चला कि कहाँ गये? पाँच का बहुमत होने पर भी सत्य नहीं था। विश्व में जैनियों की संख्या कितनी है? अल्प। जैनियों में भी सम्यग्दृष्टि कितने हैं? और भी अल्प।

मित्रो! इस बात की वेदना (विकल्प) कभी मत करना कि मेरी संख्या कम है। सत्य कम ही होता है। जितने पान के ठेले हैं, उतनी जवाहरात की दुकानें नहीं हैं। जितनी साग-भाजी की दुकानें हैं, उतनी सोने-चाँदी की नहीं हैं। हे ज्ञानियो! जो अर्घ्यवान् वस्तु होती है, कीमती वस्तु होती है, उसकी संख्या कम होती है। ज्ञानियो! एक छोटे से हीरे की इतनी कीमत है कि पचासों पान के ठेलों को खरीदा जा सकता है। कोई सर्वज्ञ की बात को झूठ बोल सकता है और टी. वी. पेपर में जो आ जाये उसे सत्य मान लेता है। क्या टी. वी./पेपर में आने से वह भगवान् हो जायेगा? जिसके अन्दर भगवत्ता प्रकट होगी, वह बिना टी. वी. के, बिना पेपरों के तीनलोक में आनन्द प्रकट करा देता है, उसका नाम भगवान् होता है।

अपरिचित होकर गये थे। किसी को मालूम नहीं था कि इस झाड़ी में कौन बैठा हुआ है? वे वीतरागी भगवन्त एकान्त में बैठे हुये थे। जैसे-ही कैवल्य प्रकट हुआ, सौधर्म इन्द्र दौड़कर आ गया, तीनलोक में कैवल्य का जयनाद हो गया। सत्य छुपा होता है, लेकिन जब प्रकट होता है तब पूरे विश्व में चमकता है। **बीज को जमीन में डाला जाता है। वह मिट्टी के अन्दर चला जाता है, तो अंकुरित हो जाता है। बीज कहीं यह कहे कि मैं सबको दिखूँगा, तो चिड़िया उसे चुग जायेगी। जो साधक लोक में दिखाने के विकल्प में आते हैं, उनको विषय-कषाय की चिड़िया चुग जायेगी। जो गुरु के अनुशासन में छिपे रहते**

हैं, फिर उनका अंकुरण होता है तो पूरे वृक्ष बनकर आते हैं, तो सारे विश्व को दाने देता है। बीज मिट्टी में नहीं छुपेगा तो फल कैसे प्रकट होंगे? पहले छुपाकर रखो, वही प्रकट होता है। चार कह रहे हैं कि मैं शरीर हूँ, एक कह रहा है कि शरीर मेरा है। ज्ञानी! माना कि तेरी अँगुली में चींटी ने काट लिया। आप अपने मित्र से क्या बोलोगे? 'मेरी' अँगुली में, चींटी ने, काट लिया। सम्बन्ध जोड़ रहा है। ऐसा कभी नहीं बोलता कि मैं में चींटी ने काट लिया। ज्ञानी को बुखार आ गया तो तू गर्म है कि तेरा शरीर गर्म है? शरीर गर्म है, तू गर्म नहीं है। इसका तात्पर्य क्या हुआ? शरीर कोई अन्य वस्तु है और जो अनुभव कर रहा है, वह कोई अन्य वस्तु है। चींटी ने तेरी अँगुली को काटा, कि तुझे? दर्द आपको ही हो रहा है। आत्मा के प्रदेश अँगुली में हैं, इसलिये आपको वहाँ कष्ट हो रहा है। परन्तु ध्यान रखना, अँगुली में चींटी ने काटा है, तेरे में चींटी ने नहीं काटा। यदि तू शरीर हो गया, तो जब तेरी मृत्यु होती है तो शरीर तो यहीं रह जाता है, जब लोग शरीर के संस्कार करने जाते हैं, यदि मैं शरीर हो गया, तो मरण किसका हुआ? शरीर के संस्कार के साथ मैं भी जल जाऊँगा, तो अगला भव क्या होगा?

मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मैं नहीं हूँ। शरीर भिन्न है, जीव भिन्न है। शरीर में आत्मा अवश्य है, पर आत्मा शरीर नहीं है। प्रकाश विद्युत में है, कि बल्ब में? बल्ब में है। तो बिजली चली जाये, फिर भी जलना चाहिये? बल्ब में जो प्रकाश दिख रहा है, वह विद्युत का है। बल्ब प्रकाश का उद्घाटन तो कर सकते हैं, लेकिन बल्ब प्रकाशित नहीं होते हैं। ऐसे ही शरीर से आत्मा का ज्ञान तो हो रहा है, लेकिन आत्मा 'शरीर' नहीं है, शरीर 'आत्मा' नहीं है। जब तक आत्मा शरीर में है, तब तक शरीर कार्य कर रहा है। जैसे बिजली चली जाये तो बल्ब का जलना बन्द, ऐसे ही आत्मा चली जाये तो शरीर का हलन-चलन बन्द। देव की पूजा करता रहेगा, आरती उतारता रहेगा, तब भी सम्यग्दर्शन नहीं है, क्योंकि तू शरीर को आत्मा मान रहा है और आत्मा को शरीर मान रहा है। आज से क्या बोलोगे? शरीर मेरा है, मैं शरीर नहीं हूँ। तू वस्त्रों के बीच में है, कि वस्त्र

तेरे बीच में है? वस्त्र फट जायेंगे तो तेरा शरीर नष्ट नहीं होता है, ऐसे ही शरीर के नष्ट होने पर आत्मा नष्ट नहीं होती है। शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है। सत्य भले एक ही हो, लेकिन सत्य तो सत्य होता है। जो है, सो है। ये शरीर प्राप्त हुआ है, लेकिन आत्मा प्राप्त ही है। द्रव्य शाश्वत् है, पर्याय अशाश्वत् है। द्रव्य अहेतुक है, द्रव्य त्रैकालिक है।

लोग कहते हैं कि कहानी/चुटकुलों में आनन्द आता है, लेकिन मैं कहता हूँ कि भूतार्थ सम्यक् तत्त्व उपदेश है, उस जिनवाणी में आनन्द आता है। भो ज्ञानियो! मैं शरीर नहीं हूँ, मैं शरीर में हूँ। शरीर तो शरीर है। आत्मा तो आत्मा है। जो जन्म लेता है, उसका मरण नियम से होता है। ज्ञानियो! किसी के मरने पर शोक मत करो। दादा! नातियों से कह देना कि मैं चला जाऊँ तो रोना मत। यदि तुमको रोना आता है तो अभी मेरी सेवा कर लो। व्यवहार के लिये नहीं रोना पड़ता, राग के लिये रोना पड़ता है। व्यवहार के लिये रोने वाला ढोंगी है।

हे मुमुक्षु! न पर के देह के कार्य में लिप्त हो, न अपनी देह के कार्य में लिप्त हो। यदि आपको कोई कार्य दिखे, तो अपनी आत्मा का हित करो। मूढ़ जीव निज आत्मा के कार्य को छोड़ करके दूसरों को देखता है कि कौन क्या कर रहा है? छोड़ सब कि कौन क्या कर रहा है? जो है, सो है। पर के ममत्व में लीन होकर अपने हित को नष्ट कर दिया। हे साधको! स्वहित करो, शक्ति है तो परहित भी करो, लेकिन श्रेष्ठ है कि स्वहित ही करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"स्वहित का स्वरूप"

स्वहितं तु भवेज्ज्ञानं चारित्रं दर्शनं तथा।
तपः संरक्षणं चैव सर्वविद्धिस्तदुच्यते॥158 सा.स.॥

अन्वयार्थ-स्वहितं तु = अपने आत्मा का हित तो, **दर्शनं तथा, ज्ञानं चारित्रं चैव तपः संरक्षणं** = सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा तप की रक्षा से **भवेत्** = है **तत्** = इस बात को **सर्वविद्धिः उच्यते** = सर्वज्ञों ने कहा है।

भावार्थ—केवलज्ञानी भगवान् ने कहा है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और तप के संरक्षण से आत्मा का हित होता है।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थंकर भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी में पर्याय की अनित्यता और द्रव्य की नित्यता का व्याख्यान कर रहे हैं। जहाँ द्रव्य पर दृष्टि है, वहाँ न हर्ष है न विषाद है। जो सत् है, वही त्रैकालिक है। त्रैकालिक सत्य की जो सत्ता है, पदार्थ की जो सत्ता है, उससे परे होकरके जो चिन्तन प्रारम्भ होता है, तो जीव के अन्तस् में नानत्व प्रारम्भ होता है। 'मैं सुखी, मैं दुःखी' ये जो कल्पनायें हैं, वे पर्याय सापेक्ष हैं। पर्याय को गौण करके देखा जाये तो द्रव्य की द्रव्यता अस्तित्वभूत है। द्रव्य दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है, इसलिये व्यक्ति पर्याय को ही र्स्वस्व मान बैठा है। जो दृष्टिगोचर हो रहा है, उसे देखकरके बन्ध में लिप्त हो रहा है। 'मेरे गये, मैं गया।' न तेरे गये, न तू गया। यह त्रैकालिक दृष्टि ध्यान से समझना। मेरे न जायें, मैं न जाऊँ। मेरे गये थे, मैं गया था। मेरे शरीर का नाश न हो, मेरों के शरीर का नाश न हो। मेरे नश न जायें, मैं नश न जाऊँ। ऐसे भाव ही कर सकता है, लेकिन किसी की रक्षा फिर भी नहीं कर सकता। मेरी पर्याय ही स्थिर नहीं है तो मेरों की पर्याय स्थिर कैसे? अपनी पर्याय के

वियोग में तो रो नहीं पायेगा, लेकिन पर की पर्याय के वियोग में रो रहा है। मित्र! पर के शरीर को तू सुरक्षित रख नहीं सकता है। जब निज के शरीर को सुरक्षित नहीं किया जा सकता है, तो पर के शरीर को कैसे सुरक्षित किया जा सकता है? संसार में जितना क्लेश है, विषाद है, अशान्ति है, सब पर्यायदृष्टि है। पर्याय की रक्षा के लिये हम पुरुषार्थ कर रहे हैं। जैसे प्राणियों की पर्याय नाश न हो, उसका आपके अन्दर पुरुषार्थ चल रहा है, ऐसे ही जीव के अशुभ परिणाम उत्पन्न न हो सकें, शुभ परिणामों का नाश न हो, यदि यह पुरुषार्थ हो जाये, तो जगत् में कोई किसी की पर्याय के नाश का विचार ही नहीं कर सकता। ज्ञानी! गहरे में प्रवेश करो।

ज्ञानी का प्रयास है कि जीवों की रक्षा हो। अहिंसा परमब्रह्म है। उस परम ब्रह्म की सिद्धि करना है तो एक गहरा सूत्र है। जीवों की रक्षा के भाव तो आपके व्यवहार में आ रहे हैं, आना ही चाहिये, पर इस बात का ध्यान रखना, कि जो जीव का घात करने जा रहा है, उसके प्रति भी करुणा आना चाहिये। अब ध्यान से सुनना, **जो धर्म करने जा रहा है, उस पर तो दुनियाँ को करुणा आती है; लेकिन जो अधर्म करने जा रहा है उस पर करुणा करने वाले लोग जगत् में बहुत कम हैं। धर्म की रक्षा, शासन की रक्षा तभी सम्भव है जब तुम पापियों पर करुणा करोगे।** इस विषय को समझने के लिये आपको दार्शनिक चिन्तन चाहिये। आज सर्वत्र देह की करुणा के लिये दुनियाँ खड़ी हुई है, लेकिन भावों की करुणा नहीं हो पा रही है लोगों के अन्दर। इसलिये धर्म पर उपसर्ग हो रहे हैं। जागरण की आवश्यकता है, सोते-सोते बैठे रहने की आवश्यकता नहीं है। अज्ञानियों पर भी करुणा करने की आवश्यकता है। वह करुणा कैसे होगी? इस विद्या को आज समझना है। लोगों की यह दृष्टि है कि किसी ने कोई उपसर्ग किया है, यदि आप उस पर उपसर्ग करने का विचार करें, तो आप धर्मात्मा कैसे? उपसर्गकर्त्ता पर उपसर्ग मत करना; पर किसी पर उपसर्ग न हो, ऐसा उपक्रम करना है।

सारे ब्रह्माण्ड में आज तक का इतिहास खोल लेना, **हिंसा से कभी हिंसा की शान्ति नहीं हुई है। रक्त से दूषित वस्त्र कभी रक्त से शुद्ध नहीं होता। चित्त की अपवित्रता से कभी चित्तशुद्धि नहीं होती। हम हिंसा को हिंसा से दूर करना चाह रहे हैं। हिंसा से हिंसा दूर नहीं होगी, अहिंसा से हिंसा दूर होगी। शासन की रक्षा, धर्म की रक्षा, आयतनों की रक्षा आपकी एकता के बल पर ही होगी। अखण्डता से ही होगी, खण्ड-खण्ड से कभी सम्भव नहीं।** भैया! पड़ोसी के घर में आग लग गई और ज्ञानी मुस्करा रहा है। सामने वाले का घर जल रहा है, मेरा घर तो सुरक्षित है। मेरे मित्र! तुझे मालूम होना चाहिये कि दीवाल से दीवाल तेरी ही लगी है। जब हवा चलेगी, तब सबसे पहले आग किसकी ओर दौड़ेगी? यदि पड़ौसी के घर की आग तू नहीं बुझा सका और यूँ कहता रहा कि मैं तो सुरक्षित हूँ, ज्ञानी! तुम सुरक्षित नहीं हो, क्योंकि हवा इसी ओर है। ज्ञानियो! वस्तुस्वभाव को समझो। पुनः इतिहास न दोहराया जाये, इसलिए अभी सुरक्षित होने की आवश्कता है।

खजुराहो देखो, चाहे गोपाचल देखो, जब-जब गोपाचल जाते हैं तो शरीर और आत्मा में परिस्पन्दन होता है। एक वे पुण्यात्मा जीव हुये जिन्होंने कोटि-कोटि द्रव्य को न्यौछावर करके ये बिम्ब स्थापित किये और उस पापी के परिणामों को देखो जिसने उन वीतरागी बिम्बों के सिर को निकाल कर फेंक दिया हो। फिर भी वे प्रतिमायें कह रही हैं कि हमारे बुजुर्गों ने मूँग की दाल का पानी पीकर रह लिया है, लेकिन तीर्थंकर के शासन को नीचे नहीं आने दिया। गरीबी के दिन देख लिये होंगे, परन्तु धर्म को हीन होकर नहीं देखा। किसी भी नगर में चले जाना, भारत की भूमि में जब भी कोई प्रतिमा निकलती है तो तीर्थंकर अरहन्त की निकलती है। इस भारत की भूमि के कण-कण में जैनत्व निहित था। करुणा भी करना है, पर्यायों की रक्षा भी करना है तो पर्यायों पर दया नहीं करना है, परिणामों पर दया करना है। स्थिर होकर समझो।

जैनाचार्यों ने कभी अस्त्र शस्त्र उठाने की बात नहीं की है। पाँच सौ शिकारी कुत्तों को भी कीलित होते देखा है। राजा श्रेणिक ने पाँच सौ श्वान छोड़ दिये

थे, लेकिन योगी ने कभी आँख उठाकर भी नहीं देखा था। श्वान आवाज करते हुये जा रहे थे, जैसे ही वीतरागी तपोधन के चरणों के पास पहुँचते हैं, वे श्वान भी शान्त हो गये। यह किसकी सामर्थ्य थी? ये शक्ति के संघात की सामर्थ्य थी, यह विशुद्धि के संघात की सामर्थ्य थी, यह भावों की निर्मलता की सामर्थ्य थी।

सम्मेद शिखर में आचार्य महावीरकीर्ति महाराज पर्वत पर रात्रि बारह बजे ध्यानस्थ खड़े हुये थे। एक भील हाथ में बल्लम लिये दौड़ता चला आ रहा था कि आज कोई शिकार नहीं मिला, बस यही शिकार है। ग्रन्थों में तो आपने पुरुरवा भील की कथा को पढ़ा है कि मृग की आँख को समझ करके निशाना बाँध रहा था वीतरागी गुरु के ऊपर। विश्वास रखना, लोग सत्य का नाश करने जा सकते हैं, लेकिन सत्य का नाश नहीं हो सकता। कभी दीन-हीन भावना में मत आ जाना कि क्या होगा? सत्य का नाश नहीं होता है। यमराज के पास भी करुणा बैठी है। पुरुरवा भील धनुष-बाण उठा लेता है, लेकिन जब वीतरागी मुनिराज पर आक्रमण करने खड़ा होता है तो भीलपत्नि धीरेसे बाण को छीन लेती है। कहती है, 'स्वामी! यह मृग नहीं है, ये निर्ग्रंथ तपोधन हैं, इन पर बाण मत छोड़ो।' एक भील की पत्नि के अन्दर निर्ग्रन्थ योगी के ऊपर करुणा फूट रही है। भीलनी के कहने पर भील ने बाण छोड़ दिया और चरणों में जाकर अणुव्रतों को धारण कर लिया। वह भील कौन था? ध्यान दो, मैं यह कथा क्यों सुना रहा हूँ?

मेरा जो धर्म है, वह पर्याय मात्र को नहीं देख रहा है, वह पर्यायी को भी देखता है और वर्तमान की पर्याय के परिणामों को देखने के बाद भी भविष्य के परमात्मा को भी देखता है। जगत् में कोई नेत्रवान् दर्शन है, उसका नाम जैनदर्शन है। जो व्यवस्थित वाहन है, उसके आगे तो काँच है ही, आजू-बाजू में भी काँच है। **जगत् की सारी व्यवस्थायें जैनदर्शन की सिद्धि के लिये हैं। चालक के सामने का दर्पण कह रहा है कि ठहर जाओ। अहिंसा के बिना जगत् का परिणमन हो ही नहीं सकता है। सारे विश्व के राष्ट्रों की व्यवस्थायें अहिंसा मात्र के लिये हैं। चौराहे पर ट्राफिक मैन की क्या आवश्यकता है?**

अहिंसा। कोई वाहन भिड़ न जाये। जैसे चौराहे पर खड़ा ट्राफिकमैन वाहनों को संकेत कर रहा है कि अभी ठहर जाओ, ऐसे-ही चार गति के चौराहे पर तेरा आत्म-पुरुष खड़ा हुआ है, वह कह रहा है कि तुम अशुभ परिणामों के वाहन को रोक दो, नहीं-तो एक्सीडेंट हो जायेगा, तुम दुर्गति में चले जाओगे। निज पर करुणा करो, जैन दर्शन की विद्या को समझो। जो वर्तमान के पापी को देख रहा है, वह धर्मात्मा नहीं है। जो वर्तमान के पुण्यात्मा को देख रहा है, वह भी धर्मात्मा नहीं है। आप पर्याय के धर्म को देख रहे हैं, आप पर्याय के पापी को देख रहे हो। आप वाहन के काँचों को नहीं देख पा रहे हो। ऐसे-ही जैनाचार्यों की दृष्टि को देखो। वह दिगम्बर मुनि के ऊपर बाण छोड़ रहा है। भीलिनी कहती है, स्वामी! तुमने इस पेट के पीछे जगत् के जीवों को मार दिया। निज के पर्याय की रक्षा के लिये तुमने कितने नाना जीवों का घात कर दिया है? किञ्चित् भी करुणा हो तो बड़े धैर्य से श्वास लेना सीखो। जिनको जीवन का सम्यक् निर्णय लेना हो, तो वे अपनी श्वास की गति को कम कर दें। आनन्द लेना हो तो श्वास की गति कम कर दो। अपना लक्ष्य अपनी श्वास पर ले जाओ। अरे! मालूम तो करो कि आप जी रहे हो कि नहीं जी रहे? अपना लक्ष्य श्वास पर ले जाओ। जिसका लक्ष्य श्वास पर चला जायेगा, वह श्वासों की कीमत समझेगा। श्वास से ही श्वास को समझो। जो श्वास तुम्हारी आ रही है, जा रही है, उसके पूर्ण जाने के पहले श्वास के साथ कुछ अच्छा करके जाओ। श्वास को समझते हुये जो एक बार णमोकार पढ़ेगा, उससे कहना, तुझे जो आनन्द आ रहा है, वह आनन्द श्वास को समझे बिना पढ़ने वाले को नहीं आयेगा। जब आपने अपनी श्वास पर लक्ष्य किया, तब शान्ति महसूस हुई कि नहीं? पूरा खेल श्वासों पर है। प्राणायाम की आवश्यकता नहीं है। श्वास को समझना प्रारम्भ कर दो, तो प्राणायाम स्वयमेव प्रारम्भ हो जाता है। शान्तचित्त होगा तो श्वासें मन्द हो जायेंगी। चित्त अशान्त होगा तो श्वासें बढ़ जायेंगी। चित्त को शान्त करना है तो श्वासों पर ध्यान दे दो, चित्त अपने आप शान्त हो जायेगा।

जिनके दिन तनाव में निकल रहे हैं, रात्रि तनाव में निकल रही है, निद्रा भंग

हो चुकी है, उन ज्ञानियों से कहना कि तुम कुछ मत करो, मात्र अपनी श्वास को समझो। नींद की गोली कभी मत खाना। जिनको पागलपन से बचना हो, अकाल में मरने से बचना हो, तो कभी नींद की गोली खाकर मत सोना। श्वास पर लक्ष्यपात करो। जब भी कोई गम्भीर विषय आता है तो श्वासें मन्द हो जाती हैं। जब भी कोई काषायिक विषय आता है, तो श्वासें बढ़ जाती हैं। जैसे-ही श्वासें बढ़ जायेंगी, आयु-कर्म के निषेक भी नष्ट होंगे। दर्पण में देख रहा था कि पीछे क्या आ रहा है। वर्तमान के पापी को देखकरके भी उस पापी के प्रति पापभाव मत करना।

मुनिराज पर बाण छोड़ने वाला, पत्नि के कहने पर बाण को रोक देता है और योगी के चरणों में झुककरके अणुव्रत धारण कर लेता है। जो मुनि को मारने जा रहा था, वह मुनि बनाने वाला बन गया, तीर्थंकर महावीर बन गया। मुनि पर धनुष-बाण छोड़ने वाले ने एक दिन में पन्द्रह सौ तीन मुनि बनाये, वे तीर्थंकर महावीर स्वामी, जिनके समवसरण में हजारों मुनिराज थे।

तूफान में वस्तुओं का दिखना बन्द हो जाता है, पर वस्तुओं का अभाव नहीं हो जाता है। आँधी के आने पर प्रकृति का मौसम विकृत होता है, तब नेत्रों पर प्रभाव पड़ता है, सामने-सामने की वस्तु नहीं दिखती है। तूफान आया हो, कोहरा छाया हो, तो आपको सामने की वस्तु नहीं दिख रही है। धैर्य रखो, आँखों में दवाई मत डालो। अज्ञानी होंगे सो नेत्रों में दवाई डलवाने चले जायेंगे। बिना रोग के दवाई का प्रयोग करोगे तो रोगी हो जाओगे। तूफान शान्त हो जायेगा, तो मौसम स्वच्छ हो जायेगा, सो तुमको दिखना प्रारम्भ हो जायेगा। सूर्य उदित होगा सो सब दिखना प्रारम्भ हो जायेगा। **जब कषाय का तूफान आता है, कामनाओं का कोहरा छाता है, तब जीव को सत्य का बोध होना बन्द हो जाता है। जब कषाय मन्द होती है तो सत्य दृष्टिगोचर होना प्रारम्भ हो जाता है।** आप धैर्य रखो। विवेक को खोकर काम मत करना। धैर्य रखो। तूफान समाप्त होता है कि नहीं? होता है। उद्रेग नियम से नाश को प्राप्त होते हैं, पर शान्तचित्त कभी

नष्ट नहीं होता। तूफान का अभाव हो जाता है, फिर वे ही भवन, वे ही लोग आपको मिलेंगे तूफान के शान्त होते ही।

भीतर के तूफान पर ध्यान दो। घर में इष्ट का वियोग होने पर कुछ भी समझ में नहीं आता कि क्या है, क्या नहीं है? जैसे-ही मोह क्षीण होता है फिर सब समझ में आने लगता है। अचानक कोई घटना घट जाये, तो जीव के सामने अन्धकार छा जाता है; लेकिन जैसे-ही शान्ति होती है, तब सब स्वच्छ हो जाता है। ज्ञानियो! समय देना सीखो। समय को पाना चाहते हो तो समय देना सीखो।

महावीर का जीव भी जब मुनिराज को मारने जा रहा था, वहाँ तो भीलनी ने रोक दिया; लेकिन जो महावीरकीर्ति महाराज पर भाला फेंकने जा रहा था, उसके साथ भीलनी भी नहीं थी, रक्षा कैसे हुई? निशाना बाँध लिया, हाथ में भाला ले लिया, जैसे-ही फेंकने को तैयार हुआ, जो मुनिराज पर भाला फिकना था वह पता नहीं कैसे पीछे फिक गया। वह भील महावीरकीर्ति महाराज के चरणों में लोट गया। आचार्यमहाराज पहले भी खड़े थे, अभी भी खड़े हैं।

जीवन में यह ध्यान रखना, आप कितने ही गर्म-चित्त से आ रहे हो, जहाँ शीतल वायु चल रही है, वहाँ शरीर ठण्डा होगा-ही-होगा। ऐसे-ही हे भील! तू अपने कठोर भावों की भूमि से आ रहा था और जैसे-ही समरसी भाव के क्षेत्र में प्रवेश किया, तेरा भाला पीछे फिक गया और तू वीतरागी श्रमण के चरणों में झुक गया। आप उस दर्शन के आराधक हो जिस दर्शन में गाय और सिंह एक घाट पर पानी पिया करते थे। यह आपको असम्भव-सा तो नहीं लग रहा है? हिंस्य व हिंसक पर भी दया करने वाले तीर्थंकर महावीर हैं। उपसर्ग करने वाले को भी आशीर्वाद देने वाले दिगम्बर तपोधन हैं।

आप अपनी ही देवी से पूछ लेना कि आप घर में कितने घण्टे मौन रखती हो? जब घर में चार बहुयें, चार बेटियाँ एकसाथ बैठी हों, तो कितने देर मौन रख सकती हो? यहाँ पर इतनी सारी मातायें शान्त क्यों बैठी हो? बोल क्यों नहीं रही हो? जिसके शक्त्यांश अधिक होते हैं, उससे जीव प्रभावित हो जाता

है। वातावरण को परिवर्तित करने की क्षमता। अग्नि का पिण्ड यूँ कहे कि किसी से बोलना नहीं है, तब भी प्रभावित करता है। ऐसे ही जिस जीव ने अपने शक्त्यांश को शुद्ध परिणामों को संग्रहीत कर लिया होता है, वह जगत् के प्राणियों को प्रभावित कर लेता है। क्रूर-से-क्रूर परिणाम भी शान्त हो जाते हैं, यह तपस्वी की तपस्या का प्रभाव होता है। **जिसकी साधना जितनी निर्मल होगी, जिसकी आराधना जितनी पवित्र होगी, क्रूर-से-क्रूर परिणामी जीव भी उस क्षेत्र में शान्त हो जाता है।** आज आपको जगह-जगह कहना पड़ रहा है कि जीवों का बध शान्त हो जाये। साथ में एक प्रयोगशाला लेकर चलो। जीवों के बध कम करना कब सम्भव है? जब **हिंसनीय जीव को बचाना चाहते हो तो हिंसकों के परिणामों पर भी करुणा करो, हिंसकों के परिणामों को परिवर्तित करने का उपक्रम करो। हिंसकों के परिणामों पर तुमने दया कर दी तो जीवों की रक्षा स्वयमेव हो जायेगी। आप हिंसकों के परिणाम नहीं बदल सके तो आप अपनी पर्याय को तो पूर्ण कर लोगे, लेकिन हिंसा को नहीं रोक पाओगे।** भाव बदलने का अभियान छेड़ो। इसलिये देश में किसी भी सम्प्रदाय के साधु हों, आप सबसे पहले उनसे मिलो, उनसे कहो अहो, साधुपुरुषो! आपके शक्त्यांश इतने विशुद्ध हो जायें कि आपके उपदेशों की जो धारा है, वह भावनात्मक प्रारम्भ हो जाये, करुणाभूत हो जाये, शान्त रस और निर्वेग भाव में प्रवेश कर जाये। वैराग्य से युक्त हो जाये, करुणा से युक्त हो जाये। मित्र! विश्वास रखना, शान्तचित्त से ही अशान्त को शान्त किया जा सकता है।

घर के वातावरण को भी ठीक करना है तो आपको शान्त होना पड़ता है। आप चाहो कि मैं चिल्ला करके घर को ठीक कर लूँ, ये तो तुम घर में जहर फैला रहे हो। जो घर में चिल्लाते हैं, वे पापी लोग होते हैं और घर के वातावरण को दूषित करके राग और महामारी फैला रहे हैं। **जो माँ घर में काम करती हुई णमोकार गुनगुना रही हो, भगवान् का नाम ले रही हो और प्रसन्नचित्त होकरके घर के काम में संलग्न है, वह घर के कोने-कोने में अमृत का सिंचन कर रही है।** ज्ञानी। गंधोदक लेकर घर पहुँचा। वह दीवाल-दीवाल पर छिड़क

रहा था कि मेरा घर पवित्र हो जाये। हे जीव! पानी का धर्म शीतल है, लेकिन अग्नि पर रख दोगे तो पानी भी गर्म हो जाता है। यदि तूने गंधोदक के छींटे दीवालों पर छिड़के हैं, लेकिन तेरे परिणाम पवित्र नहीं हैं, तो तेरा गंधोदक भी फलवान नहीं होगा, क्योंकि पानी भी अग्नि में रखने पर गर्म हो जाता है, ऐसे-ही हाथ का गंधोदक भी भाव अशुद्ध हो जाने पर प्रभावहीन हो जाता है। जिसके परिणाम शीतल हैं, उसको गंधोदक भी छिड़कने की आवश्यकता नहीं है। आप शीतल वाणी घर में प्रवाहित कर दो, तुम्हारा घर अपने आप शीतल हो जायेगा, फिर प्रभु के हवन का पानी छिड़कने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। प्रभु के हवन का पानी भी तभी गंधोदक बनता है जब हमारे भाव निर्मल होते हैं। जिसके भाव निर्मल नहीं होते हैं वह कहता है कि पानी है। **अभिषेक का जल उसके लिये गंधोदक है जिसके पास श्रद्धा का नीर है। जिसके पास श्रद्धा का नीर नहीं है, उसके लिये तो सिर्फ पानी है।**

धन्य हैं वे जीव, निर्ग्रन्थों को देखकरके उनके चरणोदक को सिर पर लगाते हैं। जिसको श्रद्धा नहीं है, वह मुनि को देखकर मुँह मोड़ लेता है। आप क्या करोगे? विश्वास है तो जगत् में आनन्द है। यदि आनन्द लूटना चाहते हो तो पहले विश्वास को सुरक्षित रखो। जिसका विश्वास निकल चुका है, उसे जगत् में कोई आनन्द नहीं है। जगत् ने तो पर्याय की रक्षा करने की बात की है, परन्तु परिणामों के रक्षा की बात वर्द्धमान ने की है। वर्तमान में वर्द्धमान के उन परिणामों के रक्षा सूत्रों की आवश्यकता है। सारे जगत् के जीवों के परिणाम शान्त हो जायें तो कौन किसको मारेगा? इसलिये ऐसे उपक्रम होना चाहिये कि जगत् के जीवों के परिणामों की विशुद्धि की रक्षा हो जाये, तो विश्वास रखना, जगत् के जीवों की रक्षा हो जायेगी।

भावनायें पवित्र हैं तो भव पवित्र है। भावनायें पवित्र नहीं हैं तो भव पवित्र होने वाला नहीं है। जैसे पानी बर्फ बन करके शीतलता को और बढ़ा लेता है, ऐसे-ही हे प्राणियो! तुम साधना करके अपने भीतर की शीतलता को बढ़ाओ। जिसके मुख में बर्फ रखी होगी, उसका मुख ठण्डा होता है। तो आपके

मुख से निकली वाणी जगत् के कानों को ठण्डा कर देगी। जिसके कान ठण्डे होंगे, उनका अन्त:करण ठण्डा हो जायेगा। जब अन्त:करण ठण्डा हो जायेगा, तो विश्व में अहिंसा-ही-अहिंसा हो जायेगी। भाषा की गरमी है। **तलवारों में गर्मी नहीं होती, वह तो ठण्डी होती है। भावों की गर्मी होती है, वह भाषा को गरम कर देती है। जब भाषा काम नहीं करती है, फिर तलवार हाथ में आ जाती है। भावों को ठण्डा रखो तो भाषा गरम न हो पाये। भाषा गरम नहीं हो पायेगी तो काययोग गर्म होगा ही नहीं। भाषा की गरमी नहीं होना चाहिये।** प्रत्येक श्रमण/श्रावक को इस सिद्धान्त को समझने की आवश्कता है।

माँ! वे दिन कहाँ चले गये जब घरों में एक ही चूल्हे से पचासों लोग एकसाथ भोजन किया करते थे? आज एक घर में दस चूल्हे रखे हुये हैं। आज तो हम दो, हमारे दो। वे भी तुम्हारे नहीं रहे, कोई दो नहीं बचे। अपने बुजुर्गों की याद करो। बाखरें होती थीं। एक घर में बहुत सारे लोग रहते थे तो अद्‌भुत वातावरण रहता था। सुबह शाम जब भोजन होता था तो ज्योंनार जैसी होती थी। जो है, सो सुनो।

श्वान को रोटी डालो तो वह पहले उठा कर भागेगा फिर एकान्त में जाकर खाता है। आज जो छोटे-छोटे परिवारों की दशा, उसी जीव के समान हो रही है कि अपने-अपने कक्ष में जाकर बैठ जाओ। एक समय था जब हंस-प्रवृत्ति थी, एकसाथ बैठते थे। अब तो एक-और विचित्र दृश्य तुम्हारे सामने आ रहे हैं कि अब अतिथिसत्कार तो समाप्त हो चुका है। अपनी-अपनी उठाओ प्लेटें, खड़े रहो और यहाँ-वहाँ का जूठा भोजन खाओ। समझ गये? गिद्ध भोज। सूचना मिल गई कि उस होटल में व्यवस्था है सो चले जाना। स्नेह कहाँ परोसा?

खड़े होकर खाने का शौक है तो मेरे साथ चलकर दोनों हाथों से खाओ। तेरा पड़गाहन होगा, परिक्रमा लगेगी और दोनों हाथों से मिलेगा। नहीं-तो शान्ति से बैठकर खाओ, मनुष्य हो तो। आगम में खड़े होकर भोजन करने का आदेश दिगम्बर मुनि मात्र को है, जगत् में अन्य किसी को नहीं है। मनुष्य होकरके बिना मुनि बने खड़े होकर भोजन करोगे तो विश्वास मानना, खड़े होकर तिर्यञ्च ही

खाता है, मनुष्य नहीं खाता।

कम-से-कम इतना ध्यान रखो कि बूढ़े माता-पिता को ही अपने साथ रखने लग जाओ। नहीं-तो मालूम जो वृद्ध-आश्रम खुल रहे हैं, यह गलत परम्परा शुरू हो गई है। वास्तव में वृद्ध-आश्रम नहीं खुलना चाहिये, वृद्धों की सेवा की शिक्षा देना चाहिये। ये वृद्ध-आश्रम खोलकर आप क्या कर रहे हो? उनकी सन्तान को, बेटों को शुष्क बना रहे हो। वे यही समझेंगे कि बूढ़े होने के बाद जैसे बैलों को भेज देते हैं, वैसे ही हम इनको भेज देते हैं। मैं एक वृद्ध-आश्रम को देखकर आया हूँ। वहाँ एक वृद्ध बोले, मेरे आठ बच्चे, आठों बदले और मैं यहाँ अकेला रो रहा हूँ।

आप वृद्धों की सेवा करना सिखाओ और वृद्धों को चाहिये कि घर में बूढ़े बनकर रहो, अब जवान बनकर मत रहो। बच्चे तुम्हारी सेवा क्यों नहीं कर रहे, मुझे मालूम है। **आप शरीर से तो बूढ़े हो रहे हो, वचन और मन से बूढ़े नहीं हो पाते हो, इसलिये आपकी सेवा नहीं हो पाती है। जो शरीर से बूढ़े होने के साथ वचन और मन से बूढ़े हो जाते हैं, उनकी नियम से सेवा होती है।** तुम बूढ़े हो गये हो, लेकिन झुझलाना बन्द नहीं किया, दुनियाँ का बोलना प्रारंम्भ कर दिया। अरे भाई! कम बोलोगे तो लोग सम्मान देंगे, अधिक बोलोगे तो 'बैठ जाओ, भाई।' बूढ़े होकरके कम बोलना सीखो। शरीर खाता कम है, पर मन बोलता ज्यादा है। आप वृद्ध होकर रहो, बेटे जो कर रहे हैं सो करने दो, आप तो एक कमरे में बन्द हो जाओ, अपनी माला लेकर साधना करो, तो कभी बेटे तुझे धक्का नहीं मारेंगे। तुम बेटों के काम में बार-बार धक्का लगाओगे तो धक्के खाने पड़ेंगे। वृद्ध होने के पहले वृद्धत्व में कैसे जीवन जीना पड़ता है, इसकी शिक्षा ले लो। हमारे यहाँ तो व्यवस्था है। मैं मुनिदीक्षा बाद में देता हूँ, पहले मुनि बनने की शिक्षा देता हूँ। ऐसा नहीं कि कपड़े उतारवाकर बिठाल दो।

जब तक 'खाना' खाते बनता हो, तब तक मुनि नहीं बनाना चाहिये। जब 'आहार' लेना सीख जायें, तब मुनि बनाना चाहिये। जब तक किसी के मुख से 'खाना' शब्द चलता रहे, तब तक कभी त्यागी नहीं बनाना। जिसका 'खाना'

शब्द समाप्त हो जाये, 'भोजन' पर आ जाये, तब भी मुनि नहीं बनाना। हिंसक खाना खाता है, भोगी भोजन करता है, योगी आहार लेता है। जिसके मुख से 'खाना' शब्द चलता रहे, उसकी ओर तो देखना ही नहीं। भोजन कर रहा है तो भोगी है। योगी वह जिसके शब्दों में आने लग जाये 'आहारचर्या'। माँ! जब तक तेरे घर में लौंकी 'कटती' रहेगी, तब तक तेरा घर कभी महावीर का भक्त नहीं होगा। सम्यग्दृष्टि श्रावक कभी घर में साग नहीं 'काटता'। जैनियों के घर में साग नहीं 'कटती', जैनियों के घर में साग 'बनती' है, सुधरती है। आपकी भाषा पवित्र होनी चाहिये, आपकी भाषा ही जहर उगल रही हो, तो वहाँ अभी धर्म कहाँ है? कोई धर्म नहीं है।

ज्ञानियो! भावों की अग्नि ठण्डी हो जायेगी तो भाषा की अग्नि ठण्डी हो जायेगी। भाषा की अग्नि ठण्डी हो जायेगी तो विश्वास रखना, सारे जगत् की अग्नि ठण्डी हो जायेगी।

महाभारत का युद्ध कौरवों-पाण्डवों की तलवारों से प्रारम्भ नहीं हुआ, उसका प्रारम्भ तो द्रोपती के मुख की तलवार से हुआ है। गर्म भाषा न निकलती तो गर्म भाव क्यों होते? 'अन्धे के अन्धे ही होते हैं।' वह सत्य भी सत्य नहीं होता है जिससे जीवों के परिणाम कलुषित हों। वह सत्य भी सत्य नहीं होता है जिससे किसी के हृदय को ठेस पहुँचे। भले-ही अन्धे की सन्तान थे, लेकिन अन्धे नहीं थे। कोई धोखे से गिर गया तो आपके मुख से निकल गया 'अन्धे के अन्धे होते हैं।' माँ! आज यही नियम है, दिन भर ध्यान रखना है कि मैंने बोला क्या है? शाम तक आपको एक ऐसी झलक आयेगी कि मुनिराज कैसे होते होंगे? जिनके शरीर पर धनुष से बाण छोड़ दिया हो, तब भी मन में यह नहीं लाये कि इसको देखो। वचन से यह नहीं कहा कि इसने मुझे मार दिया। मेरे कर्मों का उदय न होता तो इसके मारने के भाव क्यों होते? कर्म दशा कह करके सहन कर लेते हैं, उसका नाम योगी है।

जिससे आत्मा का हित होता है, ऐसे अहिंसक भाव करो। केवली ने कहा है कि यदि तू अपना सुहित चाहता है, तो भगवान् सर्वज्ञदेव ने कहा है कि सम्यक्

दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप के द्वारा अपनी आत्मा का हित होगा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप, इन चार आराधनाओं का आश्रय लेगा, इनकी रक्षा करेगा, इनके संरक्षण में चला जायेगा, तो नियम से तेरी आत्मा का हित होगा।

आज के नियम का ध्यान रखना-'मैं बोल क्या रहा हूँ।'

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



"स्वहित से भ्रष्ट कौन होता है"

सुख-सम्भोग-सम्मूढा, विषयास्वादलम्पटाः।
स्वहिताद् भ्रंशमागत्य, गृहवासं सिषेविरे॥ 159सा.स.॥

अन्वयार्थ-सुख सम्भोग संमूढा = जो प्राणी इन्द्रियों के सुखों को भोगने में मूढ़ हो जाते हैं और **विषयास्वादलम्पटाः** = विषयों के स्वाद में लम्पटी हो जाते हैं, वे साधु हो करके भी **स्वहितात्** = अपने आत्मा के हित से **भ्रंशं आगत्य** = भ्रष्ट होकर **गृहवासं** = गृहस्थ के जीवन को **सिषेविरे** = सेवन करने लगते हैं।

भावार्थ—इन्द्रियसुख के सम्भोग में मूढ़ और विषयों के स्वाद में लम्पटी प्राणी स्वहित से भ्रष्ट होकर गृहस्थ जीवन का सेवन करते हैं।

"संसार से विरक्ति क्यों नहीं होती"

वियोगा बहवो दृष्टा द्रव्याणां च परिक्षयात्।
तथापि निर्घृणः चेतः सुखास्वादनलम्पटः॥160 सा.स.॥

अन्वयार्थ-द्रव्याणां च परिक्षयात् = धनादि के नाश हो जाने से **बहवः वियोगाः दृष्टाः** = बहुत से वियोग दिखलाई पड़ते हैं **तथापि** = तो भी **निर्घृणः चेतः** = भोगों से घृणा न करता हुआ, **सुखास्वादनलम्पटः** = इन्द्रियसुख के स्वाद में लम्पटी हो जाता है।

भावार्थ—धनादिक के नष्ट हो जाने से बहुत से वियोग दृष्टिगोचर होते हैं, तथापि यह मानव भोगों से घृणा नहीं करता हुआ इन्द्रियसुखों के स्वाद में लम्पटी हो जाता है।

॥ सद्-देशना॥

जयवन्त हो सर्वज्ञ शासन, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति। मनीषियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मद्रव्य की उन धाराओं की व्याख्या कर रहे हैं जो रागरंग से रञ्जित है। उस रागरंग के अन्दर भगवान्-आत्मा विराजमान है। उस चिद्रूप दशा को समझाने के लिये यह सम्पूर्ण उपक्रम आचार्य कुलभद्र स्वामी कर रहे हैं। जिसमें हित निहित है, ऐसे कार्यों को जीव शीघ्र भूल जाता है और जिसमें अहित निहित है, ऐसे कार्यों में संलग्न है। अशुभ तो अशुभ है, अशुभ से कभी शुभ नहीं होता। फिर भी राग की महिमा देखो कि अशुभ से मन कभी भरता नहीं है। शुभ में बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ कर रहा है और अशुभ में स्वयमेव प्रवेश कर रहा है। जिनालय आने के लिये पुरुषार्थ करना पड़ता है, लेकिन भोजनशाला में सहज पहुँच जाता है।

आचार्य महाराज उस परम सत्ता की व्याख्या करने जा रहे हैं, जिसके लिये जीव कोटि-कोटि भव न्योछावर कर देता है, अनन्त पर्यायें नष्ट की हैं। तीर्थंकर जैसी आत्मा को दस भव लग गये उस परम सत्य को समझने के लिये। महापुरुष आदिनाथ रागरङ्ग में इतने लिप्त हो गये कि तैरासी लाख पूर्व राज्यसुख में नष्ट कर दिये। परमात्मा बननेवाली आत्मा को ज्ञान नहीं हुआ कि मैं भविष्य में भगवान् बननेवाला हूँ। निज की भगवत्ता का बोध नहीं हो पा रहा है उन्हें जो जन्म से तीन ज्ञान के धारी हैं। तीन ज्ञान के धारी को भी मोह आवृत किये हुये है। सम्राट पद पर आसीन होकरके प्रजा के पालन में तल्लीन हो गये, पर हे प्रजापालक! निज के पालने का ध्यान नहीं रहा। इतने तल्लीन हो गये कि सौधर्म इन्द्र को ही सोचना पड़ गया। सामान्य जीव की बात छोड़ो, तीर्थंकर-जैसा जीव राज्यसुख में तल्लीन हो गया। सौधर्म इन्द्र ने निमित्त खोजा और खोज करके नीलांजना नाम की नर्तकी को, जिसकी आयु अल्प बची हुई है, उसको प्रभु की राजसभा में नृत्य करने के लिये भेज दिया।

आँखों का विषय और रसना का विषय। रसना का विषय दिन में एक बार, दो बार और यदि पापी होगा तो तीन बार और यदि घोर पापी होगा तो चौबीस घण्टे। **साधुपुरुष दिन में एक बार भोजन लेते हैं, भोगी पुरुष दो बार करता**

है, रोगी पुरुष दिनभर खाता है। योगी का एक बार का भोजन है, भोगी का दो बार का भोजन है, रोगी अन्न का कीड़ा बन चुका है, वह दिनभर चरता है। कुछ ऐसे भी जीव मिल जायेंगे जो सोते-सोते भी गुटका, पान-इलायची मुख में दबाये रहते हैं। इन बेचारों को लगता है कि कहीं मर गये, फिर खाने को मिला या नहीं? सोते-सोते भी खा रहा है, स्वप्न भी वही देख रहा है। ज्ञानियो! तीव्र पापी को स्वप्न भी भोग के ही आयेंगे तथा धर्मात्मा पुरुष को स्वप्न भी आयेंगे तो कभी सम्मेदशिखर की वन्दना करेगा, तो कभी सिद्धों की आराधना कर रहा होगा, तो कभी निर्ग्रन्थों की चर्या करा रहा होगा।

पेट का विषय न्यून है, पर नेत्रों का विषय विशाल है। तीर्थंकर-जैसी आत्मा राज्यसभा में नृत्य देख रही हो, जिसको निश्चित कैवल्य प्रकट होगा, जो निश्चत निर्वाण को प्राप्त होगा, ऐसा जीव भी बैठा राज्यसभा में नृत्य देख रहा है। आँखें तृप्त नहीं हो रही हैं, नयनों के पटल अविचल निहार रहे हैं, अविराम निहार रहे हैं। देख किसे रहे हैं? नयनों का विषय चल रहा है। जिसकी आँखें दौड़ रही हैं, आत्मा उसकी चंचल है। बिना चंचल चित्त के नयन दौड़ते नहीं। जितने टिमकार चल रहे हैं, उतनी अधिक चंचलता है। जिसके श्वासों की गति तीव्र हो रही हो, उसके चित्त की गति उससे अधिक तीव्र है। देखते-देखते नीलांजना की अन्तिम श्वास निकल गई। यद्यपि सौधर्म इन्द्र ने दूसरी नृत्यांगना वहाँ खड़ी कर दी है, लेकिन तब भी प्रभु को बोध हो गया, बन्द करो ये सब।

प्रसङ्ग कथा से नहीं है, प्रसङ्ग आपके जीवन की कथा से है। क्या वृषभदेव ने अपने इतने दीर्घ जीवनकाल में किसी की मृत्यु नहीं देखी? एक नीलांजना की मृत्यु देखकर वैराग्य हो गया। आपने जीवन में कितने लोगों के संस्कार देखे हैं, कितनी देहों को अग्नि लगा कर आये हो? कितनी देहों को जमीन पर गाड़ कर आये हो? क्या इतना ध्यान नहीं रहा है कि ये दशा मेरी भी होगी? शाम को आकर द्वार पर चर्चायें कर लेते हो कि अमुख व्यक्ति चला गया। आज तटस्थ होकर समझना। अमुख व्यक्ति चला गया, यह आपका चिन्तन चल रहा है। यही

मुख से वचनालाप चल रहा था, तभी आपको निहारना चाहिये कि एक दिन ऐसा होगा जब मैं चला जाऊँगा तो मेरे द्वार पर लोग भीड़ लगाये बैठे मिलेंगे और यही कहेंगे कि जीव चला गया। आपके द्वार पर भी भीड़ मिलेगी और लोग चर्चायें करते मिलेंगे कि जीव चला गया। अनेक की चितायें जलाई हैं, आज अपने ध्यान में अपनी ही चिता देख लो। कुछ लोग आग लगाकर चक्कर काट रहे होंगे, कुछ लोग चिता को धोक लगा रहे होंगे, कुछ राख उठाकर माथे पर लगा रहे होंगे। जिसमें राग था, तुम उसकी राख लगा रहे हो। जिसके माध्यम से पाँच पाप किये हैं, उसके तुम चक्कर लगा रहे हो। जब आत्मा विराजा था, तब आँख उठाकर नहीं देखा, आज पिता की चिता को तुम नमस्कार कर रहे हो, आज माँ की चिता को तुम धोक लगा रहे हो। जब माता-पिता भूख-प्यास चिल्ला रहे थे, तब एक लोटा पानी देने नहीं पहुँचे, भोजन देने नहीं पहुँचे। आज चिता पर पुष्प चढ़ा रहे हो। ये ढोंगियों का मार्ग है। घर में फोटो टँगी हुई है, उस पर पुष्पमाला छोड़ रहा है।

बेटो! पिता की चिता पर श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के पहले चैतन्य पिता की बात मान लेना, कोई गलत काम मत करना, तो समझ लेना कि पिता को धोक लग गई। स्मृतियों में चले जाना, स्मृतियों की चर्चा कर लेना कठिन नहीं है। भूत की बातों को वर्तमान में श्रद्धा से बोल लेना सरल है, लेकिन श्रद्धावान् के प्रति वर्तमान में श्रद्धा प्रकट कर लेना कठिन है। आपके कुटुम्ब/परिवार में किसी की विदा हो, विदा होनेवाले के प्रति आपकी आस्था चल रही है, वह जीवित में चल जाती तो आप विश्वास रखना, मृत्यु होने के बाद जो घोष होता है कि आदमी बहुत अच्छा था, उसकी मृत्यु के पहले बोल देते, 'आदमी बहुत अच्छा है', तो उसको भी महसूस होता कि मेरे अन्दर भी कुछ गुण हैं। निन्दायें, प्रशंसायें पीठ के पीछे हों, उससे क्या लाभ है? स्मृतियाँ चल रही हैं।

बहुत सारे लोग इसलिये दु:खी हैं, क्योंकि उनको निज की अनुभूति का ज्ञान नहीं है, उनके जीवन का सीमांकन नहीं है। द्रव्यानुयोग मात्र इसलिये होता है,

अध्यात्म की व्याख्या मात्र इसलिये होती है कि व्यक्ति सीमा का सीमांकन समझ ले। जो अपने आपको मनुष्य मान कर बैठ चुका है, जो अपने आपको पिता मान रहा है, मात्र अपने आपको सम्बन्धियों के बीच ही स्वीकार रहा है, तिर्यञ्च मान रहा है, देव या नारकी मान रहा है, मात्र इतनी मानसिकता जीवों की बन चुकी है, उनको द्रव्यानुयोग के स्वाध्याय करने की आवश्यकता है। तुम मनुष्य मात्र नहीं हो, पशु मात्र नहीं हो, नारकी मात्र नहीं हो। मिट्टी के लोंदे में तुझे क्या-क्या दिखाई दे रहा है? कुम्भकार को कलश दिखाई दे रहा है, बर्तन दिखाई दे रहे हैं। द्रव्यदृष्टि यह है कि जिसको मिट्टी मात्र दिख रही है, वह कुछ नहीं कर सकता, मिट्टी मात्र को देखता रहेगा, गर्मियों में पानी पानी चिल्लाता रहेगा। ज्ञानियो! कुम्भकार को उस मिट्टी में सुन्दर कलश दिख रहा है। वह चिल्लायेगा नहीं, वह घट का शीतल पानी पियेगा। ऐसे-ही वर्तमान में भोगों की लिप्सा में लिप्त होकरके अपने को मनुष्य मात्र मान करके यही मान रहा है कि मुझे जीवन ही इसीलिये मिला है। बहुत सारे निम्नवर्ग के लोग हैं, पूर्व अशुभ कर्म के उदय से कोई खोटे कुल में जन्म ले लिये। जिस कुल में जीवों का घात हो रहा हो, जिस कुल में मदिरापान को अमृतपान कहा जा रहा हो, ऐसे भी संसार में कुल हैं, ऐसे भी दर्शन हैं। चार्वाक का सिद्धान्त ही है कि सुरा-सुन्दरी का पान करो, अमरत्व को प्राप्त करो। सुरा-सुन्दरी का पान करो, निर्वाण को प्राप्त करो। उसका यही मोक्षमार्ग है।

मित्रो! कुल-परम्परा का निर्वाह, जाति-परम्परा का निर्वाह, सम्प्रदाय की परम्परा का निर्वाह वे ही करें जिनकी स्व की अज्ञानता की भूल है। जिनकी प्रज्ञा को किसी ने मोड़ दिया है, वे कुलपरम्परा मात्र में लिप्त हो करके विवेक खो कर काम करें। विवेकी पुरुष कुलपरम्परा नहीं देखेगा, आत्मकल्याण की परम्परा देखेगा।

परम्परा मत देखो, परम्परा तोड़ो। विपरीत परम्परायें नहीं तोड़ पायेगा तो कर्म की परम्परा नहीं तोड़ पायेगा।

जिस कुल में अशुभ कर्म होते हैं, उस कुल में किसी ने जन्म ले लिया, तो वह यही मानता है कि ये ही धर्म है। क्यों? परम्परा में चला आ रहा है। परम्परा में कोई मिथ्यात्व की पूजा होती रही, परम्परा में हिंसाकर्म होता रहा, तो क्या वह परम्परा 'धर्म' हो जायेगी? जिसकी परम्परा में जीवों का वध चल रहा है, तो क्या वह परम्परा धर्म कहलायेगी? जो लम्बे समय से चला आ रहा है, उसे धर्म मत मान लेना। माना कि किसी ज्ञानी के घर में कोई पुत्तलिका रखी हुई है और इसके दादा परदादा की परम्परा से रखी हुई थी, उसकी माँ ने कभी धोखे से उस पर पानी डाल दिया, इसकी पत्नि ने देखा, सो वह भी ढारती रही, तो अब बेटे की बहू से कह रही है कि तू भी ढार, नहीं तो कुछ हो जायेगा। क्या हो जायेगा? नरक चला जायेगा। कितना बड़ा डर लग रहा है? कुलपरम्परा में चला आ रहा है। हे ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिये कि किसी एक अज्ञानी ने भूल कर ली, उस भूल को देखने का विचार तो करो, सोचने का चिन्तन तो करो। आप यूँ क्यों सोच रहे हैं कि कुछ हो जायेगा? पास में तो जाकर देखो कि है कौन-सी वस्तु?

रजवाँस पंचकल्याणक के लिये आचार्यमहाराज ने मुझे भेज दिया। रास्ते में बांदरी गाँव पड़ा। ठण्डी का मौसम था, अतः मैं दोपहर की सामायिक करने धूप में बैठ गया। सर्दियों में मधुमक्खियाँ अपना स्थानान्तरण करती हैं। छत्ते से दूसरी जगह जाती हैं। मैं जहाँ सामायिक कर रहा था, वहाँ बहुत सारी मधुमक्खियाँ आ गई और चारों तरफ बीट करके निकल गई। मधुमक्खियों की बीट चन्दन जैसी दिखती है। लोगों ने खबर फैला दी कि विशुद्धसागर महाराज सामायिक कर रहे थे वहाँ देवों ने आकरके चन्दन की वर्षा कर दी है। अब गजरथ महोत्सव, वहाँ लाखों की भीड़। वहाँ के लोग अपने मकान के खपरों को लेकर वेदी पर पहुँच गये। मैंने कहा कि तुम ये कर क्या रहे हो? बोले, महाराज! आपने हमारे यहाँ सामायिक की थी, उस समय चन्दन की वर्षा हुई थी, मैं सबको दिखाना चाहता हूँ। मैंने कहा कि यह मिथ्यात्व मत फैलाओ। यह चन्दन नहीं है, मधुमक्खियों की बीट है।

आपको मालूम है कि कुण्डलपुर में चन्दन बरसता है। सबको दिख रहा कि सामने छत्ते लगे हुये हैं, तब भी अज्ञानी क्या बोलते हैं? चन्दन की वर्षा हो रही है।

मिथ्यात्व और अज्ञानता जिनके भीतर प्रवेश कर जाती है, साक्षात् सत्य दिखाई देने पर भी सत्य को स्वीकार नहीं कर पाता। यह अनादि मिथ्यात्व की परम्परा का प्रभाव है। मैंने कहा, भाई! जब मैं प्रत्यक्ष हूँ और मेरे साथ घटना घटी, लेकिन लोग नहीं मान रहे हैं। महावीर को गये इतना समय व्यतीत हो गया। हमारे अन्य आचार्यों को गये इतना समय व्यतीत हो गया। लोगों ने कितनी कथायें नहीं बना ली होंगी। मैं तो साक्षात् अभी जीवित हूँ। डोंगरगढ़ में चन्द्रगिरि पर दुर्ग का एक श्रावक आया, उसने सोने के पुष्प चढ़ा दिये। चावल-बादाम चढ़े तो कोई नहीं देखता। जैसे-ही क्षेत्र के अध्यक्ष पहुँचे, उनने देखा कि आज तो महाराज जी के पास सोने के फूल चढ़े हुये हैं। उन्होंने तुरन्त उठा लिये और डिब्बी में रख लिये और हल्ला कर दिया कि आज तो महाराज के चरणों में देवों ने आकर फूल चढ़ाये हैं। मैं ये इसलिये कह रहा हूँ कि ये व्यर्थ के चमत्कारों में लोग भ्रमित न हो जायें।

भैया! आप जो भी चमत्कार की बात कर रहे हो, चमत्कार हल्ला का विषय नहीं होता है। अतिशय वे होते हैं जब जिनदेव स्वयं चलते हैं तो देवों के द्वारा कमलों की रचना हो जाती है। अरहन्त देव के चौंतीस अतिशय होते हैं। वे कुछ देवकृत हैं, कुछ उनके पुण्यकृत हैं। वह अपने आप सहज होते हैं। चमत्कार हल्ला करके नहीं आते हैं, चमत्कार स्वयमेव होते हैं। किसी के जादू के राग में, किसी के मन्त्रों के विकल्प में आकर तुम भयभीत मत हो जाना।

पुण्यात्मा जीव के लिये जगत् की कोई शक्ति नाश करनेवाली नहीं है। पापी जीव के लिये कोई बचानेवाला नहीं है। आज की ही बात की चर्चा करो। एक माँ रेलगाड़ी में यात्रा कर रही थी। सत्य घटना है। उस माँ के पेट में दर्द हुआ। सोचती है कि कहीं तकलीफ होगी। वह रेलगाड़ी में शौचालय गई। वहाँ जैसे-ही बैठी, बच्चे ने जन्म ले लिया और वह नीचे गिर गया। इतनी विशाल गाड़ी, बचना

सम्भव था क्या? पर आपको मालूम होना चाहिये कि जब ऊपर विमान से हनुमान नीचे गिर सकते हैं और शिला के टुकड़े-टुकड़े हो गये, माँ अंजनी सोचती रही कि पति तो चला ही गया, लेकिन बेटा भी काल ने छीन लिया। जैसे-ही मामा ने विमान उतारा, एक शिला पर हनुमान किलकारी भरते मिल गये। पुण्यात्मा कामदेव का बालबाँका नहीं हुआ, इसलिये उनका नाम श्री शैल पड़ गया। पुण्यात्मा जीव का कोई कुछ नहीं कर सकता है। वह तो आज का बच्चा था, पूरी गाड़ी निकल गई, बाद में देखा कि रेल की पटरी के बीच में बच्चा अंगूठा चूस रहा था। वहाँ बचानेवाला कौन था? ज्ञानी कहेगा, महाराज! ईश्वर ने बचा लिया।

हे मुमुक्षु! ईश्वर उतरकर नहीं आया था। उसका भाग्य ही ईश्वर था, उसका पुण्य ही ईश्वर था। जिसका पुण्य क्षीण हो जाता है, तो माँ की गोद में ही बच्चा मृत्यु को प्राप्त होता देखा जाता है। माँ की गोद में भी मृत्यु हुई है और श्मशान घाट में भी जीवन्धर स्वामी का जन्म हुआ है। ज्ञानियो! यह डर निकाल दो, भय निकाल दो अपने हृदय से कि हाय मेरा क्या होगा?

सम्यग्दृष्टि जीव निशंक और निर्भय होता है। भूतों, प्रेतों, व्यन्तरों से कभी डरना नहीं। कहीं कोई जीव आ जाये कि मैं तुमको भस्म कर दूँगा, तो उससे यह कहना, 'ज्ञानी! कब करेगा? अभी कर, सामने खड़ा हूँ।' **भयभीत करके लोगों को अपने वश करना भिन्न विषय है, परन्तु श्रद्धा से सिर को झुका पाना भिन्न विषय है। आप प्रतिबुद्ध हो, ज्ञानी हो, तत्त्वज्ञ हो और विवेकशील हो, प्रज्ञाशील हो, तो जगत् के जादू-मंतरों में उलझ करके अपने सम्यक्त्व का नाश मत कर लेना। ये पंचमकाल है, इसमें सत्य को स्वीकारनेवालों की संख्या बहुत कम है और भूत-व्यन्तरों को पूजनेवालों की संख्या बहुत अधिक है। कुल-परम्परा में पुजते आये मिथ्यात्व से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। जो निडर हो जायेगा, वह सम्पूर्ण दुःखों से मुक्त हो जायेगा।** कर्मों से मुक्त तो बाद में हो लेना, पहले भय से तो मुक्त हो जाओ। रूढ़ियों से तो मुक्त हो जाओ, परम्पराओं से मुक्त हो जाओ। एक निर्णय करना

पड़ेगा, तभी जीव अज्ञानता से मुक्त हो सकता है, कि मृत्यु के आगे कुछ नहीं होता। जिसको अपनी मृत्यु दिखाई दे रही है और मृत्यु को देख करके जो यूँ कह रहा है कि मरण। ज्ञानी! मरण तो प्राणों का वियोग है, मेरी आत्मा का नाश नहीं है। यदि आत्मा का नाश होता, तो पुनर्जन्म कैसे होता?

युवाओ! पुनर्जन्म पर श्रद्धा रखना। जिसको पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं है, उसको धर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिसको पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं है, उसको मोक्षमार्ग की बात करने की क्या आवश्यकता है?

आज की पीढ़ी को भ्रमित कर दिया गया है। डाक्टरों/वैद्यों ने क्या बोलना शुरू कर दिया है? शरीर ठण्डा हो गया शरीर की ऊर्जा नष्ट हो गई, उसका नाम मृत्यु है। वैज्ञानिक आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। जो आत्मा की सत्ता को स्वीकर नहीं कर पायेगा, वह यही कहेगा कि शरीर ठण्डा हो गया, बस, मृत्यु हो गई। जीव नाम की वस्तु का ज्ञान नहीं है, तो पुण्य पाप की व्याख्या व्यर्थ हो जायेगी। बड़ी-बड़ी तत्त्वों की व्याख्या के साथ-साथ आपको किञ्चित् भी हमारी समाज पर दया है, तो युवाओं के बीच में पुनर्भव की व्याख्या करो, नहीं-तो ये लोग यही मानेंगे कि डाक्टरों ने कह दिया कि शरीर ठण्डा हो गया, तो बस, समाप्त। ये विज्ञान बोल रहा है वीतराग विज्ञान नहीं बाल रहा है।

युवाओ! आप तो यह बताओ कि आपको वासनायें किसने सिखाई? आपको कामनायें किसने सिखाई? और ऐसे छुपकरके पाप कर लेना, यह आपको किसने सिखाया? इच्छाओं की पूर्ति ऐसे करना किसने सिखाया? मैं दूध पीना नहीं पूछ रहा, दूध तो तेरी माँ ने तेरे मुख में डाला था। जो तुम्हारी वासनायें हैं, कामनायें हैं, क्षुधा की जो पीड़ा है जो सता रही है।

एक गाय बछड़े को जन्म देती है, तो वह बछड़ा जन्म लेते ही गाय के मुख की ओर नहीं जाता गाय के आँचल की ओर जाता है।

ज्ञानियो! कम-से-कम यह तो बताओ कि उस गाय के बछड़े को आँचल पकड़ना किसने सिखाया? **ये जीव के अनादि के खाने के संस्कार हैं। ये**

अनादि के पाप करने के संस्कार हैं। किसी ने सिखाया नहीं है। इनके अन्दर जो वासनायें मौजूद थीं, उनने अपना प्रभाव छोड़ा है। जीव तो त्रैकालिक है। प्रेत लगते हैं, व्यन्तर आदि लगते हैं, वो यूँ कहते हैं कि उसने मुझे ऐसा किया था। तो प्रेत को मानते हो यानि पुनर्भव है, जातिस्मरण होता है। जातिस्मरण होता है यानि कि पुनर्भव है। आत्मा की त्रैकालिक सत्ता है। यदि त्रैकालिक सत्ता है, तो पुनः समझना।

'तत्त्वार्थ सूत्र' का छटवाँ अध्याय, आठवाँ अध्याय इनका बहुत अच्छे से अध्ययन करने की आवश्यकता है। आश्चर्य तब होता है कि अध्ययन करने के बाद भी कोई अशुभ चिन्तन में डूब जाये, अशुभ व्याख्याओं में डूब जाये।

बेटा! यदि तूने किसी की निन्दा की, तो नीचगोत्र का आस्रव होगा कि नहीं होगा? होगा। यदि मैंने की तो मुझे होगा कि, नहीं? जब श्रावक को हो सकता है, तो मुनि को क्यों नहीं हो सकता? थोक रूप में होगा, चक्रवर्ति ब्याज की दर में होगा। क्यों? पान के ठेले में आग लग जाये तो कितना घाटा होगा? और पान के ठेले में दिनभर बिक्री हो तो कितनी मुनाफा होगी? और सराफे की दुकान में दिनभर बिक्री हो तो मुनाफा कितने में जायेगा? लाखों करोड़ों में। यदि सराफे की दुकान में आग लग जाये, तो लाखों का घाटा होगा। **श्रावक हजार उपवास करके जितने कर्मों की निर्जरा करता है, उतनी कर्मों की निर्जरा मुनि आहार करते-करते कर लेता है। जब मुनि को इतनी कर्मनिर्जरा हो रही है और इतना पुण्य का आस्रव हो रहा है, इतना लाभ-ही-लाभ है, यदि इनके मन में विकल्प की कोई आग लग गई, तो जो घाटा होगा, वह अरबों-खरबों में होगा, थोक में होगा।** जब देश में भूकम्प आता है तो सबसे ज्यादा मृत्यु वहीं होती है जो बड़ी-बड़ी बिल्डिंगों में रहते हैं। सबसे ज्यादा मलबा उन्हीं सुन्दर भवनों में होता है। जो घास-भूस की झोपड़ी में रह रहा था, उसका क्या बिगड़ेगा? कुछ ज्यादा नहीं बिगड़ेगा। बिगड़ता उनका है, जो बड़े-बड़े भवनों में रहते हैं। ऐसे-ही यह मोक्षमार्ग है। यदि श्रावक का घाटा देखो, तो थोड़ा होगा और मुनाफा होगा तो थोड़ा-सा होगा।

मुनियों को सोचना है, जो रत्नत्रय के महल में बैठे हैं। यदि भावों का भूचाल हो गया, तो तुम्हारा सबकुछ बिगड़ जायेगा। अशुभ बन्ध होगा। इन श्रमणों को सोचना है। निर्ग्रन्थ इन ग्रन्थों को उपदेश मात्र का विषय न बनायें, अपने जीवन का विषय बनायें। परम्परायें रखी रह जायेंगी, कुलव्यवस्थायें रखी रह जायेंगी, कुल के राग में तुमने अनर्थ कर दिया। किसी के कुल में बलि का विधान हो और तुम कुलपरम्परा का निर्वाह करने जाओगे, तो पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा का महाबन्ध होगा कि नहीं होगा? मैंने महाभारत, भगवत् गीता में एक श्लोक पढ़ा था शान्तिपर्व में। वेदों में हिंसा का जितना वर्णन है, उतना ही अहिंसा का वर्णन है। हिन्दू ग्रंथों में अहिंसा का विशद् वर्णन करने वाला ग्रन्थ 'महाभारत' है।

मित्र! किसी भी प्रकार से, प्रभु के नाम पर, धर्म के नाम पर हिंसा मत करना। विवेक से काम करना। **हिंसा 'धर्म' नहीं होता है। किसी का अपमान 'धर्म' नहीं होता है, किसी की बदनामी 'धर्म' नहीं होता है। थोड़ा निज के विवेक का भी प्रयोग करो। परस्त्री-सेवन धर्म नहीं होता है। ये सब पाप ही हैं। इनसे दुर्गति ही होगी।** किसी के खोटे कुल में खोटे काम होते रहे तो क्या पाप भी तुम्हें खोटा मान कर छोड़ देंगे?

ज्ञानी ने अपने युवा बेटे को देखकर उसकी शादी करा दी। ऐसा क्यों किया इसने? इस जीव ने सोचा कि बेटा युवा हो चुका है, यदि इसने कभी गलत काम कर लिया तो मेरी कुलपरम्परा में कलंक लग जायेगा, इसलिये मुझे शादी कर देना चाहिये। समाज ने भी स्वीकार कर लिया। किसी ने कोई प्रश्न खड़ा नहीं किया, क्योंकि कुलपरम्परा समाजव्यवस्था का ध्यान रखा। पिता ने अपने कुल में कलंक न लगने के भय से बेटे की शादी कर दी है, पिता जी! आपने अपने कुल के कलंक को तो बचा लिया, पर मेरी शादी होने से क्या मेरे कर्म का कलंक भी बच गया? ज्ञानी! जो नौ कोटी जीवों की हिंसा होगी, उससे कर्म का कलंक लगेगा कि नहीं लगेगा? पिता जी! आपने मात्र अपनी वंश-परम्परा की रक्षा तो की, परन्तु बेटे पर करुणा फिर भी नहीं की।

मैं इसलिये कह रहा हूँ कि हमारे विद्वान् लोग कहते हैं, 'महाराज जी! मैं तो अविरत सम्यग्दृष्टि जीव हूँ, इसलिये हम लोग कुछ भी कर सकते हैं।' अविरत सम्यग्दृष्टि शब्द को बोल करके जीव इतने सन्तुष्ट हो चुके हैं कि सम्यक्चारित्र को तो ऐसा कर दिया कि होता है कि नहीं, पता ही नहीं है।

अविरत सम्यग्दृष्टि का बखान कर-करके इतने स्वच्छन्दी हो गये कि हम तो अविरत सम्यग्दृष्टि जीव हैं और पंचमकाल में संयम होता नहीं है। धीरे-से बोल दिया, तो मालूम चला कि संयम के प्रति लोगों की अनास्था भी हो गई। बोले, जो कुछ है, सो अविरत सम्यग्दृष्टि है। हे अविरत सम्यग्दृष्टि जीवो! मुझे तुम पर भी करुणा आती है। तुम अविरत सम्यग्दृष्टि जीव हो, बहुत अच्छी बात है कम-से-कम अविरत सम्यग्दृष्टि हो जाओ। लेकिन मेरी समझ में तुम हो नहीं। क्यों नहीं हो? इसलिये नहीं हो, क्योंकि तुम पंचमकाल में चारित्र को नहीं मानते हो और कुन्दकुंद महाराज पंचमकाल की अन्तिम श्वास तक चारित्र मानते हैं। कुन्दकुन्द महाराज ने जिनवाणी लिखी है, तुम जिनवाणी की बात को नहीं मानते हो, इसलिये तुम सम्यग्दृष्टि भी नहीं हो। चतुर्विध संघ पंचमकाल की अन्तिम श्वास तक रहेगा। आपने यह कह दिया कि मैं तो अविरत सम्यग्दृष्टि हूँ। ज्ञानी! **अविरत सम्यग्दृष्टि की जो पहचान है, वह यूँ है-चारित्र धारण कर सके या न कर सके, लेकिन उसको चारित्र के प्रति छटपटाहट होती है और चारित्रवान् को देखकर विनय से झुक जाता है।** उसका नाम अविरत सम्यग्दृष्टि जीव है।

हे अविरत सम्यग्दृष्टि जीवो! जिसकी पंचेन्द्रियविषयों से विरक्ति नहीं है, षट्काय के जीवों की हिंसा से भी विरक्त नहीं है, जिनेन्द्रदेव ने जो कहा है वह ध्रुव सत्य है ऐसा श्रद्धान जिसके अन्दर है, उसका नाम अविरत सम्यग्दृष्टि जीव है।

अविरत सम्यग्दृष्टिपने में सन्तुष्ट नहीं हो जाना। क्यों? यदि तुमने बैंक से लोन पर पैसा निकाला है, ठीक है, चोरी तो नहीं की, मैं मानता हूँ। ईमानदारी

से निकाला है, मैं मानता हूँ। लेकिन वह पैसा आपको चुकाना पड़ेगा कि नहीं? चुकाना पड़ेगा। सही में? हाँ।

मेरे मित्रो! इन अविरत सम्यग्दृष्टियों से कह देना कि घर में कुँवारी कन्या बैठी हो और सिर पर ऋण रखा हो, उस पिता से पूछना कि तुझे नींद कैसे आती है? घर में सयानी कुँवारी कन्या को देखकर पिता की नींद भाग जाती है। ऋण की चिन्ता फाँस की भी वेदना से अधिक होती है। हे श्रावको! अविरत सम्यग्दृष्टि जीवो! कहीं सन्तुष्ट मत हो जाना। जो तुम अविरति का सेवन कर रहे हो, उससे कर्म का आस्रव होगा कि नहीं होगा? असंयम से बन्ध होगा कि नहीं होगा? इसका ऋण तुमको चुकाना पड़ेगा कि नहीं चुकाना पड़ेगा? चुकाना पड़ेगा। ऋण का भोजन करके जो मुस्कराये, उससे बड़ा अज्ञानी कौन होगा? 'मूलाचार' जी में लिखा है- यदि श्रावक ऋण लेकर मुझे आहार देता है और मुझे मालूम चल जाये, तो मैं आहार नहीं लूँगा। माना कि आपके घर में व्यवस्था नहीं बन पा रही थी और साधु घर में पधार गये, तुमने दूसरे घर से ऋण लेकरके आटा वगैरह ला करके चौका लगा लिया और महाराज को पता चल जाये, तो वे आहार नहीं लेंगे। छयालीस दोषों में एक दोष है। क्यों नहीं लेंगे? क्योंकि वहाँ मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, आहार-जल शुद्धि है नहीं। अरे! महाराज न आते तो मुझे किसी के घर से लेने तो नहीं जाना पड़ता। आज मेरे सिर पर ऋण आ गया है। ये विकल्प चल रहा है कि अब चुकाना पड़ेगा, तो मनशुद्धि समाप्त हो चुकी है।

श्रावको! न तुरन्त खरीद कर लाना, न ऋण से दान देना, न किसी का परिवर्तन करके दान देना। तुम्हारे घर में गेहूँ का आटा नहीं था, बाजरे का आटा था, तो तुम्हें बाजरे की ही रोटी बना लेना चाहिये थी। आप गेहूँ का आटा लेकर दूसरे के घर में गये, वहाँ तुम बाजरे का आटा दूना देकर आये हो, तो तुमको विकल्प आयेंगे। एक तो अपने घर की हँसी हो गई कि मैं इज्जत वाला आदमी आज दूसरे के घर में गया, दूसरा विकल्प यह हुआ कि इतना सारा देने के बाद इतना-सा मिला है। महाराज न आते तो ये सब क्यों करना पड़ता? ये विकल्प मन में

आ रहे हैं तो उसकी मन की शुद्धि समाप्त हो गई, भावों की शुद्धि समाप्त हो गई, यहाँ भावहिंसा प्रारम्भ हो चुकी है, और हिंसक के द्वारा दिया गया आहार नहीं लिया जाता।

धन्य हो जैनदर्शन की सूक्ष्मता को। जिसको लोग स्वप्न में नहीं सोच सकते हैं, जैनदर्शन में ऐसी सूक्ष्म व्याख्यायें हैं।

मित्रो! कहीं तुम इसमें सन्तुष्ट मत हो जाना कि मेरी तो पत्नि है और मेरी ही पत्नि है। नहीं मुमुक्षु! न तेरी पत्नि है, न तू पत्नि का है। वासनाओं के कारण तू विषयों में लिप्त हो रहा है। हे जीव! उसके साथ भी सीमा का प्रयोग करना, क्योंकि असंयम कभी अच्छा नहीं होता। असंयम की किसी से मित्रता होती नहीं। कर्म कहता है कि तुम विकल्प मत करो, चिकनाई लगाओ, धूल तो चिपकेगी। मुमुक्षु! पाप करो, पाप का बन्ध तो नियत होगा। बन्ध होगा, तो फल भोगने के लिये भी तैयार हो जाना। पाप करने से किसी पापी के प्रति मित्रता हो सकती है। तुम्हारी बात वो न कहें, आप उसकी बात न कहें, लेकिन कर्म किसी का मित्र होता नहीं। ऋषभदेव से पूछना, कर्म ने उनके साथ भी मित्रता का व्यवहार नहीं किया, छः महीने घूमना पड़ा। आप बहुत ज्ञानी लोग हो, मैं जो कह रहा हूँ वह सब समझ रहे हो। अपने-अपने भावों को सीमित करो, सीमांकन करो। मित्रो! ऊँचाइयों पर कितना जाना है, दुनियाँ हिसाब-किताब करती है। एक बार इतना नियम कर लो कि मैं कितने नीचे गिर सकता हूँ। इसकी सीमा कर लो। उससे नीचे नहीं गिरना।

हे मुमुक्षु! अविरत सम्यग्दृष्टि कह करके सन्तुष्ट मत हो जाना। आपका अभी मात्र मिथ्यात्वजन्य कर्म के आस्रव का अभाव हुआ है। अविरति, प्रमाद, कषाय, योग इन सम्बन्धी आस्रव-बन्ध तो चल ही रहा है। मोक्ष तभी मिलेगा, जब सभी प्रकार के आस्रव-बन्धों का अभाव करोगे। वह अभाव चौदहवें गुणस्थान में होगा। और चौदहवें गुणस्थान में पहुँचने के लिये आपको चौथे गुणस्थान से पुरुषार्थ करना पड़ेगा। जब तक पाँच पाप नहीं छोड़ोगे, तब

तक कल के परमात्मा नहीं हो पाओगे। जो आज पाप छोड़ देगा, वह नियम से भविष्य का परमात्मा है।

कृषक आषाढ़ में दाना मिट्टी में फेंकता है तो क्वाँर-कार्तिक में बोरे में भर लेता है। मेरे मित्रो! तुम पुण्य के दानों को धर्म की भूमि में छोड़ दो, भोगों को भोगना बन्द कर दो, तो विश्वास रखो, तुम्हारे पुण्य के बोरे भर जायेंगे और तुम परमात्मा बन जाओगे। यदि मुख में डाल दोगे तो मल ही बनेगा और खेतों की मिट्टी में डाल दोगे तो बोरे भर जायेंगे। मेरे मित्रो! इस पुण्य के द्रव्य को विषयों के मुख में मत डालो। इस पुण्य के द्रव्य को धर्म की खेती में डाल दो, तो तुम परमात्मा की फसल उगाओगे।

ज्ञानी! वस्तुस्वरूप समझो। कर्म किसी का मित्र नहीं है, कर्म किसी का शत्रु भी नहीं है। कर्म शुद्ध ईमानदार शासक है। जितना करोगे, उतना पुण्यभूत और पापभूत फलित होगा, बन्धेगा।

ज्ञानियो! यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि हे मुमुक्षु! इन्द्रियसुख और धन की गृद्धता से आत्मा की रक्षा करो। लोक को मत देखो और लोक की परम्परा की व्यवस्था को मत देखो। आत्मा पर लक्ष्य है तो जगत् से निर्लिप्त हो जाओ, क्योंकि मोक्षमार्ग और व्यवहार मार्ग, इन दोनों में वैराग्य है। **लोकव्यवहार मोक्षमार्ग नहीं है, लोकव्यवस्था मोक्षमार्ग नहीं है।** परन्तु इतना ध्यान रखना कि जब मोक्षमार्ग पर चलो, तो गृहस्थी के राग को छोड़कर ही निकलना। किञ्चित् भी राग लेकर आओगे, तो धर्म मार्ग से भटक जाओगे। यमुना में मटका लेकर कूद जाओगे तो पार हो जाओगे। मित्रो! उल्टा घट लेकर कूदना। यदि सीधा लेकर कूदे तो तुम भी डूबोगे और मटका भी डूबेगा। पर कुछ ऐसे ज्ञानी लोग हैं, उन्होंने सोचा कि आगरा में खूब धन कमाया है और यमुना पार करना है, तो ऐसा कर लो कि कुछ धन मटके में रख लो, फिर यमुना पार कर लूँगा। यदि मटके में धन लेकर पार करेगा, तो न तू पार हो पायेगा, न तेरा धन पार हो पायेगा। ऐसे-ही कुछ लोग सोचते हैं कि चलो, मुनि तो बन ही गया हूँ, मुनि बन कर कुछ यश भी कमा लूँ, कुछ काम भी कर लूँ, जिससे मेरी परम्परा में नाम चलेगा।

महाराज! तुम यमुना पार नहीं कर सकते, तो भवसागर पार कैसे करोगे? ज्ञानी! मटके को खाली करके जाओगे, तभी पार हो पाओगे। यदि मटके में भर कर ले जाओगे तो भवसागर से तुम पार होनेवाले नहीं हो। जब तक मोह का मटका भरा रहेगा, तब तक भवसागर पार नहीं हो रहे हो। यमुना पार करने के लिये मटका खाली करना पड़ता है। पंचपरमेष्ठी की आराधना करना यही श्रावक का मोक्षमार्ग है और रत्नत्रय की साधना में लीन होना मुनियों का मोक्षमार्ग है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, **श्री महावीरजी पाटनी**, भिलाई
श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर

परम संरक्षक

श्री नेमीचंदजी बड़कुल, इंदौर
श्री राजेशजी जैन (लॉरेल्स), इंदौर
श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर
श्री संतोषकुमारजी जैन (पठनावाले), सागर
श्री माँगीलालजी रमेशकुमारजी पहाड़िया, हैदराबाद
श्री टी.के.वेद, इंदौर
श्री विजयकुमारजी रामनारयणजी, नागपुर

संरक्षक

श्री सचिनकुमारजी जैन (उद्योगरत्न), इंदौर
श्री अनिलकुमारजी जैन (जैनको, समाजसेवी), इंदौर
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल), इंदौर
श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर
डॉ. श्री जैनेन्द्रकुमार जैन, छत्रपति नगर, इंदौर
श्री मानिकचंदजी नायक, (परिवार) छत्रपति नगर, इंदौर
श्री पी.सी. जैन सा., बैंकवाले, इंदौर
श्री प्रमोदकुमारजी जैन (बारदाना),सागर
श्री संतोषकुमारजी सोनू जैन (सिहोरा), सागर
श्री जैन राजेशजी कानूगो, इंदौर
श्री पं. कमलकुमारजी कमलाकर, भोपाल
श्रीमती कुसुमजी प्रकाशचंदजी, सुखलिया, इंदौर
श्री कमलेशकुमारजी पहाड़िया, इंदौर
इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री राकेशकुमारजी पाटनी, नागपुर
श्री निर्मलकुमारजी जैन, गोंदिया

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री वीरेन्द्रकुमारजी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीडीवाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी जैन, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्री पुष्पाजी निर्मलजी काला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग
श्री वीरेन्द्र कुमारजी जैन (सुपारी वाले), सागर

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इंदौर...
श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो. श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमारजी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)
श्री संतोष गरूजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशचन्द्रजी तरूणकुमारजी (आरौन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)
श्री भागचंदजी पाटनी (सेन्ट परसेन्ट)

उज्जैन...
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन

ललितपुर...
श्री रामप्रकाशजी जैन,
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमारजी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसादजी जैन
श्री नरेन्द्रकुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर...
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पाटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (दाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरुपचंदजी सिंघई
श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड़ लाईनस)
श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमारजी जैन

छतरपुर...
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बडकुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईट इंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंदजी बजाज
श्री श्रीपालजी बडकुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

अन्य शहर :
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन
(नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली
श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)
श्री निर्मल कुमारजी जैन, दिल्ली
श्री अनुरागजी मोदी (मोदी ट्रेडर्स), तेंदूखेड़ा
श्री प्रमोदजी चौधरी (जैन नगर), भोपाल
श्री पीयूषजी जैन, सोनीपत (हरियाणा)
डॉ. त्रिशलादेवी जैन, कानपुर
श्रीमती सुमनजी जैन (अरोरा), बरेली